891·2

चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी

चौखम्बा प्रकाशन

E MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY
891'201
म च
2430
o.

891.2

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला
८३

चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

(A Critical and Historical Study of Champū Kāvyās)

लेखक :

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी

एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच० डी०, शास्त्राचार्य (लब्धस्वर्णपदक),
साहित्यरत्न, (हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय)

State Museum, Library, Lko.
2430
2·3·65

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत २०२१

मूल्य · १२-००

891.201

त च

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1965

Phone : 3076

THE

VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

83

CHAMPŪ-KĀVYA KĀ ĀLŌCHANĀTMAKA

EVAṀ

AITIHĀSIKA ADHYAYANA

(A Critical and Historical Study of
Champū Kāvyās)

BY

Dr. CHHAVINĀTH TRIPĀTHĪ

M. A. (Hindi-Sanskrit), Ph. D., Shāstrāchārya (Gold-medallist)

Sāhityaratna, (Hindi Department, Kurukṣetra University.)

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

1965] VARANASI-1 [Phone : 3076

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers & Antiquarian Book-Sellers

POST BOX 8. VARANASI-1 (India) PHONE : 3145

समर्पण—

परमश्रद्धेय डा० रमानाथ, रीडर, हिन्दी-विद्यापीठ, आगरा-विश्वविद्यालय, के कर-कमलों में; जिनके निर्देशन में यह शोध-प्रबन्ध निर्मित हुआ।

कृतज्ञता—

सर्वश्री माननीय डा० बाबूराम सक्सेना, उपकुलपति, रायपुर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश,

डा० विश्वनाथ प्रसाद, निर्देशक, केन्द्रीय-हिन्दी-निर्देशालय, शिक्षा-मन्त्रालय, भारत-सरकार, दिल्ली

तथा

डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, भू० पू० निर्देशक, प्राच्य-विद्या-संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, के प्रति; जिनकी बहुमूल्य सम्मतियों से यह शोध-प्रबन्ध गौरवान्वित हुआ।

—छविनाथ त्रिपाठी

आशंसा

विद्यापीठ शोध-परिषद्

(अनुसंधान-संगम)

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ प्रमुख रूप से एक शोध-संस्थान है। आरम्भ काल से ही विद्यापीठ ने चार विशिष्ट क्षेत्रों में शोध को वैज्ञानिक स्तर पर लाने का प्रयत्न किया है—१. भाषाविज्ञान २. पाठालोचन ३. तुलनात्मक साहित्य और ४. लोक-साहित्य।

इनमें से प्रत्येक विषय में विद्यापीठ ने ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का विकास और उपयोग तो किया ही है, साथ ही विषय-विवेचन और प्रस्तुतीकरण में भी स्तर को ऊँचा उठाने का ध्यान रखा है। आज अनुसंधान संगम की अवधानता में उसके विविध शोध-प्रबन्ध प्रकाशित किये जा रहे हैं। इसमें हमारा उद्देश्य केवल यही है कि ज्ञान के क्षेत्र में हमारा यह योगदान सुविज्ञ अनुसंधायकों और विचारकों के समक्ष पहुँचे। ज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति और संस्था का महत्त्व अपने कृतित्व को औरों के विचारार्थ प्रस्तुत कर देने तक ही है। उसका उचित मूल्यांकन और उपयोग तो विद्वान् पाठकों और आगे के अनुसंधित्सुओं का ही दायित्व है।

मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ को विद्वानों और पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है और मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्यापीठ के निर्देशन में प्रस्तुत किए गए इस प्रबन्ध का स्वागत होगा। इसके लेखक ने अपनी शक्ति भर पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय से सामग्री को जुटाया है और उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है। ज्ञान के उपासक इस अनुसंधाता का मैं अभिनन्दन करता हूँ, जिसने अपने लिए तो पी-एच० डी० की उपाधि इस व्याज से प्राप्त की है, पर ज्ञान-सुधा की एक घूंट वसुधा भर के लिए सुलभ कर दी है। मैं समझता हूँ, मेरे इस अभिनन्दन में इस शोध-प्रबन्ध के पाठक भी मेरा साथ देंगे। ज्ञान की ज्योति का यह एक कण अन्य ज्योति-कणों को ज्योतित करने की परम्परा स्थापित करे, यही मेरी शुभ कामना है।

क. मुं. हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

विश्वनाथ प्रसाद

PREFACE

[**Dr. Vinaya Mohan Sharma,**

Head of the Deptt. of Hindi, Kurukshetra University, Kurukshetra.]

It gives me gerat pleasure and satisfaction to pen a few words on the research treatise entitled 'CHAMPŪ KĀVYA KĀ ĀLOCHANĀTMAKA EVAM AITIHĀSIKA ADHYAYAN' (A critical and Historical study of Champu Kavyas, the mixed prose and verse narrative) by Dr. C. N. Tripathi.

The Champū style of narrative was in Vogue in ancient and medieval literatures of India. Even in some of the modern literatures, we occasionally find traces of this sort of mixed Composition, Hindi being one of them.

Bhāmaha, the early exponent of Sanskrit Poetics, in the first paricched of his work Kāvyālankār divides Kavya (Poetry) from different angles, first from point of view of form into prose and verse, second from point of view of language into Sanskrit, Prākrit and Apabhramsa; third, from the point of view of theme into Vṛtta-Devādi-Charita-Shamsi, utpadya vastu, Kalāshraya and Shāstrāshraya, and lastly into Sarga-Bandha, Abhineyārtha, Akhyāyikā, Kathā and Anibadha. Daṇḍin, who flourished in the 8th. Century A. D. (The Sanskrit scholars are at variance in regard to the date of Bhāmaha and Daṇḍin. Some are inclined to place Daṇḍin prior to Bhāmaha. I would follow the majority view ('Mahājano Yena Gatah Sa Panthā') for my purpose and presume that Bhāmaha preceded Daṇḍin) divides poetry from the stand point of form into Gadya, Padya and mishra. Sanskrit Scholars did not regard the versification as essential ingredient of poetry. Therefore, they regarded well knit prose also a form of poetry. In Kāvyālankāra Sūtra Vāman regards prose as a touch-stone (Nikaṣa) of poetry ('Gadyam Kavīnām Nikaṣam Vadanti'.) Daṇḍin's main division of Kāvya finds place in Agni-Purāṇa and Saraswatī Kanṭhā-bharaṇa as well. Daṇḍin has referred to Champū Kāvya

as Gadyapadyamayī Composition. Vāman's division also comprises Gadya and Padya. Gadya has again three divisions : Vṛittagandhi (fragrance of metre), Chūrṇa and Utkalikāprāya. Hem Chandra divides Kavya into Prekṣya and Shravya and then Shravya is again sub-divided into Mahā Kavya (epic), Akhyayikā, Kathā, Champū and Anibadha. Vishwanāth in his Sāhitya-Darpaṇa defines Champū as Gadya-Padyamayam Kāvyam (Prose + Poetry = Champū).

The author has analysed various definitions of Champū Kāvya and has Culled out its following specialities :—

(1) It Consists of prose and poetry.

(2) It is divided in to Ucchvāsas.

(3) It is devoid of Ukti and Pratyukti and Viṣkambhaka (Prelude).

He then proceeds to examine each of the above specialities and gives his own definition in the following verse—

Gadyapadyamayam Shravyam Sabandham Bahuvarṇitam.
Sālankāram Rasaiḥ siktam Champū Kāvyamudahṛatam.

(It is a Shravya Kāvya with the admixture of prose and poetry with appropriate Alankāras and Rasas) and then Compares it with other forms of poetry i.e. Mahākāvya, Khanḍa Kāvya etc.

In the third chapter he diligently traces the rise and development of Champūs right from Vedic-Upākhyānas upto the advent of Prākṛt literature.

Fourth Chapter is the back-bone of the thesis in which published and unpublished Champūs are critically evaluated. He has laboured hard in collecting hither to unpublished manuscripts and brought to light their poetic and linguistic peculiarities with apt illustrations. He has listed from various catalogues, a number of such mixed Compositions without bringing out their salient features as they contain very little poetic element. He has further divided them on the basis of their sources and themes.

Yashastilaka Champū has been elaborately examined. The brilliant exposition of author of this and other Champū

Kavyas refutes the view of S. N. Dās Guptā when he pooh-poohs by saying that 'the Champūs have neither sinewy strength and efficiency of real prose, nor the weight and power of real poetry; the forms, no doubt affords scope for versatility but the Champū written as a rule, has no original voice of its own'.

It is very difficult precisely to valuate the piece of art. I am here reminded of the conversation between the famous English Critic Johnson and his biographer Boswei. Boswel once asked Johnson 'Then Sir, what is poetry ?' Johnson replied "Why Sir, it is much easier to say, what it is not, we all know, what light is, but it is not easy to tell what it is".

We are to evaluate literature not according to our own cannons of Judgement, but in the context of the atmosphere in which it was created. Champūs have to be valued in context of their narration, that is in terms and degree of their own nature. The author has studied Yashastilaka Champū by applying the classical Criteria of evaluation and has done full justice to it.

Champūs are largely influenced by Bhakti movement and their social and political environments. It is interesting to note that in North India forty-six Champūs only were Composed and the rest out of hundreds were written in the Southern Part of India. The reason seems to be that this form of poetry found favour with the royalties and religious institutions of the south under whose patronage most of the poets flourished.

It is gratifying to note that the author has tackled his subject with the real spirit of a researcher. It is no doubt, a valuable contribution to the history of Sanskrit literature, where Champūs have received scanty attention by the writers.

Dated. 21-1-1965 **Vinaya Mohan Sharma**

प्रस्तावना

मानव की अनुभूति और अभिव्यक्ति का मणि-कांचन-योग जब वाणी के माध्यम से अपना चमत्कार प्रदर्शित करता है, तब उसे वाङ्मय कहा जाता है। वैदिक काल से लेकर आज तक संस्कृत-वाङ्मय की धारा अजस्र गति से प्रवाहित हो रही है। वाङ्मय को शास्त्र और काव्य, इन दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। शास्त्र पुरातन हो सकता है, किन्तु काव्य या रागात्मक साहित्य नित्य नूतन बना रहता है। काव्य या रागात्मक साहित्य के निर्माण में कवि की सर्जनात्मक कल्पना महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है।

संस्कृत के आचार्यों ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द या रसात्मक वाक्य को काव्य माना है। काव्य की पुरुष-शरीर से तुलना की है। शब्द और अर्थ काव्य-पुरुष के शरीर हैं, रस आत्मा है, ध्वनि प्राण है, ओज, माधुर्य आदि उसके गुण हैं। अलंकार उसके शृङ्गार के साधन हैं, रीतियां काव्य-पुरुष के आचरण और व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति करती हैं।

इन्द्रियग्राहिता के आधार पर काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद किये जाते हैं। दृश्य काव्य में रूपक और उपरूपक आते हैं। श्रव्य काव्य के प्रबन्ध और मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य के महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि भेद किये जाते हैं। श्रव्य काव्य के लिये पद्य, गद्य और पद्य-गद्य-मिश्रित शैलियाँ अपनाई जाती हैं। मुक्तक काव्य, प्रबन्ध काव्य का अंग बनकर भी आ सकता है। गद्य काव्य के भी प्रबन्ध और मुक्तक भेद होते हैं। प्रथम में आख्यायिका और कथा का स्थान मुख्य है, द्वितीय में वृत्तगंधि, उत्कलिकाप्राय, चूर्णक आदि भेद किये जाते हैं, जो वस्तुतः गद्य की शैलियाँ हैं।

गद्य-पद्य-मिश्रित शैली में निर्मित काव्य ही मिश्रकाव्य कहलाता है। मुक्तक मिश्र-काव्यों में करम्भक, विरुद, घोषणा आदि की गणना की जा सकती है। ख्यात या प्रबन्धात्मक मिश्रकाव्य का सर्वोत्कृष्ट अंग चम्पूकाव्य है। चम्पूकाव्य में भी अन्य काव्य-भेदों की तरह ही रमणीयता रहती है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में चम्पूकाव्यों को बहुत ही कम स्थान प्राप्त हुआ है, केवल श्रीकृष्णमाचारी ने चम्पूकाव्यों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है। शोध-कार्य में संलग्न होने पर उनमें से कुछ प्राप्त नहीं हुये और कुछ ऐसे नये चम्पूकाव्य दृष्टिपथ में आये जिनका उल्लेख वहाँ भी नहीं हुआ है। ७४ चम्पूकाव्य तो विविध स्थानों से प्रकाशित भी हो चुके हैं, पर उनमें से कुछ की गणना ही संस्कृत साहित्य के इतिहासकार करते हैं। मेरे सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि चम्पू काव्यों का विवेचन करने वाला एक भी पूर्ववर्ती ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था, प्रामाणिक सूची नहीं थी और प्रकाशित चम्पूकाव्य भी किसी एक पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं थे। प्रायः सभी चम्पूकाव्यों को स्वयं खरीदना पड़ा।

अधिकांश चम्पूकाव्य दक्षिणभारत के प्रकाशन-गृहों या कुछ पुस्तकालयों में उपलब्ध हुए। उत्तरभारत का निवासी होने के कारण मेरी कठिनाई का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

संस्कृत के आचार्यों ने 'गद्यपद्यमय काव्य' को चम्पू की संज्ञा दी है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासकार इसी की आवृत्ति करते रहे। उपलब्ध चम्पूकाव्यों के अध्ययन और विश्लेषण तथा चम्पूकाव्यकारों के द्वारा अभिव्यक्त चम्पूकाव्य-सम्बन्धी विचारों के विवेचन के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि परम्परा-प्राप्त इस परिभाषा के द्वारा चम्पूकाव्यों की विशेषतायें स्पष्ट नहीं हो पातीं। काव्यगुणों से ओत-प्रोत चम्पूकाव्यों में भी विविधतायें हैं—वस्तु, नायक, रस, छन्द, विभाजन की प्रक्रिया, वर्णन की शैली, आकार आदि में भी अनेकरूपता है। चम्पूकाव्यों ने किसी विशिष्ट शास्त्रीय बन्धन और परम्परा को स्वीकार नहीं किया है, फिर भी उनकी कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं जो सबमें उपलब्ध हो जाती हैं। अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से रहित एक परिभाषा को आकार देने का प्रयत्न निम्नलिखित श्लोक में किया गया है—

'गद्य-पद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्।
सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पुकाव्यमुदाहृतम्॥'

अन्य उपलब्ध परिभाषाएँ दोनों दोषों से ग्रस्त हैं और उनका विस्तृत निरस्तीकरण ग्रन्थ के द्वितीय परिच्छेद में कर दिया गया है।

मिश्र शैली का आरम्भ वैदिक काल से ही हो गया था। ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान मिश्र शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। उपनिषदों से ही अलंकृत शैली के दर्शन होने लगते हैं। समासबहुलता और अलंकरण की प्रवृत्ति से युक्त मिश्र शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हरिषेण की प्रयाग-प्रशस्ति है। वस्तुतः यह एक आश्चर्य की बात है कि चम्पूकाव्य-धारा का लगभग चार सौ वर्षों का इतिहास शिलालेखों की गोद में छिपा है। दसवीं शताब्दी के मध्य में ही चम्पूकाव्यों का ग्रन्थात्मक सृजन आरम्भ हुआ, यद्यपि शिलालेखों में वह परम्परा भी एक क्षीण धारा के रूप में बाद के कई सौ वर्षों तक चलती रही है। मिश्र शैली के विकास के अन्वेषण में दक्षिणभारतीय भाषाओं में उपलब्ध इसके रूपों का सांकेतिक उल्लेख किया गया है।

इस शोध-प्रबन्ध में २४५ चम्पूकाव्यों का उल्लेख किया गया है जिनमें से १०२ चम्पूकाव्यों का कुछ विस्तृत आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। चम्पूकाव्यों के इस परिगणन के आधार—प्रकाशित चम्पूकाव्य, वर्णनात्मक सूचीपत्र, इतिहास-ग्रन्थ तथा कुछ अन्य ग्रन्थ रहे हैं।

वर्ण्य वस्तु और मूल स्रोतों के अन्वेषण से जो तथ्य सामने आये हैं उनसे ज्ञात होता है कि रामायण पर ३६, महाभारत पर २७, भागवत पर ४५, शिवपुराण पर १८, अन्य पुराणों पर २३, जैन पुराणों पर ६, ऐतिहासिक और सामान्य व्यक्तियों के चरितों पर ४८ तथा यात्रावृत्तों पर १३ चम्पूकाव्य लिखे गये हैं। स्थानीय देवताओं के चरित या उनके महोत्सवों पर २५ तथा विचारात्मक या काल्पनिक कथा पर आश्रित ५ चम्पूकाव्य हैं।

प्रथम चम्पूकाव्य नलचम्पू है। पन्द्रहवीं शताब्दी तक केवल २० चम्पूकाव्य उपलब्ध होते हैं। शेष बाद के ढाई सौ वर्षों में लिखे गये हैं। कुछ कवि राज्याश्रित हैं, कुछ विविध मठों, मन्दिरों या सामन्तों से सम्बन्धित हैं। पौराणिक चम्पूकाव्यों की संख्या सबसे अधिक है, उसके बाद चरित-चम्पूकाव्यों का स्थान है। चम्पूकाव्यों के निर्माण में भक्ति-आन्दोलन और दरबारी वातावरण ने प्रभावकारी शक्तियों के रूप में कार्य किया है। सोलहवीं शताब्दी के बाद के भक्तिपरक चम्पूकाव्यों में भी शृङ्गार और विलासिता के उत्तान चित्र प्राप्त होते हैं। शैव चम्पूकाव्य इससे बचे हुये हैं। उत्तरभारत में केवल ४६ चम्पूकाव्यों की रचना हुई है, शेष दक्षिणभारत में लिखे गये हैं। उक्त निष्कर्षों का आधार इस ग्रन्थ में परिगणित २४५ चम्पूकाव्य ही हैं।

अन्त में एक लोकप्रिय और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चम्पूकाव्य यशस्तिलक का विस्तृत आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य इस भ्रान्ति का निराकरण है कि चम्पूकाव्यों की अपनी कोई विशेषता नहीं है। यहाँ केवल इस रचना का साहित्यिक मूल्यांकन मात्र किया गया है। वह अपने युग के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश, चिन्तन और निष्ठाओं को भी व्यक्त करता है।

चम्पूकाव्य अपने युग की उन सम्पूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करते हैं जो हिन्दी सहित भारत की विविध प्रान्तीय भाषाओं में उपलब्ध उस युग के साहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं। इस दृष्टि से चम्पूकाव्यों के साथ उनके तुलनात्मक अध्ययन का एक विशाल क्षेत्र अभी पड़ा है। 'चम्पूकाव्यों का विस्तृत विवेचन करने वाला यह प्रथम ग्रन्थ है अतः न तो इसकी पूर्णता का दावा किया जा सकता है न त्रुटि-रहितता का। जैसा कि आदरणीय डा० विश्वनाथप्रसादजी ने संकेत किया है कि इस शोध-प्रबन्ध के द्वारा अन्य शोध-कार्य करने वाले व्यक्तियों की जिज्ञासा संस्कृत-साहित्य की इस उपेक्षित किन्तु विशिष्ट धारा की ओर उन्मुख हो, यही मेरा भी उद्देश्य है। यह ग्रन्थ चम्पूकाव्यों की परम्परा का एक स्पष्ट रेखाचित्र प्रस्तुत करने में सफल रहे, यह मेरा प्रयत्न रहा है; रंग भरने का कार्य तो बाद के अनुसंधित्सु ही कर सकेंगे।

संस्कृत-साहित्य की अन्य विधायें जब शुष्कप्राय हो रही थीं तब चम्पूकाव्यों ने संस्कृत-साहित्य की सरल धारा को गतिशील बनाये रखा। इन्होंने संस्कृत कवियों की उस क्षमता का भी प्रदर्शन किया जो युग-भावना और युग-दर्शन को अभिव्यक्ति देने में सदा समर्थ रही है। अपने वर्णन का क्षेत्र विस्तृत करते हुए, उन्होंने अपना महत्त्व प्रतिष्ठापित किया है। उन्हें लोकप्रियता मिली है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की नूतनता ने ही उनमें उस रमणीयता का समावेश किया जो मर्मी जनों को आनन्द से आप्लावित और चमत्कृत करने में समर्थ हुई। संस्कृत साहित्य की यह धारा न तो उपेक्षणीय है, न संस्कृत-साहित्य के इतिहास में केवल दो-तीन पृष्ठों में समा जाने वाली।

अन्त में मैं इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक डा० रमानाथ, अपनी बहुमूल्य सम्मतियों से इसे गौरव देने वाले डा० बाबूराम सक्सेना, डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री तथा अपनी शुभ-कामना से इसे अलंकृत करने वाले डा० विश्वनाथ प्रसाद एवं आशीर्वाद रूप में अंग्रेजी भूमिका के प्रस्तोता डा० विनयमोहन शर्मा सदृश गुरुजनों के प्रति अपना आभार प्रकट

करता हूँ और चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी के संचालकों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इसे प्रकाशित कर सभी के लिए सुलभ कर दिया है। विद्वज्जनों को इससे सन्तोष मिल सके तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा; क्योंकि—

समुद्रं गाहते कश्चित् शुक्ति-संचयकारकः।
कदाचिल्लभते मुक्तां न हि सर्वासु शुक्तिषु॥
प्राप्यैकां भासमानां तां साफल्यं मन्यते ध्रुवम्।
खेदः विमनायते तस्य लोकोऽपि सुमनायते॥
शैवालेनापि संश्लिष्टमुत्फुलं च सरोरुहम्।
नोपेक्ष्यन्ते सुरसिकाः तथा मुक्ता-परीक्षकाः॥

समुद्र को अनेक निकाली गई सीपियों में प्राप्त एक भी मोती और शैवाल-संश्लिष्ट कमल रसिकों द्वारा उपेक्षणीय नहीं होते।

गणतन्त्रदिवस
२६।१।१९६५

विदुषामनुचरः—
छविनाथ त्रिपाठी

विषय-सूची

आमुखम्

१. काव्य का स्वरूप एवं उसके भेद १-३०

काव्य का स्वरूप, काव्य की परिभाषा, काव्य-पुरुष, काव्य के भेद—श्रव्य काव्य के भेद, प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य; गद्य काव्य के भेद, शैली, कथा, आख्यायिका; मिश्र काव्य के भेद, चम्पू काव्य की परिभाषा।

२. चम्पू काव्य की विशेषतायें एवं अन्य काव्याङ्गों से उसका अन्तर ३१-५६

चम्पू काव्य की विशेषतायें, चम्पू काव्य निर्माताओं की दृष्टि में, संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि में, चम्पू काव्यों से प्राप्त तथ्य, परीक्षण, समीक्षा, विश्लेषण, समन्वित एवं प्राप्त विशेषतायें—कथा-वस्तु का संगठन, आकार, विभाजन, उपसंहार वाक्य, कथावस्तु के मूलस्रोत, पात्रगत विशेषतायें, रसगत विशेषतायें, शैलीगत विशेषतायें, तथ्यों के आधार पर परिभाषा निर्माण; चम्पू काव्य का साम्य-वैषम्य—महाकाव्य से, खण्डकाव्य से, मुक्तक से, गद्य काव्य से, दृश्य काव्य से, श्रव्यात्मक मिश्र काव्य से।

३. मिश्र काव्य के विकास की पृष्ठभूमि ५७-१००

वैदिक उपाख्यानों : विशेषतः ऐतरेय ब्राह्मण में मिश्र शैली का आरम्भ, उपनिषदों में मिश्र शैली, वेदांगों में, सूत्र काल के बाद, जातक ग्रन्थों में, अवदान शतक एवं जातक माला में, चम्पूकाव्येतर मिश्र शैली के रूप—नीति कथाओं में, पुराणों में, दृश्य काव्यों में, मिश्र शैली का चम्पू काव्यात्मक रूप—शिलालेखों में, प्रशस्तियों में, अलंकरण की प्रवृत्ति, दक्षिण भारत की भाषाओं में मिश्र तथा अलंकृत शैली, तामिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलुगु में, मणि प्रवाल शैली—जैन शिलालेखों में, चम्पू का काव्य रूप, शृंगार की प्रधानता; विहगावलोकन।

४. संस्कृत के प्रकाशित एवं अप्रकाशित उपलब्ध चम्पू काव्य १०१-२६०

नल चम्पू, मदालसा चम्पू, यशस्तिलक चम्पू, जीवन्धर चम्पू, रामायण चम्पू, उदय सुन्दरी कथा, भागवत चम्पू, अभिनव भारत चम्पू, भारत

चम्पू, भरतेश्वराभ्युदय चम्पू, पुरुदेव चम्पू, अमोघ राघव चम्पू, यतिराज विजय चम्पू, रुक्मिणी परिणय चम्पू, आचार्य विजय चम्पू, आनन्द वृन्दावन चम्पू, गोपाल चम्पू, आचार्य दिग्विजय चम्पू, काकुत्स्थ विजय चम्पू, वरदाम्बिका परिणय चम्पू, वसु चरित्र चम्पू, नाथमुनि विजय चम्पू, श्री रामानुज चम्पू, कल्याणवल्ली कल्याण, भागवत चम्पू, भागवत चम्पू, पंचकल्याण चम्पू, पारिजात हरण चम्पू, तीर्थ-यात्रा-प्रबन्ध चम्पू, आनन्द कन्द चम्पू, नृसिंह चम्पू, मन्दारमरन्द चम्पू, विद्वन्मोद-तरंगिणी, माधव चम्पू, वीरभद्रदेव चम्पू, मत्स्यावतार प्रबन्ध, राजसूय प्रबन्ध, पांचाली स्वयंवर, स्वाहा सुधाकर चम्पू, कोटि विरह, नृग-मोक्ष, सुभद्राहरण, पार्वती स्वयंवर, नलायणी चरित, कौन्तेयाष्टक, दूतवाक्य, किरात, निरनुनासिक, दक्षयाग, व्याघ्रालयेशाष्टमी महोत्सव, आनन्द कन्द चम्पू, नृसिंह चम्पू, विश्वगुणादर्श चम्पू, वरदाभ्युदय चम्पू, उत्तररामचरित्र चम्पू, नीलकंठ विजय चम्पू, त्रिपुर विजय चम्पू, त्रिपुर विजय चम्पू, केरलाभरणम् , वैकुण्ठ विजय चम्पू, उत्तरचम्पू रामायण, द्रौपदी परिणय चम्पू, गोदापरिणय चम्पू, गौरी मायूर माहात्म्य चम्पू, वेंकटेश चम्पू, भैष्मी परिणय चम्पू, बाणासुर विजय चम्पू, तत्त्वगुणादर्श, धर्म विजय चम्पू, भोसलवंशावली चम्पू, श्रीनिवास चम्पू, दत्तात्रेय चम्पू, मद्रकन्या परिणय चम्पू, भारत चम्पू तिलक, चम्पू रामायण युद्ध काण्ड, कुमार भार्गवीय, उत्तर चम्पू, विक्रमसेन चम्पू, श्रीकृष्ण विलास चम्पू, शंकरानन्द चम्पू, बिबुधानन्द-प्रबन्ध चम्पू, दिव्य चाप विजय चम्पू, मार्ग सहाय चम्पू, मारुति विजय चम्पू, मीनाक्षी कल्याण चम्पू, भिल्ल कन्या परिणय चम्पू, रामायण युद्ध काण्ड, शिव चरित्र चम्पू, चोल चम्पू, शिव विलास चम्पू, कार्तवीर्य प्रबन्ध, शंकरचेतो विलास, गंगावतरण चम्पू प्रबन्ध, रामचन्द्र चम्पू, चित्र चम्पू, आनन्द रंग विजय चम्पू, चन्द्रशेखर चम्पू, भागीरथी चम्पू, रघुनाथ विजय चम्पू, कविमनोरंजक चम्पू, कुमार संभव चम्पू, १४३ अन्य चम्पू काव्यों की सूची, चम्पू काव्यों के मूल स्रोत ।

५. वर्ण्य-वस्तु एवं मूल स्रोत के आधार पर चम्पू काव्यों का वर्गीकरण २६०–२९४

रामायण के आधार पर, महाभारत के आधार पर, भागवत पुराण के आधार पर, शिव पुराण के आधार पर, जैन पुराणाश्रित चम्पू काव्य, चरित चम्पू काव्य, यात्रा प्रबन्धात्मक चम्पू, स्थानीय देवताओं

और महोत्सव सम्बन्धी, काल्पनिक कथा पर आश्रित, दार्शनिक चम्पू काव्य; चम्पू काव्यों का रचना काल, चम्पू काव्यकार और उनके आश्रय-स्थल—दरबार, मठ-मन्दिर, उत्थान एवं ह्रास काल, चम्पू काव्यों के लोकप्रिय मूलस्रोत, भक्ति आन्दोलन और चम्पू काव्य, भक्ति में श्रृंगार और दरबारी वातावरण का मिश्रण, संख्या तालिका।

६. यशस्तिलक चम्पू का विशिष्ट अध्ययन २९१–३५६

कवि परिचय, जैन कवियों में यशोधर चरित की लोकप्रियता, यशस्तिलक चम्पू की कथावस्तु, कथावस्तु का मूलस्रोत, मूलकथा में परिवर्तन, यशस्तिलक चम्पू के पात्र, नायक-विमर्श, यशस्तिलक चम्पू का काव्य सौन्दर्य, कवि का दृष्टिकोण, वर्णन सौन्दर्य और पूर्ववर्ती गद्य-काव्यों का प्रभाव, वस्तु-संगठन, रूप चित्रण, प्रकृति-चित्रण और वातावरण का चित्रण, अन्य वर्णन, यशस्तिलक की गद्य-शैली, संवादों का उपयोग, पद्य-शैली, सूक्तियां, अन्य कवियों या ग्रन्थों के उद्धरण, छन्द प्रयोग, गद्य पद्य की मात्रा, अलंकारों का उपयोग, शाब्दी क्रीडा, प्रहेलिका, यशस्तिलक में प्रस्तुत रस, शान्त रस।

७. उपसंहार ३५७–३६८

परिशिष्ट ३६९–३७९

अंग्रेजी के प्रयुक्त उद्धरण, सहायक ग्रन्थों की सूची, सहायक प्रकाशित चम्पू काव्यों की सूची, सहायक पत्रिकाओं की सूची, सहायक-वर्णनात्मक सूचीपत्रों (Catalogues) की तालिका।

चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक

एवं

ऐतिहासिक अध्ययन

काव्य का स्वरूप एवं उसके भेद

काव्य का स्वरूप

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने जीवन का अस्तित्व बनाये रखने के लिये उसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष उसे अन्य व्यक्तियों से भी करना पड़ता है और प्रकृति से भी। फलस्वरूप उसको नाना प्रकार के अनुभव होते हैं। प्रकृति के रमणीय दृश्य उसे उल्लसित करते हैं, घटनायें उसे आश्चर्यचकित करती हैं और आत्मरक्षा की भावनाएँ उसके हृदय को उत्साह तथा शौर्य से भर देती हैं। मानव-समाज के संपर्क में आने पर भी उसे, सुख-दुख, हर्ष-शोक आदि अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। ये सभी प्रकार की अनुभूतियाँ मानव-मानस में भावों और विचारों की वीचियाँ तरंगित कर देती हैं। साधारणतया ये भाव एवं विचार-तरंगें मानस-कूल से टकराकर ही शांत हो जाती हैं, पर जब इनका वेग तीव्र हो जाता है, तब अनायास ही इनकी अभिव्यक्ति होने लगती है। इस अभिव्यक्ति का साधन बनती है वाणी। अभिव्यक्ति में सौन्दर्य का समावेश उसे कला का रूप देता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का यह मणि-कांचन योग, जब वाणी के माध्यम से अपना चमत्कार प्रदर्शित करता है, तब उसे वाङ्मय कहा जाता है। वैदिक काल से लेकर आज तक संस्कृत-वाङ्मय की धारा अजस्र गति से प्रवाहित हो रही है।

राजशेखर ने वाङ्मय को दो वर्गों में विभाजित किया है—

"इह हि वाङ्मयमुभयथा, शास्त्रं काव्यं च।"

(काव्यमीमांसा, अध्याय २)

शास्त्र से उनका तात्पर्य ज्ञानात्मक साहित्य से, एवं काव्य से रागात्मक-साहित्य से है। शास्त्रीय वाङ्मय, देश-काल एवं समाज की परिस्थितियों के परिवर्तित होने तथा नये-नये अन्वेषण और वैज्ञानिक अनुसंधानों की प्रगति के कारण भले ही पुरातन हो जायं, परन्तु रागात्मक-साहित्य या काव्य नित नूतन बना रहता है। उसमें प्रतिक्षण अभिनव रमणीयता रहती

है, वह कभी बासी नहीं होता। भाव-जगत का आवेष्टन बदलता है, पर उसकी समस्यायें—उसकी सजीवता, सुन्दरता तथा चिरन्तनता सदैव अक्षुण्ण रहती हैं। सभी विधायें, सभी कलायें एवं सभी प्रकार की मानव-उपलब्धियाँ, काव्य का साधन बनकर सहयोग देती हैं, अतः शास्त्र और काव्य में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। हितोपदेशपरक या कान्ता-सम्मित उपदेश से युक्त होने के कारण काव्य भी शास्त्र के शाश्वत सिद्धान्तों का अनुसरण करता है।[१]

कवि की कृति ही काव्य है।[२] कवि सामान्य मानव-प्राणी से भिन्न होता है। उसका हृदय अधिक संवेदनशील होता है। उसमें सूक्ष्म-निरीक्षण की शक्ति होती है। व्यक्तियों, दृश्यों एवं घटनाओं से प्राप्त अनुभूतियों के ग्रहण में वह समर्थ तो होता ही है, उन अनुभूतियों को प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास से वाणी के माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति देने में, सक्षम भी होता है। पदावली उसके संकेत पर नृत्य करती है। वह साधारण में असाधारण का चमत्कार उत्पन्न कर सकता है। वह ब्रह्मा का सगोत्रीय है।[३] ब्रह्मा द्वारा निर्मित इस दृश्य-जगत से भी मनोरम भाव-जगत का, वह सृजन कर सकता है। उसकी सर्जनात्मक कल्पना, इस जगत की कुरूपता एवं कमियों को दूर कर उसे सुन्दर, भव्य एवं पूर्ण बना सकती है। ऐसे ही समर्थ कवि के जीवन के अन्यतम क्षणों की मधुर अभिव्यक्ति, काव्य का स्वरूप ग्रहण करती है। भाषा और शैली-भेद से इस अभिव्यक्ति के अनेक रूप हो सकते हैं, पर सभी में इस जगत के श्रान्त-क्लान्त मानव-मन को विश्राम देकर उसे अलौकिक आनन्द में निमज्जित कराने की क्षमता होती है। मानव-उर के उस अन्तर्तम क्षेत्र को भी वे प्रकाशित कर सकती हैं, जहाँ रवि-शशि की गति नहीं है। अभिव्यक्ति के फलस्वरूप काव्य की जो अनेक विधायें सामने आई हैं, उन्हें ध्यान में रखकर भारतीय आचार्यों ने काव्य की विविध परिभाषायें भी प्रस्तुत की हैं और उसके मर्म का उद्घाटन करने का प्रयास भी किया है।

---

१. "सकलविद्यास्थानैकायतनं पंचदशं काव्यं विद्या-स्थानम्, गद्य-पद्यमयत्वात् कविधर्मत्वात् हितोपदेशकत्वाच्च, तद्धि शास्त्राण्यनुधावति।" इति यायावरीयः।

२. कवेः कृतिः काव्यम्।

३. "कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः।"

काव्य की परिभाषा

भारतीय आचार्यों ने काव्य की जो अनेक परिभाषायें दी हैं, ये एक ओर तो काव्य का स्वरूप स्पष्ट करती हैं और दूसरी ओर उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण की परिचायक भी हैं। उपलब्ध परिभाषाओं का काल-क्रमानुसार अध्ययन उनके पारस्परिक अन्तर को भी स्पष्ट करता है। भरतमुनि ने काव्य के अन्यतम अंग दृश्य-काव्य को ध्यान में रखकर जो परिभाषा दी है, वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है—

मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं, जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययुक्तम्।
बहुकृतरसमार्गं संधिसंधानयुक्तं भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्॥

(नाट्यशास्त्र १६।१२३,१२४)

काव्य, कोमल और ललित पदावली से सम्पन्न होना चाहिए। गूढ़ शब्दार्थ द्वारा क्लिष्टता न आये, तथा सर्वजनों के लिए सरलता से समझने योग्य हो। संधियों से सम्पन्न रस-दान की सामर्थ्य भी उसमें होनी चाहिये। ऐसे काव्य का समर्थन करते हुये आचार्य भरत ने, काव्य के सरल, व्यापक और सर्वग्राह्य रूप की आवश्यकता पर बल दिया है। नाटक सभी वर्णों के लिये समान रूप से आनन्द ग्रहण का साधन था, अतः उसका 'जनपद-सुखबोध्य' होना नितान्त आवश्यक था।

अग्निपुराण ने वाङ्मय के व्यापक रूप का परिचय देते हुये "ध्वनि-वर्णाः पदं वाक्यमित्येतद् वाङ्मयं मतम्"[1] कहकर ध्वनि, वर्ण, पद एवं वाक्य को (जो वाणी के अनिवार्य अंग हैं) वाङ्मय का अंग माना है, किन्तु सामान्य वाङ्मय से, काव्य भिन्न होता है अतः उसकी दूसरी परिभाषा दी—

संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। (३३७।६)
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्।
योनिर्वेदश्च लोकश्च सिद्धमर्थादयोनिजम्॥

(अ॰ पु॰ ३३७।७)

अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली से सम्पन्न संक्षिप्त वाक्य ही काव्य है। उसमें अलंकारों का स्फुरण, गुणयुक्तता एवं दोष-विहीनता भी होनी चाहिये। काव्येतर वाङ्मय के लिये तो अलंकार, गुण और दोष

---

१. अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक १

अधिक विवेचन के विषय नहीं बने, किन्तु काव्य के लिए इनकी अनिवार्य महत्ता स्वीकार कर ली गई। आचार्य दण्डी[1] और राजशेखर[2] ने, काव्य की परिभाषा करने में अग्निपुराण की परम्परा का ही पालन किया।

वाक्य का निर्माण पदावली से होता है और काव्य में सार्थक पदावली ही व्यवहृत होती है। अतः आचार्य भामह ने पद और अर्थ के अविच्छिन्न सम्बन्ध को महत्त्व देते हुये काव्य को शब्दार्थ माना।[3] गुण और अलंकार, शब्द तथा अर्थ दोनों के ही होते हैं, अतः शब्द और अर्थ को काव्य की परिभाषा का मूल आधार मानते हुये, उन्हें गुण और अलंकारों से समन्वित होना भी आवश्यक समझा जाने लगा। रुद्रट ने जहाँ "ननु शब्दार्थौ काव्यम्" कहा, वहाँ वामन ने गुण और अलंकार को भी शब्दार्थ के साथ सम्मिलित कर दिया—

काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।
(काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १।१)

इन परिभाषाओं में काव्य के मूल आधार शब्द और अर्थ को ही महत्त्व दिया गया। काव्य के व्यक्तित्व को प्रतिफलित करने की अपेक्षा उसके शरीर का निर्माण जिन तत्त्वों से होता है, उन्हीं पर बल दिया गया है। गुणों और अलंकारों की उपस्थिति, तथा दोषों की अनुपस्थिति की अनिवार्यता, केवल इन मूलभूत तत्त्वों—शब्द और अर्थ—की निरवद्य बनाये रखने की ओर रुचि का निर्देश करती है।

काव्य की परिभाषा करते हुये अन्य प्रमुख आचार्यों ने भी शब्द और अर्थ की उपेक्षा नहीं की है, यद्यपि उनके विवेचन की प्रणाली, काव्य के मर्म तक पहुँचने के उनके प्रयास की ओर अधिक संकेत करती है। काव्य के सांगोपांग लक्षण के लिये आवश्यक है कि वह न केवल काव्य के बाह्य रूप का ही परिचय कराये अपितु उसके अन्तः व्यक्तित्व की भी झाँकी प्रस्तुत करे। इस दिशा में आनन्दवर्धनाचार्य एवं मम्मट ने अधिक ध्यान दिया। मम्मट की निम्नलिखित परिभाषा—

---

१. तैः शरीरं च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्नपदावली ॥
(काव्यादर्श १।१०, पृष्ठ ६)

२. गुणवदलंकृतं च वाक्यमेव काव्यम्। (काव्यमीमांसा, अध्याय ६)

३. शब्दार्थौ सहितं काव्यम्। (काव्यालंकार १।१६)

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।" (काव्यप्रकाश १।४) के अनुसार काव्य ऐसी रचना है जिसके शब्दों और अर्थों में दोष नहीं हों, गुण अवश्य हों, चाहे अलंकार कहीं-कहीं पर न भी हों। मम्मट ने अन्यत्र, रस को ही अंगी या प्रधान मानकर गुणों को रस का पोषक और दोषों को रस का अपकर्षक माना है।[1] किसी वस्तु के उत्कर्ष या अपकर्ष के साधक मात्र को ही उस वस्तु का प्रमुख लक्षण कैसे माना जा सकता है? मम्मट की परिभाषा में 'अनलंकृती' का प्रयोग काव्य के कोरे बाह्य स्वरूप के निर्देश से मुक्ति पाने का प्रयत्न अवश्य सूचित करता है। परवर्ती अनेक आचार्यों ने काव्य की परिभाषा देते हुए मम्मट का ही अनुसरण किया है।[2]

आनन्दवर्धनाचार्य के समय तक काव्य की आत्मा के अन्वेषण का कार्य आरंभ हो चुका था और कई आचार्यों ने अपने दृष्टिकोण के अनुसार इसे स्पष्ट किया है। भारतीय आचार्यों के छ सम्प्रदाय इस दृष्टिकोण के भेद के ही परिणाम हैं। रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति एवं औचित्य में से किसी एक को काव्य की आत्मा मानकर पर्याप्त विश्लेषण भी किया गया है। एक को प्रमुख मानकर अन्यों को उसमें अन्तर्भूत या समन्वित करने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। आनन्दवर्धन ने गुण और भाव को प्रधानता देते हुये भी काव्य में व्यंग्य की उपस्थिति को अनिवार्य माना है। इसके अभाव में वह काव्य को चित्र मात्र समझते हैं। कहीं यह व्यंग्य शब्दतत्त्वाश्रित होता है, तो कहीं अर्थ-तत्त्वाश्रित, इसमें वृत्तियां भी प्रकाशित होती हैं।[3]

---

१. ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥ (काव्यप्रकाश ८।६६)

२. अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।
(हेमचन्द्र का काव्यानुशासन १।११, पृ० १६)

शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्।
(वाग्भट का काव्यानुशासन, अ० १)

गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ।
(विद्यानाथ का प्रतापरुद्रीय, पृ० ४२)

३. प्रधानगुणभावाभ्यां व्यंग्यस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्ये उभे ततोऽन्यद् यत्तच्चित्रमभिधीयते ॥ (ध्वन्यालोक ३।४१)
शब्दतत्त्वाश्रयाः काश्चित् अर्थतत्त्वयुजो पराः।
वृत्तयोऽपि प्रकाशन्ते ज्ञातेऽस्मिन् काव्यलक्षणे ॥ (ध्व० ३।४७)

आचार्य विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहकर रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है। वाक्य में शब्द और उनसे व्यक्त अर्थ का समावेश हो गया तथा वाक्य को रसात्मक बनने के लिए जिन गुणों और अलंकारों तथा रीतियों और वृत्तियों की आवश्यकता होती है, उनका भी अन्तर्भाव हो गया। इस प्रकार काव्य के बाह्य एवं अन्तः लक्षणों को समन्वित कर इस परिभाषा को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है। माणिक्य-चन्द्र ने इसी परिभाषा को स्वीकार करते हुये श्रुतिसुखदता को आवश्यक मानकर रीतियों और वृत्तियों का भी संकेत कर दिया।[1]

कतिपय आचार्यों ने काव्य की परिभाषा में रस, रीति, वृत्ति, अलंकार, दोष, गुण आदि सब का उल्लेख करना आवश्यक मान लिया। जयदेव की परिभाषा इसी प्रकार की है।[2] पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य की परिभाषा को पुनः संक्षिप्त एवं पूर्ण बनाने का प्रयास करते हुये काव्य के मूलतत्त्व शब्द और अर्थ को आधार माना तथा निर्दोषिता, रीति, वृत्ति, गुण तथा अलंकार आदि का समाहार एक शब्द रमणीयता में कर दिया, क्योंकि ये सभी काव्य में रमणीयता उत्पन्न करने के साधन मात्र हैं। अर्थ की रमणीयता को प्रमुखता देने के कारण भावपक्ष का महत्त्व भी व्यक्त हो गया और काव्य के कलापक्ष, शब्द को भी गौण स्थान न मिला। अतः पंडितराज जगन्नाथ की "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" परिभाषा संक्षिप्त एवं पूर्ण मानी जा सकती है। अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों की उद्धृत परिभाषाओं से भी इसका विरोध नहीं है।

उक्त परिभाषाओं के अध्ययन से, एक ओर तो भारतीय आचार्यों की तात्त्विक विश्लेषण की रुचि अभिव्यक्त होती है तो दूसरी ओर उनकी समाहार शक्ति का भी परिचय मिलता है। मानव-शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित है, यह तत्त्वज्ञान महत्त्वपूर्ण है परन्तु पंचतत्त्व ही मानव नहीं है। गुण एवं अलंकार उसके व्यक्तित्व को भव्य बनाने के साधन हैं, अतः ये भी मानव नहीं हैं। उसकी रीतियाँ और वृत्तियाँ भी अलग-अलग उसके

---

१. काव्यं रसादिमत् वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत्।
(काव्यप्रकाशटीका-संकेतनाम्नी)

२. निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक्॥ (चन्द्रालोक १।७)

व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करने में असमर्थ हैं। अतः जो परिभाषा शरीर और आत्मा सहित, काव्य के व्यक्तित्व का संक्षेप में परिचय करा सके उसे ही सफल माना जा सकता है। इस दृष्टि से जगन्नाथ पण्डितराज की परिभाषा सुन्दर है। आधुनिक काल में, जब काव्य का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ हो गया है, मनोवेगों को तरंगित करने की क्षमता, उसका अनिवार्य धर्म मानी जाने लगी है। यह क्षमता उसी काव्य में हो सकती है, जिसमें मन को रमाने की शक्ति होगी। रमणीयता का यह आकर्षण, चाहे उस काव्य की भावमयता से हो चाहे अलंकृति से, अथवा रीति, वृत्ति, आदि किसी अन्य कारण से या इन सबके समन्वित सौन्दर्य से।

काव्य-पुरुष

राजशेखर की काव्यपुरुष की कल्पना उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण को ही स्पष्ट करती है।[1] शब्द और अर्थ, दोनों काव्य के समन्वित शरीर हैं। रस आत्मा है। ध्वनि उसका प्राण है। यद्यपि प्राण से ही जीवन का कार्य चलता है, पर आत्मा के बिना प्राण भी कुछ नहीं कर सकते। रस के अस्तित्व से, ध्वनि, काव्य को सजीव बनाती है। माधुर्यादि उसमें गुण हैं जो काव्य के उत्कर्ष को बढ़ाने के कारण होते हैं। मनुष्य तो सभी होते हैं, पर शील आदि गुणों से सम्पन्न मनुष्य को और ही सम्मान मिलता है। गुणों का आत्मा से और अलंकारों का शरीर से विशेष सम्बन्ध होता है। प्रथम अन्तः-सौंदर्य की वृद्धि करता है और द्वितीय बाह्य-सौन्दर्य की। शब्द और अर्थ दोनों शरीर के अवयव हैं, अतः अलंकार भी शब्द और अर्थ दोनों के ही होते हैं। जो सुन्दर है, उसके सौन्दर्य की वृद्धि तो अलंकार कर सकते हैं, पर वे सौन्दर्य का स्थान नहीं ले सकते।

वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली आदि रीतियाँ, गुणों से विशेष सम्बन्ध रखती हैं। ये अवयव-संस्थान की तरह हैं, जो काव्य-शरीर का सुसंगठन करती हैं। इसी संगठन के ऊपर काव्य-शरीर का सौन्दर्य निर्भर करता है। जैसे मनुष्यों में कोई काना या बहरा होता है, वैसे ही काव्य भी श्रुतिकटु आदि दोष से युक्त हो सकता है। ये दोष, काव्य के गुण को

---

१. द्रष्टव्य, काव्यमीमांसा—तृतीय अध्याय।

न्यून करते हैं। इस प्रकार काव्य-पुरुष का स्वरूप उपस्थित किया जाता है। रस ही इसकी आत्मा है और आत्मा के साथ जीवन को गति देने वाले प्राण, गुण, रूप, अलंकार आदि लगे हुये हैं। अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं से अन्वित जब काव्य का भव्य और आकर्षक रूप सामने आता है तो मन को उसमें रमणीयता स्वयं प्राप्त हो जाती है। ऐसे रमणीय काव्य के पढ़ने, सुनने या रंगमंच पर अभिनीत होते हुये देखने से मानस-मानस में जो भाव-तरंगें उठती हैं, उनकी अनुभूति ही भावानुभूति है। जब यही अनुभूति सहृदय-पाठक या प्रेक्षक को इतनी तन्मय कर देती है कि वह इस लोक, तथा इसमें अपनी सत्ता को, कुछ समय के लिये भूल जाये तो वह रसानुभूति कहलाती है। यही अलौकिक आनन्द है, जिसका संचार एक उत्तम काव्य के द्वारा हृदय में होता है।

काव्यत्व का अन्वेषण वाक्य-वाक्य में, पद-पद में, करने के कारण काव्य की व्यापक प्रवृत्तियों का—सामाजिक-धार्मिक-आर्थिक या राजनीतिक धरातल पर—वैसा विवेचन न हो सका, जैसा आजकल होता है। परन्तु शैली एवं गठन को लेकर जितना सूक्ष्म विवेचन संस्कृत के आचार्यों ने किया है, वैसा, और उतना विवेचन किसी भी भाषा में नहीं हुआ है। आचार्य मम्मट ने ध्वनिकाव्य के १०४५५ भेद किये हैं, पर उनके विवेचन का क्षेत्र वाक्य, शब्द और अर्थ की सीमा में ही रहा है। विवेचन की प्रवृत्ति की एक ही दिशा रही है—अन्य सामान्य वाक्यों से चमत्कारपूर्ण वाक्य का लोकोत्तरत्व ढूँढ़ना। फिर भी शब्द के भेदोपभेद करते हुये उन विविध भेदों के वर्ण्य-विषय आदि का भी यथास्थान संकेत किया गया है।

काव्य के भेद

काव्य के दो पक्ष होते हैं—अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति को अभिव्यक्त करने के अनेक ढंग हैं। एक कवि या नाटककार अपनी अनुभूति को किस तरह सहृदय-हृदय तक प्रेषित कर, उसे रसमग्न करता है, इसी पर उसके काव्य का आकार-प्रकार निर्भर करता है। अतः काव्य के जो अनेक रूप प्राप्त होते हैं, उनकी बहुविधता का मुख्य आधार उनकी अभिव्यक्ति की विविध शैलियाँ हैं। कवि द्वारा व्यक्त उसकी अनुभूतियों का ग्रहण भी सहृदय व्यक्ति, नेत्रेन्द्रिय एवं श्रवणेन्द्रिय से करता

है, अतः इन्द्रिय-ग्राहिता के आधार पर काव्य के दो भेद किये जाते हैं—दृश्य एवं श्रव्य ।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ॥
(नाट्यशास्त्र ३२।३८५, साहित्यदर्पण ६।१)

दृश्यकाव्य का पूर्ण रसास्वादन तभी संभव है, जब वह रंगमंच पर अभिनीत होते हुये देखा जाय। श्रवणेन्द्रिय की सहायता, वहाँ भी संवाद-ग्रहण के लिये अपेक्षित होती है। गद्य-पद्य की मिश्रशैली में अभिव्यक्त होने पर भी रूपक दृश्यकाव्य हैं, अतः श्रव्य-काव्यान्तर्गत चम्पू काव्य से सर्वथा भिन्न है। दृश्य काव्य के भी दो भेद हैं—रूपक और उपरूपक। वस्तु, नेता और रस की भिन्नता के आधार पर रूपक के दस और उपरूपक के अठारह भेद किये गये हैं।[1]

हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्य काव्य के दो भेद किये हैं—पाठ्य और गेय।[2] पाठ्य के उन्होंने निम्नलिखित भेद किये हैं—

पाठ्यं नाटक-प्रकरण-नाटिकासमवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकांकप्रहसन-भाणवीथीसट्टकादिः। (काव्या० ८।३)
और गेय के निम्नलिखित भेद—

गेयं डोम्बिका-भाण-प्रस्थान-शिंगक-भाणिका-प्रेरण-रामाक्रीड-हल्लीसक-रासक-गोष्ठी-श्रीगदित-राग-काव्यादिः। (काव्या० ८।४, पृ० ३६१)

हेमचन्द्र ने रूपक और उपरूपक के भेदों को एकत्र कर दिया है और उन्हें पाठ्य तथा गेय में विभाजित किया है। इसी कारण उन्हें 'भाण' को पाठ्य और गेय दोनों में रखना पड़ा।

भोज ने श्रव्य और दृश्य-काव्य के अन्तर को स्पष्ट करते हुये कहा है—

श्रव्यं तत्काव्यमाहुः यन्नेक्षते नाभिनीयते ।
श्रोत्रयोरेव सुखदं भवेत्तदपि षड्विधम् ॥
(सरस्वतीकण्ठाभरण २।१४०)

---

१. द्रष्टव्य—दशरूपक (१।११ पृष्ठ ७) अथवा साहित्यदर्पण (६।१ से ६।६ तक)
२. काव्यं प्रेक्ष्यं श्रव्यं च (काव्यानुशासन ८।१) एवं 'प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च' (८।२, पृ० ३७९)

अर्थात् श्रव्य काव्य वह है, जो न देखा जाय और न जिसका अभिनय किया जा सके, जो कानों को सुख देने वाला हो। राजानक महिमभट्ट का यह कथन श्रव्य और दृश्य का ठीक अन्तर नहीं प्रस्तुत करता कि "काव्य गीतादि से वर्जित और नाट्य उससे सहित होता है।"[1] स्वतन्त्र रूप से लिखे गये, गीतिकाव्यों के अतिरिक्त, चम्पू काव्यों में भी गेय छन्दों की कमी नहीं है। दृश्य काव्य का रसास्वादन सामान्य जन भी कर सकते हैं, इसीलिए भरतमुनि ने नाटक को 'सार्ववर्णिक पंचम वेद' कहा है।

श्रव्यकाव्य के भेद

अर्थ की रमणीयता के आधार पर श्रव्य काव्य के उत्तम, मध्यम, अवर आदि भेद किये गये हैं। जिस काव्य में रमणीयता, व्यंग्यार्थ ही में हो, वाच्यार्थ में नहीं, उसे उत्तम या ध्वनिकाव्य कहा गया है।[2] जहाँ व्यङ्ग्यार्थ और वाच्यार्थ में समान चमत्कार हो, उसे मध्यम काव्य, तथा केवल वाच्यार्थ में ही चमत्कार प्रदर्शित करने वाला अवर काव्य कहा जाता है। मम्मट ने अवर काव्य को व्यंग्यरहित माना है—

'शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्'।

(काव्यप्रकाश १।५)

जयदेव तो व्यंग्यरहित काव्य को, काव्य ही नहीं मानते।[3] अर्थ की रमणीयता के आधार पर काव्य के उत्तम-मध्यम आदि भेद, उसकी सभी विधाओं में उपलब्ध हो सकते हैं, क्योंकि अर्थ की रमणीयता तो एक श्लोक या गद्य के किसी एक वाक्य में भी मिल सकती है।

भाषा के आधार पर काव्य का वर्गीकरण भी कतिपय आचार्यों ने किया है।[4] वस्तुतः यह वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल है। कवि की अभिव्यक्ति

---

१. काव्यं गीतादिवर्जितं, नाट्यं तत्सहितम्। (व्यक्तिविवेक, अ० २)

२. मुख्यातिरिक्तः प्रतीयमानो व्यंग्यो ध्वनिः।

(काव्यानुशासन—हेमचन्द्र १।१६)

३. सव्यंग्यमेव काव्यं न व्यंग्यरहितम्। (चन्द्रालोक ८।१)

४. देवादीनां संस्कृतं स्यात्प्राकृतं त्रिविधं नृणाम्।

(अग्निपुराण ३३७।८)

सरस्वतीकण्ठाभरण—२।६ से २।११ तक द्रष्टव्य।

का माध्यम कोई भी भाषा हो सकती है। महाकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक आदि; संस्कृत, प्राकृत एवं किसी भी आधुनिक भाषा में लिखे जा सकते हैं, अतः यह वर्गीकरण महत्त्वपूर्ण नहीं है। भाषा के सदृश ही अवस्था, देश और काल आदि के आधार पर किया गया वर्गीकरण भी स्थूल है।[1]

शैली के आधार पर, श्रव्य काव्य के तीन भेद किये गये हैं—पद्यकाव्य, गद्यकाव्य और मिश्र काव्य।[2] छन्दोबद्ध पद पद्य, एवं छन्दविहीन-पद गद्य, कहा जाता है।[3] आचार्य भरत ने गद्य-पद्य का अन्तर स्पष्ट करते हुये कहा है कि गद्य के पदों में अक्षरों का कोई निश्चित मान नहीं होता। वे अर्थ-सापेक्ष होते हैं और उन्हें 'चूर्ण' शब्द से व्यवहृत किया जाता है। पद्य में अक्षरों एवं पदों का मान निश्चित होता है। वैसे तो प्रत्येक पद किसी न किसी छन्द का अंग हो सकता है। अंगी का धर्म अंग में भी होता ही है, किन्तु इस धर्म की सत्ता तभी स्वीकार की जाती है जब अंग, अपने अंगी के साथ निबद्ध हो।

---

१. अवस्थादेशकालादिविशेषैरपि जायते।
आनन्त्यमेव वाच्यस्य शुद्धस्यापि विशेषतः॥ (ध्वन्यालोक ४।७)

२. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।
(काव्यादर्श १।११)

गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम्॥
(अग्निपुराण ३३७।८)

गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यं यत्सा गतिः स्मृता।
(सरस्वतीकण्ठाभरण २।१८)

तच्च गद्यपद्यमिश्रभेदैस्त्रिधा।
(वाग्भट्ट—काव्या० अ० १)

श्राव्यं तु त्रिविधं ज्ञेयं गद्यपद्योभयात्मना।
(मन्दारमरन्द, शेषबिन्दु ११। पृ० १८६)

३. छन्दोबद्धपदं पद्यं गद्यते छन्दसा बिना।
(काव्यादर्श १।२३ पृष्ठ १४)

अपादः पदसंतानो गद्यमाख्यायिका कथे।
गद्यमपादः पदसंतानच्छन्दोरहितो वाक्यसंदर्भः।
(वाग्भट्ट काव्या० १ अ०)

अपादः पदसंघातो गद्यं पद्यं चतुष्पदम्॥
(मन्दारमरन्द, शेषबिन्दु ११ पृ० १८६)

अनिबद्धपदवृन्दं तथा चानियताक्षरम् ।
अर्थापेक्षाक्षरयुतं ज्ञेयं चूर्णपदं बुधैः ॥
निबद्धाक्षरसंयुक्तं पदच्छेदसमन्वितम् ।
निबद्धं तु पदं ज्ञेयं प्रमाणनियताक्षरम् ॥
छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितः ।
तस्मात्तूभयसंयुक्ते नाट्यस्योद्योतके स्मृतम् ॥

(नाट्यशास्त्र १४।३५, ३६ एवं ४०)

छन्द के चार चरण या पाद होते हैं। पादरहित पदावली ही गद्य है। गद्य में लिखित किसी पदावली में वृत्तगन्धिता आ सकती है, किन्तु उसे पद्य का अंश नहीं माना जा सकता है, क्योंकि पद्य की पूर्णता उसके चार पादों की एक साथ उपस्थिति पर ही होती है।[1]

पद्य काव्य के, बन्ध के आधार पर दो भेद किये गये हैं—प्रबन्ध और मुक्तक। जिस काव्य में कोई कथावस्तु रहती है और उसकी धारा आदि से अन्त तक अविच्छिन्न रूप में चलती रहती है, उसे प्रबन्ध काव्य कहते हैं। इस प्रकार के काव्य में एक एक सर्ग, एक एक अनुच्छेद या एक एक छन्द, उस कथाप्रबन्ध के आश्रित होता है। प्रबन्ध से भिन्न, इनका अस्तित्व चमत्कारपूर्ण नहीं होता। इसके ठीक विपरीत मुक्तक काव्य होता है, जिसका प्रत्येक पद या पद्य-समूह स्वतन्त्र रहता है, वह अपने पूर्वापर प्रसंग से भी मुक्त रहता है। मुक्तक का एक श्लोक ही चमत्कार उत्पन्न करने में सक्षम होता है, अतः वह स्वयं अपने आप में पूर्ण रहता है।[2]

"प्रबन्ध काव्य में कवि को विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है, पर मुक्तक में उसका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित होता है। एक ही पद्य में समस्त भावों का समावेश करना, रसों का पूर्ण परिपाक दिखलाना, प्रबन्ध काव्य की समस्त रस सामग्री को एक ही छन्द में निबद्ध करना, गागर में सागर भरना है। अतः मुक्तक काव्य की रचना करने में कवि को, प्रबन्ध काव्य की रचना की अपेक्षा, कम कौशल अपेक्षित नहीं है। मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें, कथाप्रसंग की परिस्थिति में, अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता

---

१. पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा। (काव्यादर्श १।११)

२. मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्।

(अग्निपुराण ३३७।३६)

है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनसे हृदयकलिका थोड़ी देर के लिये खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ पुष्पगुच्छ है। इसमें एक रमणीय खण्डदृश्य, इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता, कुछ क्षणों के लिये मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। इसके लिये कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तवक कल्पित कर, उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है। अतः जिस कवि में कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ, भाषा की समासशक्ति जितनी ही अधिक होगी, उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा।[१]

प्रबन्धकाव्य के भी दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य में जीवन और जगत का व्यापक वर्णन होता है, जबकि खण्डकाव्य में किसी घटना विशेष का। वस्तु-विस्तार, बहुविध वर्णन, नायक की महत्ता के चित्रण तथा रसपरिपाक की दृष्टि से महाकाव्य में पर्याप्त क्षेत्र रहता है, किन्तु खण्डकाव्य में सीमित। महाकाव्य की कथावस्तु कवि-कल्पना-प्रसूत न होकर किसी प्राचीन आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित होनी चाहिये। नायक सद्वंशज एवं धीरोदात्त प्रकृति का हो। उसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, जलक्रीड़ा, उपवन-विहार, विवाह, यात्रा, युद्ध तथा विजय-प्राप्ति आदि का वर्णन उपयुक्त स्थलों पर होना चाहिये। प्रतिनायक के गुण भी उदात्त होने चाहिये। महाकाव्य में शृंगार और वीर में से कोई एक रस मुख्य होता है, अन्य रस गौण रूप से प्रयुक्त होते हैं। सम्पूर्ण काव्य, सर्गों में विभाजित होता है। सर्ग संख्या, आठ से कम नहीं होनी चाहिये। एक सर्ग में, एक ही प्रकार के छन्द का समावेश हो, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिये। महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण, सज्जन-स्तुति, खलनिन्दा आदि होना चाहिये। महाकाव्य के उपरोक्त लक्षण अनेक लक्षण ग्रन्थों में मिलते हैं।[२] खण्डकाव्य में सर्गसंख्या महाकाव्य से कम होती है और उसमें वर्णन विस्तार भी नहीं होता।

राजशेखर ने प्रबन्ध काव्य के भेदों में शुद्ध, चित्र, कथोत्थ, संविधानकभूः एवं आख्यानकवान् भी माना है। किसी पद्य में इतिवृत्तात्मक संकेत के होने या न होने के आधार पर यह वर्गीकरण किया गया है। प्रबन्ध काव्य

---

१. रामचन्द्र शुक्ल।
२. द्रष्टव्य—काव्यादर्श (१।१४–१६) (साहित्यदर्पण ६।३१५–३२६)

के आश्रित किसी पद्य में यदि इनका लक्षण प्राप्त हो जाये, तो उसका नामकरण इन भेदों के आधार पर भी किया जा सकता है।[1]

श्रव्यकाव्य के वर्ण्य-विषय के आधार पर भोज ने काव्य, शास्त्र, इतिहास, काव्य-शास्त्र, काव्येतिहास और शास्त्रेतिहास—ये छः भेद किये हैं। काव्य, शास्त्र और इतिहास तीनों ही पद्य-शैलियों में वर्णित हो सकते हैं। इनका मिश्रित रूप भी वर्ण्य विषय बन सकता है—

काव्यं शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।
काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्।

(स० कण्ठा० २।१३६)

खण्डकाव्य, शैली की दृष्टि से महाकाव्य सदृश ही होता है। उसमें एक घटना, एक रस और एक ही भाव मुख्य होता है।[2] आठ सर्ग से छोटा होता है और कभी कभी वह गीतिकाव्य के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। अन्य रसों और वर्णन विस्तार के लिये उसमें कम अवकाश होता है। महाकाव्य का बहुविध और खण्डकाव्य का एकविध प्रभाव पड़ता है।

मुक्तक काव्य के भी अनेक भेदोपभेद प्रदर्शित किये गये हैं। छन्द[3]-संख्या के आधार पर इनके निम्नलिखित भेद किये गये हैं—

१. मुक्तक—पूर्वापर प्रसंग से मुक्त एक ही छन्द में जब भाव की पूर्णता सम्पन्न होकर, चमत्कार उत्पन्न करे, तब उसे मुक्तक कहते हैं।

२. संदानितक—जहाँ दो पद्यों (छन्दों) में भाव की पूर्णता हो, उसे संदानितक कहते हैं। हेमचन्द्र ने इसे संदानितक कहा है, जब कि विश्वनाथ ने दो पद्यों के जोड़े को युग्मक और तीन के समूह को संदानितक बतलाया है।[4]

---

१. वस्तुतः ये मुक्तक काव्य के ही भेद हैं। द्रष्टव्य—मुक्तक काव्य के भेद।

२. खंडकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। (साहित्यदर्पण ६।३२९) यथा मेघदूतादिः।

३. यहाँ छन्द का अर्थ पद्य या श्लोक ही है।

४. एकद्वित्रिचतुश्छन्दोभिर्मुक्तकसंदानितकविशेषककलापकानि।
(काव्यानुशासन ८।११)

द्वाभ्यां तु युग्मकं संदानितकं त्रिभिरिष्यते।
कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम्॥
(साहित्यदर्पण ६।३।१४-१५)

३. विशेषक—तीन पद्यों का समूह है।

४. कलापक—चार पद्यों का समूह है।

५. कुलक—पाँच से लेकर चौदह पद्यों के समूह तक को हेमचन्द्र एवं विश्वनाथ ने कुलक नाम दिया है।[१]

वाग्भट ने युग्मक और संदानितक को तो एक माना है, पर कुलक के पद्यों की संख्या पाँच से लेकर बारह तक ही मानी है—

"तत्रैकेन छन्दसा मुक्तकं, द्वाभ्यां युग्मं संदानितकं च, त्रिभिर्विशेषकम् चतुर्भिः कलापकम् द्वादशान्तैः कुलकम्।" (काव्यानुशासन प्र० अ०)

जब भाव की पूर्णता एक से अधिक पद्यों में होती है तथा एक ही क्रिया के साथ सभी पद्यों में अन्विति होती है, तो ये भेद चरितार्थ होते हैं। मुक्तक काव्य, अनिबद्ध होता है। हेमचन्द्र ने प्रबन्ध और मुक्तक नाम न देकर निबद्ध और अनिबद्ध नाम दिया है। अनिबद्ध काव्यों में उक्त पाँचों प्रकार के मुक्तक काव्यों की गणना की गयी है।

मुक्तक पद्यों के संकलनों या संग्रह-ग्रन्थों को भी कोश, संघात और संहिता आदि नाम दिये गये हैं—

"स्वपरकृतसूक्तिसमुच्चयः कोशः। यथा, सप्तशतकादिः। एकप्रघट्टके एककविकृतः सूक्तिसमुदायो वृन्दावनमेघदूतादिः संघातः। विप्रकीर्णवृत्तान्तानां एकत्र संधानं यदुवंशदिलीपवंशादिवत् संहिता, एवमनन्तो निबद्धगणः॥" (काव्यानुशासन ८।१३,१४,१५, पृ० ४०८)

विश्वनाथ ने परस्परानपेक्षी श्लोकसमूह को कोश कहा है, जो व्रज्याक्रम से रचित हो।[२] संघात का उदाहरण मेघदूत नहीं हो सकता, क्योंकि उसके पद्य एककविकृत होते हुए भी, परस्पर अनिबद्ध नहीं हैं। इसीलिये विश्वनाथ ने उसे निबद्ध काव्य के एक भेद, खण्डकाव्य का उदाहरण माना है। बिखरे हुये वृत्तान्तों के श्लोक भी परस्परानपेक्ष नहीं होते। एक उपाख्यान का दूसरे उपाख्यान से सम्बन्ध नहीं हो सकता परन्तु

---

१. पंचादिभिश्चतुर्दशान्तैः कुलकम्। (काव्यानुशासन ८।१२, सा० दर्पण ६।३१५ का उत्तरार्ध, द्वि० सं०, पृ० ४०८)

२. कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः।
व्रज्याक्रमेण रचितः स एवातिमनोरमः॥
(सा० द० ६।३२९-३०)

सजातीयानामेकत्र सन्निवेशो व्रज्या। यथा मुक्तावली।

एक ही उपाख्यान के आश्रित पद्य परस्पर सापेक्ष होते हैं, अतः विशुद्ध मुक्तक-संग्रह, कोश और संघात ही हैं, संहिता नहीं। ये सभी भेद पद्यकुटुम्ब के सदस्य हैं—

"महाकाव्यं कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम्।
कुलकं मुक्तकं कोष इति पद्य-कुटुम्बकम्॥" (अ०पु० ३३७।२४)
मुक्तकं कुलकं कोशः संघात इति तादृशः।
सर्गबन्धांशरूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः॥ (काव्यादर्श १।१३)

राजशेखर ने काव्यमीमांसा के नवें अध्याय में पद्यों की विशिष्टता के आधार पर काव्य का वर्गीकरण किया है—

"स पुनर्द्विधा मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन। तावपि प्रत्येकं पंचधा। शुद्धः चित्रः कथोत्थः संविधानकभूः आख्यानकवांश्च। तत्र मुक्तेतिवृत्तः शुद्धः। स एव सप्रपञ्चश्चित्रः। वृत्तेतिवृत्तः कथोत्थः। संभावितेतिवृत्तः संविधानकभूः। परिकल्पितेतिवृत्तः आख्यानकवान्॥"

इस वर्गीकरण का मुख्य आधार, श्लोक में प्रयुक्त इतिवृत्तात्मक संकेत है। इतिवृत्त से मुक्त छन्द का नाम शुद्ध है। इतिवृत्त से मुक्त, किन्तु प्रपंच से युक्त, 'चित्र' काव्य, होता है। इतिवृत्त का संकेत होने पर कथोत्थ तथा वर्णन में संभावित इतिवृत्त का आभास होने पर संविधानक-भू होता है। यदि पद्य में किसी काल्पनिक इतिवृत्त का समावेश हो तो उसे आख्यानकवान् कहते हैं। यह काल्पनिक इतिवृत्त, इतिहास और कल्पना से मिश्रित भी हो सकता है और विशुद्ध कल्पित भी।[1]

मुक्तक काव्य के ये सभी रूप सर्गबद्ध प्रबन्ध काव्य के अंशरूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। जिस प्रकार बिखरे रत्न-समूह अपनी-अपनी स्वतन्त्र दीप्ति का चमत्कार पृथक्-पृथक् दिखलाते हैं, किन्तु एक माला में पिरोये जाने के बाद भी उनके सौन्दर्य में कमी नहीं आती, प्रत्युत उनके समन्वित सौन्दर्य की भव्य झांकी देखने को मिलती है, उसी प्रकार प्रसंग से मुक्त, किन्तु स्वतन्त्र चमत्कारपूर्ण भाव से संपन्न जब कोई मुक्तक, उसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये किसी प्रबन्ध काव्य का आश्रित होकर आता है, तब भी उसके चमत्कार एवं काव्यगत सौन्दर्य में कमी नहीं आती।

गद्यकाव्य के भेद

पद्य के सदृश ही कवि की अभिव्यक्ति का साधन गद्य भी है। मानव आदिकाल से सामान्य व्यवहार में इसका प्रयोग करता आ

---

१. उदाहरण के लिये द्रष्टव्य—काव्यमीमांसा का नवम अध्याय।

रहा है।[१] अतः गद्यमयी वाणी जीवन के अधिक समीप होती है। संवेदनशील हृदय की आवेगमयी वाणी छन्द का रूप ग्रहण करती है। बोलचाल के सामान्य गद्य और गद्यकाव्य, दोनों में महान् अन्तर है। यद्यपि छन्दोमयी वाणी का सम्बन्ध, हृदय से अधिक होता है और चिन्तन की सामान्य प्रक्रिया गद्य में ही चलती है, परन्तु गद्यकाव्य में भी काव्य के वे समस्त गुण उपलब्ध हो जाते हैं, जो पद्यकाव्य में मिल सकते हैं। गद्य-काव्य में भी मस्तिष्क की अपेक्षा हृदयपक्ष, प्रबल हो उठता है और कल्पना की ऊँची उड़ान इसमें भी उतनी ही सम्भव हो जाती है, जितनी पद्यों में। गद्य में, पद्य सदृश आनन्ददान की क्षमता उत्पन्न करना कठिन है, इसीलिये गद्य को कवियों की कसौटी माना गया है।[२]

गद्य-काव्य में रमणीयता के सृजन के लिये वाक्य-विन्यास का सौष्ठव अपेक्षित है। वाक्य की परिपक्वता प्राप्त करने के लिये, एक सुकवि को भी सतत अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।[३] अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त पदों का वाक्य में सन्निवेश ही परिपक्वता कहलाता है। भाषा पर प्रगाढ़ आधिपत्य रखने वाले कवि की लेखनी की नोक पर, उपयुक्त शब्दावली नृत्य करती है। उसे ढूंढ़-ढूंढ़कर शब्द प्रयोग नहीं करना पड़ता, अपितु वे स्वतः आकर भावों को सुन्दर आकार दे देते हैं।

स्वरूप और बन्ध के आधार पर गद्यकाव्य के भी विविध भेद किये गये हैं। स्वरूप के आधार पर किया गया भेद, वस्तुतः वाक्यविन्यास एवं वाक्य में पदावली के निवेश का रूप ही अधिक प्रगट करता है। रूप की दृष्टि से गद्य के निम्नलिखित चार भेद किये गये हैं—

१. वृत्तगन्धोज्झित—यह गद्य का सरल रूप है। यह समास-रहित होता है, और इसका कोई भी भाग किसी छन्द-विशेष का अंश प्रतीत नहीं होता।

२. वृत्तगन्धि—जब प्रस्तुत गद्य का कोई भाग, किसी छन्द-विशेष का अंश प्रतीत होता है तथा उसमें तत्सदृश ही मात्रा, लय या प्रवाह की झलक मिलती है, तब उसे वृत्तगन्धि कहते हैं। यह वृत्तगन्धिता वार्णिक या मात्रिक किसी भी छन्द-विशेष की हो सकती है।

---

१. "त्वत्तः पूर्वे हि विद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्।"
(काव्यपुरुष-वर्णन—राजशेखर की काव्यमीमांसा अ० ३)

२. "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।"

३. "सततमभ्यासवशतः सुकवेः वाक्यं पाकमायाति। पदनिवेश-निष्कम्पता पाकः।" (काव्य-मीमांसा, अ० ५)

३. उत्कलिकाप्राय—दीर्घ-समास-वाली पदावली से संयुक्त वाक्य ही उत्कलिका-प्राय कहलाता है। सभी पद्य-काव्यों एवं अनेक चम्पू काव्यों में इसका दर्शन होता है।

४. चूर्णक—यह न तो समासरहित होता है और न दीर्घसमास से बोझिल। अल्पसमासयुक्त-पदावली से संपन्न होना ही, इसकी विशेषता है।

अग्निपुराण ने वृत्तगन्धोज्झित को छोड़कर, केवल शेष तीन भेद ही माने हैं।[1] भोज ने उत्कलिकाप्राय और पद्यगन्धी केवल दो ही भेद माने हैं।[2] विश्वनाथ ने गद्य के उपरोक्त चार भेद किये हैं।[3] भोज ने दो के अतिरिक्त शेष को इनका मिश्रण मान लिया है। उनकी दृष्टि में सुकुमार संदर्भवाला 'ललित', प्रस्फुटित संदर्भसंपन्न 'निष्ठुर', अनुल्लिखित समासयुक्त 'चूर्ण' और उद्भट समास से विद्ध 'आविद्ध'—आदि गद्य-काव्य के भेद नहीं हैं, अपितु गद्य की शैलियाँ हैं, जिनका अन्तर्भाव रीतियों और वृत्तियों में हो जायेगा—

ललितं निष्ठुरं चूर्णमाविद्धं चेति योऽपरः।
विशेषः स तु गद्यस्य रीतिवृत्त्योर्भविष्यति॥

(स० कं० २।२६)

राजशेखर ने जिस प्रकार इतिवृत्त की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर गद्यकाव्य के शुद्ध, चित्र, कथोत्थ आदि भेद किये हैं, उसी प्रकार कथा-सन्निवेश (आख्यात) की उपस्थिति के आधार पर वाक्य के दस भेद माने हैं—एकाख्यातम्, अनेकाख्यातम्, आवृत्ताख्यातम्, एकाभिधेयाख्यातम्, परिणताख्यातम्, अनुवृत्ताख्यातम्, समुचिताख्यातम्, अध्याहृता-

---

१. अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसंदर्भ निर्भरम्।
चूर्णकं नामतो दीर्घ समासोत्कलिका भवेत्॥
भवेन्मध्यमसंदर्भं नातिकुत्सितविग्रहम्।
वृत्तच्छायाहरं वृत्तगन्धि नैतत्किलोत्कटम्॥
(अग्निपुराण—३३७।१०, ११)

२. गद्यमुत्कलिकाप्रायं पद्यगन्धीति च द्विधा। (स० कण्ठा० २।२५)

३. वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्त-गन्धि च। (६।३३०)
भवेदुत्कलिका-प्रायश्चूर्णकं च चतुर्विधम्।
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्। (६।३३१)
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम्। (सा० द० ६।३३२)

ख्यातम्, कृदभिहिताख्यातम् और अनपेक्षिताख्यातम्। इन वाक्यों के नाम इनके लक्षणों के अनुकूल ही हैं।[1]

भाषा में प्रवाह लाने एवं विशिष्ट अर्थ पर बल देने के लिये एकार्थ-विश्रान्तिक वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। जयदेव ने ऐसे वाक्यों को 'वाक्य-कदम्बक' कहा है—

'वाक्यान्येकार्थविश्रान्तान्याहुर्वाक्यकदम्बकम्।'

(चन्द्रालोक १।१५)

जिस प्रकार पद्य-मुक्तक की सभी विधायें पद्यात्मक प्रबन्ध काव्य का अंग बन सकती हैं, उसी प्रकार गद्य की उपरोक्त सभी शैलियाँ, गद्य-मुक्तक और प्रबन्धात्मक गद्य-काव्य में समान रूप से व्यवहृत हो सकती हैं। इन भेदों का मूल्य शैली के विश्लेषण एवं नामकरण की दृष्टि से अत्यधिक है।

बन्ध के आधार पर अग्निपुराण ने गद्यकाव्य के पाँच भेद किये हैं—आख्यायिका, कथा, खंडकथा, परिकथा तथा कथानिका।[2] परवर्ती आचार्यों के मत को देखते हुये कथा और आख्यायिका ही गद्यकाव्य की मुख्य लोकप्रिय विधायें सिद्ध होती हैं और शेष भेदों का समाहार इन्हीं दोनों में हो जाता है।

दण्डी, हेमचन्द्र, वाग्भट और विश्वनाथ ने गद्यकाव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद ही माने हैं।[3]

आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत करते हुये आचार्य भामह ने कहा है—

गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता॥
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च॥

(काव्यालंकार १।२५,२६)

---

१. द्रष्टव्य काव्यमीमांसा, अध्याय ६।

२. आख्यायिका कथा खंडकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पंचधा॥
(अग्निपुराण ३३७।१२)

३. अपादः पदसंतानो गद्यमाख्यायिका कथे। (काव्यादर्श १।२३)
श्रव्यं महाकाव्यमाख्यायिका कथा चम्पूरनिबद्धं च।
(काव्यानुशासन ८।५ पृ० ३६५)
वाग्भट काव्यानुशासन प्रथम अध्याय एवं साहित्यदर्पण ६।३३२ से ६।३३६ तक द्रष्टव्य।

अर्थात् उदात्त अर्थ से सम्पन्न, उच्छ्वासों में विभाजित गद्यशैली में लिखी हुई आख्यायिका होती है। इसमें नायक द्वारा चेष्टित वृत्त, उसी के माध्यम से वर्णित होता है। समय-समय पर वक्त्र और अपरवक्त्र (छन्दविशेष) के द्वारा, भावी अर्थ की सूचना दी जाती है। हेमचन्द्र ने इस लक्षण को स्वीकार करते हुये, हर्षचरित को आख्यायिका का उदाहरण माना है।[१] वाग्भट ने नायिकाख्यात-स्ववृत्त भी आख्यायिका में ही माना है। उन्होंने वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द की अनिवार्यता भी स्वीकार नहीं की है। उनकी दृष्टि में कन्यकापहार, समागम, अभ्युदय आदि का उसमें वर्णन होता है और बीच-बीच में, मित्रादि के मुख से भी वृत्त को अग्रसर किया जाता है।[२] विश्वनाथ ने आख्यायिका को भी कथा-सदृश मानकर कतिपय अन्य विशेषताओं का भी निर्देश किया है। इनकी दृष्टि में आख्यायिका के आरंभ में भी कवि-वंश का वर्णन होना चाहिये। उसमें बीच-बीच में अन्य कविप्रणीत छन्द भी हो सकते हैं। इसके विभाग आश्वास कहलाते हैं। आश्वासों के आरंभ में आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र के द्वारा भावी अर्थ की सूचना दी जाती है।[३]

---

१. नायिकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका, काव्यानुशासन ८।७ ॥ (यथा-हर्षचरितादिः)

२. तत्र नायिकाख्यातस्ववृत्तान्ता भाव्यर्थशंसिनी सोच्छ्वासा कन्यकापहारसमागमाभ्युदयभूषिता मित्रादिमुख्यख्यातवृत्तान्ता अन्तरान्तरा प्रविरलपद्यबन्धा आख्यायिका। (का० प्रथम अ०)

३. आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित् ॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ॥
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम् ॥
(साहित्यदर्पण ६।३३४-३३६)

मन्दारमरन्देऽपि, ११ शेषविन्दु, पृष्ठ १८७—
कविचरित्रसहितं नरपालकथान्वितम्।
विचित्रवर्णरचनासमासैस्तु मनोहरम् ॥
उच्छ्वासान्ते वक्त्रयुतं रचितापरवक्त्रकम्।
उच्छ्वासादौ सपर्यांगमिदमाख्यायिकाभिधम् ॥

कथा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसका नायक धीरशान्त होता है।[1] गद्य अथवा पद्य शैली में तथा सभी भाषाओं में इसकी रचना हो सकती है। हेमचन्द्र ने इसे स्पष्ट करते हुये कहा है—

"आख्यायिकावन्न स्वरचितव्यावर्णकोऽपि तु धीरशान्तो नायकः। तस्य तु वृत्तमन्येन कविना यत्र वर्ण्यते सा काचिद् गद्यमयी, कादम्बरीवत्। काचित्पद्यमयी लीलावतीवत्। सर्वभाषानुविद्धा संस्कृत-प्राकृतेन मागध्या शौरसेन्या शच्या अपभ्रंशेन वा रचिता कथा।"

(काव्या० १ अ० वाग्भट। हेमचन्द्र ८ अ० पृष्ठ ४०६)

विश्वनाथ के मत से कथा की सरस वस्तु गद्य में ही निर्मित होनी चाहिये। कहीं-कहीं आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द हो सकता है। आरंभ में कुछ पद्यों द्वारा नमस्कार (मंगलाचरण) और खलादि-कीर्तन हो सकता है :—

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्॥

(सा० द० ६।३३२-३३३)

आख्यान, प्रबन्ध के मध्य में आने वाली अवान्तर कथाओं को कहा गया है—

प्रबन्धमध्ये परबोधनार्थं नलाद्युपाख्यानमिवोपाख्यानमानयन्
पठन गायन् यदेको ग्रन्थिकः कथयति तद् गोविन्दवदाख्यानम्॥

(काव्यानुशासन, हेमचन्द्र ४०६)

इस कथन के साथ हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में, आख्यान के कई भेदों की गणना की गई है—उपाख्यान, आख्यान, निदर्शन (पंचतन्त्र), प्रवह्लिका, मन्थल्लिका (क्षुद्रकथा), मणिकुल्या, परिकथा (शूद्रकादि), खंडकथा (इन्दुमत्यादिकथा), सकलकथा (समरादित्यवत्), उपकथा (चित्रलेखा), बृहत्कथा (पैशाच्यां नरवाहनदत्तादिचरितवत्)। इनमें से खंडकथा, परिकथा आदि का उल्लेख तो अग्निपुराण में भी किया गया है। वस्तुतः आख्यायिका, कथा, आख्यान एवं इनकी समस्त जातियों और उपजातियों के मूलतत्त्व समान हैं। कतिपय बाह्य लक्षणों के आधार पर, इनके पृथक्-पृथक् नाम दे दिये गये हैं। नायक, वर्णनकर्ता और

---

१. धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।
(का० हेमचन्द्र ८।८ कादम्बरी लीलावती वा; पृ० ४०६)

वर्णनशैली के भेद से ही, इनमें अनेकरूपता दिखाई पड़ती है। इसी कारण आचार्य दण्डी ने गद्य-काव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद करते हुये भी तात्त्विक दृष्टि से इन दोनों में कोई अन्तर न मानकर, इन्हें एक ही जाति की दो संज्ञामात्र कह दिया है और आख्यान के शेष भेदों का अन्तर्भाव भी इन्हीं में कर दिया है—

"तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥"

(काव्यादर्श १।२८)

कथावस्तु का निजी क्षेत्र बहुत ही व्यापक है, वह प्रबन्ध काव्यों की रीढ़ है। मुख्य और प्रासंगिक कथाओं के आधार पर ही, प्रबन्ध-काव्यों का निर्माण होता है। श्रव्य और दृश्य, दोनों प्रकार के काव्यों को बन्धयुक्त बनाने के लिये किसी-न-किसी प्रकार की कथावस्तु का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। आदिम काल से लेकर आज तक वह अभिव्यक्ति एवं मनोरंजन का साधन बनी हुई है। कहीं तो वह कथावस्तु अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति काव्यों के अन्तराल में अदृश्य रूप में प्रवाहित होती है, कहीं वह व्यक्त, उन्मुक्त निर्झरिणी की भाँति, अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और वेग का प्रदर्शन करती है। वह कभी गद्य और कभी पद्य का अवगुण्ठन डालकर, दोनों रूपों में आ सकती है। कहीं वह दोनों के समन्वित सौन्दर्य का प्रदर्शन करती है। कभी वह पवित्र वेदध्वनि के साथ वैदिक आख्यानों में, कभी अतीत घटनाओं की स्मृति को सजीव बनाने वाली ब्राह्मणकथाओं में, कभी पुराणों के धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक इतिवृत्तों में, कभी जातकों के मार्मिक उपदेशों में और कभी नीतिप्रद पशु-पक्षियों एवं मानव-पात्रों के क्रिया-कलापों के वर्णनों में, अनेक रूप धारण कर भावमयी अभिव्यक्ति का साधन बनती है। इस पर न तो भाषा का बन्धन है, न देश और काल का।[1] वह शिशु से वृद्ध तक, सबका समान रूप से अनुरंजन करती है। यह अनेक नामरूपात्मक है, पर प्रत्येक रूप में वह मानव के जीवन, चरित्र एवं अन्तर्वृत्तियों तथा आशाओं और आकांक्षाओं का उद्घाटन करती है। गद्यकाव्यों की पृष्ठभूमि के रूप में भी, उसने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वर्णन-विस्तार के लिये भी उसने ही क्षेत्र प्रदान किया है।

---

१. कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते।
भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्॥ (काव्यादर्श १।३८)

मिश्र काव्य के भेद

गद्य-पद्य की मिश्रित शैली में निर्मित काव्य ही, मिश्रकाव्य कहलाता है। रूपक, उपरूपक आदि भी मिश्रशैली में लिखे जाते हैं, पर वे दृश्य-काव्यान्तर्गत हैं। काव्य में मिश्रशैली अपनाने का उद्देश्य, गद्यकाव्य के अर्थ-गौरव एवं पद्यकाव्य की रागमयता को एकत्र सन्निविष्ट करना है। गद्य सम्बन्ध से पद्य-सूक्ति और हृदयग्राहिणी बन जाती है, जैसे वाद्य से युक्त संगीत। इनमें सुधा और माध्वीक का स्वारस्य एक साथ प्राप्त होता है। पद्य और गद्य काव्य की भाँति ही, मिश्रकाव्य को भी अग्निपुराण ने दो भागों में विभाजित किया है--ख्यात (बन्धयुक्त) एवं प्रकीर्ण (मुक्तक)—

मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा। (३३७।३८)

मुक्तक-गद्य एवं मुक्तक-पद्य की भाँति, मिश्रकाव्य के प्रकीर्ण का विस्तृत विवेचन नहीं हुआ है। सामान्यतः इसके निम्नलिखित रूप प्राप्त होते हैं—

करम्भक—विविध भाषाओं में लिखित प्रशस्ति, करम्भक कहलाती है; जैसे विश्वनाथ की 'प्रशस्ति रत्नावली'।[1] मिश्र काव्य का अर्थ विविध भाषाओं का मिश्रण नहीं, अपितु गद्य-पद्य का मिश्रण है। एक भाषा में भी गद्य-पद्य मिश्रित प्रशस्ति हो सकती है।

विरुद—मिश्र शैली में रचित राजस्तुति 'विरुद' कहलाती है।[2] मिथिला के राजा की स्तुति में लिखी गई रघुदेव की 'विरुदावली' एवं कल्याणरचित विरुदावली, उदाहरण के लिये देखी जा सकती हैं।[3]

घोषणा या जयघोषणा—सुमतीन्द्र कवि ने शाहजी की जयघोषणा प्रस्तुत की है जिसका नाम 'सुमतीन्द्रजयघोषणा' है।[4] आरंभ में कवि ने स्वयं जयघोषणा का लक्षण लिखकर उसी के आधार पर अपनी यह कृति प्रस्तुत की है। कवि के शब्दों में इसका लक्षण निम्नलिखित है--

गद्यः प्रत्येकपद्यान्तैः चतुर्भिर्वर्णयेत्क्रमात्।
अवधित्वेन पूर्वादिचतुर्दक्सीमपर्वतान् ॥१॥

---

१. करम्भकं तु विविधाभिः भाषाभिर्विनिर्मितम्। (सा० दर्पण ६।३३७)

२. गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। (सा० दर्पण ६।३३७। यथा विरुदमणिमाला)

३. द्रष्टव्य—कलकत्ता संस्कृत कालेज कैटलग, सं० १३६, १४२।

४. सरस्वतीमहल लाइब्रेरी तंजोर कैटलग, सं० पी० पी० एस० शास्त्री। वो० ८, नं० ४२३७।

ततः सप्तविभक्त्यंगैः सप्तभिर्गौडरीतिकैः ।
पद्य-गद्यद्वयं सर्वे जनाः श्रृणुत मद्वचः ॥२॥
शौर्यादिगुणवानेष एवेति भुवि घुष्यताम् ।
घुष्यतामिति शब्दान्तैर्नेतुः शौर्यादयो गुणाः ॥३॥
घुष्यन्ते यत्र साटोपं सा भवेज्जयघोषणा ।
अस्यामाद्यन्तयोः कार्यं पद्यमाशीःसमन्वितम् ॥४॥
दिशि यस्यामयं नेता तामारभ्यैव घोषयेत् ।
नेतुर्नामांकितः श्लोको नायकोऽत्र, महीपतिः ॥५॥

आज्ञापत्र या दानपत्र--ताम्र या शिलालेखों के रूप में कतिपय आज्ञा-पत्र और दानपत्र प्राप्त होते हैं जो मिश्रशैली में तो अंकित हैं ही, अलंकृत विशेषणपदावली देकर या अनुप्रासादि की छटा उत्पन्न कर, जिन्हें काव्यत्व की श्रेणी तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है ।[1] उदाहरण आदि भी गद्य-पद्य-मिश्रित होते हैं ।[2]

---

१. जैसे चालुक्य बादशाह विनयादित्य का एक दानपत्र—द्रष्टव्य, जरनल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास, पृष्ठ १७१, वोल्यूम ६ ।

२. येन केनापि तालेन गद्यपद्यसमन्वितम् ।
जयेत्युपक्रमं मालिन्यादिप्रासविचित्रितम् ॥
तदुदाहरणं नाम्ना विभक्त्यष्टांगसंयुतम् ।
संबोधनविभक्त्या यत् प्रचुरं पद्यपूर्वकम् ॥
विमुक्तपुनराकृष्टशब्दः स्याच्चक्रवालकम् ।
आद्यन्तपद्यसंयुक्ता संस्कृतप्राकृतात्मिका ॥
अष्टभिर्वा चतुर्भिर्वा वाक्यैः स्कन्धसमन्विता ।
प्रतिस्कन्धं भिन्नवाक्यरीतिर्देवनृपोचिता ॥
सर्वतो देवशब्दादिरेषा भोगावली मता ।
वर्ण्यनामांकविरुदवर्णनप्रचुरोज्ज्वला ॥
वाक्याडंबरसंयुक्ता कथिता विरुदावली ।
ताराणां संख्यया पद्यैर्युक्ता तारावली मता ॥
विश्वेषां संख्यया पद्यैर्युक्ता विश्वावली मता ।
रत्नानां संख्यया पद्यैर्युक्ता रत्नावली मता ॥
पद्यैश्च पंचभिर्युक्ता प्रोक्ता पंचाननावली ।
(मन्दारमरन्दे ११ शेषबिन्दु–पृष्ठ १८८-१८९)

जिस प्रकार गद्य एवं पद्य-मुक्तक दोनों अपने-अपने प्रबन्ध काव्यों के अंगभूत बन कर आ सकते हैं, उसी प्रकार विरुद, राजस्तुति और घोषणा भी प्रबन्धात्मक मिश्र-काव्य के अंग बनकर आ सकते हैं। बन्धयुक्त मिश्र-काव्य का एकमात्र रूप चम्पूकाव्य है और चम्पूकाव्यों के अंगभूत बनकर विरुद, घोषणा आदि आई हैं।

श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत प्रबन्धात्मक मिश्रकाव्य का एकमात्र एवं सर्वोत्कृष्ट अंग चम्पूकाव्य है। चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगण के गत्यर्थक 'चपि' धातु से 'उ' प्रत्यय लगाकर "चम्पयति इति चम्पूः" की गई है। हरिदास जी भट्टाचार्य ने इस शब्द की व्याख्या करते हुये—"चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति इति चम्पूः" कहा है। इस व्याख्या के अनुसार अन्य काव्यों की भाँति चम्पूकाव्य में भी सहृदय-हृदय को चमत्कृत, विस्मित, पवित्र और प्रसन्न करने की अद्भुत क्षमता होनी चाहिये।

चम्पूकाव्य की परिभाषा

चम्पूकाव्य की जितनी भी परिभाषायें दी गई हैं, वे सभी उसके बाह्य स्वरूप का ही निरूपण करती हैं। उसके अन्तःविश्लेषण की ओर किसी भी आचार्य ने ध्यान नहीं दिया है। वस्तुतः काव्य के रूप में चम्पू-काव्य को परवर्ती मध्यकाल में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, इसीलिए यह विस्तृत-विवेचन का विषय न बन सका और इसकी मिश्रशैली का उल्लेखमात्र करके, इसकी उपेक्षा कर दी गई। अग्निपुराण ने ख्यात और प्रकीर्ण दो-भेदों का संकेत कर इसे चलता कर दिया। आचार्य दण्डी ने तो चम्पू काव्य का इस प्रकार उल्लेख किया है, मानो उन्होंने कोई चम्पूकाव्य स्वयं देखा ही न हो। केवल सुनी हुई विशेषता के आधार पर उसका उल्लेख कर दिया गया हो—

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते॥

(काव्यादर्श १।३१)

'काचित्' और 'विद्यते' शब्दों के प्रयोग द्वारा, उन्होंने चम्पूकाव्य की सत्तामात्र स्वीकार की है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि दण्डी के समय (६००-७०० ई०) तक चम्पू काव्य अस्तित्व में आ चुके थे।

हेमचन्द्र और वाग्भट ने चम्पूकाव्य की विशेषताओं में मिश्रशैली के अतिरिक्त सांग और सोच्छ्वास होना भी जोड़ दिया है—

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः।

(काव्या० हेमचन्द्र ८।६ काव्या० वागभट प्रथम अध्याय)

भोज ने स्वयं चम्पू—रामायण की रचना की, किन्तु उन्होंने भी चम्पू के भीतर, वाद्य और संगीत के समन्वित माधुर्य सदृश, गद्य-पद्य के मिश्रित आनन्द की ही चर्चा की, उसके विवेचन और विश्लेषण की ओर अग्रसर नहीं हुये।[1]

विश्वनाथ ने भी गद्य-पद्य-मय काव्य को चम्पू कहा, उन्हीं का समर्थन मन्दारमरन्द ने भी किया—

"गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते यथादेशराजचरितम्॥"

(साहित्य दर्पण ६।३३६)

किसी एक अज्ञात विद्वान् की भी परिभाषा मिलती है, जिसमें उक्ति प्रत्युक्ति और विष्कम्भ का न होना भी चम्पूकाव्य की विशेषताओं में सम्मिलित कर लिया गया है—

गद्यपद्यमयं सांका सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
उक्तिप्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता॥

(केचित्।[2])

चम्पूकाव्य की इन सम्पूर्ण उद्धृत परिभाषाओं के आधार पर उसकी निम्नलिखित विशेषतायें सामने आती हैं—

१. चम्पूकाव्य गद्य-पद्य-मय होता है।
२. वह साङ्क होता है।
३. वह उच्छ्वासों में विभाजित होता है।
४. उसमें उक्ति-प्रत्युक्ति नहीं होती।
५. वह विष्कम्भ-शून्य होता है।

---

१. द्रष्टव्य—रामायण चम्पू-बालकाण्ड ३।
२. द्रष्टव्य—नृसिंहचम्पू, दैवज्ञ सूर्य, डा० सूर्यकान्त द्वारा संपादित, की भूमिका।

काव्य-भेद-प्रदर्शिका-चक्र

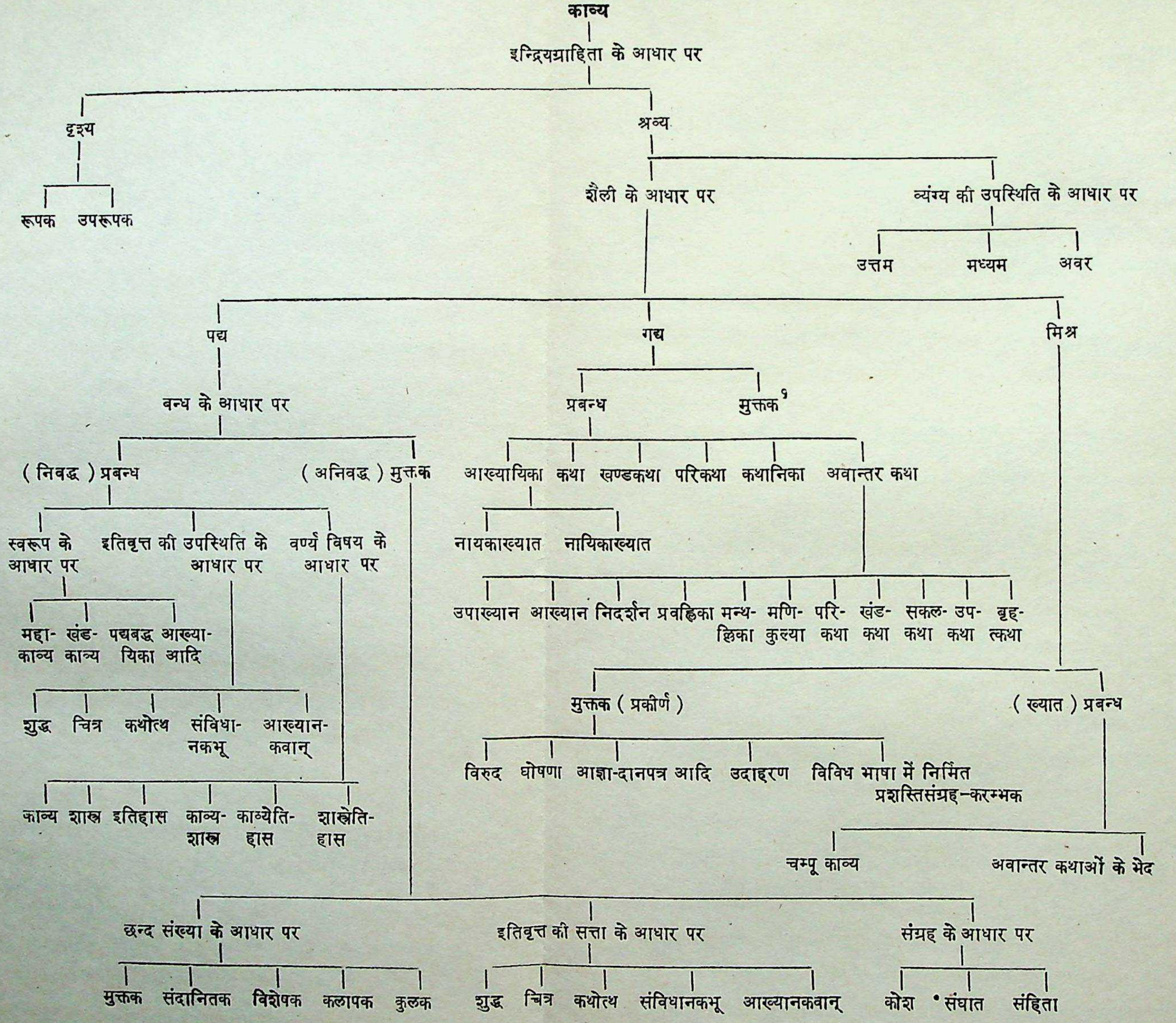

१. (१) स्वरूप के आधार पर—वृत्तगन्धोज्झित, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय, चूर्णक।
(२) शैली के आधार पर—ललित, निष्ठुर, चूर्ण, आविद्ध।
(३) अर्थविश्रान्ति के आधार पर—एकवाक्यात्मक, वाक्यकदम्बक।
(४) कथासन्निवेश के आधार पर—एकाख्यात, आवृत्ताख्यात, परिणताख्यात, अनेकाख्यात, एकाभिधेयाख्यात, अनुवृत्ताख्यात, समुच्चिताख्यात, अध्याहृताख्यात, कृदभिहिताख्यात, अनपेक्षिताख्यात।

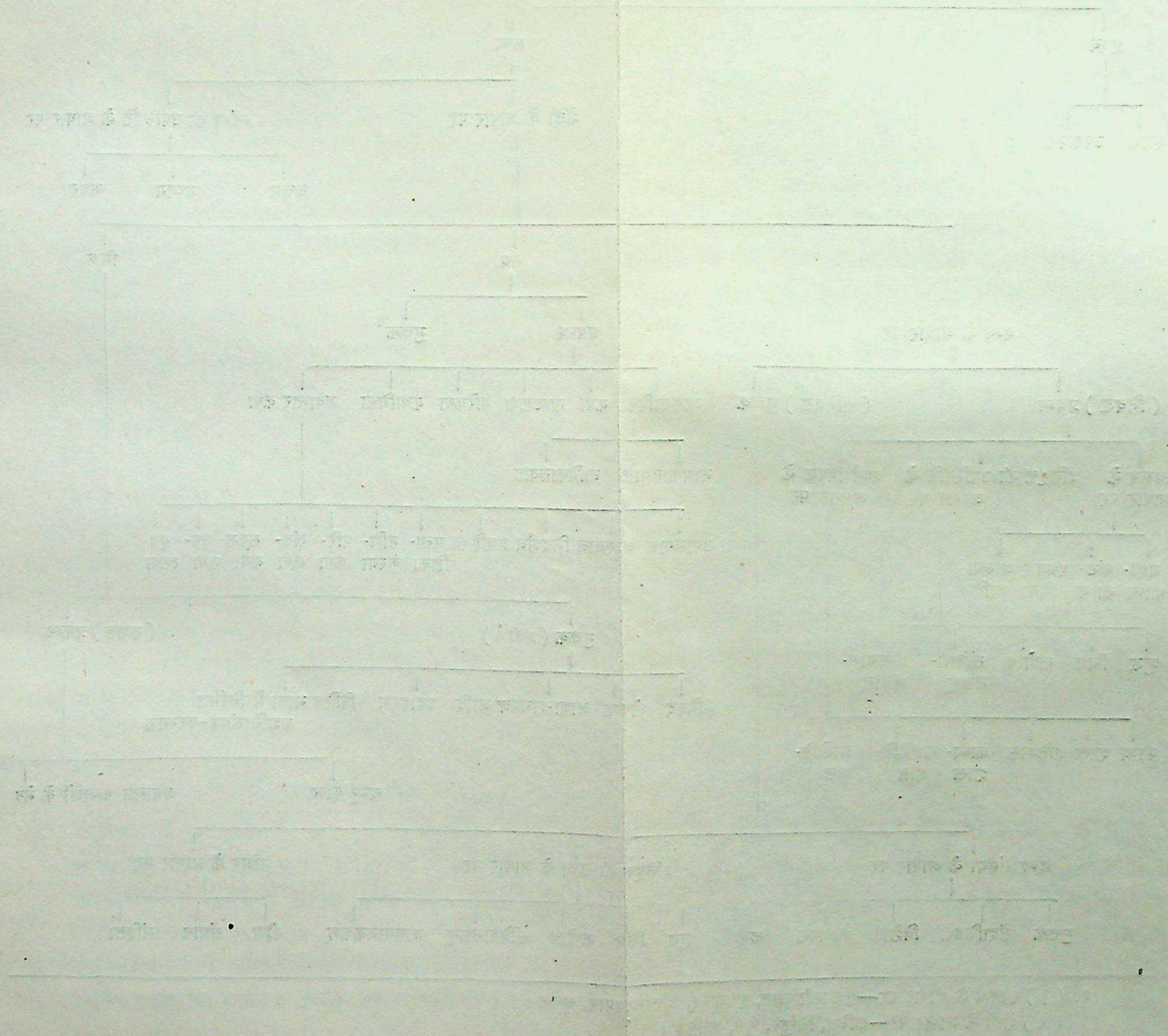

उपलब्ध विविध चम्पू काव्यों को सामने रखकर यदि इन विशेषताओं का अन्वेषण किया जाय तो गद्य-पद्यमयता के अतिरिक्त अन्य विशेषतायें सभी चम्पूकाव्यों में नहीं मिलतीं। अनेक बड़े एवं महत्त्वपूर्ण चम्पूकाव्य हैं, जो साङ्क (हर चरण सरोजाङ्क) या सोच्छ्वास हैं।[1] पारिजातहरण चम्पू उच्छ्वासों में विभाजित है, तो साङ्क नहीं है। भोज का चम्पू-रामायण काण्डों में विभाजित है, सोमदेव का यशस्तिलक आश्वासों में और अच्युत शर्मा का 'भागीरथी चम्पू' मनोरथों में। अतः साङ्क और सोच्छ्वास होने का नियम, सभी चम्पूकाव्यों पर समान रूप से लागू नहीं होता। जहाँ तक कि उक्ति-प्रत्युक्ति के न होने का प्रश्न है, अत्यन्त प्रसिद्ध चम्पू 'विश्वगुणादर्श' अपने दो प्रमुख पात्रों कृशानु और विश्वावसु की उक्ति-प्रत्युक्ति पर ही निर्मित है। यह गद्यपद्यमयता भी एक सही लक्षण नहीं है क्योंकि यह अतिव्याप्ति दोष से दूषित है। चम्पू श्रव्य काव्य है, अतः दृश्यकाव्य सदृश उसमें विष्कम्भक के प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता।

यदि गद्यपद्य से मिश्रित होना ही, चम्पूकाव्य का लक्षण मान लिया जाय, तो ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर गद्यपद्यमिश्रित सामान्य कथा-कहानियों तक, सभी चम्पूकाव्य कहलाने लगेंगे। उक्त परिभाषाओं से गद्य-पद्य का सापेक्षिक महत्त्व, उनकी मात्रा, अन्य काव्यांगों से चम्पूकाव्य का भेदकत्व, आदि स्पष्ट नहीं होता। इसी अस्पष्टता के कारण वासवदत्ता और दमयन्ती कथा को एक ही चम्पू काव्य की श्रेणी में बिठा दिया गया है,[2] जबकि शास्त्रीय एवं लोकपरंपरा वासवदत्ता को गद्यकाव्य मानती आ रही है। इसी के कारण मन्दारमरन्द जैसे लक्षणग्रन्थ भी अपने को चम्पू घोषित करने में संकोच नहीं करते। अतः अन्तः एवं बहिः साक्ष्य के आधार पर चम्पूकाव्य की विशेषताओं का अन्वेषण करना अनिवार्य है।

(देखें, काव्य-भेद-प्रदर्शिका-चक्र, पृ० २९ क)

---

१. "इतिश्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-सरोजाङ्कायां प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः।" (नल चम्पू अथवा दमयन्तीकथा, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ९८, चौखम्भा, बनारस, संस्करण १९३२ पृष्ठ ३६)

२. द्रष्टव्य, हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में चम्पू-काव्य का लक्षण, उन्होंने उदाहरण के रूप में वासवदत्ता का उल्लेख किया है। (पृष्ठ ४०८)

चम्पू काव्य की विशेषताएँ एवं अन्य काव्याङ्गों से उसका अन्तर

चम्पूकाव्य की परिभाषा एवं उसकी विशेषताएँ

लक्षणग्रन्थों में चम्पूकाव्य की जो परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनके आधार पर उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आती हैं—

१. चम्पूकाव्य गद्य-पद्य-मय होता है।

२. वह साङ्क होता है।

३. वह उच्छ्वासों में विभाजित होता है।

४. उसमें उक्ति-प्रत्युक्ति नहीं होती।

५. वह विष्कम्भ-शून्य होता है। (द्रष्टव्य प्रथम परिच्छेद का अन्तिम भाग)

चम्पूकाव्य निर्माताओं की दृष्टि में

चम्पू काव्यों की रचना में उनके निर्माताओं का दृष्टिकोण, प्रायः समान ही दिखाई पड़ता है। उन्होंने चम्पूकाव्यों का निर्माण, गद्यकाव्य अथवा पद्यकाव्य के सृजन की अपनी अक्षमता के कारण नहीं किया है। वे यह अनुभव करते हैं कि गद्य और पद्य-काव्य से पृथक् पृथक् प्राप्त होने वाले आनन्द की एकरसता तभी समाप्त हो सकती है, जब दोनों को एकत्र समन्वित कर दिया जाय। इसी समन्वित आनन्द-दान के लिये उन्होंने चम्पूकाव्यों का निर्माण किया है। उदाहरणार्थ चम्पूकाव्यकारों के निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य हैं—

गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्।
हर्ष-प्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्राक्बाल्यतारुण्यवतीव कन्या ॥

(जीवंधर चम्पू।१।६।)

गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्य-सूक्तिर्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद् दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥

(चम्पू-रामायण-बालकाण्ड।३॥)

मदयति मनो मदीयं तनु जवनभारतीरसविलासः ।
किमु सुतनु नीरविहारो नहि नहि चम्पूविहारोऽयम् ।।
(गोपाल चम्पू । अन्तिम छंद)

पद्यं यद्यपि विद्यते बहुसतां हृद्यं विगद्यं न तत्,
गद्यं च प्रतिपद्यते न विजहत्पद्यं बुधास्वाद्यताम् ।
आदत्ते हि तयोः प्रयोग उभयोरामोदभूमोदयं,
संगः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीकमृद्वीकयोः ।।
(विश्वगुणादर्श ।१।४)

लोके श्लोकाननेकान् विदधति कृतिनः श्रीकरास्तोकपाका-
नेकेगद्यानि हृद्यान्यतिमधुरपदास्वाद्यानि चान्ये ।
पार्श्वाभिव्यक्तमुक्ताफलकलनकनत्पद्मरागोज्ज्वलो स्रग्
बन्धच्छायानुबद्धं रचयति कविराडेष चम्पूप्रबन्धम् ।।
(तत्त्वगुणादर्श १।४)

पद्यैरनवद्यैरपि-गद्यैर्ललितास्तुद्यैकृतिभिरियं हृद्या ।
तुलसीप्रवालविचकिलकलिता मालेव भगवतः शौरेः ।।
(बालभागवतम्)

गुणगणमणिमालालंकृतं गद्यपद्यैः,
धरत हृदि बुधेन्द्राः साधु चम्पू-प्रबन्धम् ।।
(गौरी मायूरमाहात्म्यम्, उपान्तिम)

पद्यं हृद्यमपीह गद्यरहितं धत्ते न हृद्यास्पदं,
गद्यं पद्यविवर्जितं च भजते नास्वाद्यतां मानसे ।
साहित्यं हि तयोर्द्वयोरपि सुधामाध्वीकयो र्योगवत्
सन्तोषं हृदयाम्बुजे वितनुते साहित्यविद्याविदाम् ।।
(कुमारसंभव चम्पू १।६)

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि चम्पूकाव्य निर्माताओं की दृष्टि में, गद्य-पद्य का मिश्रण, काव्य में ऐसी सरसता उत्पन्न करता है, जो केवल गद्य या पद्यबद्ध काव्यों में नहीं मिलती। चम्पूकाव्यों द्वारा प्रदत्त आनन्द-किशोरी कन्या, वाद्य-समन्वित-संगीत, माध्वीक और मृद्वीक अथवा सुधा और माध्वीक के सम्यक योग से प्राप्त होने वाले आनन्द की भाँति विलक्षण है। इन काव्यों का सौन्दर्य-पद्मरागमणि-संयुक्त मुक्तामाला या कोमल-किसलय-कलित तुलसी के हार-सदृश, मनोरम एवं आकर्षक होता है। जलविहार की भाँति ही रसिक-जनों के लिये चम्पू-विहार भी होता है। गद्य-पद्यकी

एक दूसरे से मीलित, लघु-गुरु भाव-लहरियों में क्रीड़ा करता हुआ मानस-हंस जिस आनन्द की अनुभूति करता है, वह एक-रस-प्रवाहित गद्य या पद्य-धारा में कहाँ उपलब्ध होगी।

चम्पूकाव्यकारों के इन विचारों से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं—

१. चम्पू प्रबन्धकाव्य है।

२. वह गद्य-पद्यमय होता है।

३. गद्य अथवा पद्य में निबद्ध काव्यों में शैली की जो एकांगिता होती है, वह चम्पूकाव्य में नहीं होती, अतः वह गद्यकाव्य या पद्य-काव्य से अधिक रमणीय होता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि में

प्रायः सभी संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने, अपनी-अपनी दृष्टि से चम्पूकाव्य की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया है। ये विशेषतायें निम्नलिखित विषयों का अवलम्बन कर प्रस्तुत की गई हैं—

[१] गद्य-पद्य-मयता

गद्य-पद्य मिश्रित काव्य चम्पू काव्य कहलाता है—

द्रष्टव्य—[क] बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास— पृ० ३६७

[ख] चन्द्रशेखर पाण्डेय—संस्कृत साहित्य की रूपरेखा— पृ० ४०१

[ग] कीथ-ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर[1] पृ० ३३२

[घ] दासगुप्ता—,, ,, परिच्छेद चम्पू—पृ० १·२·३ (४६३-६४)

[ङ] एम० कृष्णमाचारियर— हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर पृ० ४६६

[च] चन्द्रशेखरन्—संस्कृत लिट्रेचर पृ० १३४

[२] गद्य-पद्य के प्रयोग की मात्रा—

चम्पूकाव्य में गद्य-पद्य के प्रयोग की मात्रा निश्चित नहीं है

"धीरे-धीरे गद्य-काव्यों में पद्यों की छौंक बढ़ती गई और बाद के चम्पू-काव्यों में तो पद्यों का कलेवर गद्य-भाग से भी अधिक हो गया।"

—भोलाशंकर व्यास—संस्कृतकविदर्शन पृ० ५१६।

[३] पद्य-प्रयोग का उद्देश्य—

[क] चम्पूकाव्य में पद्य का प्रयोग, कथा के संक्षिप्तीकरण के लिये अथवा किसी विशेष वर्ण्य अंश की प्रभाववृद्धि के लिये या किसी महत्वपूर्ण भाव या विचार को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिये हुआ है।

(कीथ—वहीं पृष्ठ ३३२)

---

१. कीथ आदि के उद्धरण-द्रष्टव्य इसी शोध प्रबन्ध का परिशिष्ट।

(ख) चम्पू काव्य में पद्य, किसी विशेष उद्देश्य—जैसे किसी मुख्य भाव, कवित्त्वपूर्ण वर्णन, प्रभावपूर्ण भाषण, नैतिक संकेत, आवेगपूर्ण भावाभिव्यक्ति आदि—के लिये सुरक्षित नहीं रखे गये हैं। वे सामान्य विवरण और वर्णन के लिये भी वैसे ही प्रयुक्त हुए हैं जैसे गद्य।

—दास गुप्ता—वहीं। पाण्डेय और व्यास—वहीं।

(४) वर्ण्य-विषय—

चम्पू काव्य का वर्ण्य-विषय निश्चित नहीं है। इन काव्यों के मुख्य स्रोत पुराण रहे हैं। बाद में मिश्रित विषयों पर भी रचनायें हुई हैं।

भोलाशंकर व्यास-संस्कृत कविदर्शन—पृष्ठ ५१६

दासगुप्ता-वहीं, चन्द्रशेखरन्-वहीं—पृष्ठ १३८।

चम्पू काव्यों का सम्बन्ध जितना शैली से है, उतना विषय से नहीं।

(संस्कृत कवि दर्शन—पृष्ठ ५१६)

(५) रस—

चम्पू काव्य का अंगी रस वीर और श्रृङ्गार कोई भी हो सकता है।

(६) कवियों की अक्षमता—

बाण जैसी गद्यशैली प्रस्तुत करना, उनके परवर्ती कवियों के लिये संभव न था, अतः गद्य के बीच-बीच में पद्य की छौंक डालकर एक नई शैली को जन्म दिया गया। (संस्कृत कवि दर्शन—पृ० ५१६)

(७) विशेषता-विहीनता—

चम्पू काव्यों की अपनी ऐसी कोई विशेषता नहीं है, जो पूर्व के गद्य या पद्यबद्ध काव्य में उपलब्ध न हो। (दास गुप्ता, वहीं)

उपलब्ध प्रमुख चम्पू काव्यों के आधार पर प्राप्त तथ्यों का परीक्षण

(१) गद्य-पद्यमयता—

चम्पू-काव्य गद्य पद्यमय होता है। इसे लक्षण-ग्रन्थकार, चम्पू-काव्यकार, तथा संस्कृत साहित्य के इतिहासकार, समान रूप से स्वीकार करते हैं। यह विशेषता सभी चम्पू-काव्यों में समान रूप से उपलब्ध होती है। यदि गद्य-पद्य से मिश्रित होना ही चम्पू-काव्य का लक्षण मान लिया जाय, तो ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर गद्य-पद्य मिश्रित सामान्य कथा कहानियों तक सभी ग्रन्थ चम्पू-काव्य के अन्तर्गत आ जायेंगे। अतः चम्पू-काव्य की यह परिभाषा अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त है।

(२) साङ्कता—

उपलब्ध २४५ चम्पू-काव्यों में केवल नल चम्पू (हरचरणसरोजांक) और गंगावतरण चम्पू (गंगाचरणांक) सांक हैं।[१] अतः चम्पू-काव्यों की यह विशेषता अव्याप्ति दोष से ग्रस्त है। यह चम्पू काव्यों पर समानरूप से लागू नहीं होती।

(३) सोच्छ्वास होना—

चम्पू काव्य छोटे भी हैं और बड़े भी। नारायणद्वारा रचित चम्पूकाव्य छोटे होने के कारण विभाजन-विहीन हैं, जब कि अन्य बड़े चम्पू काव्य, कई परिच्छेदों में विभाजित हैं। परिच्छेदों का यह विभाजन चम्पू काव्य निर्माताओं ने, केवल उच्छ्वासों में ही नहीं किया है, अपितु अपनी रुचि के अनुकूल उन्होंने कोई भी नाम दे दिया है।

निम्नलिखित विवरण इस तथ्य की पुष्टि करता है—

(क) उच्छ्वासों में विभाजित चम्पू काव्य—नल चम्पू, पारिजात हरण, नृसिंह चम्पू, माधव चम्पू, वीरभद्र चम्पू, कुमार भार्गवीय, शंकरानन्द अनिरुद्ध और गंगावतरण चम्पू।

(ख) स्तबकों में विभाजित चम्पू काव्य—भागवत चम्पू, भारत चम्पू, पुरुदेव चम्पू, आचार्य विजय चम्पू, आनन्द वृन्दावन, रामानुज चम्पू, चिदम्बर का भागवत चम्पू, नृसिंह चम्पू, गोदापरिणय चम्पू, धर्मविजय, दिव्यचाप विजय, मारुतिविजय, आनन्दरंग, श्रीनिवास और मान-भूपालचरित।

(ग) आश्वासों में विभाजित चम्पू—यशस्तिलक, वसुचरित, यात्राप्रबन्ध, आनन्दकन्द, नीलकंठ-विजय, त्रिपुर-विजय, द्रौपदी-परिणय, भोसल-वंशावली, कृष्णविलास, शिवचरित्र, और कुमारसंभव चम्पू।

(घ) उल्लासों में विभाजित चम्पू—यतिराज विजय, काकुत्स्थ विजय, नाथमुनिविजय, आनन्दकन्द, बाणासुर-विजय, वीरभद्र-विजय, दत्तात्रेय चम्पू, मद्रकन्यापरिणय, शिवविलास, शंकरचेतोविलास, चन्द्रशेखर चम्पू कुवलयाश्वविलास चम्पू, कविमनोरंजक चम्पू।

(ङ) काण्डों में विभाजित चम्पू—भोज का रामायण चम्पू, विरुपाक्ष वसन्तोत्सव चम्पू तथा उत्तरकाण्ड और युद्धकाण्ड पर आश्रित सभी रामायण से सम्बद्ध चम्पू।

---

(१) अपूर्ण 'शंकर चेतोविलास चम्पू' भी (लक्ष्मीनारायणांक) साङ्क है।

(च) तरंगों में विभाजित चम्पू—विद्वन्मोदतरंगिणी, गौरीमायूर-माहात्म्य, शंकर मन्दारसौरभ चम्पू।

(छ) सर्गों में विभाजित—भरतेश्वराभ्युदय, शालिवाहन कथा, बालभागवत चम्पू।

(ज) विलासों में विभाजित—वरदाभ्युदय, रघुनाथ-विजय चम्पू।

(झ) वर्ण्य—विषय पर विभाजित चम्पू-तत्त्वगुणादर्श, वैकुण्ठविजय, विश्वगुणादर्श चम्पू।

(ञ) लम्भक में विभाजित—जीवन्धर चम्पू।

(ट) कल्लोल में विभाजित—आचार्य दिग्विजय।

(ठ) मनोरथ में विभाजित—भागीरथी चम्पू।

(ड) विन्दु में विभाजित—मन्दारमरन्द चम्पू।

(ढ) परिच्छेद में विभाजित—रामचन्द्र चम्पू।

(ण) परिच्छेद विहीन चम्पू—नारायण के चम्पू काव्यों सहित कई अन्य लघु चम्पू काव्य।

इसप्रकार चम्पू काव्यों के विभाजन में कवियों की रुचि ही प्रधान रही है। पन्द्रह प्रकार के इन विभाजनों में स्तबकों में विभाजित चम्पू काव्यों की संख्या सर्वाधिक है। द्वितीय स्थान उल्लासों में विभाजित चम्पू काव्यों का आता है। उच्छ्वासों में विभाजित चम्पू काव्यों की संख्या सीमित है। इससे स्पष्ट है कि सोछ्वास होना भी चम्पू काव्य का उपयुक्त लक्षण नहीं बन सकता। यह विशेषता भी अव्याप्ति दोष से ग्रस्त है। श्रीनिवास चम्पू का पूर्वार्ध तो, उच्छ्वासों में और उत्तरार्ध उल्लासों में विभाजित है।

(४) उक्ति—प्रत्युक्ति का न होना—

विश्वगुणादर्श, वीरभद्रविजय, तत्त्वगुणादर्श, गंगागुणादर्श, विद्वन्मोद-तरंगिणी एवं श्रीनिवास चम्पू का उत्तरार्थ उक्ति-प्रत्युक्ति से सम्पन्न है। अतः यह लक्षण भी सभी चम्पू काव्यों पर समान रूप से नहीं घटित होता।

(५) विष्कम्भ-शून्य होना—

चम्पू-काव्य, दृश्य काव्य नहीं हैं, अतः उनमें विष्कम्भ का न होना आश्चर्यजनक नहीं है। यह विशेषता अविचारणीय है।

चम्पू-काव्य—निर्माताओं से प्राप्त तथ्यों की समीक्षा—

चम्पू काव्य गद्य-पद्यमय होता है तथा उसमें प्रबन्धात्मकता होती है, ये दोनों तथ्य स्वीकार किये जा चुके हैं। बन्धविहीन गद्य-पद्यमय काव्य

केवल मिश्र काव्य हो सकता है, चम्पू काव्य नहीं। इस तथ्य को स्वीकार कर लेने से परिगणित चम्पू काव्यों में से विद्वन्मोदतरंगिणी, तत्त्वगुणादर्श, शाहराजसभासरोवर्णिनी, सुमतीन्द्रजयघोषणा, सारावती जलपातवर्णन, जैसे कुछ मिश्रकाव्यों को चम्पू काव्यों की श्रेणी से पृथक् किया जा सकता है। इनकी गणना मिश्र-शैली के कारण ही चम्पू काव्यों में की गयी है। शेष सभी चम्पू काव्यों में कथावस्तु का कुछ न कुछ आधार प्रस्तुत किया गया है। यहाँ तक कि मन्दारमरन्द जैसे लक्षण-निर्देशक चम्पू नामधारी काव्य में भी वस्तु की पीठिका दे दी गयी है।

एकांगी गद्य या पद्य काव्य की अपेक्षा चम्पू काव्य अधिक रमणीय होता है। यह तथ्य केवल गद्य-पद्य के एकत्र प्रयोग किये जाने के कारण मात्र का निर्देश करता है। अतः इसे परिभाषा के लिये ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है।

इतिहासकारों से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण—

(१) गद्यपद्यमयता की उपलब्धि सभी चम्पू काव्यों में हो जाती है।

(२) गद्यपद्य की मात्रा, चम्पू काव्य में निश्चित नहीं है। नल चम्पू, वरदाम्बिकापरिणय, जैसे सुप्रसिद्ध चम्पू काव्यों में गद्य भाग अधिक है। भोज के रामायण चम्पू और अनन्त भट्ट के महाभारत चम्पू में पद्य भाग अधिक है। नीलकंठ-विजय और वीरभद्र चम्पू में गद्य-पद्य की मात्रा लगभग समान है। इससे स्पष्ट है कि यह तथ्य स्वीकृति के योग्य है।

(३) पद्य का प्रयोग किस अवसर पर किया गया है, इस सम्बन्ध में कीथ ने स्पष्ट किया है कि पद्य का प्रयोग, बिना किसी स्थल-विशेष का ध्यान रखे हुए किया गया है।[1] यह कथन कि पद्यों का प्रयोग चम्पू काव्यों में केवल विशिष्ट स्थलों पर ही हुआ है, सत्य होते हुए भी एकांगी है। यह ठीक है कि चम्पू-काव्यों में पद्य का प्रयोग कतिपय भावों एवं वर्णन को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिये हुआ है, परन्तु दास गुप्ता का यह कथन वास्तविकता को अधिक प्रकट करता है कि पद्य, किसी विशेष उद्देश्य के लिये सुरक्षित नहीं रखे गये हैं, वे सामान्य विवरण और वर्णन के लिये भी वैसे ही प्रयुक्त हुए हैं, जैसे गद्य। कई स्थलों पर तो एक ही वर्ण्य-विषय गद्य में भी प्रस्तुत किया गया है, और पद्य में भी। पद्य का प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिये नहीं हुआ है। कहीं तो—

१. कीथ—पृ० ३३२, ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर।

(क) गद्य एवं पद्य भाग में भाव साम्य उपलब्ध होता है।[1]

(ख) कहीं गद्य एवं पद्य भाग में वर्णन-साम्य उपलब्ध होता है।[2]

(ग) पद्य का प्रयोग कथा सूत्र को आगे बढ़ाने के लिये हुआ है।[3]

(घ) गद्य भाग के उपरान्त पद्य भाग में नवीन वर्णन प्रारम्भ किया गया है।[4]

(४) चम्पू काव्यों का वर्ण्य-विषय निश्चित नहीं है। किसी भी प्रकार के काव्य का वर्ण्य-विषय निश्चित किया भी नहीं जा सकता। काव्य का क्षेत्र सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। महाकाव्यों के वर्ण्य-विषयों का संकेत, सिद्धान्त ग्रन्थों में किया गया है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी महाकाव्यों में लक्षण-निर्दिष्ट, यात्रा, युद्धादि वर्ण्य-विषय उतने ही और उसी रूप में उपलब्ध हों। वे कम या अधिक और नाना रूपात्मक हो सकते हैं। डेढ़ सौ से ऊपर चम्पू-काव्य पौराणिक हैं और प्रख्यात कथावस्तु को लेकर लिखे गये हैं। ४८ चम्पू-काव्य ऐतिहासिक पुरुषों एवं सन्तों के चरित्र प्रस्तुत करते हैं। १० तीर्थ यात्रा से सम्बन्धित हैं और २५ स्थानीय देवताओं एवं उनके महोत्सवों से सम्बन्धित हैं। अतः अन्य, गद्य या पद्य काव्यों की तरह ही चम्पू-काव्यों का स्रोत या वर्ण्य-विषय भी निश्चित नहीं है।

यह कथन कि चम्पू काव्यों का सम्बन्ध जितना शैली से है, उतना विषय से नहीं, चम्पू-काव्यों के अध्ययन के आधार पर सिद्ध नहीं होता। धार्मिक चम्पू-काव्य सोद्देश्य लिखे गये हैं। वर्णन-विस्तार होते हुए भी उद्देश्य की ओर कवियों ने उपेक्षापूर्ण-दृष्टि नहीं रखी है। यशस्तिलक एवं जीवन्धर, चम्पूकाव्यों का निर्माण केवल शैली के चमत्कार प्रदर्शन के लिये नहीं हुआ है। जैन धर्म के जिन तत्त्वों को इनके कवि प्रकाश में लाना चाहते हैं, उसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

(५) चम्पू-काव्यों का अंगीरस कोई भी हो सकता है, इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। वीर और श्रृङ्गार के अतिरिक्त, धार्मिक-चम्पू-काव्यों का पर्यवसान शांत रस में हुआ है।

(६) चम्पू काव्य के निर्माण की प्रवृत्ति के मूल में कवियों की गद्य या पद्य काव्य लिखने की असमर्थता थी, यह कथन आधिकारिक नहीं है।

---

१. द्रष्टव्य—यशस्तिलक चम्पू ३।१७५ पृष्ठ ४३२॥

२. ,, —रामानुज चम्पू पृष्ठ ११-१३ महाभूत नगरी का वर्णन

३. ,, —यशस्तिलक चम्पू ३।१४८, पृष्ठ ४२६

४. ,, —भारत चम्पू (अनन्त भट्ट) पृ० १६४,३।४४-४५॥ या रामायण चम्पू पृष्ठ २६६, पद्य ३६॥

बाण जैसी गद्य शैली प्रस्तुत करना, परवर्ती कवियों के लिये सम्भव नहीं था, अतः गद्य के बीच बीच में पद्य की छौंक डालकर एक नई शैली को जन्म दिया गया' व्यास जी का यह कथन इतिहास-विरुद्ध तो है ही तथ्यों के सर्वथा विपरीत भी है। हरिषेण की समुद्रगुप्त-प्रशस्ति, मिश्र शैली में, बाण के पूर्व ही निर्मित हो चुकी थी। त्रिविक्रम, सोमदेव, और तिरुमलाम्बा जैसे चम्पू-काव्यकार, मनोहर गद्य लिखने में असमर्थ थे, इसलिये उन्होंने चम्पू-काव्य लिखा, ऐसा विचार सर्वथा उपेक्षणीय है। स्वयं व्यास जी ने अपनी इस धारणा की दृढ़ता का रूप निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त कर दिया है--

"त्रिविक्रम की शैली से स्पष्ट है, कि बाण के शाब्दी-क्रीड़ा वाले पक्ष को त्रिविक्रम ने और बढ़ाया और इसका प्रभाव बाद के सभी गद्य-काव्यों पर देखा जा सकता है।[1]"

(७) चम्पू काव्यों की अपनी ऐसी कोई विशेषता नहीं है, जो पूर्व के गद्य या पद्यबद्ध काव्य में उपलब्ध न हो। इस निर्णय की समीक्षा चम्पू काव्यों के आधार पर उपलब्ध विशेषताओं के विश्लेषण के उपरान्त ही की जा सकती है।

निष्कर्ष :—

लक्षण ग्रन्थकारों द्वारा निर्दिष्ट 'गद्य पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' के अतिरिक्त ऐसी कोई विशेषता उपलब्ध नहीं होती, जो सभी चम्पू काव्यों पर समान रूप से घटित हो सके। हेमचन्द्राचार्य की परिभाषा के अनुसार सांकता और सोच्छ्वासता भी चम्पू-काव्यों पर नहीं लागू होती, अतः न तो लक्षणग्रन्थोक्त परिभाषायें ही ठीक हैं, और नहीं बहिः साक्ष्य से प्राप्त ऐसी कोई विशेषता दिखाई पड़ती है; जो चम्पूकाव्य का सर्वमान्य लक्षण बन सके। उक्त समीक्षात्मक विश्लेषण से जो विशेषतायें प्राप्त होती हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

'गद्यपद्य-मिश्रित-काव्य, चम्पू-काव्य कहलाता है। चम्पू-काव्य में गद्य-पद्य की मात्रा निश्चित नहीं है। गद्य और पद्य, वर्णन के किसी विशेष अंश के लिये सुरक्षित न रहकर समान रूप से व्यवहृत हुए हैं। चम्पू-काव्यों के वर्ण्य-विषय का क्षेत्र व्यापक है। इनके मुख्य स्रोत पुराण रहे हैं। चम्पू-काव्यों का अंगीरस कोई भी हो सकता है।'

---

१. संस्कृत कविदर्शन--पृष्ठ-५३२।

चम्पू काव्यों के आधार पर उपलब्ध विशेषतायें

(१) प्रबन्धात्मकता और वस्तुसन्निवेश—

आचार्य परम्परा, चम्पू काव्य को मिश्र शैली में लिखित, श्रव्यकाव्य का एक प्रबन्धात्मक भेद मानती है। प्रबन्ध-काव्य में कथावस्तु का सन्निवेश अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। कथावस्तु की उपस्थिति के आधार पर तीन प्रकार के चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं–

१—वे चम्पू काव्य, जिनमें आरम्भ से अन्त तक कथावस्तु, अविच्छन्न रूप से चलती रहती है। जैसे नलचम्पू, यशस्तिलक चम्पू आदि।

२—वे चम्पू काव्य, जिनमें कथावस्तु को भूमिका और उपसंहार के रूप में प्रस्तुत कर मध्य में, दृश्यों या स्थानों आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। जैसे—विश्वगुणादर्श, केरला भरणम्, अन्य यात्रा-प्रबन्धात्मक चम्पू, मन्दारमरन्द चम्पू।

३—वे चम्पू काव्य, जिनमें कथावस्तु का अभाव है। ये मिश्र शैली में लिखित हैं, इसी कारण इन्हें चम्पू काव्यों में गिन लिया गया है। ये दो प्रकार के हैं, क–वर्णनात्मक–जैसे सारावती जलपातवर्णन, शाहराज-सभासरोवर्णिनी, ख–विचार प्रधान जैसे–तत्त्वगुणादर्श, विद्वन्मोदतरंगिणी, मन्दारमरन्द चम्पू। ऐसी कृतियाँ सोलहवीं शताब्दी के बाद की हैं।

चम्पू काव्यकारों ने भी, चम्पू काव्य को प्रबन्धकाव्य माना है।[1] अतः तृतीय प्रकार की कृतियाँ, गद्यपद्य की मिश्रित शैली में लिखी होने के कारण ही चम्पू मानी गयी हैं। शिलालेखों से स्पष्ट है कि मिश्र शैली का विकास मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों रूपों में हुआ है।[2] परवर्ती काल में मिश्र शैली में लिखित किसी भी रचना को, चम्पू इसलिये समझ लिया जाता था, क्योंकि पूर्ण विवेचन के अभाव में, मिश्र शैली या गद्य पद्यमयता ही चम्पू काव्य का मान्य लक्षण था।[3] अतः ऐसी कृतियों को चम्पू शैली में निर्मित रचना ही मानना होगा, और चम्पू शैली तथा मिश्र शैली को पर्याय समझना पड़ेगा। आरम्भ में तो चम्पू, प्रबन्ध काव्य का ही अर्थ व्यक्त करता था; पर बाद में शैली का बोधक बन गया। इस दृष्टि से चम्पू काव्य स्वयं दो वर्गों में विभाजित हो जाते हैं –बन्धयुक्त–जिनमें कथावस्तु

---

१. भोज का चम्पू रामायण–१।३॥

२. द्रष्टव्य–यही शोधप्रबन्ध, मिश्र काव्य के विकास की पृष्ठभूमि।

३. ,, यही शोध प्रबन्ध, चम्पू काव्य की परिभाषा।

अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति, वर्णन के सिकता में भी अपना अस्तित्व अभिव्यंजित करती है और २—बन्धविहीन, जिनमें कथावस्तु का या तो सर्वथा अभाव है अथवा वर्णन के लिये एक दुर्बल-कथा का व्याज, उपस्थित कर दिया गया है। किसी कवि की पत्नी ने छन्दों, अलंकारों या किसी नगरी के विषय में पूछा। कवि ने थोड़ा सा नगर वर्णन किया, और छन्दों या अलंकारों का लक्षण प्रस्तुत किया जाने लगा। उदाहरण में स्वनिर्मित और पृष्ट-विषय से सम्बन्धित पद्य प्रस्तुत किये जाने लगे।[1] किसी विद्वान् के पास अनेक जाति के व्यक्ति पहुँचे, उन्होंने कुछ प्रश्न किया और उत्तर में दर्शन-शास्त्र की व्याख्या आरम्भ हो गयी।[2] ऐसी कृतियों को मिश्र या चम्पू शैली में लिखे जाने के कारण ही चम्पू कहा गया है।

कथावस्तु का संगठन

चम्पू काव्यों की कथावस्तु एक घटनाश्रित और बहुघटनासंयुत दोनों प्रकार की है। मुख्य और प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त पुराणों की भाँति, कतिपय चम्पू-काव्यों में अवान्तर कथाओं का भी समावेश हुआ है।[3] चम्पू-काव्यों की सबसे बड़ी विशेषता कथावस्तु का ऋजुगति से विकास है। नाटकों एवं आधुनिक उपन्यासों की भाँति, उनमें वक्रता नहीं है। औत्सुक्य को सुरक्षित रखने के लिये, घटनाओं के संगठन में क्रम-विपर्यय नहीं मिलता। वस्तु को चमत्कारपूर्ण बनाये रखने के लिये अद्भुत और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन-खंडों का आश्रय लिया गया है। वर्णन पर अधिक ध्यान देने के कारण वस्तु की अवस्थाओं एवं संधि-संध्यंगों पर उपेक्षापूर्ण दृष्टि रही है।[4] वर्णनों के बीहड़ वन में, वस्तु की क्षीण रेखा, दृष्टि पथ से बार-बार ओझल हो जाती है। लघु चम्पू-काव्यों में जहाँ वर्णन विस्तार कम है, कथावस्तु स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती रहती है।

चम्पू-काव्यों का आकार

आकार की दृष्टि से चम्पू-काव्य लघु और बृहत दोनों प्रकार के उपलब्ध हैं। नारायण और रामवर्मा के चम्पू-काव्य केवल एक ही परिच्छेद में समाप्त हो जाते हैं। आनन्दवृन्दावन चम्पू सबसे बड़ा चम्पू काव्य है

---

१. द्रष्टव्य—मन्दारमरन्द चम्पू।
२. ,, विद्वन्मोदतरंगिणी
३. ,, यशस्तिलक चम्पू।
४. ,, संध्यंगानि यथालाभमत्र (काव्ये) विधेयानि। साहित्यदर्पण —पृ० ५५१।

जिसमें २२ स्तबक हैं। जिन चम्पू-काव्यों का विस्तृत परिचय दिया गया है, उनमें २० चम्पू-काव्य ऐसे हैं, जो आठ परिच्छेदों के या इससे ऊपर हैं, इन्हें महाकाव्यों की तरह समझा जा सकता है। शेष चम्पू काव्य, एक से सात परिच्छेदों तक के हैं।

चम्पू-काव्यों का विभाजन

प्रत्येक चम्पू-काव्य का विभाजन, घटनाओं के आधार पर हुआ है, वर्णन के आधार पर नहीं। चोल चम्पू, जैसे लघु चम्पू-काव्य में कुलोत्तुंग की शिवभक्ति, विप्रवेश में शिव का आगमन, राज्य अंगीकार करने की प्रेरणा, कुबेर का आगमन, तंजासुर की कथा, कुलोत्तुंग का राज्य ग्रहण, उसका राज्य वर्णन, चन्द्रोदय, सम्भोग, पुत्रजन्म, राजकुमारानुशासन, कुमार-विवाह एवं पट्टाभिषेक आदि अविभाजित रूप में वर्णित है।

जो चम्पू-काव्य परिच्छेदों में विभाजित हैं; उनके नामों में भी एकरूपता नहीं दिखाई पड़ती। विस्तृत वर्णित चम्पू काव्यों में से १० उच्छ्वासों में, १५ स्तबकों में, ११ आश्वासों में, १३ उल्लासों में, ३ तरंगों में, रामायण सम्बन्धी चम्पू-काव्य काण्डों में और अन्य लम्भक, कल्लोल, विलास, मनोरथ, आदि नामों में विभाजित हैं।

इस विभाजन का कोई आधार नहीं है, ऐसी बात नहीं है। विभाजन तो घटनाओं के आधार पर हुआ ही है, परन्तु नामकरण के सम्बन्ध में कवियों की रुचि ही मुख्य रही है। एक ही पौराणिक कथा पर आधारित-नृसिंह चम्पू के निर्माताओं में दैवज्ञसूर्य ने उछ्वासों में, केशव ने स्तबकों में और संकर्षण ने उल्लासों में कथा का विभाजन किया है। इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि विशेष प्रकार के चम्पू-काव्यों का विभाजन विशेष प्रकार के नामकरण से हुआ है।

उपसंहार वाक्य

कुछ चम्पू-काव्यों में उपसंहार वाक्य के साथ, आश्वास, उल्लास या स्तबक के पूर्व, घटना का निर्देश करने वाला विशेषण जोड़ दिया गया है और कुछ में इस प्रकारका कोई निर्देश नहीं है। ये उपसंहार वाक्य तीन प्रकार के दिखाई पड़ते हैं

१—जिनमें केवल संख्यात्मक विशेषण दिये गये हैं अथवा समाप्ति की सूचना दी गयी है। किसी-किसी में कवि का नाम और कुछ संक्षिप्त परिचय भी उपलब्ध हो जाता है, जैसे—

क—इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्दचम्पूकाव्ये प्रथमोऽयमुल्लासः।

(आनन्दकन्द चम्पू पृ० १३।)

ख—कार्तवीर्यप्रबन्धः समाप्तः । (कार्तवीर्य प्रबन्ध पृ० ६।)

ग – पुत्रं चक्रकविं गुणैकवसतिः श्रीलोकनाथः सुधी-
रम्बा सा च पतिव्रता प्रसुषुवे यं मानितं सूरिभिः ।
आश्वासः समभूद्द्वितीय इह तच्चम्पुप्रबन्धे शुभे,
पांचाली परिणीति नाम्नि धरणी-पुत्री विवाहानुजे ।।
इति द्वितीयः आश्वासः ।। (द्रौपदी परिणय, पृ०-३५-३६ ।)

कवि ने प्रत्येक आश्वास में अन्तिम पंक्ति को परिवर्तित कर दिया है। यह शैली श्रीहर्ष के नैषध-चरित पर आधारित है।

२—जिनमें केवल अंक निर्देश कर दिया गया है और कवि तथा काव्य का नामोल्लेख मात्र कर दिया गया है—

"इतिश्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरणसरोजांकायां प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।" (नलचम्पू पृ० ३६ ।)

अङ्क निर्देश की यह पद्धति गंगावतरण के अतिरिक्त अन्य चम्पू-काव्यों में उपलब्ध नहीं होती।

३—जिनमें कवि और काव्य परिचय के अतिरिक्त चम्पू - काव्य को, चरितकाव्य महाकाव्य अथवा चम्पू-काव्य कहा गया है, तथा वर्ण्य-विषय का भी संकेत कर दिया गया है।

"इति सकलतार्किकलोकचूडामणेः श्रीमन्नेमिदेवभगवतः शिष्येण सद्योऽनवद्यगद्यपद्यविद्याधर-चक्रवर्ति शिखण्डमण्डनीभवच्चरणकमलेन श्रीसोमदेवसूरिणा विरचिते यशोधरमहाराजचरिते यशस्तिलकापरनाम्नि महाकाव्ये राजलक्ष्मीविनोदनो नाम तृतीय आश्वासः ।" (यशस्तिलक चम्पू–पृ० ६३१।)

इसमें कवि का सामान्य परिचय तो है ही, आश्वास में वर्णित विषय का भी संकेत है। सोमदेव ने इस अपने चम्पू-काव्य को चरित एवं महाकाव्य दोनों कहा है। अन्य चम्पू-काव्यकारों में से कई ने परिचयपुरःसरवर्ण्य-विषय का संकेत किया है,[1] पर उन्होंने अपने चम्पू-काव्य को महाकाव्य या खण्ड-काव्य नहीं कहा। कुमार सम्भव चम्पू, चार आश्वासों का ही है, पर उसके कवि ने उसे 'महाचम्पू-काव्ये' लिखा है। (पृ० १८ पर)

कथावस्तु के मूलस्रोत

चम्पू-काव्यों के वस्तुग्रहण का क्षेत्र, संस्कृत साहित्य की किसी भी एक काव्यविधा से व्यापक एवं विस्तृत है। उसका एक छोर यदि महाकाव्यों के मूलस्रोत पुराणों तक है, तो दूसरा सामान्य जीवन की सामान्य घटनाओं

१. द्रष्टव्य-नीलकण्ठ विजय चम्पू–पृ० ३१।

को लेकर लिखे जाने वाले आख्यानों और लोक-कथाओं की अन्तिम सीमा तक। चम्पू - काव्यों ने महाकाव्यों के सदृश लक्षण-निर्दिष्ट-रूढ़िबद्ध-परम्परा का अनुगमन नहीं किया है। कथावस्तु के चयन में चम्पूकाव्यकारों की दृष्टि अत्यन्त उदार रही है। हिन्दू और जैन पुराणों के अतिरिक्त शैवों और वैष्णवों के धार्मिक ग्रन्थों से भी उन्होंने प्रचुर घटनायें ग्रहण की हैं। तत्कालीन इतिहास और भूगोल से भी उन्होंने पर्याप्त सहायता ली है। ऐतिहासिक राजाओं के वर्णन को पौराणिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत करने में चम्पू-काव्य अधिक सफल दिखाई पड़ते हैं।[1] स्थानीय देवताओं उनके महोत्सवों और माहात्म्यवर्णन के लिये कवियों की उर्वर कल्पना ने उत्पाद्य एवं मिश्र-कथावस्तु का सृजन किया है।[2] यात्रा प्रबन्धों में कथावस्तु कल्पित भले ही हो भारतीय जनजीवन की जैसी झाँकी यहाँ मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है।

पुराणों की अत्यन्त लोकप्रिय प्रचलित कथायें ही गृहीत हैं। ३४ के लगभग परिणयकाव्य हैं, जो चम्पू कवियों की वस्तु-चयन की रुचि के परिचायक हैं। धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता ने भी चम्पू काव्यों के वस्तु-ग्रहण को प्रभावित किया है। धर्मगुरुओं और विविध सम्प्रदायों के सन्तों के चरित चम्पू-काव्यों के वर्ण्य विषय बने हैं। कतिपय आश्रयदाताओं को भी कवियों ने काव्य का विषय बना लिया है। महत् चरित के अभाव में ये कवियों के आश्रयदाता, कविकल्पना पर ही निर्भर बन गये हैं।[3]

२—चम्पू काव्यों की नायक-नायिका या अन्य पात्र-सम्बन्धी विशेषतायें

चम्पू-काव्यों के नायक-देवता (स्थानीय चम्पू-काव्यों में) गन्धर्व (विश्वगुणादर्श और गंगा गुणादर्श में) राजा (पौराणिक और ऐतिहासिक चम्पू-काव्यों में) ऋषि-मुनि (श्रीनिवासमुनियात्राविलास) विद्वान्-आचार्य (नाथमुनिविजय, आचार्यविजय आदि) जागीरदार और जमींदार (चन्द्रशेखर चम्पू, विक्रमसेन चम्पू, चित्र चम्पू) सेठ (श्रीकृष्ण चम्पू) आदि सभी वर्गों एवं जातियों के हैं। कुछ चम्पू काव्यों में प्रतिनायकों की भी योजना है (माधव चम्पू) और कुछ में नहीं।

---

१. द्रष्टव्य-चोलचम्पू।

२. ,, विरूपाक्षवसन्तोत्सव चम्पू।

३. ,, चित्र-चम्पू।

नायिकायें भी राजकन्या से लेकर भिल्लकन्या तक हैं। नायिकाविहीन चम्पू-काव्य भी हैं (आचार्य शंकर के चरित सम्बन्धी चम्पू-काव्य)। परिणय चम्पू-काव्यों में तो नायिका की उपस्थिति अनिवार्य रही है, पर अन्य चम्पू-काव्यों में नायिका की उपस्थिति अपेक्षित नहीं रही है।

नायकों में से स्थानीय देवता तो अपना पौराणिक महत्त्व रखते हैं, शेष नायकों को भी धीरोदात्त एवं धीरप्रशान्त के रूप में ही अधिक चित्रित किया गया है। सन्त-चरित-सम्बन्धी काव्यों के नायक धीरप्रशान्त हैं। धीरललित के गुणों का भी समावेश धीरोदात्त नायकों में ही कर दिया गया है।

नायक के अतिरिक्त अन्य पात्र भी देव-असुर से लेकर सामान्य श्रेणी तक के हैं। पंडे, पुजारी एवं लोभी ब्राह्मणों तक को सम्मिलित कर लिया गया है (विरूपाक्षवसन्तोत्सव चम्पू) पशु-पक्षी भी पात्र के रूप में आये हैं (वैकुण्ठविजय)। पात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। नल चम्पू जैसे अपूर्ण प्रतीत होने वाले चम्पू-काव्य में भी, पात्रों की संख्या ६३ है। तैंतीस पुरुष, उनतीस स्त्रियाँ एवं एक किन्नर मिथुन-पात्र हैं। इतने अधिक पात्रों के चरित्र पर या उसके विकास पर ध्यान देना कठिन है। चम्पू-काव्य-कारों की दृष्टि, मुख्यतः नायक और नायिका आदि के चरित्र पर ही केन्द्रित रही है। अन्य पात्र केवल साधन बनकर ही आये हैं।

कुछ चरित-चम्पू-काव्यों में एक से अधिक नायक हैं। एक वंश के कई व्यक्तियों[1] अथवा एक सम्प्रदाय विशेष के कई आचार्यों[2] का एक साथ वर्णन उपलब्ध होता है, परन्तु उनमें भी कवि ने किसी विशेष व्यक्ति को ही वर्णन का मुख्य आधार बनाया है।

३—रसगत-विशेषतायें

चम्पू-काव्यों में मुख्य रस, शृंगार (परिणय काव्यों में) एवं वीर हैं (विजय काव्यों में)। अन्य रसों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है। रस वर्णन की कुशलता सिद्ध करने के लिये कई कवियों ने क्रमशः एक ही स्थान पर नवरसों का वर्णन प्रस्तुत किया है। (द्रष्टव्य नृसिंह चम्पू में नृसिंह का वर्णन)। धार्मिक दृष्टिकोण को मुख्य बनाकर प्रस्तुत किये जाने वाले चम्पू-काव्यों का पर्यवसान शान्त रस में हुआ है। जैसे—जैन चम्पू-काव्यों में

१. द्रष्टव्य-चोल चम्पू या भोसल वंशावली चम्पू।
२. „ जैनाचार्य विजय चम्पू।

शृंगार, वीर प्रभृति अन्य रस, शांत रस के पोषक बनकर आये हैं। इनमें वीरतापूर्ण कार्यों एवं विलास साधनों की निस्सारता, विस्तृत रूप में प्रदर्शित की गई है। अंग एवं अंगीरस के परिपाक पर कवियों का पूर्ण ध्यान रहा है।

४—चम्पू-काव्यों की शैलीगत विशेषतायें

(क) **वर्णन शैली**—चम्पू-काव्यों के वर्णन की दो मुख्य शैलियां हैं। अन्य पुरुषात्मक और कथोपकथनात्मक। नलचम्पू, यशस्तिलक, जीवन्धर चम्पू आदि प्रथम शैली के उदाहरण हैं और विश्वगुणादर्श, बैकुण्ठविजय एवं पद्मनाभमिश्र-विरचित वीरभद्र चम्पू, द्वितीय प्रकार की शैली में लिखे गये हैं। संवादशैली में लिखे जाने पर भी वर्णन-प्राचुर्य के कारण ये न तो अभिनेय हैं, और न दृश्यकाव्य की भाँति इनका अंकों और दृश्यों में विभाजन हुआ है। श्रीनिवास चम्पू का पूर्वार्ध तो प्रथम प्रकार की शैली में है, और उत्तरार्ध द्वितीय प्रकार की शैली में।

(ख) गद्य-पद्यमयता—सभी चम्पू-काव्य गद्य-पद्यमिश्रित शैली में लिखे गये हैं।

(ग) गद्य-पद्य के प्रयोग का स्तर और उनकी मात्रा—वर्णन एवं कथावस्तु के विकास में गद्य-पद्य दोनों समान स्तर पर प्रयुक्त हुए हैं। गद्य-पद्य की मात्रा के सम्बन्ध में कवियों की अपनी रुचि ही प्रधान रही है। कुछ चम्पू-काव्य गद्य-बहुल हैं और कुछ में पद्यों की भरमार है। प्रथम का उदाहरण नलचम्पू है और द्वितीय का भोज का रामायण चम्पू।

(घ) अलंकरण की प्रवृत्ति और गाढ़बद्धता—सभी चम्पू-काव्यों का गद्य-भाग अलंकृत है। गद्य की वृत्तगन्धोज्झित, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक-सभी शैलियों के दर्शन एक या भिन्न-भिन्न चम्पू-काव्यों में हो जाते हैं। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व के चम्पू-काव्यों में से अधिकांश में समास-सम्पन्न-अलंकृत-गद्य-शैली का प्रयोग हुआ है। नल चम्पू एवं यशस्तिलक के अतिरिक्त, वरदाम्बिकापरिणय जैसे बाद के चम्पू-काव्य का गद्य-भाग भी अत्यन्त प्रौढ़ है। उत्तरकाल के चम्पू-काव्यों में थोड़े स्थल ही, बृहत्-समस्त-पदावली-सम्पन्न-उपलब्ध होते हैं। अनेक चम्पू-काव्यों का पद्य-भाग भी कवित्वपूर्ण है पर कोरे वर्णनात्मक पद्यों की भी कमी नहीं है।

(ङ) अन्य कवियों एवं ग्रन्थों के उद्धरण—चम्पू काव्यों में अन्य कवियों की सूक्तियों एवं शास्त्रीय ग्रन्थों के उद्धरणों को भी स्थान दे दिया गया है।[१] यह प्रभाव शिलालेखों की मिश्रशैली का है, जिनमें प्रायः

१. द्रष्टव्य, यशस्तिलक चम्पू।

शास्त्रीय ग्रन्थों के श्लोक उद्धृत कर दिये जाते हैं। इस दृष्टि से ये चम्पू-काव्य लोक या नीति कथाओं के समकक्ष हैं। उद्धरण की यह प्रवृत्ति गद्य भाग में नहीं दिखाई पड़ती। उद्धृत पद्यों की संख्या सीमित ही है। अधिक चम्पू-काव्य इस प्रकार के उद्धरण से मुक्त भी हैं। यात्रा-प्रबन्धों के मध्य में स्तोत्रों का प्रचुर उपयोग किया गया है।

(च) दृष्टान्त के लिये अवान्तर कथाओं का उपयोग—यशस्तिलक एवं जीवन्धर चम्पू जैसे जैन चम्पू काव्यों में अवान्तर कथाओं का प्रचुर उपयोग हुआ है।

(छ) छन्द प्रयोग की विशेषता—चम्पू काव्यों में से कुछ में वर्णवृत्तों के अतिरिक्त मात्रावृत्तों का भी प्रयोग हुआ है।[1] इस प्रकार के छन्दों का उपयोग तामिल, कन्नड़ और तेलुगु के प्रभाव से हुआ है, जिनमें दसवीं शताब्दी के पूर्व ही मात्रिक छन्दों का प्रयोग आरम्भ हो चुका था। वैसे तो संस्कृत के सभी वर्णवृत्त गेय हैं, पर मात्रिक गेय छन्दों का भी समावेश हुआ है। चम्पू-काव्यों में एक परिच्छेद के अन्तर्गत अनेक प्रकार के वृत्तों का प्रयोग हुआ है।

(ज) चम्पू-काव्यों का आरम्भ—सामान्यतः चम्पू-काव्यों का आरम्भ मंगलश्लोकों के उपरान्त, कवि-परिचय, नगर या नायक वर्णन से हुआ है। कुछ चम्पू काव्यों में सज्जन-स्तुति और खल निन्दा (वेंकटेश चम्पू) भी है, पर अधिक संख्या में ऐसे ही चम्पू-काव्य मिलते हैं, जिनमें मंगल-श्लोकों के उपरान्त, सीधे कथा का आरम्भ कर दिया गया हैं। कुछ पौराणिक चम्पू-काव्यों का आरम्भ भी, पौराणिक शैली पर (एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः, जैसे) ही हुआ है। जैसे—

अथ कदाचिदकामानामप्यवाप्तसमस्तकामानां......नैमिषारण्ये महता--मनेकेषामृषीणामभवत्समाजः।" (गौरी मायूर माहात्म्य चम्पू।)

अथवा

नारायणमेव शरणमिच्छन्तः वनमन्दिरं क्षीरसागरमुद्दिश्य प्रमुदिताः प्रतस्थिरे।" (त्रिपुर विजय चम्पू।)

(झ) चम्पू-काव्यों के उपसंहार अंश—अनेक चम्पू-काव्यों की अपूर्ण हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं, अतः उनके उपसंहार अंश के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता ; परन्तु पूर्णचम्पू काव्यों की समाप्ति, अपने काव्य के

१. यशस्तिलक चम्पू में।

प्रति मंगल वाक्य या भरत-वाक्य से हुई है। कतिपय चम्पू-काव्यों में पुराणों के सदृश उनके पाठ या श्रवण का फल भी निर्दिष्ट हुआ है। जैसे—

जीवन्धरस्य चरितं दुरितस्य हन्तृ प्राप्ता मलीमसतमापि मदीय वाणी।
धीरान् धिनोति नियतं मलिनांजनश्रीः बिम्बाधरी नयनपंकजसंगतेव ॥
(जीवन्धर चम्पू—११।१२)

अत्यद्‌भुतानि चरितान्यवनौ वितन्वन् नित्यं तरंगयति मंगलमंगभाजाम्।
(मार्ग सहाय चम्पू)

चम्पू-काव्यों की विशेषताओं से प्राप्त तथ्य—

चम्पू-काव्य प्रबन्ध काव्य है। यह महाकाव्य की भाँति आठ परिच्छेदों से अधिक का भी हो सकता है और खण्डकाव्यों की तरह आठ से कम का भी। इसके विभाजन में, मुख्य रूप से स्तबक उच्छ्वास और उल्लास का प्रयोग होता है। यह चरितकाव्य, महाकाव्य या चम्पू-काव्य के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इसके मूल स्रोत पुराण हैं, पर सामान्य घटनायें भी वर्ण्य-विषय बन सकती हैं। वस्तु की अपेक्षा वर्णन विस्तार की ओर चम्पू निर्माताओं की रुचि अधिक रही है।

चम्पू-काव्य का नायक देवता, गन्धर्व, मानव, पक्षी, पशु कोई भी हो सकता है। एकाधिक नायक भी एक काव्य के हो सकते हैं। नायकों के गुण, लक्षण-ग्रन्थों में निर्दिष्ट गुणों के सदृश ही होते हैं। नायिका, चम्पू-काव्य के लिये अनिवार्य नहीं है। पात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मुख्य पात्र के चरित्र-वर्णन की ओर ही, चम्पूकाव्यकारों का अधिक ध्यान रहा है।

चम्पू-काव्य का अंगीरस वीर, शृंगार और शान्त में से कोईभी हो सकता है। अन्य रसों का प्रयोग अंग रूप में हो सकता है।

चम्पू-काव्यों के वर्णन के लिये, अन्यपुरुषात्मक और कथोपकथनात्मक दोनों प्रकार की शैलियों का उपयोग हो सकता है। चम्पू-काव्य, गद्य-पद्यमय होता है और दोनों भागों को समान स्तर पर प्रयुक्त किया जाता है। चम्पू-काव्यों में गद्य-पद्य की मात्रा के सम्बन्ध में कोई विशेष नियम नहीं है। गद्य और और पद्य दोनों भागों के अलंकरण की प्रवृत्ति, मुख्य रूप से कार्य करती है। गद्य भाग को अधिकाधिक समास-सम्पन्न बनाने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है।

चम्पू-काव्यों में अन्य काव्यों एवं ग्रन्थों के उद्धरण भी यथास्थान दिये जा सकते हैं। पुराणों की भाँति, दृष्टान्त के लिए अवान्तर कथाओं का भी उपयोग हो सकता है।

चम्पू-काव्यों में वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का उपयोग किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार गीतों का समावेश भी हो सकता है। इनका आरम्भ महाकाव्यों की भाँति मंगलश्लोकों, सज्जनस्तुति और खलनिन्दा आदि से भी हो सकता है, और पौराणिक ढंग से भी। इन काव्यों का अन्त मंगलवाक्य या भरतवाक्य से भी हो सकता है, और कथाश्रवण के फलनिर्देश से भी।

चम्पू-काव्य से प्राप्त इन सम्पूर्ण विशेषताओं को किसी एक छोटी सी परिभाषा में बाँध देना सम्भव नहीं है। ये विशेषतायें भी सभी चम्पू-काव्यों में समानरूप से उपलब्ध नहीं होतीं। इनके अपवाद बहुत हैं। उदाहरण के लिए न तो यह कहा जा सकता है कि, चम्पू-काव्य के लिए अन्यपुरुषात्मक शैली प्रयुक्त होती है, न यही कहा जा सकता है कि, उसके लिये कथोपकथनात्मक शैली ही ग्रहण की जा सकती है। श्री निवास चम्पू में दोनों शैलियां प्रयुक्त हुई हैं। इसी प्रकार ऊपर उद्धृत सभी तथ्यों की दशा है। इसलिये अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष से रहित, चम्पू-काव्य की परिभाषा, न तो पूर्वाचार्यों द्वारा की गयी परिभाषा ही है, और न ऐसी किसी परिभाषा का निर्माण ही किया जा सकता है।

उपयुक्त परिभाषा के निर्माण में कठिनाई

चम्पू-काव्य निर्माता पूर्णतः स्वच्छन्द रहे हैं। वस्तु के ग्रहण, नायक के चयन, पात्रों के प्रयोग, रस के परिपाक एवं शैली के अपनाने में उन्होंने किसी शास्त्रीय प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं किया है। फलस्वरूप चम्पू-काव्यों में इतनी बहुविधता है कि किसी सामान्य परिभाषा के अन्तर्गत उन सबका और उनकी विशेषताओं का समाहार कर सकना सम्भव नहीं है।

चम्पू-काव्य की एकमात्र प्रचलित परिभाषा 'गद्य-पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' रही है। यह परिभाषा अतिव्याप्ति दोष से सम्पन्न है। चम्पू-काव्य की जो विशेषतायें दिखलाई पड़ती हैं, उनमें प्रबन्धात्मकता एक ऐसी विशेषता है, जो तीन चार को छोड़कर लगभग सभी चम्पू-काव्यों में उपलब्ध हो जाती है। अतः यदि इस परिभाषा को मिश्र शैली के मुक्तक रचनाओं से पृथक् करना हो तो 'सबन्धं' एक विशेषण और जोड़ना होगा। इसके अतिरिक्त सामान्य कथा कहानियों और आख्यायिकाओं से चम्पू-काव्य को पृथक् करने के लिये उसकी अलंकरण की प्रवृत्ति को भी परिभाषा में समाविष्ट किया जा सकता है। उस परिस्थिति में चम्पू-काव्य की निम्नलिखित परिभाषा अधिक उपयुक्त होगी—

सालंकृत सबन्धं गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते

चम्पू-काव्य की एक और विशेषता है—वर्णन-विस्तार की आकांक्षा। चम्पू-काव्य का पूर्ण परिचय, एवं उसकी विशेषताओं का निर्देश, निम्नलिखित श्लोक में समन्वित कर दिया गया है—

गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्।
सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पुकाव्यमुदाहृतम् ॥ स्व. ॥

चम्पू-काव्य का अन्य काव्यांगों से साम्य-वैषम्य

चम्पू-काव्य की विशेषताओं को ध्यान में रखकर अन्य काव्यांगों से उसका अन्तर देखा जा सकता है। चम्पू काव्य की कतिपय विशेषतायें अन्य काव्यांगों में भी उपलब्ध होती हैं।

चम्पू-काव्य का महाकाव्य से साम्य

दोनों ही श्रव्य काव्य के भेद हैं। दोनों की कथावस्तु, पुराण, इतिहास या सज्जनाश्रित होती है। आरम्भ से अन्त तक कथा अविच्छिन्न रूप में चलती है। वस्तु का विभाजन एवं प्रासंगिक कथाओं का समावेश दोनों में होता है। दोनों प्रकार के काव्य, वर्णन-प्रधान होते हैं, और घटना एवं दृश्य वर्णन के साथ साथ जातीय भावना, रुचि एवं जातीय संस्कारों का परिचय देते हैं। दोनों के वस्तु-वर्णन, नायक-नायिका या अन्य पात्रों के चरित्र की अभिव्यक्ति करते हैं, वे रस निष्पत्ति में भी सहायक होते हैं। दोनों ही प्रकार के काव्यों का नामकरण, वर्ण्य विषय या नायक एवं नायिका के नाम के आधार पर किया गया है।

महाकाव्य का नायक सद्वंशज, धीरोदात्त एवं महापुरुष होता है। अनेक चम्पू-काव्यों के नायक भी इसी प्रकार के हैं। दोनों ही प्रकार के कई ऐसे काव्य हैं, जो बहुनायक संयुत हैं।[1] नायक के महत्त्व एवं चरित्र-चित्रण पर दोनों में ही अधिक ध्यान दिया गया है। नायक के चरित्र-चित्रण में अतिशयोक्ति का आश्रय दोनों ने ही लिया है। पात्रों की संख्या पर दोनों में ही प्रतिबन्ध नहीं है।

दोनों ही प्रकार के काव्यों में वीर एवं शृंगार में से एक रस की प्रमुखता होती है, और अन्य रस अंग बनकर आये हैं। चतुर्वर्ग में से, किसी एक की सिद्धि, दोनों का ही उद्देश्य है। वर्ण्य-विषय प्रायः दोनों

१. उदाहरणार्थ-रघुवंश, भोसल वंशावली आदि।

में समान हैं—यात्रा, युद्ध, नगर, सन्ध्या, प्रभात एवं ऋतुवर्णन आदि, दोनों में मिलते हैं।

वैषम्य

चम्पू-काव्यों की कथावस्तु का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। दसवीं शताब्दी के पूर्व तक उपलब्ध महाकाव्यों के मूलस्रोत केवल पुराण रहे हैं। हरिचन्द का धर्मशर्माभ्युदय एवं जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय तथा अश्वघोष के दो चरितकाव्यों के अतिरिक्त अन्य 'गउडवहो' आदि प्राकृत भाषा में लिखे गये चरित काव्य हैं। चम्पू-काव्यों में चरितकाव्यों की रचना की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। चम्पू-काव्यों का एक छोर महाकाव्यों के मूलस्रोत पुराणों तक है तो दूसरा सामान्य जीवन की सामान्य घटनाओं को लेकर लिखी जाने वाली कथा और आख्यायिका की अन्तिम सीमा तक। महाकाव्यों में अपवाद स्वरूप ऐसे सर्ग[1] उपलब्ध हो जाते हैं, जिनकी कथावस्तु के विकास में स्थिति नगण्य हो जाती है पर चम्पू-काव्यों में कथावस्तु आवृत होकर वर्णन-विस्तार के साथ निरन्तर चलती रहती है। कथा की निरावृत धारावाहिकता को चम्पू-काव्यों में स्थान नहीं मिला है।

नायक के चयन में, चम्पू-काव्यकारों ने महाकाव्यों की रुढ़ियों को पूर्णतः तोड़ दिया है। इतिहास और पुराण-प्रसिद्ध व्यक्तियों के अतिरिक्त राजा, जमींदार, व्यापारी और तीर्थयात्री तो नायक बने ही हैं—गन्धर्वों से लेकर स्थानीय देवता एवं सन्त, महन्त, पुजारी एवं पशु-पक्षी तक पात्रों के रूप में समाविष्ट हैं।

कतिपय चम्पू-काव्यों में शान्त रस के परिपाक में पूर्ण सफलता मिली है, ऐसे काव्यों में वीर और श्रृंगार दोनों अंग बनकर आये हैं।

चम्पू-काव्य गद्य-पद्य मिश्रित शैली में लिखे गये हैं। महाकाव्यों की भाँति परिच्छेद या विभाजन के लिये एक ही नाम 'सर्ग' नहीं प्रयुक्त हुआ है। आश्वास, उच्छ्वास, लम्भक, स्तबक, काण्ड आदि नामकरण कर इस दिशा में भी रूढ़ियों की श्रृङ्खला तोड़ी गई है।

केवल कथोपकथन की शैली में, दसवीं शताब्दी के पूर्व लिखा गया कोई भी महाकाव्य नहीं है। बाद में भी इस दिशा में प्रयास कम हुआ है। चम्पू काव्य केवल कथोपकथन शैली में भी प्रस्तुत किये गये हैं।

कथा के आरम्भ एवं अन्त में भी, दोनों काव्यों के स्वरूप में बहुत अन्तर है। पौराणिक ढंग से, कथा का आरम्भ एवं उसी ढंग से, फलवर्णन

---

१. द्रष्टव्य—नैषधीय चरितम्, १६वें सर्ग के बाद से। शिशुपाल वधः—७-११ सर्ग॥

सहित समाप्ति, चम्पू काव्यों का नूतन प्रयोग, पुराणों से प्रभावित होते हुये भी, महाकाव्यों से भिन्न है।

चम्पू काव्यों में कई स्थलों पर अन्य कवियों की सूक्तियों, नीतिवाक्यों एवं सरस छन्दों को स्वच्छन्दता के साथ उद्धृत किया गया है पर किसी भी महाकाव्य में ऐसा नहीं हुआ है।

महाकाव्य के एक सर्ग में एक ही प्रकार का छन्द प्रयुक्त हुआ है, और सर्गान्त में केवल छन्द-परिवर्तन हुआ है। चम्पू काव्यों में वर्ण्य-विषय एवं भावों के अनुकूल एक ही परिच्छेद में अनेक प्रकार के छन्द व्यवहृत हुए हैं।

खण्डकाव्य से साम्य-वैषम्य

जिस प्रकार खण्डकाव्य स्वरूप और आकार में महाकाव्य से छोटा होता है, एवं एक ही घटना पर इसका ढाँचा खड़ा किया जाता है, उसी प्रकार लघु चम्पूकाव्य भी एक घटनाश्रित होते हैं। रस भी दोनों में एक ही रहता है। दोनों की सर्ग या परिच्छेद संख्या आठ से कम होती है। लघु चम्पू काव्यों में से अधिकांश खण्ड काव्य से साम्य रखते हैं। पारिजातहरण, नील-कंठविजय, स्वाहासुधाकर आदि चम्पू-काव्य इसी वर्ग के हैं।

वैषम्य--पद्य-बद्ध खंडकाव्य में महाकाव्य की अपेक्षा वर्णन—विस्तार को कम अवसर दिया जाता है, किन्तु लघु-चम्पू-काव्य, अलंकृत शैली में वर्णन का ताना-बाना बुनते चलते हैं, और इनमें यथावसर-वर्णन-विस्तार की ओर कवियों का झुकाव दिखाई पड़ता है।

पद्यबद्ध खंडकाव्यों में मुख्यतः दूत या सन्देशकाव्य ही अधिक हैं। कालिदास का मेघदूत, रूपगोस्वामी का उद्धवदूत, वादिचन्द का पवनदूत, विद्यानाथ का तुलसीदूत, वरदराज का मनोदूत, वेदान्तदेशिक का हंससन्देश एवं लक्ष्मीदास का शुकसन्देश खंडकाव्य की श्रेणी में आते हैं। इन काव्यों के स्वरूप एवं आकार प्रायः समान हैं। चम्पूकाव्यों का क्षेत्र यहाँ भी विस्तृत दिखाई पड़ता है। परिणय-चम्पू काव्यों में शृंगार की मुख्यता है, पर वीर एवं भक्ति रसात्मक, लघु चम्पू काव्यों की भी कमी नहीं है। ऐति-हासिक एवं अन्य प्रकार के लघुचम्पू काव्य भी लिखे गये हैं।

वर्ण्य विषय, नायक एवं शैलीगत वैषम्य, ठीक वैसे ही हैं, जैसे महा-काव्य एवं चम्पू काव्य के प्रदर्शित किये गये हैं।

पद्यमुक्तक से साम्य-वैषम्य

मुक्तक काव्य अनिबद्ध होता है, और चम्पू काव्य निबद्ध। यह दोनों का मुख्य अन्तर है, जो दोनों के स्वरूप, आकार एवं शैलीगत अन्तर को स्पष्ट करता है।

पद्य-मुक्तकों के सभी भेद-मुक्तक, सन्दानितक, विशेषक, कलापक एवं कुलक[1] तथा शुद्ध, चित्र, कथोत्थ, संविधानक भू एवं आख्यानकवान्–चम्पू काव्यों के पद्य भाग में प्रयुक्त हुये हैं। वस्तुतः पद्यमुक्तकों के सभी भेद, जिस प्रकार महाकाव्य के भीतर समाहित[2] हो जाते हैं, उसी प्रकार गद्य या पद्य-मुक्तक चम्पू काव्यों के भी अंग बनकर आये हैं।

गद्य-काव्य से साम्य-वैषम्य

गद्य-मुक्तकों का प्रयोग मुख्यतः शिलालेखों में हुआ है। वृत्तगन्धोज्झित, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक गद्य-शैली के भेद मात्र हैं। मुक्तकों के विविध रूप उसी प्रकार बन्धयुक्त गद्य-काव्य में समाहित हो जाते हैं, जिस प्रकार पद्य-मुक्तक, बन्धयुक्त पद्यकाव्यों में। एक ही चम्पू काव्य के गद्य-भाग में, इन गद्य शैलियों के एकाधिक रूप का दर्शन हो सकता है। चम्पू-काव्य का गद्य-भाग बन्धयुक्त होता है, अतः ये सभी भेद उसमें भी दिखाई पड़ते हैं। यशस्तिलक में वृत्तगन्धि गद्य-खंडों का भी, प्रचुर प्रयोग हुआ है। स्वल्प एवं बृहत्-समस्त-पदावली का प्रयोग, चम्पू काव्यों में वर्णन की आवश्यकता एवं कवियों की रुचि पर अधिक, निर्भर करता है। समान भावबोधक वाक्य-कदम्बक भी उपलब्ध हो जाते हैं।

बन्धयुक्त गद्यकाव्य से साम्य-वैषम्य

संस्कृत साहित्य में, बन्ध-युक्त गद्यकाव्यों की संख्या अत्यन्त सीमित है। बाण की हर्षचरित एवं कादम्बरी, सुबन्धु की वासवदत्ता, दण्डी की–दशकुमार चरित, उदयदेव वादिभसिंह की–गद्यचूडामणि एवं क्षत्रचूडामणि, धनपाल की तिलक मंजरी एवं बामनभट्ट बाण की "वेम भूपाल चरित" नामक गद्य कृतियाँ ही, उपलब्ध हैं। कथा और आख्यायिका के रूप में गद्य काव्य का विभाजन करते हुये भी दण्डी ने इन दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं माना है। इन सभी गद्य काव्यों का मुख्य वर्ण्य-विषय गद्य में ही निबद्ध है। चम्पू काव्यों में भी गद्य के माध्यम से कथा का विकास हुआ है।

---

१. द्रष्टव्य–यशस्तिलक १।४ से ८ तक के पद्य।

२. एते पद्यप्रभेदाः महाकाव्यांश भूता एव ।हरिनाथ।

गद्य काव्य के वर्ण्य विषय का मुख्य क्षेत्र, चरित वर्णन है। चम्पू काव्य भी चरितात्मक हैं। कल्पना-चातुर्य का दर्शन दोनों में होता है। वर्णन विस्तार एवं अलंकृत-समस्त-पदावली का उपयोग, दोनों में समान रूप से हुआ है। गद्य-काव्यों में से कुछ में आरंभ में कविवंशानुकीर्तन, खलनिन्दा, सज्जन-स्तुति है[१] और कुछ में नहीं है।[२] चम्पू काव्यों में भी कुछ में है और कुछ में नहीं। ये आरम्भिक वर्ण्य-विषय, गद्य-काव्य एवं चम्पू काव्यों में समानरूप से पद्य में हैं। प्रासंगिक एवं अवान्तर कथाओं का समावेश दोनों प्रकार के काव्यों में हुआ है। नायक के माध्यम से, विविध अवान्तर कथाओं का सम्बन्ध–सूत्र स्थापित करने का प्रयास, दोनों प्रकार के काव्यों में दिखाई पड़ता है।[3] कथा का विकास गद्य काव्यों में भी चम्पू काव्यों के सदृश ही वर्णन-विस्तार के आवरण में हुआ है। नायक, नगरी या स्थान-विशेष के वर्णन से ही दोनों प्रकार के काव्यों का आरम्भ हुआ है।

अनेक चरित काव्य, गद्य, पद्य एवं मिश्र शैली में प्रस्तुत किये गये हैं।[४] चम्पूकाव्यों में पुरुदेव, जीवंधर, रामानुज चम्पू आदि मिश्र शैली में हैं। इन चरित-चम्पू-काव्यों के गद्य-भाग का आदर्श, गद्य काव्य एवं समग्र रूप में महाकाव्य, रहा है। पद्यबद्ध-काव्यों की तरह चम्पू काव्यों में, पद्य के माध्यम से कथा का विकास नहीं हुआ है। श्रीश्रुतसागर ने यशस्तिलक चम्पू की टीका में चम्पू, चरित एवं महाकाव्य का एक साथ प्रयोग किया है :—

"श्रीश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलकचन्द्रिकाभिधानायां यशोधर-महाराजचरितचम्पुमहाकाव्यटीकायां—"

जिन चम्पू काव्यों में गद्य-भाग से पद्यभागअधिक है[५] उनमें वस्तु-विकास पद्य मेंहुआ ही है, गद्य का उपयोग भी वस्तु विकास के साधक रूप में ही हुआ है। अतः चम्पू काव्य वर्ण्य-विषय, वस्तु संगठन, वर्णन-विस्तार, नायक के चरित्र चित्रण, एवं गद्य के स्वरूप की दृष्टि से, गद्यकाव्य के अधिक समीप हैं। अन्तर यदि है, तो केवल यही कि चम्पू काव्य, गद्य-पद्य-मय होता है

---

१. द्रष्टव्य-कादम्बरी।

२. ,, दशकुमार चरित।

३. ,, यशस्तिलक, रामानुज चम्पू।

४. पद्य में–पद्मगुप्त का नवसाहसांक चरित, विल्हण का विक्रमांकदेव-चरित आदि। गद्य में—हर्षचरित, दशकुमार चरित।

५. उदाहरणार्थ-द्रष्टव्य–कुमार संभव चम्पू।

और गद्यकाव्य, कथावस्तु के मध्य में उसके विकास या वर्णन विस्तार के लिए पद्य का आश्रय नहीं ग्रहण करता। आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्रादि के उपयोग की स्वतन्त्रता भी सम्भवतः गद्य काव्यों में गीतों के कहीं-कहीं समावेश की दृष्टि से दी गई है, यद्यपि इनका उपयोग नहीं के बराबर हुआ है

सापेक्षिक दृष्टि से गद्यकाव्यों एवं चम्पू काव्यों का अन्तर केवल शैली का है। यदि गद्यकाव्यों के भीतर विषय से सम्बन्धित पद्यों को भी रख दिया जाय तो वे एक प्रकार के चम्पू काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण बन जायेंगे।

चम्पू भिन्न-दृश्यात्मक-मिश्रकाव्य से अन्तर

मिश्र शैली में लिखे गये रूपक, उपरूपक दृश्यकाव्य हैं और चम्पू श्रव्य-काव्य है। इस कारण, चम्पू काव्यों में न तो पूर्व रंग की स्थापना होती है न प्रस्तावना, विष्कम्भक, अंकावतार आदि की ही आवश्यकता पड़ती है। रूपकों में प्रासंगिक कथाओं—पताका और प्रकरी का मुख्य उद्देश्य आधिकारिक कथावस्तु की पुष्टि करना होता है, किन्तु चम्पूकाव्यों में ऐसी अवान्तर कथाओं का भी समावेश हुआ है, जिनके अलग कर देने से मुख्य कथाओं में कोई व्याघात नहीं होता। एक ही नायक के जीवन की अक्रमबद्ध घटनाओं का संकलन भी चम्पू काव्यों का आधार बना है। नाटक में सन्धि और संध्यंगों पर अधिक ध्यान दिया गया है; चम्पू काव्यों में नहीं। चम्पू काव्य की सारी कथा, वर्ण्य अथवा सूच्य होती है। इन कथाओं के लिए समय की अवधि का भी प्रतिबन्ध नहीं है। दृश्यकाव्यों के लिए जो अवर्ण्य हैं, वह भी चम्पू काव्यों में वर्ण्य हो गया है। अनेक चम्पू काव्यों में लक्ष्य-कथा दुर्बल तो है ही, वर्णन की बहक में उसका समुचित विकास भी नहीं हुआ है।[1] गोप्य और अगोप्य का भी ध्यान नहीं रखा गया है, तथा सामाजिक संस्कारों की कई स्थलों पर पूर्ण उपेक्षा हुई है।[2]

विश्वगुणादर्श जैसे कतिपय चम्पू-काव्य संवाद शैली में अवश्य लिखे गये हैं, परन्तु उनमें अंक तथा दृश्य विभाजन तो है ही नहीं, वे वर्णन-प्रधान भी हैं। पद्यों की इनमें बहुलता है, और गद्य भाग का उपयोग प्रत्येक भावी-वर्णन के सूचनार्थ हुआ है; अतः न तो वह दृश्यकाव्य की तरह भाव प्रधान है, न अन्य प्रौढ़ चम्पू-काव्यों की तरह अलंकृत। पद्यभाग

---

१. द्रष्टव्य, विश्वगुणादर्श एवं मन्दारमरन्द चम्पू।
२. यात्रा-प्रबन्ध का संभोग वर्णन।

का मुख्य उद्देश्य भी, स्थान-विशेष के प्रकृति सौन्दर्य, व्यक्तियों, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषताओं के वर्णन तक, सीमित है। कथा का क्रमबद्ध-विकास, इनमें नहीं हुआ है, केवल मुख्य पात्र ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं और वर्णन का भिन्न रंग प्रस्तुत होने लगता है।

चम्पू-भिन्न श्रव्यात्मक-मिश्रकाव्य से अन्तर

मिश्र-शैली में प्रस्तुत राजस्तुति "विरुद" कहलाती है। चम्पू-काव्यों में इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है। राजाओं और देवताओं से सम्बन्धित प्रायः अनेक चम्पू-काव्यों में स्तुति परक गद्य-पद्य उपलब्ध होते हैं। स्वतन्त्र रूप से लिखे गये विरुद-काव्यों की भी कमी नहीं है। विरुद, मुक्तक काव्य के अन्तर्गत हैं, अतः ये उसीप्रकार चम्पू-काव्य के अंग बन जाते हैं, जिसप्रकार अन्य सामान्य मुक्तक, किसी प्रबन्ध काव्य के।

घोषणा भी, श्रव्यात्मक मिश्र काव्य का एक रूप है। शिलालेखों में उपलब्ध घोषणा सम्बन्धी लेख और दानपत्र इसी के अन्तर्गत गिने जा सकते हैं। सुमतीन्द्रकी भांति, "घुष्यताम्" का प्रयोग किये बिना भी "विदितमस्तु" के द्वारा एक प्रकार की घोषणा ही की गयी है।[१] ये घोषणायें और दानपत्र कथा प्रबन्ध के अभाव में मुक्तकों की श्रेणी में ही आते हैं, और मिश्र-शैली में लिखित प्रबन्ध के अंग बन सकते हैं।

करम्भक, विविध भाषा में लिखी हुई प्रशस्ति होती है। चम्पू-काव्य का अर्थ एक ग्रन्थ में विविध भाषा का मिश्रण नहीं, बल्कि गद्य-पद्य का ही मिश्रण है। किसी भी भाषा में गद्य-पद्यमय-चम्पू-काव्य की रचना हो सकती है।[२]

अन्य काव्यांगों से चम्पू काव्य की भिन्नताओं को ध्यान में रखकर उसे काव्य की एक स्वतन्त्र विधा स्वीकार करना पड़ता है। चम्पू काव्य के गद्य भाग का साम्य, गद्यकाव्यों से अधिक है और पद्य भाग का पद्यबद्ध काव्यों से। गद्यकाव्य के बीच-बीच में पद्यबद्ध वर्णन का भाग भी समाविष्ट कर दिया जाय तो उसे एक प्रकार के चम्पू काव्य का रूप प्राप्त हो जायेगा। पद्यों का यह समावेश कथावस्तु से संश्लिष्ट होना चाहिये। इतना होते हुए भी चम्पू-काव्य की कथोपकथनात्मक शैली एवं स्तोत्रों, अन्य ग्रन्थों के उद्धरण तथा अवान्तर कथाओं आदि के समावेश के कारण इसकी पृथक्

१. द्रष्टव्य सुमतीन्द्रजयघोषण एवं नाम्पलिग्राम का दानपत्र।

२. ,, सरस्वती कण्ठाभरण २।१०।१॥

सत्ता सिद्ध होती है। किसी भी गद्यकाव्य के श्रवण का फल निर्दिष्ट नहीं हुआ है। पौराणिक चम्पू काव्य इसप्रकार का भी निर्देश करते हैं। अतः गद्यकाव्य में पद्य के मिश्रण से प्राप्त साम्य, केवल गद्यपद्यमयी शैली का ही साम्य सूचित करता है, इसके आधार पर चम्पू काव्य की पृथक् सत्ता का अपलाप नहीं किया जा सकता और न ही उसकी विशेषताओं को आँखों से ओझल किया जा सकता है।

—:*:—

मिश्र-काव्य के विकास की पृष्ठभूमि

गद्य-पद्यात्मिका मिश्र-शैली का आरम्भ वैदिक काल में ही हो चुका था। कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तरीय, मैत्रायणी तथा कठ, तीनों संहिताओं में गद्य-पद्य का मिश्रण दिखाई पड़ता है। अथर्व वेद का भी लगभग छठा भाग गद्य में है। अतः मिश्र-शैली का प्रयोग भी उतने ही प्राचीन काल से होता आ रहा है, जितने प्राचीन काल से गद्य अथवा पद्य का।

वैदिक उपाख्यानों : विशेषत : ऐतरेय ब्राह्मण में मिश्र-शैली का आरम्भ

गद्य-पद्य मिश्रित-शैली का स्पष्ट रूप ब्राह्मण ग्रन्थों के उपाख्यानों में दृष्टिगोचर होता है। इन उपाख्यानों में प्रयुक्त मिश्र शैली का उत्कृष्ट उदाहरण ऐतरेय ब्राह्मण (३३ अध्याय) का हरिश्चन्द्रोपाख्यान है। विविध प्रकार की कथाओं एवं चम्पू काव्यों में अपनाई गई, मिश्र-शैली का प्राचीनतम रूप इसे कहा जा सकता है। यह उपाख्यान, मुक्तक गद्य-पद्यों का संकलन न होकर उनका प्रबन्धाश्रित रूप ही व्यक्त करता है :—

हरिश्चन्द्रो ह वैधस, ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृहे ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ इति।

यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न।
किंस्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष्व नारद। इति ॥१पृ०२॥
स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच, इति।
ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥२पृ०२॥

इस उपाख्यान का आरम्भ मुख्य पात्र के परिचय से हुआ है। घटना का विकास ऋजु गति से होता है, तथा पद्यों का प्रयोग प्रश्नोत्तर रूप में भी हुआ है और वस्तु के महत्त्व-वर्णन में भी। भाव-परिवर्तन के साथ कई स्थलों पर छन्दों में भी परिवर्तन हुआ है :—

अन्नं ह प्राणः शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योति ह पुत्रः परमे व्योमन् ॥६पृ०४॥

—ज्योति ह पुत्रः—प्रस्तुत के साथ यहाँ कई अप्रस्तुतों की एक साथ योजना

की गई है। प्रस्तुत तथ्य पर बल देने के लिये सूक्तियों का भी उपयोग किया गया है। अन्त में–इति–के प्रयोग की परम्परा, उपनिषदों एवं जातक कथाओं में प्रयुक्त गाथाओं में भी दिखाई पड़ती है। –चरैवेति–सम्बन्धी सभी पद्य, एक ही विशेष बात पर बल देने के लिये प्रयुक्त हुये हैं :—

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ॥पृ०१३॥

दो पात्रों के कथोपकथन सम्बन्धी वाक्यों को, कहीं सीधे रख दिया गया है और कहीं वर्णन के बीच में। हरिश्चन्द्र[1] और वरुण के कथोपकथन को देखा जा सकता है :—

–अथैनमुवाच-वरुणं राजानमुपधाव पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यजा इति।
तथेति,
स वरुणं राजानमुपससार।
पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यजा इति।
तथेति,
तस्य पुत्रो जज्ञे रोहितो नाम ॥पृ०७॥

हरिश्चन्द्र की मुख्य कथा के अतिरिक्त, सौयवसि अजीगर्त तथा शुनःशेप की कथा, और शुनःशेप द्वारा विश्वामित्र के पुत्र-पद की प्राप्ति कथा, क्रमशः पताका एवं प्रकरी के सदृश हैं। वर्णन का प्रचुर भाग एवं घटना-स्थल पर उपस्थित पात्रों का परिचय आदि गद्य में ही है :—

—तस्य ह विश्वामित्रो होतासीज्जमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्मा अयास्य उद्गाता ॥पृ०१३॥

उपाख्यान के अन्त में इसके श्रवण का फल भी निर्दिष्ट कर दिया गया है:–

–पुत्रकामा हाप्याख्यापयेरल्लंभन्ते ह पुत्राल्लंभन्ते ह पुत्रान् ॥पृ०३२॥

इस उपाख्यान में जिन विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है, वे सभी चम्पू काव्यों में उपलब्ध होती हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के उपाख्यानों की भाषा, अलंकारों से भाराक्रान्त नहीं है, परन्तु कई स्थानों पर स्वाभाविक रूप से ही अलंकारों का उपयोग हुआ है। उद्धृत उपाख्यान के–अन्नं ह प्राणः-तथा-चरन्वै मधु विन्दति–ये दोनों पद्य अलंकृत हैं।

उपनिषदों में मिश्र-शैली

आरण्यक प्रायः गद्य में हैं, किन्तु कुछ उपनिषद्-गद्यात्मक हैं, कुछ पद्यात्मक और कुछ गद्य-पद्य-मिश्रित। केनोपनिषद् का तृतीय एवं चतुर्थ

---

१. द्रष्टव्य—हरिश्चन्द्रोपाख्यान–भद्रवनी, काशी से प्रकाशित (सं०२००३)

खण्ड यक्षोपाख्यान है, जो केवल गद्य में है, किन्तु प्रथम खण्ड का गद्यात्मक तृतीय मन्त्र एक विशेषता रखता है। वह सार रूप में प्रस्तुत किया गया है :—

—न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो..।[1]

पद्यों में इसी का विस्तार किया गया है। जैसे—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१।४॥

चम्पू काव्यों में वर्णन का यह पुनरावृत रूप मिलता है। प्रश्न-मुण्डक-कठ, ये उपनिषद् मिश्र शैली में हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में केवल दो (२।२,६।१०) गद्य-चूर्णक हैं, जबकि पद्यों की संख्या १११ है। केनोपनिषद् में १२ पद्य तथा २२ गद्य-चूर्णक हैं, अतः गद्य-पद्य की मात्रा के सम्बन्ध में, उपनिषद् भी स्वतन्त्र हैं।

कथावस्तु को अन्तराल में छिपाये, वर्णन प्रधान उपनिषद्- कठोपनिषद् है। इसमें यम और नचिकेता के उपाख्यान का आरम्भ गद्य से ही हुआ है। :—

—ऊं उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥१।१।१-२॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा: निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥१।१।३॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसि इति। द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥२।१।४।

यह कथावतार या कथा की भूमिका है। पौराणिक चम्पू काव्यों में यह कथावतरण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। कथा का आरम्भ मुख्य पात्र नचिकेता के अन्तर्द्वन्द्व से होता है :—

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमिमध्यमः।
किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥१।१।५॥

नचिकेता का यम के पास जाना, यम से तीन वर प्राप्त कर, पिता की अनुकूलता, अग्नि-विद्या तथा आत्म-ज्ञान से सम्पन्न होकर लौटना और ऋषियों को उनका ज्ञान कराना आदि सारा वर्णन पद्यबद्ध है। अतः यह कथा पद्य-बहुल ही है। हरिश्चन्द्रोपाख्यान के चरैवेति की भांति एक ही

१ द्रष्टव्य—केनोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ३६।

विशिष्ट बात पर बल देने के लिये इसमें-एतद्वैतत्-का प्रयोग किया गया है (२।२।)।

उपनिषद् काव्य-कृतियाँ नहीं हैं, अतः वे अलंकृत शैली में लिखी भी नहीं गई हैं। भाव के स्पष्टीकरण के लिये स्वाभाविक रूप से वाक्यार्थोपमा, दृष्टान्त तथा रूपक आदि का प्रयोग हो गया है। ऐसे मन्त्र पर्याप्त लोकप्रिय भी हैं। जैसे—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

(१।२।५ कठ०)

कथा के उपसंहार में उसका महत्त्व अथवा श्रवण-फल का वर्णन भी उपलब्ध हो जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों से उपनिषदों एवं पुराणों में होती हुई यह परम्परा पौराणिक चम्पू-काव्यों (जीवन्धर आदि) तक में दृष्टिगोचर होती है। कठोपनिषद् के नचिकेतोपाख्यान का फल-निर्देश निम्नलिखित रूप में किया गया है :—

नचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥

(१।३।१६)

अथवा

मृत्यु-प्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव॥

(२।३।१८)

उपनिषदों का गद्य-भाग उतना मनोरम नहीं है, जितना पद्य-भाग, परन्तु कहीं-कहीं गद्य-भाग में भी कलात्मक सौन्दर्य लाने का प्रयास दिखाई पड़ता है :—

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्।

(माण्डूक्योपनिषद्-मन्त्र ५)

अथवा

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः।

(प्रश्नोपनिषद्—६।५)

"औपनिषद् गद्य, शैली की दृष्टि से स्वच्छन्द और स्वाभाविक है, इसमें आख्यात रूपों को छटा सुन्दर है-पदों की पुनरुक्ति रुचिकर है और लम्बे-लम्बे समासों का प्रायः अभाव है।[1]"

वेदांग एवं सूत्र काल

वेदांगों पर अनेक ग्रन्थ, सूत्र-शैली में लिखे गये। ये सूत्र, गद्य में हीं हैं। ज्ञान-विज्ञान के तथ्यों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को स्मरण-साध्य बनाने के लिये सूत्र-शैली का आविष्कार किसी मौलिक प्रतिभा की देन है। ये सूत्र, संक्षिप्तता की सीमा तक पहुँच गये हैं, जहाँ कवित्व का नाम भी नहीं पहुँच सकता था। सूत्र काल में मूल ग्रन्थों पर लिखी गयी टिप्पणियाँ एवं व्याख्यायें भी संक्षिप्त हैं।[2] "लौकिक साहित्य के उदय होते ही गद्य का ह्रास आरंभ हो जाता है। वैदिक गद्य में जो प्रसाद तथा सौन्दर्य दीख पड़ता है, वह लौकिक संस्कृत के गद्य में दिखाई नहीं पड़ता। अब तो गद्य का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन शास्त्र ही रह जाता है, परन्तु वह गद्य दुरूह, प्रसादविहीन और दुर्बोध ही है। पद्य की प्रभुता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि ज्योतिष और वैद्यक जैसे वैज्ञानिक विषयों का भी वर्णन, छन्दोमयी वाणी में ही किया गया है। पद्य की रचना जिन छन्दों में की गयी है, वे छन्द भी वैदिक छन्दों से भिन्न ही हैं।"[3] गद्य के संक्षिप्त एवं विशिष्ट आकार ग्रहण कर लेने के कारण गद्य-पद्य की मिश्रित शैली में कोई भी कवित्वपूर्ण रचना, इसकाल की उपलब्ध नहीं होती।

सूत्रकाल के बाद

पतंजलि के व्याकरण विषयक कथन से यह बात झलक जाती है कि उनके समय में शिष्ट समाज में संस्कृत का चोखा चलन था और भद्रलोग संस्कृत को बोल और समझ लेते थे।[4] शिष्टों में प्रचलित इसी संस्कृत के चलते गद्य में पतंजलि ने अपने महाभाष्य की रचना की है, यही कारण है कि उनका गद्य गजब का प्रांजल, प्रसर्पी एवं अभिव्यंजन-शील सम्पन्न हुआ है।[5] इसके वाक्य छोटे-छोटे मोती जैसे विशद एवं सारगर्भ हैं। अपने गद्य में पतंजलि ने न तो अवांछनीय संक्षेप का सहारा लिया

---

१. हीरक जयन्ती ग्रन्थ, ना० प्र० सभा, काशी पृ० १३२ डा० सूर्यकान्त।

२. द्रष्टव्य-पाणिनि के सूत्रों पर-कात्यायन के वार्तिक।

३. संस्कृत सा० का इ०—उपाध्याय, पृष्ठ ५६।

४. ५. डा० सूर्यकान्त, उसी लेख में १३३ पृष्ठ पर।

है और न श्रुति-मधुर-समासों को ही आने दिया है। उनके गद्य की रमणीयता एवं शैली का रूप निम्नलिखित गद्यखण्ड में देखा जासकता है—

यल्लोकेऽर्थमर्थमुपादाय शब्दान् प्रयुंजते नैषां निर्वृत्तौ यत्नं कुर्वन्ति। ये पुनः कार्याभावानिर्वृत्तौ तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह, कुरू घटं कार्यमनेन करिष्यामीति। न तद्वच्छब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरण-कुलं गत्वाह-कुरू शब्दान् प्रयोक्ष्य इति। तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुंजते।"[1]

महाभाष्य के गद्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूत्र शैली का अपना कलेवर बदलकर गद्य, अपने प्रसृत रूप में प्रयुक्त होने लगा था। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में दृष्टान्त के ढंग पर बहुत से श्लोकों या श्लोक-खण्डों को उद्धृत किया है। सूत्रकाल के आरम्भ से लेकर ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी तक, छः सौ वर्षों में कोई कवि पैदा ही नहीं हुआ, तथा गद्य-पद्य या मिश्र शैली में कोई रचना ही न हुई होगी-यह असंभव प्रतीत होता है। पाणिनि-रचित "जाम्बवती जय"[2] नामक काव्य की सूचना मिलती है। पतंजलि ने वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी नामक अनुपलब्ध आख्यायिकाग्रन्थों का नाम निर्देश किया है, उन्होंने कंस-वध तथा 'बलिबन्धन' से सम्बद्ध नाटकों का ही उल्लेख नहीं किया है, प्रत्युत उनके प्रत्यक्ष अभिनय के प्रकार का भी स्पष्ट निर्देश किया है।[3] इसकाल की साहित्यिक एवं काव्यात्मक-कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं; अतः मिश्र शैली तथा गद्य एवं पद्य का स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कम से कम नाटकों एवं आख्यायिकाओं के आधार पर मिश्र-शैली के सम्बन्ध में, विकास सम्बन्धी धारणायें अधिक स्पष्ट नहीं होतीं। भास के नाम पर जो नाटक उपलब्ध हैं, उनके निर्माणकाल के सम्बन्ध में ही पर्याप्त विवाद है।

जातक ग्रन्थों में

पालिजातकों में मिश्र शैली का एक सुन्दर रूप दिखाई पड़ता है। 'सुत्त पिटक' के खुद्दक निकाय के दशम ग्रन्थों में जातक गाथायें उपनिबद्ध

---

१. व्याकरण महाभाष्यम्-पतंजलि पृष्ठ ४५ (लोकतः का भाष्य) पस्पशाह्निक शब्दानुशासनम्। चौखम्बा बनारस।

२. नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनुजाम्बवतीजयम्॥ राजशेखर।

३. उपाध्याय–पृ० १४८-१४६ पर।

हैं। अट्ठकथा (अर्थकथा) सहित जातक, सिंहल के राजा वट्टगामणि के समय (प्रथम सदी) लिपिबद्ध हुए थे।[1] गाथायें मूल हैं और जातक कथाओं में उपलब्ध पालि-गद्य भाग उनकी व्याख्या, अट्ठकथा या स्पष्टीकरण है। अट्ठकथा सहित, गाथाओं का जो रूप हमारे सामने आता है वही मिश्रित शैली का तत्कालीन उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन जातकों की संख्या ५४७ है और इनमें सिद्धार्थ गौतम की बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व के जन्म जन्मान्तरों में बोधिसत्त्वावस्था में किये गये महत् एवं सत्कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक जातक कथा के चार भाग हैं–पच्चुपन्नवत्थु, अतीतवत्थु, अत्थवण्णना और समोधान। यह विभाजन कथा के रचनारूप पर प्रकाश डालता है। प्रथम भूमिका है और अंतिम कथा का उपसंहार। लिपिबद्ध होने से पूर्व भी ये जातक कथायें प्रचलित रही होंगी। अनेक कथाओं को भरहुत के स्तूपों पर अंकित पाया गया है, अतः ये जातक कथायें उस युग की मिश्र शैली का एकमात्र प्रबन्धात्मक रूप प्रस्तुत करती हैं, जिसयुग में संकृत की मिश्रशैली का कोई साहित्यिक रूप उपलब्ध नहीं होता। ये जातक कथायें उपनिषदों एवं बाद की प्रचलित नीति-कथाओं के सम्बन्ध को जोड़ने वाली मध्य की कड़ी भी हैं।

अधिकांश जातक कथाओं का आरम्भ "अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते" से हुआ है। साथ ही मुख्यपात्र बोधिसत्व का परिचय दिया गया है। जैसे-बोधिसत्तो कस्सक कुले निब्बत्तित्वा वयप्पतो कसिकम्मेन जीविकं कप्पेसि।[2]

कथा का विकास ऋजुगति से हुआ है। संस्कृत गद्यकाव्य या चम्पूकाव्य के गद्य-भाग की भांति, न तो इन जातक कथाओं का गद्य, समास-सम्पन्न है, न अलंकारों से बोझिल। अपूर्ण क्रियाओं के अतिशय प्रयोग से कतिपय स्थल, प्रवाहहीन भी बन गये हैं। जैसे—

"गामवासिनोऽपि तस्स गद्रभ भावं जत्वा, अट्ठीनि भंजन्ता पोथेत्वा सीहचम्मं आदाय अगमंसु।"[3]

---

१. पालि साहित्य का इतिहास-भरतसिंह-हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग २००८, पृष्ठ २७२-२८१।

२. सीहचम्म जातक सं० १८९ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित. जातक) भदन्त आनन्द कौशल्यायन।

३. वही।

स्थान-स्थान पर नीति और उपदेशपरक सूक्तियों का प्रयोग हुआ है—

"अकतञ्ञुं अकत्तारं कतस्स अप्पतिकारकं।

यस्मिं कतञ्ञुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना ॥ यवशकुन जातक ॥ ३०८

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुनाजिने।

जिने कदरियं दानेन सच्चेनालीकवादिनं ॥ राजोवाद जातक ॥ १५१

इन जातक कथाओं में स्वधर्म के महत्त्वांकन के साथ साथ, प्रचारात्मक दृष्टिकोण भी लक्षित होता है—

यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्मं आदेसयी।

अथ लाभो च सक्कारो तित्थियानं अहायथा ति ॥

बावेरू जातक ३३९ ॥

अनेक गाथायें कथावस्तु का संकेत करती हैं, जिनके आधार पर तत्सम्बन्धी जातक कथाओं का निर्माण हुआ है। "सीलानिसंस" की कथा निम्नलिखित गाथा पर आधारित है—

सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।

सतांहि सन्निवासेन सोत्थिं गच्छति नहापितो ति ॥

इन जातक कथाओं में गद्य एवं पद्य (गाथा) की सापेक्षिक मात्रा निश्चित नहीं है। बक जातक में एक ही गाथा है, सीह चम्म जातक में दो और सुप्पारक जातक में तेरह। ये गाथायें नीतिपरक और उपदेशात्मक भी हैं और कहीं कथा के विकास के लिए भी प्रयुक्त हुई हैं।[1] प्रश्नोत्तरों के रूप में भी गाथायें प्राप्त होती हैं।[2] पशु-पक्षी-मानव-यक्ष-यक्षिणी आदि सभी प्रकार के पात्रों का समावेश इन कथाओं में हुआ है। जीवन के बहुविध एवं व्यापक क्षेत्र को इन कथाओं का आधार बनाया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध आख्यानों एवं उपनिषदों की ज्ञान-परक कथाओं की परम्परा से, जातक की कथायें बाहर नहीं हैं। ये भी सोद्देश्य हैं। जीवन को सदाचारपूर्ण बनाने के उद्देश्य से निर्मित, इन जातक कथाओं की एवं उपनिषदों की कथाओं में उद्देश्य की दृष्टि से कोई मौलिक अन्तर नहीं है, केवल भाषा एवं शैली का ही अन्तर दृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के ऐतिहासिक आख्यानों की तरह, ये भी तत्कालीन सोलह महाजनपदों, मगध और कोशल राज्य के संघर्षों तथा सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं व्यापारिक अवस्थाओं तथा तत्कालीन आचारों की ओर संकेत

१. द्रष्टव्य-कुरुंगमिग जातक की प्रथम गाथा। सं० २०६

२. ,, सुप्पारक जातक की गाथायें सं० ४६३

करती हैं। बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व के, बोधिसत्त्व के विविध जन्मों की जातक कथाओं की भाँति ही जैन काव्यों में जन्मान्तरों की कथायें वर्णित हैं। जातककथायें सदाचार के विध्यात्मक रूप को प्रस्तुत करती हैं और जैन चम्पूकाव्यों की चम्पू कथायें आचारहीनता के परिणाम अर्थात् निषेधात्मक रूप को। इन जातक कथाओं का आंशिक प्रभाव, चम्पू काव्यों पर एवं पूर्ण प्रभाव पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि नीति कथाओं पर पड़ा है। पद्यों के विविध रूपों के प्रयोग से ही चम्पू काव्यों का साम्य है।

अवदान शतक एवं जातकमाला में

ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में लिखा गया अवदान-शतक भी गद्य-पद्य मिश्रित शैली में है। दिव्यावदान और आर्यसूर की "जातकमाला"[1] तक आते आते, गद्य भाग कम होता गया है और पद्यों की बहुलता दिखाई पड़ने लगती है। जातक माला की रचना-सरणि भी, गद्य-पद्य मिश्रित चम्पूकाव्य सदृश ही है। इसमें उपदेश की प्रधानता एवं पृथक् पृथक् लघु जातक कथाओं के प्रस्तुतीकरण के कारण कथा के ही विशिष्ट गुण उपलब्ध होते हैं। चम्पूकाव्यों की तरह इसमें वर्णन का विस्तार भी नहीं है। "पालि के जातक की शैली वर्णन प्रधान है। घटनाओं को सीधे सादे शब्दों में कह डालना ही उनका उद्देश्य है, परन्तु गद्यपद्यात्मक-आख्यान-शैली में निबद्ध, जातक माला काव्यगुणों से ओतप्रोत है। इसकी शैली, प्रसादमयी-काव्य-शैली है। कथा के मार्मिक स्थानों का उद्घाटन इसकी विशिष्टता है। मानवहृदय पर आघात करनेवाले तथा आवर्जन करने वाले भावसन्तानों का भव्य-विवरण देने में आर्यसूर किसी कवि से पीछे नहीं हैं।"[2] मैत्रबल नृपति का रूप चित्रण उनकी कवित्व शक्ति का सुन्दर एवं प्रौढ़ रूप दिखलाता है—

कनकगिरिशिलाविशालवक्षाः शरदमलेन्दुमनोज्ञवक्त्रशोभः।
कनकपरिघपीनलम्बबाहुर्वृषभनिभेक्षणविक्रमो नरेन्द्रः॥ ११॥

—जातकमालायाः मैत्रीबल-ज ातकम्

---

१. आर्यसूर का समय लगभग तृतीय शताब्दी है क्योंकि ४३४ ई० में इनकी रचना कर्मफलसूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद हो चुका था। "जातकमाला" सं० बटुकनाथशास्त्री द्वि० सं० भूमिका, पृ० ३, उपाध्याय—पृ० २०१।

२. उपाध्याय—पृष्ठ २०३।

जातकमाला का गद्यभाग कथा के मुख्य स्रोत को अग्रसर करता है। गद्यभाग का उपयोग कथा सूत्र को सम्बद्ध रखने के लिये तथा पद्य का उपयोग भावावेग की अभिव्यक्ति, दानादि सत्कर्मों की महत्ता के वर्णन एवं उपदेशात्मक कथनों के लिये, अधिक हुआ है। उदाहरण के लिये "श्रेष्ठि जातक" में बोधिसत्त्व का निम्नलिखित कथन भावावेग को प्रस्तुत करने के लिये ही हुआ है—

बोधिसत्त्व उवाच—मार्ष, मर्षयतु भवान्।
कामं पतामि नरकं स्फुरदुग्रवह्नि-ज्वालावलीढशिथिलावनतेन मूर्ध्ना।
न त्वर्थिनां प्रणयदर्शितसौहृदानां सम्मानकालमवमाननया हरिष्ये[1] ॥ १८ ॥

जातक माला में प्रचार की भावना अवश्य है, परन्तु सरस प्रकृति के साथ रागात्मिकावृत्ति के सद्भाव के कारण, जातक माला एक श्लाघनीय कृति है। स्थान-स्थान पर नवीन उद्भावनाओं के दर्शन होते हैं—

निदाघकाले ज्वलितो विवस्वान्ज्वालाभिवर्षीव पटुश्च वायुः।
ज्वरातुरेवाशिशिरा च भूमिस्तोयानि रोषादिव शोषयन्ति ॥[2]

—मत्स्यजातकम् ४ ॥

गद्य भाग में भी स्थान-स्थान पर प्रकृति के रमणीय खण्डचित्र उपलब्ध होते हैं—

"क्रमेण चावजगाहिरे विविधमीनकुलविचरितमनिभृतजलकलकलाराव-मनिलबलविलासप्रविचलित-तरंग-बहुविधरत्नैर्भूमिविशेषैरर्पिततरंगफेनावलीकुसुम-दाम-विचित्रमसुरवास-भुजगभवनं दुरापपातालमप्रमेयतोयं महासमुद्रम् ॥"[3]

जातक माला के निर्माण के समय तक गद्य और पद्य दोनों ही काव्योपयोगी रूप ग्रहण करने लगे थे। रामायण और महाभारत जैसे महान ग्रन्थों के अतिरिक्त कालिदास, अश्वघोष एवं मातृचेट की कृतियाँ भी लिखी जा चुकी थीं। इनमें पद्य का अलंकृत और मनोरम रूप तो उपलब्ध हो ही जाता है, परन्तु गद्य भी उत्तरोत्तर अलंकृत एवं समस्त रूप ग्रहण कर, गद्य-काव्योपयोगी बनने लगा था। वाक्य-विस्तार के लिये अलंकृत, समविभक्तिक विशेषणों का उपयोग, आर्यसूर के समय में निश्चित रूप में होने लगा था—उदाहरण के लिये एक और गद्य खण्ड देखा जा सकता है—

---

१. जातक माला पृष्ठ २१।

२. वही पृष्ठ १०३।

३. सुर्पारक जातकम् पृ० ८७।

"इत्युक्त्वा दंष्ट्राकरालवदनानि दीप्त-पिंगल-केकर-रौद्रनयनानि स्फुटित-चिपिटविरूपघोणानि ज्वलदनल-कपिल-केश-श्मश्रूणि सजलजलधरान्धकाराणि विकृतभीषणानि स्वान्येव वपूंषि प्रत्यपद्यन्त ॥"[1]

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि पद्य भाग के समान गद्य भाग भी, सुश्लिष्ट, सुन्दर तथा सरस है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से जातक माला की कथायें भले ही प्राचीन हों, परन्तु संस्कृत की मिश्र शैली में प्रस्तुत इस रचना का महत्त्व इस दृष्टि से अधिक है कि इसने गद्य और पद्य को समानरूप से वर्णन का मुख्य आधार बनाकर, दोनों के प्रौढ़ एवं कवित्वपूर्ण रूप को उपस्थित कर भविष्य में लिखी जाने वाली मिश्र शैली की कृतियों का पथ-निर्देश किया है।

चम्पूकाव्येतर मिश्र शैली के रूप

मिश्र शैली के जनक एवं पोषक होते हुए भी ब्राह्मण-आख्यान एवं जातक ग्रन्थ, चम्पू काव्य के वास्तविक स्वरूप को नहीं व्यक्त करते। जातक की नीति या सदाचार पूर्ण कथाओं का विकास भिन्न दिशा में हुआ है और अपनी सरलता तथा प्रसादगुण सम्पन्नता का त्याग, उन्होंने कभी भी नहीं किया। ईस्वी सन् की तृतीय शताब्दी तक मिश्र-शैली के, चम्पू काव्येतर तीन रूप, पृथक्-पृथक् स्पष्ट हो चुके थे और उनके विकास की स्वतन्त्र दिशायें भी निर्धारित हो चुकी थीं। इन तीनों में पारस्परिक अन्तर भी बहुत है। ये तीन रूप निम्नलिखित हैं—१. नीति और उपदेशप्रद कथात्मक रूप, २. पौराणिक रूप, ३. दृश्य-काव्यात्मक रूप।

१. नीति और उपदेशप्रद कथात्मक रूप—इन कथाओं का सम्बन्ध सामान्य जनता से अधिक रहा है, अतः इनकी भाषा का गद्य-पद्य दोनों भाग सरल एवं प्रसाद गुण संपन्न रहा। इनके गद्यभाग में न तो समास की गाढबद्धता है, न अलंकारों का प्रचुर प्रयोग। इनके पद्यभाग में भी सूक्तियाँ एवं उपदेशात्मक पद्य ही अधिक हैं। उपनिषदों की आध्यात्मिक, जातकों की सदाचार और नैतिकतापूर्ण तथा पंचतन्त्र की नीति सम्बन्धी कथायें, मिश्र शैली के इस रूप के विकास की तीन अवस्थाओं की सूचक हैं। तीन विशिष्ट कालों की इन रचनाओं में युग-भावना के अनुसार आध्यात्म, धर्मप्रसार और राजनीति की प्रमुखता है; किन्तु तीनों की वर्णन शैली, गद्य और पद्य के स्वरूप, पद्य के प्रयोग की स्थितियों आदि में कोई अन्तर नहीं आया है। इतना ही नहीं, दण्डी, सुबन्धु एवं बाणभट्ट के

१. मैत्रीबल जातकम् पृ० ३१।

गद्यकाव्यों तथा सोमदेव, हरिचन्द, भोज आदि के चम्पू काव्यों के निर्माण के उपरान्त भी इस प्रकार की कथाओं ने अपना चीर नहीं बदला है। पंचतन्त्र के बाद भी इस शैली पर कथासरित्सागर, हितोपदेश, वैताल-पंचविंशतिका, द्वात्रिंशत्पुत्तलिका एवं शुक-सप्तति की रचना होती रही है।[1] कवित्वपूर्ण या अलंकृत गद्य-पद्य खण्डों का, इनमें सर्वथा अभाव नहीं है :—

"इत्थं गच्छति काले हेमन्तहस्तिनं प्रफुल्लकुन्दलतादन्तं मथिताम्बुजिनीवनं हत्वा लसत्पुष्पमंजरीकेसरावलिः चूतांकुरनखः कानने क्रीडन् मधुकेसरी समाजगाम। तस्मिंश्च काले वसन्तोत्सवं द्रष्टुं स राजा यशोधरः गजारूढः निर्जगाम।" (वेताल पंचविंशतिका–उन्मादिनीयशोधरोपाख्यानम्)[2]

"अस्ति समस्तवस्तुविस्मितदेवा गुणपराभूतपुरन्दरनिवासा उज्जयिनी नाम नगरी। तत्र सामन्त-सीमन्तिनी-सीमन्तसिन्दूरारुणितचरणकमलयुगलो भर्तृहरिर्नाम राजाऽभूत्॥" (सिंहासन द्वात्रिंशिका–भर्तृहरिवैराग्य कथा–पृष्ठ ३)

वामं सन्धिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामा विटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादांगुष्ठा लुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्याद्धामा स्थगयतितरां कान्तिभृत् पादयुग्मम्॥ २७॥[3]
(सिंहासन द्वात्रिंशिका, विक्रमादित्य सिंहासन प्राप्तिकथा)

परन्तु ये कतिपय गद्य-पद्य स्थल इन कृतियों में अपवाद स्वरूप आगये हैं। इन कतिपय पंक्तियों में भी ऐसा लगता है, जैसे लेखनी के स्वतन्त्र-प्रवाह पर उसी क्षण प्रतिबन्ध लगा दिया जाता हो, जब वह कवित्व प्रदर्शन की ओर उन्मुख होती हो। इस प्रतिबन्ध की सूचना, सोमदेव के निम्नलिखित पद्य से मिलती है—

औचित्यान्वयरक्षा च यथाशक्ति विधीयते।
कथारसविघातेन काव्यांशस्य च योजना॥[4]

---

१. इन ग्रन्थों का समय १०३७ ई० से लेकर १४०० ई० के मध्य में है।
२. वेतालपंचविंशतिका पृ० २६०—२६१–जम्बालदत्त, सं० जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता १९२५।
३. सि० द्वा० पृ० १६ उर्वशी के नृत्य की प्रशंसा–तुलनीय मालविकाग्निमित्र के 'नृत्यादस्याः स्थितमतितरा कान्तमृज्वायतार्धम्' से।
४. कथासरित्सागरकार सोमदेव—कीथ-पृष्ठ २७२।

काव्यांश मात्र की ही योजना नहीं, अपितु सम्पूर्ण गद्य-पद्य भाग को काव्यगुण सम्पन्न बनाना चम्पू काव्यों का उद्देश्य रहा है। अतः इस दृष्टि-कोण भेद के कारण ही दोनों मिश्र-शैली की धाराओं में पर्याप्त अन्तर आ गया है। "अस्ति उज्जयिनी नाम नगरी" या "तत्र भर्तृहरि नाम राजाऽभूत्" का विस्तृत एवं अलंकृत रूप किसी भी गद्य या चम्पू काव्य में देखा जा सकता है।[1] गद्य पद्य की मात्रा के सम्बन्ध में भी इन कथा ग्रन्थों में एकरूपता नहीं है। वेतालपंचविंशतिका में गद्य ही गद्य है। सिंहासन-द्वात्रिंशिका में, पद्य कम, गद्य भाग अधिक है। पंचतन्त्र में पद्य-गद्य का समान महत्त्व होते हुए भी, कथा का विकास गद्य में ही होता है। इन कथाग्रन्थों की मिश्र शैली के सर्वथा विपरीत बृहत्कथा पर आश्रित, बुद्धस्वामी कृत बृहत्कथा श्लोक संग्रह (८-६ वीं शती) क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा मंजरी (११ वीं० शती) तथा सोमदेवकृत कथासरित्सागर केवल पद्यबद्ध हैं। अतः कथासाहित्य की इस धारा के गद्य, पद्य और मिश्र शैली में पृथक्-पृथक् रूप की उपलब्धि, इसकी स्वतन्त्र सत्ता की ही परिचायक है। सरलता इनका मुख्य गुण, एवं उपदेश सहित मनोरंजन इनका विशिष्ट उद्देश्य, रहा है। वर्ण्यविषय की व्यापकता एवं पात्र-चयन की स्वच्छन्दता का आंशिक प्रभाव ही, चम्पू काव्यों में पाया जाता है। कथा-साहित्य का चम्पू काव्यों पर यह प्रभाव उसी रूप में पड़ा है, जिस रूप में पूर्ववर्ती साहित्य का परवर्ती साहित्य पर पड़ा करता है।

२. मिश्र शैली का पौराणिक रूप—वाल्मीकि कृत रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत, संस्कृत-साहित्य के मुख्य उपजीव्य ग्रन्थ रहे हैं। रामायण पद्यबद्ध महाकाव्य है। वह लौकिक संस्कृत के छन्दोबद्ध काव्य की सरल एवं प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा का प्रारम्भिक एवं प्रतिनिधि रूप प्रस्तुत करती है। "भाषा शैली और छन्द की दृष्टि से महाभारत के भिन्न-भिन्न भागों में बड़ा अन्तर है। वैदिक आर्ष प्रयोग, पौराणिक कथा शैली, अलंकृत काव्य शैली, गद्य, पद्य और गद्य-पद्य मिश्रित स्थल, वैदिक त्रिष्टुप् और लौकिक अनुष्टुप् छन्द आदि सभी अनूठी बातें महाभारत में पाई जाती हैं।"[2]

---

१. उदाहरणार्थ द्रष्टव्य—कादम्बरी का उज्जयिनी वर्णन पृष्ठ १५१, कादम्बरी पूर्वभाग—चोखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस १६५३, सं० कृष्णमोहन शास्त्री, अथवा नलचम्पू का आर्यावर्त वर्णन पृ० ८-६ चौखम्बा, बनारस।

२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा- पृष्ठ २३।

रामायण और महाभारत दोनों में ही अनेक उपाख्यान सम्मिलित हैं। महाभारत में रामायण की अपेक्षा उपाख्यानों की संख्या अधिक है। रामायण और महाभारत के न केवल उपाख्यान ही, अपितु समग्र रूप में इन दोनों की कथायें चम्पू काव्यों के निर्माण के लिये गृहीत हुई हैं। गङ्गावतरण की कथा रामायण और महाभारत दोनों में है, जिसपर चम्पू काव्य लिखा गया। नलदमयन्ती कथा, प्रह्लादोपाख्यान आदि महाभारत के वे लोकप्रिय आख्यान हैं, जिनपर कई चम्पू काव्य रचे गये। "श्रीमद्भागवत की रचना महाभारत से अर्वाचीन है।"[1] भागवत का चम्पू काव्यों के ऊपर बड़ा ही विशाल, मार्मिक और आभ्यन्तर प्रभाव पड़ा है। भागवत की कथा एवं उसके छोटे छोटे आख्यानों को लेकर, सर्वाधिक चम्पू काव्य निर्मित हुए हैं। हरिवंश पुराण भी चम्पू काव्यों का उपजीव्य रहा है, जो महाभारत का ही अंश समझा जाता है।

पुराणों में अनेक आख्यान ऐसे हैं जिनमें गद्य-चूर्णक उपलब्ध होते हैं। इनसे मिश्र शैली के तत्कालीन रूप पर प्रकाश पड़ता है। वैदिक गद्य तथा लौकिक संस्कृत के अलंकृत गद्य की मध्य-कड़ी के रूप में, ये पौराणिक-गद्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये गद्य किसी अंश तक आलंकारिक एवं पूर्ण-प्रासादिक हैं। उनमें गाढबन्धता की कमी अवश्य है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित गद्य-खण्ड देखा जा सकता है—

"यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं, तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किंचिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्षयामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणि-वरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम् ॥"

—विष्णु पुराण ४।१३।१४।

मिश्र शैली का पौराणिक रूप, भागवत के पंचम स्कन्ध में वर्णित अनेक चरित प्रस्तुत करते हैं। प्रियव्रत विजय, ऋषभ चरित, भरतानुचरित आदि मिश्र शैली का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं। इनमें गद्य का प्रयोग "सूत उवाच" या "शुक उवाच" तक ही सीमित नहीं है, अपितु कथा के विकास में भी उनका महत्त्वपूर्ण योग है। गद्य और पद्य का इनमें समान स्तर पर प्रयोग हुआ है। अलंकृत ललितपदावली का मनोहर रूप इसके गद्य भाग प्रस्तुत करते हैं—

"तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिन-

१. सं० सा० का इतिहास—पृष्ठ—६८।

मुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट।५। तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ६ ॥

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्यशैले
मायाऽसि कापि भगवत्परदेवतायाः ॥
विज्ये विभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे
किं वा मृगान् मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

(भागवत–आग्नीध्रवर्णन–५।२।५,६,७।)[1]

इस प्रकार के अनेक उदाहरण, भागवत से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ये गद्यखण्ड कथा की भूमिका, रूप चित्रण, कथा के विकास और उपसंहार आदि विविध रूपों में प्रयुक्त हुए हैं। केवल वर्णन-विस्तार के लिये, गद्य या पद्य भाग का प्रयोग न होने एवं कथा सूत्र को विच्छिन्न न होने देने की सजगता के कारण, केवल चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति का दर्शन इन उपाख्यानों में नहीं दिखाई पड़ता। चम्प-काव्यों के वस्तुग्रहण के मूलस्रोत होने के कारण, यह स्वाभाविक है कि चम्पूकाव्यकारों ने, वर्ण्य विषय के अतिरिक्त शैली से भी प्रेरणा ग्रहण की हो। स्थानीय देवताओं के पौराणिक महत्त्व को अंकित करने वाले, कतिपय चम्पू-काव्यों की कथा का आरंभ तो गद्य में हुआ है, पर रीति "एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः" से भिन्न नहीं है—

"अथ कदाचिदखिलजननयनानन्दसन्दोहसुलभनैपुण्ये पुण्येतरपुरुषाग्रगण्ये नैमिषारण्ये निखिलमुनिजनवरिष्ठमात्मनिष्ठं भगवन्तं वशिष्ठमन्तेवसन्तः तपस्यन्तः सर्वेऽपि मुनयो विनयोज्ज्वला एवमप्राक्षुः ॥"

(मार्गसहाय चम्पू–वेदपुरीश्वराध्वरिन्)[2]

पुराणों में वर्णित, ये चरित एवं उपाख्यान, अपनी प्रौढ़ता के कारण ही नीति एवं उपदेशप्रद कथाओं से भिन्न नहीं हैं, प्रत्युत पद्य के प्रयोग की स्थिति के कारण भी भिन्न हैं। नीति कथाओं में पद्यों का प्रयोग कथा

---

१. भागवत पत्रावली—काशी से प्रकाशित प्रयुक्त।

२. डिस्क्रिप्टिव कैटलाग नं० १२३३६, संस्कृत गवर्नमेंन्ट ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास–एस० कुप्पूस्वामी शास्त्री।

विकास की दृष्टि से कम एवं नैतिक उपदेश की दृष्टि से अधिक हुआ है। अतः पौराणिक आख्यानों में प्रयुक्त कथा को विकसित करने वाले पद्य-स्तर की दृष्टि से चम्पू काव्यों में प्रयुक्त, पद्यों के अधिक समीप हैं। चरितश्रवण का फल जिस प्रकार पुराणों में निर्दिष्ट मिलता है, उसी प्रकार कई चम्पू-काव्यों में भी। पूर्ववर्ती होने के कारण वर्ण्य विषय और शैली का प्रभाव, कथा साहित्य की अपेक्षा, पुराणों का चम्पूकाव्यों पर अधिक पड़ा है।[1]

३. मिश्र शैली का दृश्य काव्यात्मक रूप—

आचार्य दण्डी ने मिश्र काव्य के भव्य और दृश्य दो भेद कर, श्रव्य में चम्पू और दृश्य में रूपकों की गणना की है।[2] रूपक और उपरूपक मिश्र शैली में लिखे अवश्य जाते हैं, पर अंकों और दृश्यों में उनका विभाजन तथा उनकी अभिनयता, उनकी पृथक् धारा का ही निर्देश करते हैं। कालिदास के नाटकों के पूर्व के नाटक उपलब्ध नहीं होते। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की प्रौढ़ गद्य-पद्यावली की अपेक्षा, भास के ऊरुभंग, मध्यमव्यायोग आदि की भाषा सरल अवश्य है। सम्भव है वे पूर्व के लिखे गये हों। नाटकों में प्रयुक्त प्रौढ़ से प्रौढ एवं अलंकृत से अलंकृत गद्य भाग भी, चम्पू काव्यों के गद्य की अपेक्षा सरलतर ही हैं। अभिनेय होने के कारण नाटकों के गद्य में समासबद्धता अपेक्षित भी नहीं है। कथोपकथन की शैली, विश्व-गुणादर्श एवं गंगागुणादर्श आदि चम्पूकाव्यों में प्रयुक्त हुई है, पर वे पद्य बहुल हैं। उनका विभाजन भी अन्य चम्पू काव्यों की तरह हुआ है। वर्णन-प्रधान बना दिये जाने पर भी रूपक, चम्पूकाव्यों की श्रेणी में नहीं आ सकते, जब तक कि उनमें आमूल परिवर्तन न कर दिया जाय। रूपकों के निर्माण से बहुत पूर्व ही मिश्र शैली की उपलब्धि, इस बात की द्योतक है कि मिश्र काव्य के निर्माण में, रूपकों उपरूपकों आदि का प्रभाव नगण्य है। चम्पूकाव्यों का निर्माण उस समय आरंभ हुआ, जब गद्य और पद्यबद्ध काव्य अपनी प्रौढ़ता के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके थे।

मिश्र शैली का चम्पू काव्यात्मक रूप

मिश्र शैली की उपरोक्त तीन विधाओं से सर्वथा स्वतन्त्र, चम्पू काव्यधारा विकसित हुई है। हरिषेण की समुद्रगुप्त-प्रशस्ति, मिश्र काव्य का भव्य-रूप प्रस्तुत करती है। इससे स्पष्ट है कि चौथी शताब्दी तक,

१. द्रष्टव्य—जीवन्धर चम्पू।
२. „ —काव्यादर्श १।३१।

संस्कृत गद्य में समासबद्धता एवं अलंकारप्रियता का एक निश्चित स्वरूप सामने आ गया था। उपनिषदों के गद्य की ललित-धारा, सूत्रकाल की सिकता में समाहित हो गयी थी और पतंजलि के महाभाष्य की रचना के समय, गद्य के एक नवीन रूप का उद्भव होने लगा था। "पतंजलि के काल के लगभग हमें संस्कृत के काव्यमय गद्य का अवतार होता दीख जाता है। सरलता के बाद परिष्कार का युग आया ही करता है, किन्तु पतंजलि के बाद परिष्कार की प्रथा ने एक अजीब रुख पलटा और शनैः शनैः संस्कृत के खिलाड़ियों की प्रवृत्ति नियमन, तनूकरण और अपाकरण की ओर तेजी से बढ़ी। संस्कृत की शब्द राशि में से आख्यातों को निकाल, उनकी जगह नामिक अपनाये जाने लगे। विभक्तियाँ झाड़ दी गईं और उनका काम लम्बे-लम्बे समास देने लगे।"[1]

इस प्रक्रिया के विकास का स्पष्ट उदाहरण, प्रशस्तियों एवं शिलालेखों में ही दिखाई पड़ता है। वस्तुतः संस्कृत-साहित्य के गद्य एवं चम्पू-काव्यों में प्रयुक्त, गद्य खण्डों में वाक्य विस्तार की एक निश्चित सरणि दिखाई पड़ती है। सरल और सामान्य वाक्य से पचासों पंक्तियों के एक वाक्य बनाने की इस पद्धति के निम्नलिखित चार सोपान हैं—

१—विशेषण, समास एवं अलंकार विहीन सरल वाक्य
२—दो शब्दों के समास युक्त विशेषणों को जोड़कर वाक्य विस्तार
३—दो पदों से अधिक पदों को समास में बाँधकर एवं उन्हें विशेषण बनाकर
४—समस्त पदावली में अलंकारों को अन्तर्भूत कर अथवा मालोपमा, उत्प्रेक्षावली और रूपकादि का प्रयोग कर वाक्य विस्तार

प्रथम प्रकार का वाक्य सामान्य बोलचाल में व्यवहृत होता है। महाभाष्य में सामान्यतः ऐसे वाक्य अधिक प्रयुक्त हुए हैं। द्वितीय प्रकार के वाक्य का प्रयोग वैदिक काल से ही हो रहा था। "देवता-द्वन्द और बहुव्रीहि तो ऋग्वेद में भी मिलते हैं और पर्याप्त संख्या में मिलते हैं, किन्तु दो देवताओं के द्वन्द के रूप में और दो शब्दों के बहुव्रीहि के रूप में।"[2] वाक्य के ये दोनों रूप उपनिषद्काल[3] से होते हुए पतंजलि के समय तक साहित्य में भी प्रयुक्त होते रहे। प्रशस्तियों में भी इन्हीं दो प्रकार के वाक्य प्रयुक्त हुए हैं।

---

१. डा० सूर्यकान्त, हीरक जयन्ती ग्रन्थ—पृष्ठ १३३-१३४ पर।
२. डा० सूर्यकान्त, हीरक जयन्ती अंक पृष्ठ १३४।
३. कठोपनिषद् १।१।३, पूर्वोद्धृत—पीतोदका जग्धतृणा…।

ईसा पूर्व का "माध्यमिका के नारायणवाटका" से प्राप्त निम्नलिखित लेख भी द्रष्टव्य है—

"(कारितोऽयं राजा भागव) तेन गाजायनेन पाराशरीपुत्रेण सर्वतातेन अश्वमेधयाजिना भगवद्भ्यां संकर्षण-वासुदेवाभ्यां अनिहताभ्यां सर्वेश्वराभ्यां पूजाशिलाप्राकारो नारायणवाटका।"[१]

बृहत्समस्त पदावली के द्वारा वाक्य विस्तार में विशेषणों का आकार ही बढ़ा है। अनुप्रास की छटा उत्पन्न करने वाले विविध पदों को एक ही समास में पिरोकर विशेषणों की एक लम्बी शृंखला प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति, ईसा की आरंभिक शताब्दियों में पूर्णरूप से दृष्टिगोचर होती है। ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी में अंकित, रुद्रदामन के गिरनार वाले शिलालेख में इस प्रवृत्ति का स्पष्ट दर्शन होता है—

"कनकरजतवज्रवैडूर्यरत्नोपचयविष्यन्दमानकोशेन स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्द-समयोदारालंकृतगद्य-पद्य-(काव्यविधानप्रवीणे–) न प्रमाणमानोन्मानस्वरगतिवर्ण-सारसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यंजनैरुपेतकान्तमूर्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना....सेतुं विधाय सर्वतटे....सुदर्शनतरं कारितम्।"[२]

द्वितीय शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक, गद्य को उत्तरोत्तर गाढबद्ध एवं अलंकृत बनाने की प्रवृत्ति विकसित होती गई है। प्राप्त शिलालेखों द्वारा इस प्रवृत्ति का दर्शन होता है। गद्य हो या पद्य दोनों ही इस अलंकरण की ओर उन्मुख हुये हैं। पतंजलि के गद्य और इन प्रशस्तियों के गद्य में, आकाश-पाताल का अन्तर उपस्थित हो गया है। गिरनार के शिलालेख एवं दण्डी और बाण की अलंकृत प्रौढ़ गद्यावली के मध्य की गद्य स्थिति को सूचित करने वाली, हरिषेण की समुद्रगुप्त प्रशस्ति (लगभग

---

१. यह पूजा शिला प्राकार और नारायण वाटका, सर्वेश्वर अपराजित भगवान् संकर्षण और वासुदेव के लिये, अश्वमेधयाजी भागवत राजा सर्वतात ने जो पाराशरी के पुत्र और गाजायन गोत्र में उत्पन्न हुए थे, बनवाया। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१४ अंक २-३ पृष्ठ ११७ पर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल।

२. उत्कीर्ण लेखांजलि :–सं० जयचन्द्र विद्यालंकार, २००८ वि०, पृ० ११, १२, १३, मूल बरजेस। वेस्ट इंडिया पृ० ११८ अथवा किलहौर्न एपीग्रेफिका इंडिका ८।३६।

३६० ई० की) है। गद्य के अलंकृत एवं समस्त रूप को तो इसमें देखा ही जा सकता है, यह प्रशस्ति चम्पू-काव्य शैली का भी प्रथम एवं अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करती है। चम्पू-काव्य की अन्य कतिपय विशेषतायें भी इसमें सामने आती हैं जो गद्यकाव्य अथवा पद्यकाव्य से स्वतन्त्र उसके विकास की सूचक हैं।

इस प्रशस्ति के आरंभ में स्रग्धरा तथा शार्दूल विक्रीडित जैसे लम्बे-लम्बे आठ छन्द हैं जिनमें समुद्रगुप्त की कमनीय कीर्ति वर्णित है। इसके अनन्तर समस्त-पदावली-सम्पन्न, एक बृहत्-गद्य-खण्ड है, जिसमें समुद्रगुप्त के दिग्विजय का प्रशस्त वर्णन किया गया है। गद्यखण्ड के बाद एक सुन्दर पृथ्वी छन्द में गुप्त नरेश की विमल कीर्ति द्वारा तीनों लोकों को पवित्र करने की बात लिखी गई है। प्रशस्ति के अन्त में कवि ने अपना परिचय भी प्रस्तुत किया है। आरम्भिक पद्य-भाग खंडित बहुत है, फिर भी प्रशस्ति का कतिपय अंश उसकी विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है—

"आर्यो हीत्युपगुह्यभावपिशुनैरुत्कर्णितै रोमभिः
सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्यकुलजम्लानाननोद्वीक्षितः।
स्नेहव्यालुलितेन बाष्पगुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा
यः पित्राभिहितो निरीक्ष्य निखिलं पाह्येवमुर्वीमिति ॥४॥

तस्य विविधसमरशतावतरणदक्षस्य स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धोः पराक्रमांकस्य परशुशरशंकुशक्तिप्रासासितोमरभिन्दिपालनाराचवैतस्तिकाद्यनेकप्रहरणविरूढाकुलव्रणशतांकशोभासमुदयोपचितकान्ततरवर्ष्मणः कौसलकमहेन्द्रमाहाकान्तारकव्याघ्रराजकौरालकमण्टराजपैष्टपुरकमहेन्द्रगिरिकौट्टूरकस्वामिदत्तैरण्डपल्लकदमनकांचेयकविष्णुगोपावमुक्तकनीलराजवैंगेयकहस्तिवर्मपालक्ककोग्रसेनदेवराष्ट्रककुबेरकौस्थलपुरकधनंजयप्रभृतिसर्वदक्षिणापथराजग्रहणमोक्षानुग्रहजनितप्रतापोन्मिश्रमहाभाग्यस्य........सुचरितशतालंकृतानेकगुणगणोत्सिक्तिभिश्चरणतलप्रमृष्टान्यनरपतिकीर्तेः साध्वसाधूदयप्रलयहेतुपुरुषस्याचिन्त्यस्य, कृपणदीनानाथातुरजनोद्धरणसमन्त्रदीक्षाभ्युपगतमनसः समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्य........महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य...स्तम्भः यस्य,

प्रदानभुजविक्रमप्रशमशास्त्रवाक्योदयै-
रुपर्युपरि संचयोच्छ्रितमनेकमार्गं यशः।
पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्जटान्तर्गुहा-
निरोधपरिमोक्षशीघ्रमिव पाण्डु गांगं पयः ॥६॥

एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपादानां दासस्य समीपपरिसर्पणानुग्रहोन्मीलितमतेः खाद्यटपाकिकस्य महादण्डनायकध्रुवभूतिपुत्रस्य सान्धि-विग्रहिककुमारामात्यमहादण्डनायकहरिषेणस्य सर्वभूतहितसुखायास्तु। अनुष्ठितं च परमभट्टारकपादानुध्यातेन महादण्डनायकतिलकभट्टेन ॥"[१]

न केवल शैली की दृष्टि से, अपितु वर्णन-विस्तार की दृष्टि से भी यह चम्पू काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करनेवाली प्रशस्ति है। श्लोकों में वैदर्भी रीति का आश्रय लिया गया है, परन्तु गद्य-भाग में गाढबन्धता लाने के लिए "ओजस्समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्" का पूर्ण अनुसरण कर हरिषेण ने समासबहुलता की पराकाष्ठा-सी कर दी है। अनुप्रास, उपमा और रूपक का प्रयोग होते हुए भी, बाण जैसी उत्प्रेक्षावली का दर्शन इसमें नहीं होता। कला पक्ष की दृष्टि से ही नहीं भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से भी इसमें पर्याप्त आकर्षण है। समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी निर्वाचित होने पर वृद्धचन्द्रगुप्त, सभासदों एवं तुल्य-कुलज-राजकुमारों की मनोदशाओं का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक-वर्णन, प्रथम उद्धृत-पद्य में प्रस्तुत किया गया है। पद्यभाग की शैली तो कालिदास की शैली से मिलती ही है। "सर्वदक्षिणापथ राज ग्रहण........" में कालिदास के निम्नलिखित श्लोक से भाव साम्य भी है—

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥ रघुवंश ४। ५॥

"हरिषेण का गद्य-गुच्छ, स्पष्ट रूप से शब्दाडम्बर-बहुला-रचना-शैली का राजदूत है। आगे चलकर दण्डी, सुबंधु तथा बाण की प्रौढ़ रचनाओं में यही शैली, परिनिष्ठा लाभ करती है।"[२]

ईसवी सन् की चौथी पांचवीं शताब्दी में काव्य की—गद्यमयी-पद्यमयी और गद्य-पद्यमयी-त्रिविध धारायें, प्रस्तर—पृष्ठों पर अपनी छाप अंकित कर रही थीं। चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य ने उदयगिरि का गुहालेख वीरसेन द्वारा लिखवाया था। वत्सभट्टि की (४७३ ई०) मन्दसोर प्रशस्ति तो एक पूरा काव्य ही है। मौखरी नरेश ईशानवर्मा के आश्रित कवि रविशांति

---

१. ट्वेन्टी फाइव संस्कृत इंस्क्रिप्शन्स—जे० गोंडा-लाईडन, ई० जी० ब्रिल १९४८, पृ० १०-१३ टेक्स्ट पब्लिश्ड : फ्लीट, कोरप्स इंसक्रिप्शन, इंडिका, ३, पृ० ६।

२. डा० सूर्यकान्त, हीरकजयन्ती ग्रन्थ, पृ० १३४।

(५५५ ई०) की हरहा प्रशस्ति भी काव्य का भव्यतम रूप प्रस्तुत करती है। ये प्रशस्तियां पद्यबद्ध हैं। उस समय गद्य, पद्य या मिश्र शैली को अपनाने में कवि की रुचि ही प्रधान थी। गद्य या पद्य लिखने की अक्षमता के कारण किसी कवि ने पद्य या गद्य शैली का अवलंबन नहीं किया। उस समय गद्य के सदृश ही, पद्य काव्यों में भी गाढ़बन्धता और अलंकरण का कार्य हो रहा था। पद्य और गद्य के स्वरूप में बहुत अधिक अन्तर था भी नहीं, अन्वय के लिये छन्द के चारों चरणों में चक्कर काटने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी। उदाहरण के लिये मन्दसोर और हरहा प्रशस्ति के निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य हैं, जो सीधे लिख दिये जाने पर गद्य-काव्य के रूप में परिवर्तित हो जायेंगे—

"स्वपुष्पभारावनतैर्नगेन्द्रैर्मदप्रगल्भालिकुलस्वनैश्च
अजस्रगाभिश्च पुरांगनाभिर्वनानि यस्मिन्समलंकृतानि ॥ ६ ॥
चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुलोपमानानि गृहाणि यत्र ॥ १० ॥"

(दशपुर पट्टवायश्रेण्याः–शिलालेख सं० ५२६)[1]

हरहा प्रशस्ति के निम्नलिखित पद्य की ऊपर की दो पंक्तियां विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—

"लोकानामुपकारिणा रिपुकुमुद्व्यालुप्तकान्तिश्रिया,
मित्रास्याम्बुरुहाकरद्युतिकृता भूरिप्रतापत्विषा ।
येनाच्छादितसत्पथं कलियुगध्वान्ते निमग्नं जगत्,
सूर्येणेव समुद्यता कृतमिदं भूयः प्रवृत्तक्रियम् ॥ १२ ॥"

ऐसी ही पंक्तियां गद्यखण्ड का भाग बनने पर वृत्तगन्धिता उत्पन्न करती हैं। इस काल के शिलालेखों का वर्ण्य-विषय राजाओं का विजय-वर्णन, उनके गुण-गौरव-गान, दानशीलता की प्रशंसा या नगरों का अतिशयोक्तिपूर्ण अंकन, वही रहा है। मन्दसोर प्रशस्ति के ऊपर उद्धृत पद, दशपुर नगर का ही वर्णन करते हैं।

शिलालेखों में काव्य की धारा समान रूप से उत्तर और दक्षिण भारत में चल रही थीं। राजाओं की यशस्तुति इस काल में समानरूप से समान विषयों को आधार बनाकर सारे देश में हो रही थी। कांचीपुरम् के कैलाश-

---

१. ट्वेन्टी फाइव इंसक्रिपशन्स—३, पृष्ठ १४ (फ्लीट ओ० सी० ३, पृ० ८१) कालिदास के "विद्युत्वन्तं" से तुलनीय।

नाथ मन्दिर के बाहर उत्कीर्ण राजसिंहेश्वर की (सन् ५५० के लगभग) स्तुति गाने वाले निम्नलिखित पदों का वर्ण्य विषय वही है—

नयोर्जितपराक्रमार्जितमनेन सर्वं जगत्
नृपेण हतकंटकं प्रणतराजकं भुञ्जता ।
यशः सदृशमामनोभवनमेतदुत्थापितं
हरस्य हरहासरूपमतिमानमत्यद्भुतम् ।। ६ ।।
श्रीराजसिंहपल्लवेश्वरे नागेन्द्रभोगभीमभूषणः ।
देवासुरेन्द्रवृन्दवन्दितस्थाने स्थितोऽस्तु शंकरश्चिरम् ।। १० ।।[१]

त्रिशिरापल्ली के एक गुहालेख में भी पल्लवनरेश की ऐसी ही प्रशंसा है—

कावीरीन्नयनाभिराममसलिलामाराममालाधरां
देवो वीक्ष्य नदीप्रियः प्रियगुणामप्येष रज्येदिति ।
साशंका गिरिकन्यका पितृकुलं हित्वेह मन्ये गिरौ
नित्यं तिष्ठति पल्लवस्य दयितामेताम्ब्रुवाणां नदीम् ।।[२]

नालंदा से प्राप्त यशोवर्मा के एक शिलालेख में, नालन्दा का भी भव्य एवं मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया गया है—

यासावूर्जितवैरिभूप्रविगलद्दानाम्बुपानोल्लसन्
माद्यद्भृङ्गकरीन्द्रकुम्भदलनप्राप्तश्रियाम्भूभुजाम् ।
नालन्दा हसतीव सर्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरं स्फुर-
च्चैत्यांशुप्रकरैस्सदागमकलाविख्यातविद्वज्जना ।।
यस्यामम्बुधरावलेहिशिखरश्रेणी विहारावली
मालेवोर्ध्वविराजिनो विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुवः ।
नानारत्नमयूखजालखचितप्रासाददेवालया
सद्विद्याधरसंघरम्यवसतिर्धत्ते सुमेरोः श्रियम् ।।[३]

---

१. ट्वेन्टी फाइव इंसक्रिप्शन्स ४, पृ० २० (आर्केलौजीकल सर्वे आफ इंडिया, साउथ इंडियन इंस्क्रिप्शन्स, सं० १, २४ पृ० १२ ।

२. ट्वेन्टी फाइव इंस्क्रिप्शन्स ५, पृ० २० ।

३. डा० हीरानन्द शास्त्री की "नालन्दा" से पृष्ठ ६ । शास्त्रीजी के मत से यह लेख छठी शताब्दी का है । यदि यह यशोवर्मा कन्नौज वाले हों, तो इस लेख का समय आठवीं सदी होगा ।

वर्ण्य विषय के सादृश्य के लिये, छठी शताब्दी के प्राप्त अन्य शिलालेख, देखे जा सकते हैं।[१] इस प्रकार छठी शताब्दी तक, गद्य-पद्य या मिश्र शैली में प्रशस्ति गान होता रहा। समासबद्धता के साथ अलंकारप्रियता बढ़ती रही। "इन प्रशस्तियों में आश्रयदाता सामंत को किसी ऐतिह्य प्रसिद्ध-गाथा-नायक के समान दिव्य एवं चमत्कारी गुणों से अलंकृत करके उसका यशोगान किया जाता था।" "इन्हीं प्रशस्तियों से रूढिबद्ध काव्यों के घटकतत्त्व, कथा-साहित्य में अवतीर्ण हुए।"[२] गद्य की प्रौढ़ता इस चरमसीमा पर पहुँच चुकी थी कि दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट अपने गद्य-काव्य का निर्माण करने में सफल हो सके। "दण्डी स्पष्ट रूप से इस सिद्धान्त का नेतृत्व कर रहा है कि काव्य में कथा संवाहन केवल एक गौण अस्थिपंजर है और काव्य की वास्तविक सारवस्तु वर्णन की प्ररोचना है।"[३]

"परिवर्तन के इसी युग में अलंकारशास्त्रियों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि गद्य-काव्य का उत्कर्ष, शब्दविन्यास के सौष्ठव, वर्णन की प्ररोचना, अलंकारों की छटा, दीर्घ और समस्त-पदों की निवेशचातुरी, वाक्यों के संहत-विस्तार और ध्वनि तथा ध्वन्य के साटोप-स्वनन और उत्थान-पतन में निगूढ़ है। सुबन्धु की यह प्रतिज्ञा "प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवैदग्ध्यनिधि प्रबन्धम्" उनकी प्रवृत्ति को स्पष्ट कर देती है, जो इस बात की घोषणा करती है कि सुबंधु का ध्येय, वस्तु-तंतु को लेकर उसके सहारे अलंकारों का झिलमिलाता थान प्रस्तुत करना था। बाण ने अपनी कादम्बरी में संस्कृत-गद्य को उत्कर्ष की उस पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया जहां वाणी और अर्थ मिलकर एक हो जाते हैं।[४] बाण ने गद्य के क्षेत्र में उन्मेष और कला का वही निरेक पा लिया है, जो पद्य के क्षेत्र में कालिदास को उपलब्ध हुआ था।[५] दण्डी के दशकुमार चरित एवं बाण की कादम्बरी के उद्धृत निम्नलिखित स्थल शिलालेखों और प्रशस्तियों के ही विकसित रूप को प्रस्तुत करते हैं—

---

१. उत्कीर्ण लेखांजलि-दशपुरे यशोधर्म राजकालिको लेखः, सं० ५८६, पृ० ४१–५५।
२. हीरक जयन्तीग्रन्थ, डा० सूर्यकान्त पृष्ठ १३४।
३. वही।
४. वही पृष्ठ १३७।
५. वही पृष्ठ १४१।

"अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारितमणिगणादिवस्तुजातव्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी। तत्र वीरभटपटलोत्तरंगतुरंगकुंजरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डमण्डलः पुरन्दरपुरांगणविहरणपरायणगीर्वाणतरुणगणिकागणजेगीयमानयाऽतिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासनोकाशमूर्त्या रचितदिगन्तरालपूर्त्या कार्त्याभितः सुरभितः स्वर्लोकशिखरोरुरुचिरत्नरत्नाकरवेलामेखलायितधरणी-रमणी-सौभाग्यभोगभाग्यवान् अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्याभासुरभूसुरनिकरः विरचितारातिसन्तापेन प्रतापेन सततुलितवियन्मध्यहंसो राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव॥'

—दशकुमार चरित पृष्ठ ४–७ प्रथम उ०

"अस्ति सकलत्रिभुवनललामभूता महाविपणिपथैरुपशोभिता मथनोद्धृतदुग्धधवलितमन्दरद्युतिभिः कनकमयामलकलशशिखरैरनिलदोलायितसितध्वजैरुपरि पतदभ्रगंगैरिव सशैलेव प्रासादैः विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।"

तस्या चैवंविधायां नगर्यां नल-नहुष-ययातिधुन्धुमारभरतभगीरथदशरथप्रतिमः भुजबलार्जितभूमण्डलः फलितशक्तित्रयः मतिमान् उत्साहसंपन्नः नीतिशास्त्राखिन्नबुद्धिः अतीतधर्मशास्त्रः....निर्म्मलस्यापि मलिनीकृतारातिवनितामुखकमलद्युतेः. अवतार इव धर्मस्य प्रतिनिधिरिव पुरुषोत्तमस्य परिहृतप्रजापीडो राजा तारापीडो नामाभूत्।"

(कादम्बरी, पृष्ठ-१५२–१६७, उज्जयिनी एवं तारापीड वर्णन)

गद्य के अलंकरण का चरम उत्कर्ष, इन गद्य काव्यों में दिखाई पड़ता है। हरिषेण की प्रशस्ति में चम्पू-काव्य का रूप निर्दिष्ट होने पर भी गद्य-काव्यों की तरह कोई भी ग्रन्थाकार चम्पू-काव्य नहीं लिखा गया। दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से पूर्व, चम्पू-काव्य अपने वास्तविक रूप को प्राप्त ही नहीं कर सका, अन्यथा जिस प्रकार साहित्य की अन्य विधायें अपना पथ-निर्दिष्ट कर आगे बढ़ रही थीं, चम्पू-काव्य भी सामने आते। कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि कुमारदास, माघ और रत्नाकर दसवीं शताब्दी के बहुत पूर्व ही अपने अमर-महाकाव्यों की रचना कर चुके थे। कालिदास और अश्वघोष सहित हर्ष, भवभूति, विशाखदत्त, भट्ट नारायण, मुरारि और शक्तिभद्र के रूपक प्रकाश में आचुके थे। दण्डी, बाण और सुबन्धु की प्रौढ़ लेखनी, क्रमशः दशकुमार चरित, कादम्बरी और वासवदत्ता में अपना चमत्कार दिखा चुकी थी। मेघदूत, शृंगार तिलक, घटकर्पर,

गाथासप्तशती, श्रृंगार, वैराग्य एवं नीतिशतक और अमरुक शतक, जैसे गेय-मुक्तक और लघुकाव्य अपनी रमणीयता से पाठकों को आकृष्ट कर चुके थे। परन्तु किसी भी कवि ने संस्कृत में चम्पू-काव्य नहीं प्रस्तुत किया। दण्डी, व भामह, उद्भट, वामन, आनन्दवर्धनाचार्य और राजशेखर जैसे, काव्य-मीमांसक काव्य के विविध अंगों की विवेचना भी कर चुके थे, पर न तो किसी ने चम्पू-काव्य लिखा था और न ही किसी आचार्य ने उसका सांगोपांग विवेचन ही किया। दण्डी ने "गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते" कहकर यह स्पष्ट संकेत किया है कि, चम्पू-काव्य की रचना अभी प्रयोगावस्था में थी तथा उसके सम्बन्ध में, उसकी विशेषताओं के संबंध में, आचार्यों की कोई निश्चित धारणा नहीं बन पाई थी। जितना शीघ्र गद्यकाव्य शिलालेखों एवं प्रशस्तियों का आश्रय छोड़, काव्य की एक विशिष्ट धारा का सूचक बन गया, उतना शीघ्र चम्पू-काव्य-शैली, शिलालेखों की गोद न छोड़ सकी। फलस्वरूप चम्पू-काव्यों का प्रयोग सातवीं शताब्दी के उपरान्त भी प्रशस्तियों और शिलालेखों में चलता रहा।

दक्षिण भारत की भाषाओं में मिश्र तथा अलंकृत शैली—

जिस समय शिलाओं पर चम्पू-काव्य का प्रयोग हो रहा था, उस समय दक्षिण भारत की भाषाओं में चम्पू-काव्यों का सृजन भी आरंभ हो चुका था। संस्कृत के चम्पू-काव्यों के सृजन का भी मुख्य एवं उर्वर क्षेत्र, दक्षिण भारत रहा है। उपलब्ध चम्पू काव्यों में से अधिकांश उसी प्रदेश में लिखे गये। उत्तरी भारत में निर्मित जो चम्पू-काव्य मिलते हैं, वे अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। तमिल, कन्नड़ एवं मलयालम् भाषाओं के प्राचीन-साहित्य के साथ, संस्कृत साहित्य की इस धारा का मधुर-संगम भी हुआ है और पारस्परिक आदान प्रदान भी।

तमिल साहित्य के संघ काल (ई० पू० १५० से प्रथम शताब्दी तक) के जो काव्यग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें "नेडुन्दोगे" प्रथम भाग में चार सौ एक तमिल कवितायें संकलित हैं। "मणिमिडैपवळम्" (मणिप्रवाल) इसका एक भाग है। उत्तरवर्ती काल में "मणिप्रवाल"[१] एक विशिष्ट

१. ईसा की नवीं शती में जैन आचार्यों ने अनेक गद्यग्रन्थ-मणिप्रवाल-तमिल व संस्कृत मिश्रित भाषा में लिखे, जिनमें 'श्री पुराणम्' और 'गद्य चिन्तामणि' उल्लेखनीय हैं। तमिल और उसका साहित्य, पृ० ८३, ले० श्रीपूर्णसोमसुन्दरम्, दोनों ग्रन्थों का समय ईसा की नवीं शती है।

शैली का द्योतक बन गया। तमिल, कन्नड़ या मलयालम् की कुछ शब्दावली लेकर, इसमें संस्कृत की प्रचुर-पदावली का प्रयोग होता था। मणिप्रवाली में संस्कृत का, पदावली भाग ही नहीं, उसकी पद्य-शैली में छन्द भी संस्कृत के प्रयुक्त हुये हैं। मणिप्रवाल शैली में रचनायें शिलालेखों के क्षेत्र में भी दिखाई पड़ती हैं। उदाहरण के लिये संस्कृत और कन्नड़ की समान पदावली वाला यह निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है—

> "सुरचापं बोले विद्युल्लतेगल तेखोलमंजु वोल्तोरि बेगं।
> पिरिंगु श्रीरूपलीलाधनविभवमहाराशि गल्निल्ल वागुगं।
> परमार्त्थं मेच्चेनानीधरणि युलिरवानेन्दु संन्यासनं गे-
> य्युदुरु सत्वन् नन्दिसेन प्रवर मुनिवरन्देव लोकक्के सन्दान् ॥

रूप, लीला धन, विभव, इन्द्रधनुष, बिजली व ओस बिन्दु के समान, क्षणिक हैं, ऐसा विचार कर नन्दिसेन मुनि ने संन्यास धार, सुरलोक को प्रस्थान किया।[१]

केरल भाषा (मलयालम्) के साहित्य पर द्रविड़ प्रभावकाल, आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक और संस्कृत प्रभावकाल, चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक माना जाता है।[२] इस काल में अनेक प्रकार के गद्य-पद्य ग्रन्थों का निर्माण हुआ। कैरली का प्रथम व्याकरण "लीला तिलकम्" है। यह ग्रन्थ संस्कृत सूत्रों में है और मणिप्रवाल-लक्षणम्, मणिप्रवाल विभाग, व्याकरण नियम, काव्यदोष, काव्यगुण, शब्दालंकार और रस आदि. आठ परिच्छेदों में पूर्ण किया गया है।[३] इस विभाजन से स्पष्ट है कि मणिप्रवाल शैली उस समय तक, अर्थात् द्रविड़ प्रभावकाल के आरम्भ तक पर्यात लोकप्रिय हो चुकी थी और दक्षिण की तीनों प्रमुख, तमिल, कन्नड़ और मलयालम् में उसका प्रयोग होने लगा था। "लीला तिलक" में मणिप्रवाल की व्याख्या करते हुये आचार्य ने बताया है कि संस्कृत विभक्त्यन्त पदों का प्रयोग जितना अधिक होता है, उतना

---

१. जैन शिलालेख संग्रह—पृ० ११। यह शिलालेख लगभग शक संवत् ६२२, सातवीं सदी का है।

२. कैरली साहित्य दर्शन—पृ० १८, रत्नमयी दीक्षित-स० सा० मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम सं० १९५९।

३. कैरली साहित्य दर्शन पृ० ३३, रचयिता के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसका अनुमानित समय छठी शताब्दी माना गया है।

हो कविता का महत्त्व घट जाता है। उन्होंने यह भी निर्देश किया है कि मलयालम् शब्दों के साथ केवल उन्हीं संस्कृत शब्दों को स्वीकार किया जाय जो उनके साथ सरलता से मिल जाँय।"[१] कैरली भाषा में मणिप्रवाल शैली का उपयोग, चौदहवीं सदी तक निरन्तर होता रहा। संस्कृत पदावली-बहुला, मणिप्रवाल शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बहुशोऽप्युपदेशेषु यथा मां नोक्कमाणया
हस्तेन स्नस्त-शूर्पेण कृतमाकाश चेरितम् ॥ तोलकवि ॥[२]

कैरली भाषा में अनेक चम्पू-काव्यों का निर्माण संस्कृत प्रभावकाल में हुआ है। जिनकी गद्यपद्यमयी भाषा, मणिप्रवाल शैली में ही लिखी गयी है।[३] इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि तमिल में ही सर्वप्रथम इस शैली का प्रचार हुआ और उसने अपनी पार्श्ववर्तिनी सहभाषाओं को भी प्रभावित किया। तमिल-साहित्य की विविध प्रवृत्तियों को दक्षिण की अन्य भाषाओं ने भी अपनाया।

"तेलुगु साहित्य, तमिल जितना प्राचीन नहीं है; उसके साहित्य का आरंभ ५वीं शताब्दी के बाद ही होता है। ग्यारहवीं शताब्दी से तेलुगु का पुराणयुग आरम्भ हो जाता है और पुराणयुग की तेलुगु कृतियाँ संस्कृत साहित्य से पूर्णतः प्रभावित हैं।"[४] १०२० ई० में विद्यमान, नन्नय भट्ट द्वारा प्रयुक्त एक गद्यखण्ड द्रष्टव्य है—

"शारदरात्रुलुज्ज्वल लसत्तरतारकहार पंक्तुलन जारु तरंबुलय्ये विकसन्नव कैरवगन्धबन्धुरोदारसमीरसौरभमुदाल्चि सुधांशु विकीर्यमाण कर्पूरपराग पाण्डु-रुचिपूरमुलम्बरपूरितम्मुलै ॥"

अर्थात् शरद की रातें नक्षत्र रूपी हार पंक्तियों से उज्ज्वल हो रम्य हुई। विकसित कल्हारों की सुगन्ध से भरा हुआ समीर विचरने लगा। चांदनी की छटा ऐसी थी मानो चन्द्र अपनी किरणों से कर्पूर रज छिटका रहा हो।[५]

---

१. वहीं, पृष्ठ ४१।
२. वहीं, पृष्ठ ३८।
३. द्रष्टव्य—पृष्ठ ४६ से ५७ तक।
४. तेलुगु और उसका साहित्य पृष्ठ २०-२६ द्रष्टव्य। ले० हनुमच्छास्त्री अयाचित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली—प्रथम संस्करण।
५. तेलुगु और उसका साहित्य २०-२१।

कन्नड़, तमिल और मलयालम् के उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि "मणिमिडैपवळम" (मणिप्रवाल) का व्यापक प्रभाव दक्षिण की अन्य भाषाओं पर पड़ा और तमिल की रचनायें ही अग्रवर्तिनी रहीं।

न केवल शैली की दृष्टि से, अपितु वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी संघ एवं संघोत्तर काल की तमिल कृतियों ने संस्कृत के साथ-साथ अपना महत्त्व अंकित किया है। "एट्टुत्तोगे" (आठ संग्रह) के द्वितीय संग्रह का एक भाग "तिरुमुरुवगार्रुप्पडे" है। इसमें भगवान मुरुगन (कार्तिकेय) की स्तुति की गयी है। महाकवि नक्कीरर द्वारा रचित इस काव्य में उन विभिन्न तीर्थस्थानों का अत्यन्त रोचक वर्णन किया गया है, जहाँ कार्तिकेय के मन्दिर बने हुए हैं। शैव संप्रदाय के लोग इस काव्य को बहुत ही महत्त्व-पूर्ण धर्मग्रन्थ मानते हैं।[1] संस्कृत के कई चम्पू काव्य, विविध तीर्थ स्थानों का वर्णन करते हैं।

तमिल साहित्य का संघोत्तर काल, ईसा की द्वितीय शताब्दी से चतुर्थ शती तक माना जाता है। इस काल की रचनाओं में "शिलप्पदिकारम्"[2] नाटकीय शैली में रचित प्रथम मौलिक वृहत् काव्य है। कण्ण की और मादवी नामक नर्तकी की प्रणय गाथाओं को अंकित करने वाले महाकवि "इळंगो" चेर वंशीय राजा शेंगुट टुवन के छोटे भाई थे और वैष्णव से जैन बन गये थे। अधिकांश विद्वानों का मत है कि "शिलप्पदिकारम्" ईसा की दूसरी शताब्दी में रचा गया है।[3] इसमें कवित्वपूर्ण गद्य खण्ड भी हैं जो गद्यकाव्य सदृश लगते हैं अतः यह तमिल साहित्य के आरंभिक चम्पू काव्य का रूप प्रस्तुत करता है।[4]

ईसा की चौथी शताब्दी से ही तमिल का भक्तिकाल आरंभ हो जाता है और चम्पू काव्यों के विधिवत् निर्माण काल, दशम शताब्दी तक समाप्त हो जाता है। तमिल साहित्य में इस काल की सभी रचनायें शैवों, वैष्णव-सन्तों तथा जैन मुनियों द्वारा निर्मित हैं। इनकी कृतियों

---

१. तमिल और उसका साहित्य–पृष्ठ २३।

२. मलयालम् नाम "चिलप्पतिकारम्"—द्रष्टव्य कैरली साहित्य दर्शन-पृष्ठ १५।

३. तमिल और उसका साहित्य–पृष्ठ ३८।

४. तमिल और उसका साहित्य–"शिलिप्पदिकारम्" जैसे कुछ प्राचीन काव्यों में भी बीच-बीच में कुछ गद्य पाया जाता है, पर वह भी गद्यकाव्य सा ही लगता है। पृष्ठ ८३।

का प्रभाव न केवल वर्ण्य-विषय की दृष्टि से अपितु शैली की दृष्टि से भी धार्मिक चम्पू काव्यों पर दिखाई पड़ता है। तमिल में "तेवारम्" दश-दश कविताओं के स्तबकों से गुंथी हुई काव्य माला है। प्रत्येक दशक में एक विषय, चाहे वह कोई भाव हो या किसी तीर्थस्थान का वर्णन, पूर्ण हो जाता है। ग्यारहवीं कविता में रचयिता की मुद्रा होती है।[१] संस्कृत के कुलक के साथ इसकी तुलना की जा सकती है। चम्पू काव्यों में इस प्रकार के कुलकों का या स्तबकों का प्रयोग मिलता है। प्रबन्धान्तर्गत होने के कारण मुद्रा की छाप नहीं मिलती।[२]

तमिल साहित्य के इस भक्तिकाल में ही संस्कृत-साहित्य के गद्यकाव्यों का निर्माण हुआ तथा शिलालेखों में चम्पूकाव्यों का प्रयोग हो रहा था। गद्य भाग के अलंकरण की प्रवृत्ति, संभवत: उस युग की विशिष्ट प्रवृत्ति थी; इसी कारण संस्कृत गद्य-पद्य तो अलंकार बोझिल हो ही रहा था उस काल की तमिल कृतियां भी उसी प्रकार अलंकृत दिखाई पड़ती हैं। जैन से शैव बनने वाले तथा इसी कारण जैन राजा महेन्द्रवर्मन द्वारा किये गये उत्पीड़न को सहन करने वाले, तमिल महाकवि अप्पर (ई० ५७५-६५०) की एक कविता का हिन्दी रूपान्तर द्रष्टव्य है—

"सुझंकृत वीणा सी, सायंकालीन चन्द्रमा सी,
बहती मलय पवन सी, उत्फुल्ल मधुमास सी,
मधुकर-गुंजित-कमल-सर-सी,
मधुर है मेरे ईश की चरण छाया॥"[३]

उपलब्ध चम्पू काव्यों में से अधिकांश पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर लिखे गये हैं। ये पुराण शैव, वैष्णव एवं जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। कारैकाल अम्मैयार, माणिक्क वाचकर (४थी शताब्दी) अप्पर (५७५-६५० ई०) सम्बन्दर और सुन्दरर् या आरूरर् प्रमुख शैव कवि हैं। शेक्किलार ने पेरियपुराणम्, शैव सन्तों को कवित्वपूर्ण शैली में जीवन कथायें प्रस्तुत की हैं। तिरूमूलर का तिरुमन्दिरम् (पवित्र मन्त्र) आध्यात्मिक कविताओं का संग्रह है।

---

१. पृष्ठ ५३।
२. उदाहरण के लिये द्रष्टव्य—यशस्तिलक १।४-८ अथवा २।१०५-५७ तक।
३. तमिल और उसका साहित्य—पृष्ठ ५३।

आळवारों (वैष्णव सन्तों) द्वारा रचित चार हजार बृहत्कविताओं का संग्रह "नालायिर दिव्य प्रबन्धम्" कहलाता है। वैष्णव सन्त कवियों में पोयगे आळवार, पूदत्तालवार के तीन शतक "वेणवा छन्द" में रचित अर्थ-गांभीर्य की दृष्टि से उच्च कोटि के काव्य हैं। पेरियाळवार (छठी शताब्दी) की पालिता कन्या गोदा (आण्डाल) की रचना "नाच्चियार तिरुमोळि" के नाम से प्रसिद्ध है। "विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखने पर, इसकी कविताओं में उत्कृष्ट शृङ्गार रस की मधु-सरिता प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है। पर वैष्णव सिद्धान्ताचार्य इन कविताओं को गूढ़तम तत्वार्थ से भरा बताते हैं। यहाँ तक कि विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक रामानुजाचार्य ने अपने सिद्धान्त को प्रमाणित करने में, आण्डाल की कविताओं से प्रेरणा प्राप्त की।"[१] तमिल वैष्णव सन्त कवियों में "तिरुमंगे आळवार ने विष्णु के दशों अवतारों की स्तुति गाई है, पर रामावतार पर वे सबसे अधिक रमे हैं।"[२] अन्तिम वैष्णव सन्त कवि केरल के राजा "कुलशेखराळवार" (१०वीं शताब्दी) हैं, जिन्होंने राम और कृष्ण सम्बन्धी भक्तिपूर्ण कवितायें लिखी हैं।

"शिलप्पदिकारम्" के रचयिता इळङ्गो (२ शती) जैन थे। इसके बाद तमिल में जैन कवियों की प्रमुख रचनायें ९वीं शताब्दी के लगभग की अधिक मिलती हैं। श्रीपुराण, गद्य चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य जैन कृतियों में "जीवक चिन्तामणि" जैन मुनि एवं महाकवि तिरुतक्क देवर की अमर रचना है। इसका काल भी नवीं शती है। एक दन्तकथानुसार मुनि तिरुतक्क देवर ने इस उत्कृष्ट काव्य की रचना यह प्रमाणित करने के लिये की कि जैन कवि भी शृंगार रस से परिपूर्ण काव्य रच सकते हैं।[३] जैन धर्म के पुनर्जन्म सिद्धान्त और विराग की भावना, जीवक के संन्यास ग्रहण करने के समय की इस उक्ति से स्पष्ट है—

"हम पिछले जन्मों में इन लोगों (पुत्र-पत्नी आदि) के बान्धव नहीं थे। भावी जन्मों में भी हम इनके बान्धव होने वाले नहीं हैं। इस कारण बान्धव जैसी कोई वास्तविक वस्तु है ही नहीं (कविता २८८५)"[४]।

---

१. तमिल और उसका साहित्य—पृ० ६३, गोदापरिणय नामक चम्पू काव्य भी वेदाधिनाथ का लिखा प्राप्त है।

२. तमिल और उसका साहित्य—पृष्ठ ६६।

३. वही ,, ४४।

४. पृष्ठ ४६।

इसी काल में, तोळामोळित्तेवर ने शूलामणि नामक काव्य की रचना की।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में चम्पू काव्यों के निर्माण के पूर्व—

१—तमिल साहित्य में चम्पू काव्यों का प्रारूप तैयार हो चुका था, और शैव सन्तों के चरित्र एवं कार्तिकेय सम्बन्धी तीर्थ स्थानों का वर्णन हो चुका था। राम और कृष्ण की भक्ति सम्बन्धी स्वरलहरी, दक्षिणी प्रदेश को निनादित कर चुकी थी। जैन सन्तों के चरित्र काव्य के विषय बन चुके थे। गद्य और पद्य दोनों में जैन साहित्य की रचना, आरंभ हो चुकी थी। प्रचुर शृंगार वर्णन के साथ, जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन होने लगा था। अनेक जैन पुराणों की रचना हो चुकी थी।

२—संस्कृत साहित्य में अनेक, गद्य, पद्य काव्य, लिखे जा चुके थे। राम, कृष्ण एवं शिव से सम्बन्धित कई पद्यबद्ध काव्यों की रचना हो चुकी थी। नाटक भी लिखे जा चुके थे। पुराणों का विशाल कथा-साहित्य काव्य निर्माण के लिये प्रचुर सामग्री दे सकता था।

३—मणिप्रवाल के प्रयोग ने, संस्कृत और दक्षिण भारत की भाषाओं को एक दूसरे के समीप ला दिया था और दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ रहा था। इस शैली का प्रयोग, गद्य एवं पद्य के क्षेत्र में तो प्रचुर रूप में हो रहा था। परन्तु मिश्र शैली में इसका प्रयोग छिटपुट कृतियों में ही दिखाई पड़ता था।

४—अलंकारप्रियता के साथ, समस्त पदावली के प्रचुर प्रयोग की रुचि, संस्कृत के गद्य काव्यों में अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी। उस परंपरा को निरन्तर प्रयोग में लाया जा रहा था और तमिल तथा कन्नड़ सहित, संस्कृत के शिलालेखों की मिश्र शैली में उसका स्वरूप आगे बढ़ रहा था। हरिषेण की प्रशस्ति के बाद जैन शिलालेखों में चम्पू-काव्य की विशेषतायें रूप ग्रहण कर रही थीं। सातवीं शती से लेकर ग्यारहवीं शती तक के शिलालेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

मिश्र शैली में लिखे गये सातवीं शताब्दी के दो दान-पत्रों के गद्य-भाग, निम्नलिखित हैं—

"स्वस्ति श्री मत्पिष्टपुरात् सकलजगदवन समुद्भूतकीर्तिचारुचन्द्रिका समुद्योतितादिगन्तरस्य महाराज-रणदुर्जयस्य सूनोस्समतिशयितशक्रविभूतेः विक्र-मेन्द्रस्य प्रियतनयः प्रवर्धमानप्रतापोपनतसमस्तसामन्तमण्डलनिजभुजविजयोदयाद-

धिगतयशोविशेषभूषणः श्रीरमकश्यपगोत्रः परमब्रह्मण्यो मातापितृपादानुध्यातः श्रीपृथिवीमहाराजः पागुणारविषये ताण्डिवाडग्राममधिवसतस्सर्वसमवेतान् कुटुम्बिन् समाज्ञापयति, यथाश्रुतिस्मृति ॥[1]

"मतिसहायसाहसमात्रसमधिगतनिजवंशसमुचितचितराज्यबिभस्य हिमकर-करविमलकुलपरिभवविलयहेतुपल्लवपतिपराजयानन्तरपरिगृहीतकांचोपुरस्य प्रभाव-कुलिशदलितयोलपाण्ड्यकेरलधरणीधरत्रयमान–मानशृङ्गस्य अनन्यरुमवनतकांची-पतिमणिमुकुटकिरणसलिलाभिषिक्तचरणकमलस्य त्रिसमुद्रमध्यवर्तिभुवनमंडला-धीश्वरस्य....।[2]

चम्पू काव्यों में कवियों ने कई स्थलों पर अन्य कवियों एवं अपने-अपने जैन, शैव, हिन्दू आदि धर्मशास्त्रों के वचन भी, अपने कथन की पुष्टि में उद्धृत किये हैं। युवराज राजेन्द्र वर्मा का निम्नलिखित दानपत्र, इस दृष्टि से उद्धरणीय है—

"स्वस्त्यमरपुरानुकारिणः सर्वर्तुसुखरमणीयाद्विजयवतः कलिंगनगरवासकान् महेन्द्राचलामलशिखरप्रतिष्ठितस्य सचराचरगुरोस्सकलभवननिर्माणकसूत्रधारस्य शशांकचूडामणेर्भगवतो गोकर्णस्वामिनश्चरणयुगलप्रणामाद्विगतकलिकलंकान काहबसनसंक्षोभजनितजयशब्दप्रतापावनतसमस्तसामन्तचक्रचूडमणिप्रभामंजरिपुंजर-जितवरचरणसितकुमुदकुन्देन्द्ववदातदिग्देशविनिर्गत यशाः ध्वांताराातिकुलाचलो नयविनयदयादान दाक्षिण्य शौर्योदार्यसत्यत्यागादिगुणसम्पदाधारभूतो गंगा-मलकुलतिलक महाराजश्री अन (न्त) वर्म्म सूनु युवराजश्रीराजेन्द्रवर्म्माकुशली निदिजेरु विषये नाम्पलि ग्रामकुटुम्बजनपदान् समाज्ञापयति—

विदितमस्तु वो भवता यतोऽयं ग्रामः....।

इसमें दो श्लोक हैं जिनमें प्रथम उद्धरण है—

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुन्धराम्।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥ १ ॥

मद्वंशजा परमहीपतिवंशजा वा
पापादपेत मनसो भुवि भाविभूपः।
ये पालयन्ति ममधर्मवरं विशेषात्
तेभ्यो विरचितांजलिरेवमद्य ॥ २ ॥

---

१. यह दानपत्र लगभग ६३० ई० का है। विशेष विवरण-द्रष्टव्य जे० ओ० आर० मद्रास १६३५, वो० ६, पृष्ठ १८६।

२. चालुक्यबादशाहविनयादित्य (सातवीं शताब्दी) का एक दान-पत्र, द्रष्टव्य, जे० ओ० आर० मद्रास १६३७।

गांगेयवंशप्रवर्धमानविजयराज्यसंवत्सरशतत्रये चतुर्दशोत्तरे लिखितमिदं माहासान्धिविग्रहिकश्रीसामन्तेन उत्कीर्णं न चाक्षलालिना श्रीदामचन्द्रेण ॥"[1]

ये विविध दान-पत्र, मिश्र शैली के मुक्तक रूप को ही अधिक स्पष्ट करते हैं। चम्पू काव्य प्रबन्धात्मक है। उसमें अनेक चरितकाव्य हैं। जैन शिलालेखों में विविध घटनाओं के वर्णन सहित, जो चरित प्रस्तुत किये गये हैं, वस्तुतः आकार-प्रकार, वर्ण्य-विषय और शैली की दृष्टि से, वे ही चम्पू काव्य के पूर्वरूप कहे जा सकते हैं। सातवीं शताब्दी के चन्द्रगिरि का यह शिलालेख, चम्पू काव्य के उस रूप को सामने रखता है जिसे जैन चम्पू काव्यों जीवन्धर, पुरुदेव आदि में अपनाया गया है। इसके आरंभ में चार श्लोकों में जिन वन्दना की गयी है—

"जितम्भगवता श्रीमद्धर्मतीर्थविधायिना।
वर्द्धमानेन संप्राप्तसिद्धिसौख्यामृतात्मना ॥ १ ॥
लोकालोकद्वयाधारम्वस्तु स्थास्नु चरिष्णु वा।
संविदालोकशक्तिः स्वाव्यश्नुते यस्य केवला ॥ २ ॥
जगत्यचिन्त्यमाहात्म्यपूजातिशयमीयुषः ॥ ३ ॥
तदनु श्रीविशालायां जयत्यद्य जगद्धितम्।
तस्य शासनमव्याजं प्रवादि मतशासनम् ॥ ४ ॥

अथ खलु सकल जगदुदयकरणोदितनिरतिशयगुणास्पदीभूतपरमजिनशासनसरस्समभिवर्धितभव्यजनकमलविकसन वितिमिरगुणकिरणसहस्रमहोतिमहावीरसवितरिपरिनिर्वृते भगवत्परमर्षि गोतमगणधरसाक्षाच्छिष्यलोहार्यजम्बुविष्णुदेवापराजितगोवर्द्धन-भद्रबाहु-विशाख-प्रोष्ठिल-कृत्तिकार्य - जयनाम सिद्धार्थ - धृतिषेण-बुद्धिलादि-गुरुपरम्परीणक्रमाभ्यागतमहापुरुषसन्ततिरूमवद्योतितान्वयभद्रबाहुस्वामिना, उज्जयन्यामष्टांगमहानिमित्ततत्त्वज्ञेन त्रैकाल्यदर्शिना निमित्तेन द्वादशसंवत्सरकालवैषम्यमुपलभ्य कथिते सर्वस्संघोत्तरापथाद्दक्षिणापथम्प्रस्थितः क्रमेणैव जनपदमनेकग्रामशतसंख्यं मुदितजनधनकनकसस्यगोमहिषाजाविकुलसमाकीर्णं प्राप्तवान्।"

"अतः आचार्यप्रभाचन्द्रो (चन्द्रेण) नामावनितलललामभूतेऽथास्मिन् कटवप्रनामकोपलक्षिते विविधतरुवरकुसुमदलावलिविरचनाशबलविपुलसजलजलदपनवहनीलोपलतले वराह-द्वीपि-व्याघ्रर्क्षतरक्षुव्यालमृगकुलोपचितोपत्यकक्रन्दरदरीमहागुहागहनाभोगवति समुत्तुंगशृंगे शिखरिणि जीवितशेषमल्पतरकालमवबुध्यात्मनः सुचरित (सुचकित) तपस्समाधिमाराधयितुमाप्तच्छ्यनिरवशेषेण संघं विसृज्य

१. द्रष्टव्य—जे० ओ० आर० वोल ६, पृष्ठ ५६, एन आर्टिकल आफ, श्री के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री, एम० ए०

शिष्येणैकेन पृथुलतरास्तीर्णतलासु शिलासु स्वदेहं संन्यस्याराधितवान् क्रमेण सप्तशतमृषीणामाराधितमिति जयतु जिनशासनमिति ॥"[१]

ऐतिहासिक दृष्टि से भी, यह शिलालेख महत्त्वपूर्ण है। इसमें उत्तरी भारत में अकाल पड़ने, भद्रबाहु के नेतृत्व में जैन संघ के दक्षिण भारत में जाने की इतिहासप्रसिद्ध घटना का उल्लेख किया गया है। हरिषेण की प्रशस्ति के बाद चम्पू काव्य के स्वरूप को प्रत्यक्ष करने वाला, यह लेख वर्णन के विस्तार, घटना के समावेश, गुरुपरंपरा के वर्णन, अलंकृत पदावली एवं मधुर-ध्वन्यात्मक-समस्त-शब्दावली के समावेश आदि के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

मिश्र शैली में लिखे गये, चन्द्रगिरि के अनेक जैन शिलालेख प्राप्त हैं। इनमें से कुछ तो पूर्णतः संस्कृत में हैं[२] कुछ केवल कनाड़ी में[३] और कुछ संस्कृत तथा कनाड़ी में मिश्रित। मिश्रित शिलालेखों की कनाड़ी भी मणि-प्रवाल शैली से प्रभावित है। ये लेख मुख्यतः उन शिलालेखों पर हैं, जो जैनाचार्यों के स्वर्गवास पर उनके स्मृत्यर्थ स्थापित किये गये हैं। जिन स्तम्भों पर ये लेख खुदे हैं, उनके एक या दो पृष्ठों पर उक्त जैनाचार्य की यशःप्रशस्ति है और शेष एक, दो या तीन पृष्ठों पर जैनाचार्यों की परम्परा देकर, उनमें उक्त जैनाचार्य का स्थान बतलाया गया है।[४]

कन्नड़ के शिलालेखों की भाषा अत्यन्त प्रवाहशील, अनुप्रासमयी एवं संगीतात्मक है। अन्त्यानुप्रास की छटा के लिये निम्नलिखित गद्य-भाग दर्शनीय है—

"इन्तु विन्ध्याटवी निकट तापी तटवुं। मान्यखेटपुर वरवुं। गोनूरुमुच्चंगियुं। वनवासि देशवुं। पाभसेय कोटेयुं। मोदलागे पलवेडे योलमरियरं पिरियरुवं कादि गेल्दु पलवेडे गलोलं महाध्वजमनेत्तिसि महादानं गेय्युनेगल्दगंगविद्याधरं- गंगरोलगण्डं। छंछ गंगरसिंगं। गंगचूडामणि गंगकन्दर्प्पं गंगवज्रं चलदुत्तरंगं गुत्तियगंगं धर्मावतारं जगदेकवीरं नुडिदन्ते गण्डं अहितमार्त्तण्डं कदनकर्क्कशं मंडलिकत्रिणेत्रं श्रीमन्नोलम्बकुलान्तकदेवं पलवेडेगलोलं वसदिगलुं मानस्त-

---

१. यह शिलालेख लगभग शक संवत् ५२२। (५६६ ई०) का है—द्रष्टव्य-जैन शिलालेख संग्रह (प्रथमभाग) हीरालाल जैन द्वारा संपादित-पृष्ठ १।

२. उदाहरण के लिए द्रष्टव्य-जैन शिलालेख संग्रह भाग १।

३. लेख २—२३।

४. ३६ से ४३ तक।

म्भगंलुवं माडिसिदं मंगलं धर्ममंगलं नमस्यं नडयिसि बलियमोन्दुवर्षं राज्य-मपत्लुविट्टु बंकापुरदोल अजितसेन भट्टारकर श्रीपादसन्निधियोल् आराधना विधियिं मूरुदे....सं नोन्तु समाधियं साधिसिदं ॥[1]

[इस शिलालेख में गंगराज मारसिंह का वर्णन है। उन्होंने कृष्णराज तृतीय के लिये गुर्जर देश को जीता। विन्ध्यपर्वत की तलहटी में रहने वाले किरातों के समूह को जीता। मान्यखेट में नृप की सेना की रक्षा की। इन्द्रराज चतुर्थ का अभिषेक कराया। पातालमल्ल के कनिष्ठ भ्राता वज्जल को पराजित किया। वनवासी नरेश की धन-सम्पत्ति का अपहरण किया। माटूरवंश का मस्तक झुकाया। नोलम्बकुल के नरेशों का सर्वनाश किया। काडुवट्टि जिस दुर्ग को नहीं जीत सका था, उस उच्चंगि दुर्ग को स्वाधीन किया। "तापीतट मान्यखेट, गोरुरुउच्चंगि, वनवासि और पाभसे के युद्ध जीते तथा चेर, चोल, पाण्ड्य और पल्लव नरेशों को परास्त किया। जैन धर्म का प्रतिपालन किया और अनेक जिन मन्दिर बनवाये। अन्त में उन्होंने राज्य का परित्याग कर, अजितसेन भट्टारक के समीप तीन दिवस तक सल्लेखना[2] व्रत का पालन कर, बंकापुर में देहोत्सर्ग किया।

मिश्रित शिलालेखों में संस्कृत के श्लोकों को "श्लोक", "वृत्त" या "पद्य" लिखा गया है। कनाड़ी के गद्य भाग को 'वचन', कनाड़ी में लिखे गये संस्कृत वर्णवृत्तों वाले अंश को "वृत्त" तथा कनाड़ी में लिखे गये दो प्रकार के छन्दों को "कन्द" और "अक्कर" कहा गया है। ये दोनों छन्द मात्रिक हैं।[3] बीच में आये हुये संस्कृत के एक वाक्य को "चूर्णि" कहा गया है। जैसे—

"चूर्णि-यस्यैवं विधा वादारम्भ संरम्भ विजृम्भिताभिव्यक्तयरसूक्तयः ।,,[4]

ये चूर्णि पद्यों के मध्य में आये हुए एक वाक्यात्मक खण्ड हैं।

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, संख्या ३८ (५६), समय शक सं० ८६६-शिलालेखों के कोष्ठक की संख्या एपिग्राफियाकर्नाटिका-सं० बी० लेविसराइस–१८८६ के हैं। मैसूर आर्कालाजिकल रिसर्च द्वारा प्रकाशित।

२. उपसर्गे दुर्भिक्षेजरसिरुजायां च निःप्रतिकारे।
धर्मायतनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥ १ ॥
रत्नकरण्डश्रावकाचार, समन्तभद्रस्वामीकृत।

३. उदाहरण के लिये द्रष्टव्य–जैन शिलालेख संग्रह में ४५, या एपिग्राफिया कर्नाटिका १२५।

४. जैन शिलालेख संग्रह-५४, एपिग्राफिया कर्नाटिका–६७।

जैन शिलालेखों की इस परंपरा का क्रम, चम्पू काव्यों के निर्माण के उपरान्त भी चलता रहा है। दशवीं शताब्दी के केवल दो चम्पू काव्य उपलब्ध हैं। नल चम्पू और यशस्तिलक चम्पू। नल चम्पू गद्य काव्यों से अधिक प्रभावित है। और यशस्तिलक इन जैन शिलालेखों एवं कन्नड़ और तमिल साहित्य के जैन धर्म सम्बन्धी पूर्ववर्ती ग्रन्थों से। एक विस्तृत प्रबन्धकाव्य का रूप धारण करने एवं ग्रन्थाकार में लिखे जाने के कारण यह काव्यधारा शिलालेखों से मुड़कर पत्रों पर अपना चिह्न अंकित करने लगी।

हरिषेण की प्रशस्ति से लेकर दशवीं शताब्दी तक के शिलालेखों की मुख्य विशेषता उनकी गद्यबहुलता रही है। मिश्र शैली में लिखे गये, इन लेखों से एक निश्चित निष्कर्ष निकलता है। आरम्भ और अन्त में पद्य भाग का अधिक प्रयोग हुआ है, और बीच में एक विशाल गद्यखण्ड रख दिया गया हैं। जिनमें दो पद्यों के मध्य में गद्यखण्ड आये हैं वे संगति बिठाने के लिये 'चूर्णि' मात्र हैं। यशस्तिलक में या नल चम्पू में पद्यभाग की अपेक्षा, गद्यभाग को ही प्रमुखता दी गयी है, किन्तु ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के एवं बाद के चम्पू काव्यों में पद्यबहुलता आती गई है। ग्यारहवीं शताब्दी के भोज का चम्पू रामायण पद्यबहुल है। मध्य में प्रयुक्त गद्यखण्ड चूर्णि या चूर्णक कहे गये हैं। इसी काल का एक जैन शिलालेख अनेक जैनाचार्यों का संक्षिप्त चरित प्रस्तुत करता है। यह लेख चम्पू काव्य सा ही है और पद्यबहुल चम्पू काव्य की श्रेणी में आता है। आकार-प्रकार की दृष्टि से भी यह विशालकाय है। इसमें ७२ श्लोक हैं और कई चूर्णक हैं—इसका आरंभ वर्धमान जिन से तथा अन्त मल्लधरि देव से हुआ है। संक्षेप में इस विस्तृत शिलालेख की झांकी मात्र ली जा सकती है—

श्रीमन्नाथ कुलेन्दुरिन्द्रपरिषद् वन्द्यश्रुतः श्रीसुधा-
धारा धौतजगत्तमोऽपहमहः पिण्डप्रकाण्डं महत्।
यस्मान्निर्मलधर्म्मवार्द्धिविपुलश्रीव्वर्द्धमाना सतां
भर्त्तुर्भव्यचकोरचक्रमवतु श्रीवर्द्धमानो जिनः ॥१॥

वन्द्यो भस्मकभस्मसात्कृतिपटुः पद्मावतीदेवता-
दत्तोदात्तपदस्वमन्त्रवचनव्याहूत चन्द्रप्रभः।
आचार्यस्य समन्तभद्रगुणभृद्येनेह काले कलौ-
जैनं वर्त्मसमन्तभद्रमवद्भद्रं समन्तान्मुहुः ॥६॥

चूर्णि—यस्यैवं विधा वादारम्भसंरम्भविजृम्भिताभिव्यक्तयस्सूक्तयः।
वृत्त-पूर्व्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता

पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये कांचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं
वादार्थी विचराम्यहन्नरपते शार्दूलविक्रीडितम्॥ ७॥
अवटुतटमटति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेरपि च जिह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कास्थान्येषाम्॥ ८॥

चूर्णि—य एवमुपश्लोकितो दण्डिना—
जह्नोः कन्यां जटाग्रेण बभार परमेश्वरः।
श्रीवर्द्धदेव संधत्से जिह्वाग्रेण सरस्वतीम्॥ १७॥

चूर्णि—तथा हि यस्यायमापादितपरवादिहृदयशोकः पत्रालम्बनश्लोकः।
पत्रं शत्रभयंकरोरुभवनद्वारे सदा संचरन्
नानाराजकरीन्द्रवृन्दतुरगव्राताकुले स्थापितम्।
शैवान्पाशुपतांस्तथागतसुतान कापालिकान्कापिलान्।
उद्दिश्योद्यतचेतसा विमलचन्द्राशाम्बरेखादरात्॥ २६॥

चूर्णि—येनेयमात्मनामधेयनिरुक्तिरुक्तानामपृष्टवन्तं कृष्णराजं प्रति-
गृहीतपक्षादितरः परस्स्यात्तद्वादिनस्तेपरवादिनस्स्युः
तेषांहिमल्लःपरवादिमल्लस्तन्नाममन्नामवदन्तिसन्तः॥ २९॥
अतुच्छतिमिरच्छटाजटिलजन्मजीर्णाटवी,
दवानलतुलाजुषां पृथुतपः प्रभावत्विषाम्।
पदं पदपयोरुहभ्रमितभव्यभृङ्गावलि—
र्म्मनोल्लसतु मल्लिषेण मुनिराडमनोमन्दिरे॥ ६६॥ [1]

विविध प्रकार के मनोहर छन्दों में वर्णित जैन आचार्यों की इस प्रशस्ति ने जैनाचार्य विजय चम्पू पर, प्रचुर प्रभाव डाला है। अन्तिम उद्धृत पृथ्वी छन्द का प्रयोग तो, यशस्तिलक एवं अन्य चम्पू काव्यों में भी अधिक हुआ है। सम्भवतः यह छन्द अधिक लोकप्रिय रहा होगा। अन्य संप्रदायों के प्रति जैनाचार्यों के दृष्टिकोण की झांकी जहां यशस्तिलक में मिलती है वहां इस शिलालेख के छब्बीसवें श्लोक में भी। इस प्रसस्ति में १ वर्द्धमान जिन २ भद्रबाहु ३ चन्द्रगुप्त ४ कुन्दकुन्द ५ समन्तभद्र ६ सिंहनन्दि ७ वक्रग्रीव ८ नन्दिनि ९ पात्रकेसरि १० सुमतिदेव ११ कुमार सेन १२ चिन्तामणि १३ श्रीवदर्धदेव १४ महेश्वर १५ अकलंकदेव १६ साहसतुंग १७ हिमशीतल १८ पुष्पसेन १९ विमलचन्द्र २० इन्द्रनन्दिन्

१. जैन शिलालेख संग्रह, ५४, एपिग्राफिया कर्नाटिका ६७, समय शक सं० १०५०।

२१ परवादिमल्लदेव २२ आर्यदेव २३ चन्द्रकीर्ति २४ कर्म्मप्रकृति २५ श्रीपालदेव २६ मतिसागर २७ हेमसेन २८ दयापाल २९ वादिराज ३० कमलभद्र ३१ दयापाल ३२ पोटसलो, विनयादित्य, शान्तिदेव, ३३ आहवमल्ल ३४ चतुर्मुख ३५ मल्लूर ३६ गुणसेन ३७ अजितसेन ३८ वादीभसिंह ३९शान्तिनाथ ४०पद्मनाभ ४१कुमारसेन ४२मल्लिषेण मल्लधारिदेव—अनेक आचार्यों का वर्णन किया गया है। इसके छोटे-छोटे गद्य चूर्णक भी प्रवाहशील हैं। पद्य अत्यन्त प्रौढ़ एवं ओजस्वी हैं। उद्धृतश्लोक वाग्वीरता का अच्छा प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि यह शिलालेख प्रबन्ध से प्रयुक्त कथाधारा का रूप प्रस्तुत नहीं करता, पर इसकी गणना भी, बहुनायक संयुतचरित काव्य के भीतर ही की जायेगी, क्योंकि इसमें भी अनेक जैनाचार्यों की विद्वता एवं उनके विजयों का सांकेतिक वर्णन हुआ है।

यद्यपि चम्पू काव्यों का विधिवत निर्माण दशवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही आरंभ हो चुका था पर पन्द्रहवीं शताब्दी तक, गिनती के ही चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं। नल चम्पू (९१५ई०) मदालसा चम्पू (९१५ई०) यशस्तिलक चम्पू (९५९ ई०) जीवन्धर चम्पू (संभवत: ९०० ई०) रामायण चम्पू (१०१८ ई०-१०६३ ई०) भोज प्रबन्ध (११ वीं श०) उदयसुन्दरी कथा (१००० ई० या १०६० ई०) भागवत चम्पू, अभिनव भारत चम्पू, राजशेखर चरित (११ वीं शताब्दी) भरतेश्वराभ्युदय चम्पू, पुरुदेव चम्पू (१३ वीं शताब्दी) तथा अनन्तभट्ट के भारत चम्पू और भागवत चम्पू (ग्यारहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दी) जैसे सीमित चम्पू काव्य ही, चम्पू काव्य की निर्माण दिशा सूचित करते हैं। इन ग्रन्थों को, मूल स्रोत एवं विश्लेषण के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) पौराणिक चम्पू (२) जैन चम्पू और (३) ऐतिहासिक चम्पू। उदयसुन्दरी कथा काल्पनिक है।

चम्पू काव्यों का सर्वाधिक सृजन, पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी तक हुआ है। पन्द्रहवीं शताब्दी से ही कैरली भाषा में अनेक चम्पू काव्यों का निर्माण आरम्भ हुआ है। "पुनम् नम्पूतिरि" का रामायण चम्पू, 'महिष्र-मंगल', नम्पूतिरि का नैषधं चम्पू, चम्पू काव्य के दो शाश्वत नक्षत्र हैं। बाद में अनेक व्यक्तियों ने इनका अनुकरण किया है। लोगों का कहना है कि इन काव्यों की संख्या दो सौ के लगभग है। इनमें से कुछ प्रबन्ध, अपनी-अपनी विशिष्टता से साहित्य-रसिकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। "भारत चम्पू", नारायणीय चम्पू, तेन्कैलासनाथोदयं, नारायणीयं, राजरत्नावलीयं, कोटियविरहं (भीषण विरह), पारिजात हरणं, दक्षयागं,

कंसवधं, स्यमंतकं, कामदहनं आदि इस गणना में आते हैं।"[1] "अब कामदहनं, रामार्जनीयम्, श्रीमतीस्वयंवरं, प्रह्लाद चरितं, आदि अनेक नये-नये चम्पू ग्रन्थ उपलब्ध हैं।"[2]

"जिस प्रकार कैरली में अनेक चम्पू काव्य उपलब्ध हैं, ठीक उसी प्रकार तेलुगु में १५ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक अनेक परिणय काव्यों का निर्माण हुआ है। ये परिणय काव्य मुख्यत: पौराणिक हैं।"[3]

तेलुगु के इन परिणय और चरित काव्यों के अतिरिक्त स्थानीय देवताओं की माहात्म्य सम्बन्धी भी कई कृतियाँ निर्मित हुई हैं। भैरव कवि (१४१०-१४६० ई०) का श्रीरंग माहात्म्यमु, अन्नय (१४२८-१५०६ ई०) का वेंकटाचलमाहात्म्यमु, तथा पिल्ललमर्रिपिनवीरन् (१४६०-१५०० ई०) का शकुन्तला परिणयम्, श्रीकृष्णदेव रायलु (१५०६-१५३० ई०) मदालस चरित्र, सत्यावधूप्रीडनम्, मादयगारिमल्लन् (१५७० ई०) का अष्टमहिषी कल्याणम्, ऊषापरिणयम्, रामकृष्ण (१५८५-१६१४) का पाण्डुरंग माहात्म्यमु, कुमार धूर्जटि (१५५०-१५८० ई०) का इन्दुमति विवाहम्, तेनालिअन्नय (१५८०) का सुदक्षिणा परिणयमु आदि कृतियाँ[4] उस दिशा की ओर सूचित करती हैं जिस ओर संस्कृत चम्पू काव्यों की प्रवृत्ति उन्मुख रही है।

शृङ्गार की प्रधानता

काव्य में आरम्भ से ही वीर और शृंगार की प्रमुखता प्राप्त रही है। शान्त रस में उपसंहृत होते हुये भी, जैन चम्पू काव्यों के भीतर वीर और शृंगार को ही मुख्यता प्राप्त रही है। तमिल के जीवक चिन्तामणि से लेकर, संस्कृत के चम्पू काव्यों तक शृंगार का प्रचुर वर्णन उपलब्ध होता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के उपरान्त, परिणय या प्रणय-काव्यों की अधिकता के मूल में भी, युगप्रवृत्ति ही कार्य करती दिखाई पड़ती है। भक्ति के दक्षिण भारत से उत्तर की ओर उन्मुख होने पर शृंगार की सम्भवत: यही प्रवृत्ति हिन्दी काव्यों में भी अभिव्यक्त हुई। रूप चित्रण, शृंगार का अनिवार्य अंग है। रूप चित्रण की यह प्रवृत्ति तो सभी शृंगार प्रधान काव्यों में दिखाई पड़ती है। युग प्रवृत्ति की सूचना देने वाला एक शिलालेख

---

१. कैरली साहित्य दर्शन—पृष्ठ—५३-५४
२. वही पृष्ठ ५५
३. द्रष्टव्य, तेलुगु और उसका साहित्य—पृष्ठ ३० से ५८ तक।
४. द्रष्टव्य—तेलुगु और उसका साहित्य—काव्यकाल ३०-५८ तक।

उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा। यह लेख ११८० ई० का है। और चन्द्रमौलि मन्त्री की भार्या आचल (आचियक्क) देवी के द्वारा उत्कीर्ण कराया गया है। यह नयकीर्ति के शिष्य बालचन्द्र की शिष्या थीं। आचल देवी ने अक्कन वस्ति के जिन मन्दिर का निर्माण कराया था। मन्त्री चन्द्रमौलि की प्रार्थना पर होय्सल नरेश बल्लाल द्वारा इस मन्दिर को बम्मयन पल्लि नामक ग्रामदान किये जाने का उल्लेख इसमें है। इसमें २२ पद्यों में विनयादित्य से बल्लाल तक होय्सल नरेशों की वंशावली दी गई है। २२ से २६ तक बल्लाल का एवं २७ से ४० तक आचल देवी के कुल का वर्णन है। आचल देवी का कन्नड़ मिश्रित, मणि-प्रवाल-शैली में निम्नलिखित वर्णन श्रद्धा भक्ति समन्विता किसी देवी का नहीं, अपितु किसी नायिका का लगता है।

"हरिणीलोचने पंकजानने घनश्रोणिस्तनाभोगभासुरे बिम्बाधरे कोकिलस्वने सुगन्धश्वासे चंचत्तनूदरि भृङ्गावलिनीलकेशी कलहंसीयानेयो कम्बुकन्धरेयप्पाचलदेवि कन्तु सतियं सौन्दर्य दिन्देलिपल् ॥ ३८ ॥[1]

आचल देवी के अतिरिक्त उनकी बहन का वर्णन भी द्रष्टव्य है—

इन्दुमुखि मृगविलोचने।
मन्दरगिरिधैर्य्ये तुङ्गकुचयुगे भृङ्गी-
वृन्दशितिकेशविलसिते
चेन्दब्बे विनूतेयादलपखलोर्व्व रेयोल् ॥ ३६ ॥[2]

सोलहवीं शताब्दी और उसके बाद निर्मित सभी काव्य न तो प्रौढ़ हैं और न ही उनका गद्य-पद्य भाग वैसा ही अलंकृत एवं कवित्वपूर्ण, जैसा कि गद्यकाव्यों अथवा आरंभिक चम्पू काव्यों या प्रशस्तियों में दिखाई पड़ता है। संस्कृत के ह्रास काल में, चम्पू काव्यों ने संस्कृत साहित्य की धारा को प्रवाहित रखा है। इसी काल में मिश्र शैली एवं चम्पू शैली समानार्थक बन गई हैं। प्रौढ़ चम्पू काव्य, जैसे वरदाम्बिका परिणय और अप्रौढ़ मिश्र शैली में लिखी गई अनेक कृतियाँ समान रूप से चम्पू मानी जाने लगी थीं। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक चम्पू काव्यों की रचना छिटपुट होती रही है और आज के भी कतिपय संस्कृत विद्वान् मिश्र शैली में कुछ काव्य प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं पर ये अपवाद स्वरूप ही हैं।

---

१. जैन शिलालेख सं० १२४ या एपिग्राफिया कर्नाटिका ३२७।
२. उसी में।

मिश्र काव्य के विकास का विहगावलोकन

गद्य पद्य मिश्र शैली का आरम्भिक रूप ब्राह्मण ग्रन्थों के उपाख्यानों में उपलब्ध होता है। कथाश्रित होने के कारण इनकी मिश्र शैली में वर्णन, सूक्तियों का प्रयोग, भाषा को सरलता, कहीं-कहीं अलंकारों की छटा एवं प्रासंगिक लघु कथाओं का समावेश आदि दृष्टिगोचर हो जाता है। उपनिषदों में से कुछ मिश्र शैली में लिखे गये हैं। उपनिषदों की कथायें, मुख्यतः आध्यात्मिक एवं उपदेशप्रधान हैं, ये पद्यबहुल भी हैं। इनका गद्य भाग प्रौढ़ एवं लालित्यपूर्ण है। पद्यों में रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा के स्वाभाविक प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं। गद्य भाग का प्रयोग भूमिका या कथा की संगति बिठाने तथा मन्त्रों के स्पष्टीकरण के लिये हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों के उपाख्यानों में कथा भाग को मुख्यता दी गयी है, उपनिषदों की कथाओं में वर्णन सहित, तत्त्व-विवेचन एवं उपदेश को।

सूत्रकाल में गद्य की जिस संक्षिप्त शैली को प्रश्रय मिला उसके कारण कथा या प्रबन्ध में गद्य के अलंकृत एवं भव्य रूप का दर्शन नहीं होता। लौकिक संस्कृत में गद्य का उतना विकास, प्रचलन तथा प्रसार न हुआ, जितना उसमें स्वाभाविक रूप से होने की आशा की जा सकती थी। दार्शनिक ग्रन्थों में गद्य का उपयोग मिलता है पर वेदांग के कतिपय ज्योतिष आदि विषयों में भी पद्य का ही प्रयोग होता था। गद्य के पूर्णतः प्रौढ़ता प्राप्त कर लेने तक काव्य ग्रन्थों में मिश्र शैली का प्रयोग संभव भी न था। पतंजलि के महाभाष्य में गद्य का विवेचनात्मक एवं शास्त्रार्थ शैली का रूप मिलता है। इस समय तक लौकिक संस्कृत गद्य, इस स्थिति में पहुँच चुका था, कि साहित्यिक कृतियों में उसका उपयोग हो सकता था। कुछ नाटकों के नाम अवश्य मिलते हैं, पर मिश्र शैली की कोई कृति उपलब्ध नहीं है।

पतंजलि के उपरान्त गद्य की एक विशिष्ट दिशा बन गई। वह अधिकाधिक गाढबद्धता की ओर झुकने लगा। इस काल की मिश्र शैली का अन्यतम रूप, पालि के जातकों में उपलब्ध होता है। ईस्वी सन् के आरम्भ होने तक सूत्रकाल के बाद से ये जातक कथायें ही, मिश्र शैली का प्रबन्धात्मक रूप प्रस्तुत करती हैं। इनका गद्य न तो प्रौढ़ है, न आलंकारिक। पद्य भाग भी नीतिप्रधान एवं उपदेशात्मक ही अधिक है। उपनिषदों की नीति और उपदेशपरक कथात्मक श्रृंखला को आगे बढ़ाने वाले ये जातक ही हैं।

ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व के जो कतिपय शिलालेख उपलब्ध होते हैं, उनमें गद्य की प्रवृत्ति समासबद्धता के साथ विशेषणों की लड़ी पिरोकर वाक्य विस्तार की ओर दिखाई पड़ती है। रुद्रदामन के गिरनार वाले शिलालेख एवं आर्यसूर की जातकमाला में, कतिपय गद्यखण्ड अलंकृत भी दिखाई पड़ते हैं। जातकमाला मिश्र शैली के उस रूप को प्रस्तुत करती है, जिसका विकसित एवं प्रौढ़तम स्वरूप चम्पू काव्यों में दिखाई पड़ता है। जातकमाला का पद्य भाग उसके गद्यांश की अपेक्षा प्रौढ़तर एवं कवित्वपूर्ण है।

द्वितीय शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक, कवियों द्वारा अलंकार प्रदर्शन को अधिक महत्त्व दिया गया है। समासों की लम्बी श्रृंखला में अलंकारों का सन्निवेश इस युग के पद्य-गद्यबद्ध काव्यों की विशेषता रही है। इसी काल में मिश्र शैली ने पृथक्-पृथक् विविध मार्गों का अनुसरण किया है। जातकों के उपरान्त कथा साहित्य की एक धारा, गद्य-पद्य के सरलतम रूप को अपनाये हुए, लोक और नीति कथाओं को जन-साधारण के लिये ग्राह्य पंचतन्त्र, वेतालपंचविंशति, सिंहासन-द्वात्रिंशिका एवं हितोपदेश आदि के निर्माण का कारण बनी है।

दूसरी धारा पौराणिक शैली की ओर मुड़ी है। महाभारत में कतिपय गद्यखंड होते हुए भी इस शैली का चरम विकसित रूप, श्रीमद्भागवत आदि के आख्यानों एवं चरित वर्णनों में दिखाई पड़ता है। पुराणों में समासबहुला, अलंकृत-गद्य-खंडों के साथ-साथ पद्य भाग के द्वारा भी कथा का विकास प्रस्तुत किया गया है। भागवत के ये आख्यान लघु चम्पू काव्य के सदृश ही हैं। रामायण और महाभारत के साथ भागवत भी चम्पू काव्यों का मूलस्रोत रहा है अतः इसकी शैली का प्रभाव भी चम्पू काव्यों पर पड़ा है। वर्ण्य विषय एवं शैली, दोनों दृष्टियों से पुराणों का ऋण चम्पू काव्यों पर है।

मिश्र शैली की तीसरी धारा, दृश्य काव्यात्मक रूपकों और उप-रूपकों की है। इनका प्रभाव, चम्पू काव्यों पर प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता। परवर्ती काल में कुछ चम्पू काव्य कथोपकथनात्मक शैली में लिखे गये हैं, पर वे या तो पद्यबहुल हैं या गद्यबहुल।

मिश्र शैली का जो रूप चम्पू काव्यों में गृहीत हुआ है, वह मुख्यतः शिलालेखों की प्रशस्तियों में विकसित हुआ है। हरिषेण की प्रयाग-प्रशस्ति, चम्पू काव्य का प्रथम एवं उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इसका गद्य भाग अति समासबहुल है और पद्य भाग कला एवं भाव सौन्दर्य की

दृष्टि से कालिदास के काव्य के समकक्ष है। वर्ण्य विषय भी वही है, जिसका समावेश अनेक चम्पू काव्यों में हुआ है। मन्दसोर प्रशस्ति का दशपुर वर्णन, कैलाशनाथ मन्दिर, त्रिशिरापल्ली एवं नालन्दा में प्राप्त शिलालेखों से स्पष्ट है कि नगर एवं राजा तथा उसकी यशोगाथा का वर्णन, उस युग के कवियों की सामान्य रुचि को अभिव्यक्त करता है।

गद्य के अलंकृत एवं समासबद्ध रूप ने सातवीं-आठवीं शताब्दी में गद्य काव्य का रूप ग्रहण कर लिया। कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमार-चरित एवं वासवदत्ता की रचना ने पद्यकाव्य के सदृश ही गद्यकाव्य का महत्त्व भी प्रतिष्ठापित कर दिया। गद्य और पद्यबद्ध काव्य के स्वतन्त्र एवं पृथक्-पृथक् विकास की उच्चतम सीमा पर पहुँच जाने पर भी दशवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक कोई चम्पू काव्य नहीं लिखा गया। इसका मुख्य कारण यह था कि मिश्र शैली का प्रशस्तियों में प्रयुक्त होने वाला काव्यात्मक रूप अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ शैशवास्था में था और शिला की गोद न छोड़ सका था।

आर्यसूरि की जातकमाला के निर्माण काल के आसपास ही तमिल में 'शिलप्पदिकारम्' की रचना हुई जो कथात्मक काव्य तो है ही, मिश्र शैली में भी लिखा गया है। तमिल के भक्तिकाल की समाप्ति, दशवीं शताब्दी तक हो जाती है। इसका आरंभ चौथी शताब्दी से होता है, जो संस्कृत भाषा का अलंकरण युग था। अलंकरण की यही प्रवृत्ति तमिल में भी दिखाई पड़ती है। संस्कृत की तत्सम-पदावली से संपन्न, तमिल भाषा की एक शैली मणिप्रवाल के रूप में विकसित हुई। मणिप्रवाल के प्रयोग का क्षेत्र कन्नड़ और मलयालम् भाषाओं तक विस्तृत हुआ। इसके परिणाम स्वरूप इन तीनों भाषाओं का संस्कृत से अधिक सान्निध्य रहा। शैवों, वैष्णवों एवं जैन कवियों द्वारा, तमिल में सभी भाषाओं से पहले अपने-अपने सिद्धान्तों एवं विश्वासों के आधार पर काव्य रचनायें हुईं। जैन चम्पू काव्यों के लिये तो, निश्चित रूप से तमिल कृतियां प्रेरणा का स्रोत रहीं।

मणिप्रवाल शैली का प्रयोग केवल गद्य या पद्य में पृथक्-पृथक् ही नहीं हुआ, अपितु मिश्र शैली में भी हुआ। सातवीं शताब्दी से लेकर दशवीं शताब्दी तक के ही नहीं, चौदहवीं शताब्दी तक के शिलालेख ऐसे मिलते हैं, जिनमें इस शैली का प्रचुर उपयोग हुआ है। कन्नड़ और संस्कृत के कई मिश्रित शिलालेख भी हैं। इनमें चम्पू काव्य की सर्वाङ्गीण विशेष-ताओं का प्रारूप दशवीं शताब्दी तक व्यक्त हो जाता है। उदाहरण के

लिए, गद्य और पद्य भाग का अलंकृत होना, वर्णन में समान स्तर, गाढ-बन्धता अन्य कवियों की सूक्तियों का प्रयोग, प्रबन्धमयता, आरम्भ में वन्दना, अन्त में मंगलवाक्य, कवि-परिचय आदि सामान्य विशेषताओं के दर्शन इन लेखों में होने लगते हैं। चूर्णि, वृत्त आदि पारिभाषिक विशेषताओं वाले शब्द भी उपलब्ध होने लगते हैं।

दशवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से चम्पू काव्यों का विधिवत् निर्माण आरम्भ हो जाता है। इन चम्पू काव्यों के लिये आदर्शरूप में, इस समय तक लिखे गये गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, पुराण, प्रशस्तियां एवं तमिल का प्रचुर-साहित्य, अपने वर्ण्य-विषय एवं शैली सहित विद्यमान था। इनकी पृष्ठभूमि पर ही चम्पू काव्यों का भवन-निर्माण आरम्भ हुआ। दशवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक सीमित चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं, पर वे हैं, विविध प्रकार के ऐतिहासिक, पौराणिक, चरितात्मक, कल्पनात्मक सभी प्रकार के।

तेरहवीं शताब्दी से ही शिलालेखों में दिखाई पड़ने वाली शृंगारिक प्रवृत्तियों का प्रभाव, १६ वीं शताब्दी और उसके उपरान्त के चम्पू काव्यों में दिखाई पड़ता है। इसी समय केरली में अनेक पौराणिक चम्पू काव्य तथा तेलुगु में पुराण एवं परिणय काव्य लिखे गये। चम्पू काव्यों में से अधिकांश की रचना दक्षिण भारत में हुई, फलस्वरूप साहित्य की जो प्रवृत्तियाँ दक्षिण भारतीय-भाषाओं में दिखाई पड़ती हैं, उनका दर्शन इस काल के चम्पू-काव्यों में भी हो जाता है। संस्कृत साहित्य की अन्य धारायें जब बन्ध्यात्व की ओर जा रही थीं, उस समय उसकी परम्परा को सुरक्षित रखने का श्रेय, चम्पू काव्यों को ही है। जन-भावना का सच्चा स्वरूप उपस्थित करने वाले इन चम्पू काव्यों का स्रोत उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक चलता है और अब भी कतिपय संस्कृत के विद्वान् इस दिशा में कभी-कभी प्रयास कर लेते हैं।

———

संस्कृत के प्रकाशित एवं अप्रकाशित उपलब्ध चम्पू काव्य

सोलहवीं शताब्दी से पूर्व के उपलब्ध चम्पू काव्य

१—नल-चम्पू अथवा दमयन्ती कथा[1] :—

त्रिविक्रम भट्ट का नल-चम्पू उपलब्ध चम्पू काव्यों में प्रथम एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है। त्रिविक्रम के पिता का नाम नैमादित्य और पितामह का नाम श्रीधर था। यह शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न हुए थे।[2] हैदराबाद के अन्तर्गत मान्यखेट के स्वामी राष्ट्रकूट वंश के इन्द्रराज (तृतीय) की राजसभा के यह प्रमुख पंडित थे। नौसारी ग्राम (बड़ौदा के अन्तर्गत) में प्राप्त ताम्रलिपि के अनुसार इन्द्रराज ने अपने अभिषेक के उपरान्त स्वर्ण, तुला और ग्रामादि दान किया था। इन्द्रराज का अभिषेकोत्सव कृष्ण-गंगा के संगम पर वर्तमान कुरुण्डक नामक ग्राम में विक्रम संवत् ९७२ (९१५ ई०) में हुआ था।[3]

इन्द्रराज के राज्याभिषेक का समय निश्चित करनेवाला एक और लेख हत्तित्तूर ग्राम (धारावाड़) में ९१६ ई० का प्राप्त हुआ है, जो इन्द्रराज के ही एक महासामन्त का है।[4] इन्द्रराज तृतीय का विशेष विवरण, विविध ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध है।[5] इन्द्रराज के युवराज पद पर रहते हुए ही इनके पिता की मृत्यु हो गई थी; अतः इन्होंने अपने पितामह कृष्णराज द्वितीय से सीधे ही उत्तराधिकार प्राप्त किया था। अतएव यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि त्रिविक्रम भट्ट न केवल इन्द्रराज के ही सभापंडित थे, अपितु उनका सम्बन्ध कृष्णराज द्वितीय के दरबार

---

१. चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस से, १९३२ में प्रकाशित।

२. द्रष्टव्य-नल-चम्पू १ उ० १९ श्लोक।

३. जर्नल बाम्बे ब्रान्च रायल एशियाटिक सोसाइटी-भाग १८, पृष्ठ २५३, २५७, २६१।

४. इण्डियन एण्टीक्वेरी-भाग १२ पृष्ठ २२४।

५. श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत 'भारत के प्राचीन राजवंश (राष्ट्रकूट)' भाग ३ पृ० ५०-५२। (संस्करण १९२५ ई०)

से भी रहा होगा। डा० भाऊदा जी ने नासिक के समीप प्राप्त एक ताम्र-लेख से यह सिद्ध किया है कि सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य, इसी त्रिविक्रम भट्ट के वंशज थे।[1] त्रिविक्रम भट्ट की छठी पीढ़ी में (विद्यापति-भास्कर-गोविन्द-प्रभाकर-मनोरथ-महेश्वर-भास्कराचार्य) भास्कराचार्य हुए थे।

बम्बई से प्रकाशित नल-चम्पू की भूमिका में एक किंवदन्ती का उल्लेख किया गया है, जिससे नल-चम्पू के अपूर्ण रहने के कारण पर प्रकाश पड़ता है। सकल शास्त्रों में निष्णात देवादित्य राजपंडित थे। उनके पुत्र का नाम त्रिविक्रम था। एक दिन देवादित्य के बाहर चले जाने पर एक विद्वान् ने राजदरबार में आकर शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। राजा ने देवादित्य को बुलवाया। पिता की अनुपस्थिति में त्रिविक्रम भट्ट ने सरस्वती से आदेश लेकर, पिता के आगमन तक, स्वयं दरबार में पहुँच कर उस विद्वान् को परास्त किया। पिता के आगमन तक के लिये प्राप्त सरस्वती के वरदान का लाभ उठाकर त्रिविक्रम ने नल-चम्पू की रचना आरम्भ की। सप्तम उच्छ्वास की समाप्ति के दिन त्रिविक्रम के पिता घर आ गये, फलस्वरूप सरस्वती के वरदान का काल समाप्त हो गया और यह कृति अपूर्ण ही रह गई।[2]

ग्रन्थ की असमाप्ति के अनेकों कारण हो सकते हैं, अतः इस किंवदन्ती पर विश्वास करना अनावश्यक है।

नल-चम्पू की कथा का मूल स्रोत महाभारतीय वन-पर्व का नलोपाख्यान है। इन सात उच्छ्वासों में नल का दमयन्ती के पास जाकर, इन्द्रादि लोकपालों के संदेश पहुँचाने तक की ही कथा वर्णित है; अतः नलोपाख्यान का दमयन्ती-परित्याग आदि मार्मिक एवं करुण अंश इसमें नहीं आ पाया है। हरिचरण पद सरोजांक और सोच्छ्वास होने के कारण, यह चम्पू काव्य के विशिष्ट लक्षणों से समन्वित है।

इसमें सरस, रमणीय एवं प्रसाद गुण सम्पन्न श्लेष की प्रचुरता है। यद्यपि कहीं-कहीं बाण की श्लेषमयी दुरूहता और सुबन्धु की सभंग शिलष्टता के भी इसमें दर्शन हो जाते हैं, परन्तु कवि ने यथाशक्ति इस श्लेषबन्धता के कारण आनेवाली कठिनता से बचने का प्रयत्न किया है। पाठकों के लिये कवि की यह सम्मति है कि—

वाचः काठिन्यमायान्ति भंगश्लेषविशेषतः।
नोद्वेगस्तत्र कर्त्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥१।१६॥ न० च० ॥

---

१. एपिग्राफिया इण्डिका-भा० १ पृष्ठ ३४१।

२. बम्बई संस्करण की भूमिका के आधार पर।

त्रिविक्रम की दृष्टि में कवि के काव्य एवं धनुर्धर के बाण का एक ही उद्देश्य है, पाठकों के हृदय में लग कर उन्हें व्यामोहित कर देना :—

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः ।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥११५॥न०च०॥

इनकी शैली और दृष्टिकोण को स्पष्ट करने वाला यह श्लोक, अकुशल कवियों पर एक प्रसन्न व्यंग्य है :—

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः ।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥११६॥न०च॥

उर्वर-उर, त्रिविक्रम की मनोहारिणी कल्पनाओं ने, सहृदय-रस-मर्मज्ञों को अधिक आकृष्ट किया है। निम्नलिखित कल्पना पर तो उन्हें 'यामुन-त्रिविक्रम' के रूप में एक नया नाम ही प्राप्त हो गया है :—

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुतायामनुसरति निशीथे शृंगमस्ताचलस्य ॥
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च
।६।१।न० च०॥

प्रावृड्, शरद आदि ऋतुओं के वर्णन में, कवि की वाणी का अलौकिक वैभव दिखाई पड़ता है। श्लेषानुप्राणित उपमा और उत्प्रेक्षा की हारावली अपनी आभा अलग विकीर्ण करती है। अनुप्रास और यमक की छटा भी कम नहीं है :—

चलच्चकोरचक्रवाकचक्रचंचुचंचलचंचरीकचरणचूर्णितचम्पकांकुरमरिचमंजरी— दलदन्तुरेण वनमार्गेण स्तोकमन्तरमलिकान्तस्तया पुनरेवं बभाषे।
पृ० ४०।२ उच्छ्वास

नमिताः फलभारेण न मिताः शालिमंजरीः ।
केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनिःस्पृहाः ॥२।२।न०च०॥

यः शृङ्गारं जनयति नारीणां नारीणाम्, यः करोत्याश्रितस्य नवं धनं न बन्धनं, यो गुणेषु रज्यते न रमणीनां, न रमणीनाम्, यस्य च नमस्याग्रहारेषु श्रूयते नलोपाख्यानं न लोपाख्यानम् ॥ उ० २ ॥ पृ० ४७ ॥

इस चम्पू के सात उच्छ्वासों में ही ३३ पुरुष, २९ स्त्रियाँ और एक किन्नर-मिथुन, कुल ६३ पात्र हैं। नायक और नायिका नल और दमयन्ती ही हैं। इस चम्पू काव्य के पूर्व ही चम्पू शैली में लिखे गये जो शिलालेख एवं गद्य-काव्य उपलब्ध होते हैं, उनमें जीवन के माधुर्य-पक्ष की अभिव्यक्ति की ओर अधिक रुचि दिखाई पड़ती है, अतः मधुर और शृंगार एवं प्रकृति के रमणीय दृश्यों का अंकन भी इसमें प्रचुरता से स्थान पा गया है। पौरा-

णिक उपाख्यानों पर चम्पू काव्य का निर्माण, एवं गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से कवि-कौशल के प्रदर्शन का अन्यतम उदाहरण नल-चम्पू प्रस्तुत करता है। प्रबन्ध-पटुता के साथ वर्णन-विस्तार का समन्वय, कवि के प्रगाढ़ पाण्डित्य, शब्द-भण्डार की समृद्धि और प्रवाहशील भाषा के निर्माण की क्षमता का द्योतक है। क्रियापदों से निर्मित शब्दावली का दर्शन तो अनेक स्थानों पर होता है।

त्रिविक्रम ने व्यास के बाद बाण कवि की प्रशंसा की है (१/१४)। भोज ने सरस्वतीकंठाभरण में त्रिविक्रम का उल्लेख किया है। नल-चम्पू पर चण्डपाल, गुणविनयगणि, दामोदर भट्ट, नागदेव एवं किसी एक अज्ञात व्यक्ति की प्राचीन टीकायें उपलब्ध हैं।[१] नलोपाख्यान कवियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है और इस पर हर्ष का नैषधीयचरितम्, लक्ष्मीधर का नल-वर्णन-काव्य, श्रीनिवास दीक्षित का नैषधानन्द, प्रमुख काव्य हैं। नल-विक्रम, विधि-विलासिता, दमयन्ती-परिणय आदि अनेकों अन्य कृतियाँ भी इस उपाख्यान का आश्रय लेकर निर्मित हुई हैं।

२—मदालसा चम्पू[२]

त्रिविक्रम भट्ट की यह दूसरी रचना है। यह भी एक प्रणय-गाथा है। इसके नायक कुवलयाश्व एवं नायिका मदालसा हैं। कुवलयाश्व और मदालसा की प्रणय-कथा, मार्कण्डेय पुराण (अध्याय १८ से २२ तक) में विस्तृत रूप से वर्णित है। कुवलयाश्व-चरित, पातालकेतु का वध, मदालसा-परिणय, मदालसा-वियोग, कुवलयाश्व का नागराज के घर जाना और मदालसा की पुनः प्राप्ति आदि इस कथा की प्रमुख घटनायें हैं। भाषा-सौष्ठव और कला-कुशलता की दृष्टि से नल-चम्पू सदृश रमणीयता इसमें नहीं है। पर कथा के विकास एवं आकर्षण के कारण यह कृति भी लोकप्रिय रही है। मदालसा की कथा को आधार बना कर मदालसापरिणय

---

१. टीकाकारों के परिचय के लिए द्रष्टव्य :—हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर (कृष्णमाचारियर पृ० ४९८)
नल-चम्पू के बहुविध चित्रों के लिये द्रष्टव्य :—जे० ओ० आर० मद्रास वा० आठ पृ० २१७—२६४ (१९३४)।

२. पूना से प्रकाशित १८८२ ई०, सम्पादक जे०बी०मोदक, जयपुर पब्लिक् लाइब्रेरी में मुद्रित प्रति प्राप्य।

नाटक (अज्ञात), मदालसा नाटक (राम भट्ट)[1] मदालसा[2] (भवदेव) आदि कई कृतियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

३—यशस्तिलक चम्पू[3]

इस चम्पू काव्य के रचयिता सुप्रसिद्ध जैन-कवि श्री सोमदेव या सोमप्रभ सूरि हैं। यह चालुक्यराज अरिकेशरिन् (द्वितीय) के बड़े पुत्र द्वारा संरक्षित कवि थे। राष्ट्रकूट के राजा कृष्णराजदेव के समकालिक होने के कारण, सोमदेव ने इस चम्पू काव्य की रचना लगभग ६५६ ई० के आसपास की। जैनों का उत्तरपुराण इसका मूल उत्स है। इसमें अवन्ती के राजा यशोधर का चरित जैन-सिद्धान्तों को लक्ष्य बना कर वर्णित है। कथा का अधिकांश काल्पनिक, पुनर्जन्म के विश्वास पर आधारित है। प्रथम चार आश्वासों में कथा अविच्छिन्न गति से आगे बढ़ती है, पर अन्तिम तीन आश्वास जैन धर्म के 'उपासकाध्ययन' का वर्णन करते हैं। इस कृति द्वारा सोमदेव के गहन अध्ययन, प्रगाढ़-पाण्डित्य, भाषा पर स्वच्छन्द प्रभुत्व एवं काव्य क्षेत्र में उनकी नये-नये प्रयोगों की अभिरुचि का परिचय मिलता है। सोमदेव ने कई अन्य कवियों के नामोल्लेख सहित, उनकी मुक्तक कृतियों को इस चम्पू काव्य में उद्धृत किया है। इस चम्पू काव्य पर श्रुतसागर सूरि की सुन्दर व्याख्या है।[4]

४—जीवन्धर चम्पू[5]

हरिचन्द्र ने इस चम्पू काव्य की रचना की है। कीथ ने इस हरिचन्द्र को ही 'धर्म-शर्माभ्युदय' काव्य का प्रणेता भी माना है, जिसमें पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ जी का चरित वर्णित है। जीवन्धर चम्पू की रचना भी, राजा सत्यंधर और विजया के पुत्र जैन राजकुमार जीवन्धर के चरित को लेकर ही की गई है। यदि इन दोनों काव्यों के प्रणेता हरिचन्द्र एक ही

---

१. क० कैट० १/४२६

२. बम्बई से प्रकाशित।

३. निर्णय सागर प्रेस बम्बई से पूर्व और उत्तर दो खण्डों में प्रकाशित। १६१६ में म०म० शिवदत्त एवं वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर द्वारा संपादित श्रुतसागर सूरि की व्याख्या सहित।

४. यशस्तिलक चम्पू का विस्तृत विवरण छठे परिच्छेद में देखिये।

५. सरस्वती विलास सीरीज, तन्जौर, से १६०५ में प्रकाशित, सम्पादक टी० एस० कुप्पूस्वामी शास्त्री।

हैं, तो ये नोमक वंश में उत्पन्न कायस्थ थे। इनके पिता का नाम आर्द्र-देव और माता का नाम रथ्या देवी था। इनका समय अनिश्चित है, किन्तु ई० ९०० से लेकर ११०० तक के मध्य ये विद्यमान थे।[1] हर्ष-चरित के आरम्भ में बाण भट्ट ने भट्टार हरिचन्द्र का उल्लेख किया है।

> पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
> भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥

कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका में नंदिनंद के पूर्व हरिचन्द्र का उल्लेख हुआ है। बाण भट्ट का समय सातवीं सदी का मध्य भाग है; अतः यह भट्टार हरिचन्द्र कोई अन्य गद्यलेखक हैं।

इस चम्पू काव्य का मूल स्रोत भी गुणभद्र का उत्तर पुराण है। यह कथा सुधर्मा के द्वारा सम्राट् श्रेणिक को सुनाई गई थी।

> या कथा भूतधात्रीशं श्रेणिकं प्रति वर्णिता।
> सुधर्मगणनाथेन तां वक्तुं प्रयतामहे॥ १। १०॥
> मदीयवाणीरमणी चरितार्था चिरादभूत्।
> वन्दे जीवन्धरं देवं या भावैर्निजनायकम्॥ १। ११॥

यशस्तिलक, पुरुदेव आदि अन्य जैन चम्पू काव्यों की तरह ही इसमें भी आरम्भ में जिनस्तुति है। इस चम्पू काव्य में कुल ग्यारह लम्भ हैं:—

१. सरस्वतीलम्भ, २. गोविन्दालम्भ, ३. गन्धर्वदत्तालम्भ, ४. गुणमालालम्भ, ५. पद्मालंभ, ६. क्षेमश्रीलम्भ, ७. कनकमालालम्भ, ८. विमलालम्भ, ९. सुरमंजरीलम्भ, १०. लक्ष्मणालम्भ, ११. मुक्तिलम्भ।

स्थान-स्थान पर जैन सिद्धान्तानुसार धर्मोपदेश हैं। माघ और वाक्पतिराज का प्रभाव भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। धार्मिक भावना की कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति का, यह चम्पू काव्य एक सुन्दर उदाहरण है। हिन्दू पुराणों की तरह कथा का महत्त्व भी अंकित किया गया है:—

> जीवन्धरस्य चरितं दुरितस्य हन्तृ प्राप्ता मलीमसतमापि मदीयवाणी।
> धीरान् धिनोति नियतं मलिनांजनश्रीबिम्बाधरीनयनपंकजसंगतेव॥१।१२॥

---

१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ४०५ पर पाण्डेय एवं व्यास ९०० ई० मानते हैं। संस्कृत साहित्य का इतिहास-पृष्ठ २९१, श्री बलदेव उपाध्याय ११वीं सदी मानते हैं।

चम्पू काव्य की विशुद्ध परम्परा के अनुसार, कथा की गतिशीलता गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से दिखाई पड़ती है। गद्य काव्य की तरह ही विशेषण-संयुत-समस्त-पदावली दिखाई पड़ती है :—

अथ लवणरत्नाकरनिर्लोलकल्लोलशयकुशेशयप्रक्षिप्तमुक्ताविद्रुमराजिविराजितवेलालंकृते....... । अस्ति निस्तुलं हेमाङ्गदं नाम मण्डलम् ॥

पद्य भाग में भी यशस्तिलक की तरह एकरूपता नहीं है। कहीं तो अलंकृत पद्य-मालिका दिखाई पड़ती है और कहीं सरल एवं अनलंकृत छन्द मात्र के ही दर्शन होते हैं। हेतूप्रेक्षा से संपन्न उक्तिवैचित्र्य का एक सुन्दर उदाहरण है :—

यत्सौधानवलोक्य निर्जरपतिर्द्राङ्निर्निमेषोऽभवद्
यस्या वीक्ष्य सरोजशोभिपरिखां गंगा विषादं गता ।
यत्रत्यानि जिनालयानि कलयन् मेरुः स्वकार्तस्वरं,
स्वीचक्रे च बलद्विषं सुरपुरी यां वीक्ष्य शोकाकुला ॥ १ । १४ ॥

कथा का उपसंहार करते हुये हरिचन्द्र का यह निम्न लिखित श्लोक, केवल तथ्य का वर्णन मात्र करता है :—

जीवन्धरोयं तपसि प्रवीणो यथाक्रमं नष्टघनाष्टकर्मा ।
रत्नत्रयं पूर्णमवाप धीरो महामुनिर्मान्यगुणाभिरामः ॥ ११ लंभः ॥

गद्य पद्य के समन्वित आनन्द को हरिचन्द्र ने अज्ञात-यौवना वयःसन्धिप्राप्त नायिका-प्रदत्त आनन्द के समकक्ष रखा है। इस चम्पू काव्य का मुख्य उद्देश्य, जीवन्धर के चरित के माध्यम से जैन-धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास करना था। अन्त के दो श्लोक भरत-वाक्य हैं, जिनमें कवि ने जैनमत एवं अपनी सरस तथा अलंकृत वाणी के समान रूप से चिरजीवि होने की कामना प्रगट की है।

प्रजानां क्षेमाय प्रभवतु महीशः प्रतिदिनं,
सुवृष्टिस्सम्भूयाद् भजतु शमनं व्याधिनिचयः ।
विधत्तां वाग्देव्या सह परिचयं श्रीरनुदिनं,
मतं जैनं जीयाद्विलसतु च भक्तिर्जिनपतौ ॥

कुरुकुलपतेः कीर्ती राकेन्दुसुन्दरचन्द्रिका,
विमलविशदालोकेष्वानन्दिनी परिवर्धताम् ।
मम च मधुरा वाणी विद्वन्मुखेषु विनृत्यताद्
विलसितरसा सालंकारा विराजितमन्मथा ॥ ११ लम्भ ॥

५—रामायण चम्पू[1]

रामायण चम्पू काव्य के रचयिता, धारापति परमारवंशी राजा भोज हैं। विविध ताम्रलेखों, उल्लेखों एवं ऐतिहासिक प्रमाणों से यह निश्चित हो चुका है कि भोजदेव ईस्वी सन १०१८ और १०६३ के मध्य शासन कर रहे थे।[2] यह अपने समय में विक्रमादित्य की भांति ही दानी, न्यायप्रिय एवं विद्वान् के रूप में अत्यंत लोकप्रिय थे। इनकी राज्य-सभा उच्चकोटि के विद्वानों एवं कवियों से सुशोभित रहती थी। "प्रत्यक्षरलक्षं ददौ" वाली बात अतिशयोक्ति हो सकती है, अमूलोक्ति नहीं।

भोज के लिखे हुए लगभग इक्कीस ग्रन्थ[3] कहे जाते हैं, जिनमें ज्योतिष का राजमृगांक, शैवशास्त्र का सिद्धान्तसंग्रह, व्याकरण का शब्दानुशासन, अलंकार का सरस्वतीकण्ठाभरण, आदि कुछ ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं। चम्पू रामायण इनकी उत्कृष्ट एवं सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है। बालकाण्ड से लेकर सुन्दर काण्ड तक ही भोजदेव की रचना है। अन्तिम युद्ध-काण्ड लक्ष्मण सूरि ने लिखा है। युद्ध-काण्ड को रचना करते हुए लक्ष्मण सूरि ने लिखा है :—

भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य-
न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदाराम्।
न व्रीडितोऽहमधुना नवरत्नहार-
संगेन किन्न हृदि धार्यत एव तन्तुः॥ युद्ध-काण्ड २॥

मुद्रामुद्रितजीवितां जनकजां मोहाकुलं राघवं
चूडारत्नविलोकनेन सुचिरं निध्याय निध्याय च।
प्रारेभे हृदि लक्ष्मणः कलयितुं पौलस्त्यविध्वंसनं,
धोरः पूरयितुं कथां च विमलामेकेन काण्डेन सः॥ यु० का० ३॥

चम्पू रामायण की रचना का मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण है। स्वयं भोज ने वाल्मीकि के प्रति नम्र-भाव से कृतज्ञता प्रगट की है।

वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशैस्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गंगाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः किं तर्पणं न विदधाति नरः पितॄणाम्॥ १।४

भोज ने न तो वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु में कोई परिवर्तन किया है, और न ही पात्रों के चरित्र में। रामचरित के विविध पात्रों में जो गुण-

---

१. चौखम्बा विद्या भवन बनारस से प्रकाशित १६५६ की प्रति प्रयुक्त। विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला २६।
२. द्रष्टव्य-काव्यमाला बम्बई से प्रकाशित प्राचीन लेखमाला का तृतीय लेख।
३. द्रष्टव्य-रामचन्द्र मिश्र लिखित चम्पू रामायण की भूमिका-पृष्ठ ७।

दोष हैं, वे वाल्मीकि-रामायण के सदृश ही इस चम्पू-काव्य में भी हैं। वस्तु-विन्यास के अतिरिक्त भोज ने बाल-काण्ड को छोड़ कर, शेष काण्डों का आरम्भ उन्हीं पदों से किया है जिससे वाल्मीकि ने। बाल-काण्ड में इस नियम का व्युत्क्रम मंगलाचरण में नम्रता-प्रदर्शन आदि के कारण हुआ है। इन प्रथम श्लोकों में पर्याप्त भाव-साम्य भी है।

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ वाल्मीकि-सुन्दर-काण्ड १ ॥

ततो हनूमान्दशकण्ठनीतां सीतां विचेतुं पथि चारणानाम्।
महेन्द्रशैलस्य खगेन्द्रवेगः प्रस्थादुदस्थात्प्रथमानवेगः ॥भोज-सुन्दरकाण्ड १॥

अन्यत्र भी भाव-साम्य उपलब्ध होते हैं, पर इसका मुख्य कारण वस्तु-साम्य है। भोज के ऊपर भावापहरण का दोष नहीं लग सकता। जो व्यक्ति इतना सुन्दर काव्य निर्मित कर सकता है वह छोटे-मोटे भावों का अनुकरण क्यों करेगा? जो वसन्त नाना प्रकार के फूल खिला सकता है, वह पत्ते उधार क्यों लेगा?

चम्पू रामायण के गद्य-भाग में विविध रूपता दिखाई पड़ती है। कहीं तो अत्यंत सरल और छोटे-छोटे वाक्य दिखाई पड़ते हैं:—

तत्र कंचन विरंचिलोकप्रत्यादेशं प्रदेशं प्रदर्शयन्नवोचत्। बाल-काण्ड पृ० ४६।

कहीं अनुप्रासमय विस्तृत समासबद्ध-पदावली-सम्पन्न बृहत् वाक्य दिखाई पड़ते हैं:—

अथ कदाचिदुपचीयमानमनोभववैभवपाककपिशकलमसंजरीपुंजपिंजरीभूत-केदारप्रपंचः पंचबाणरणप्रयाणोचितवीरपाणवत् पत्रपुटपात्रदृश्यावश्यायबिन्दुसन्दोहश्चन्द्रातपे.....|| आरण्य-काण्ड पृ० २१६...।

अथवा

तदनु जनकराजधानीं रामलक्ष्मणनिरीक्षणकौतुकादनवरतपातितेन विकच-कुवलयनिचयोपचीयमानमेचकमरीचिमालिम्लुचेन पौरनारीलोचनरोचिषा खचित-नरपतिपथां विश्वामित्रः प्रविश्य दशरथतनयाविदमभाषत। बाल-काण्ड-पृ० ८७॥

श्लेष-बन्ध के द्वारा उपमा की सृष्टि करके, पाठकों को आनन्द देने में, बाणभट्ट ने जो क्रम अपनाया है यथा:—चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशंखचक्रलांछनः, हर इव जितमन्मथः गुह इवाप्रतिहतशक्तिः कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमंडलः[1]—

१. कादम्बरी पृष्ठ-१०-११ शूद्रकवर्णनम्।

—इत्यादि पंक्तियों ने कादम्बरी में जो रस भर दिया है, वह भोज के गद्य में भी उपलब्ध होता है—पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदम् प्राकृत-व्याकरणमिव प्रकटित-वर्णव्यत्यासम् बुधमिव सोमसुतम्—[1]

वर्णन-सौन्दर्य की दृष्टि से अरण्य-काण्ड का हेमन्त वर्णन, सुन्दर-काण्ड का सन्ध्या वर्णन एवं किष्किन्धा का वर्षा-ऋतु का वर्णन, अत्यन्त मनोहर स्थल हैं। भोज ने कहीं माघ की शैली अपनाई है, कहीं कालिदास की,[2] कहीं अलंकारों की बारीकियों पर दृष्टि रखी गई है, तो कहीं रस-परिपाक पर विशेष प्रयास किया गया है। भोज ने पूर्ववर्ती कवियों के काव्य-सौन्दर्य को इस एक ही काव्य में भरने का सफल प्रयत्न किया है। गंगा-वतरण का कल्पना-पूर्ण चित्र भोज ने अंकित किया है—

अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा।
शशांकशंखसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा ॥७८॥
तरंगाकृष्टमार्तण्डतुरंगायासितारुणा।
फेनच्छन्नरवमातंगमार्गणव्यग्रवासवा ॥७९॥ बाल-काण्ड॥
आवर्तगर्तसम्भ्रान्तविमानप्लवविप्लवा।
नीलजीमूतशैवालकृतरेखाहरित्तटा ॥८१॥

भोज शब्द-मैत्री एवं यमक के आचार्य हैं। सारे चम्पू रामायण में यमक की छटा विकीर्ण हो रही है—

एतां पुराणनगरीं नगरीतिसालां,
सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां,
राजा चिरादवति रावणनामधेयः ॥१९॥ बालकाण्डम्।
विशिखे विशिखे तस्मिन्विधातृवरवर्मणि।
सीतां विक्षिप्य चिक्षेप शूलं रक्षो रघूद्वहे ॥२॥ आरण्यकाण्डम्।
या तनुः पदवी सैषा या तनुश्चास्य लक्ष्मण!।
या तु कामं तयैवेदं यातुकामं न हन्यताम् ॥४॥

---

१. चम्पू रामायण-पृष्ठ-३९-विश्वामित्रवर्णनम्।

२. तुलनीय—चम्पू रामायण ७८,७९,८० बालकाण्ड माघ के—दधतसन्ध्यारुणव्योम एवं ककुद्मिकन्यावक्त्रान्त, ततः सपत्नापनय—से (शिशुपालवधः—२।१४,१८, २०,)
चम्पू रामायण-अयोध्याकाण्ड ३०, ३१-कालिदास के रघुवंशः—
(अ) सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्।
(ब) कल्याणबुद्धेरथवा तवायं। से

केवल कलात्मक-बाह्य-सौन्दर्य की ओर ही भोज ने ध्यान नहीं दिया है, अपितु संवेदन-शील कवि-हृदय होने के कारण, मार्मिक स्थलों के भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की ओर भी सचेष्ट रहे हैं। राम के राज्याभिषेक की घोषणा पर, प्रजा की आनन्दमग्नता,[1] वनगमन के समाचार को सुनकर सीता की मनोदशा,[2] बालि-वध के उपरान्त तारा का विलाप आदि वे मार्मिक स्थल हैं, जहाँ कवि की वृत्ति अधिक रमी है। ऐसे स्थलों पर मानो अलंकार-चमत्कार-प्रदर्शन की ओर से कवि मुक्त हो गया है। सरल, प्रसादगुण-सम्पन्न-पदावली में व्यंग्य का चमत्कार अधिक निखर उठा है। तारा राम से कहती है—

नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसालो,
वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या,
धन्वी कथं भवसि राघव मामविद्ध्वा ॥१८॥ किष्किन्धा काण्डम् ॥

दशरथ की मृत्यु पर स्वयं कवि की अन्तर्वेदना, परिस्थिति के प्रति समवेदनशील हो उठी है—

नाक्रान्तस्त्रिदिवः परैः सुमनसां कान्ता न वन्दीकृता,
नाकीर्णं पुरुहूतशासनधरैः साकेतबाह्याङ्गणम्।
नादिष्टाः सचिवाश्च भूतलपरित्राणाय यद्यप्यसौ,
नाकं शोकवशादगाद्दशरथो नास्थां वहन् वाहने ॥अ०का० ६०॥

चम्पू रामायण में गद्य भाग अत्यंत संक्षिप्त है, पद्यों की बहुलता है, परन्तु दोनों ही भागों में शब्द-पाण्डित्य के साथ साथ अलंकार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इस लोकप्रिय चम्पू काव्य पर नारायण, रामचन्द्र, कामेश्वर, मानवेद, घनश्याम एवं किसी एक अज्ञात विद्वान् की टीकायें उपलब्ध हैं।

६—उदयसुन्दरी कथा।[3]

उदयसुन्दरी कथा चम्पू के रचयिता सोड्ढल गुजराती कायस्थ थे। उनका जन्म, दक्षिण गुजरात के लाट देश में हुआ था। इनके आश्रयदाता कोंकड़ के राजा मुम्मुणि राज थे, जिनका १०६० ई० का शिलालेख उपलब्ध होता है। उदयसुन्दरी कथा में बाण के हर्ष चरित का स्पष्ट अनुकरण

---

१. अयोध्याकाण्ड ४।
२. अ० का० ३१।
३. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, नं० ११ काव्य मीमांसा के भीतर १६२० में प्रकाशित।

देख पड़ता है। इसमें प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन का नागराज शिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ विवाह की, गद्य-पद्यात्मिका कथा वर्णित है। बाण की भाँति सोड्ढल ने भी अपना वृत्तान्त दिया है, तथा पूर्ववर्ती कवियों के सम्बन्ध में कई प्रशंसात्मक श्लोक भी दिये हैं। उदयसुन्दरी कथा में भाषा का लालित्य एवं माधुर्य दर्शनीय है। सोड्ढल की शैली के कुछ उदाहरण देखिये :—

कमलिनी भुवनान्तरिते रवौ व्यपगतालिकलापशिरोरुहा।
परिदधे विधवेव सुधाकरद्युतिवितानमिषेण सितांशुकम्॥

एक नूतन कल्पना देखिये—

चान्द्रं महोमण्डलभाजनस्थं दुग्धं यथा यामवतीमहिष्याः।
वियोगिनां दग्दहनं प्रतापैरुल्लासितं व्योमतले लुलोठ[1] ॥

७—भागवत चम्पू[2] :—

भागवत चम्पू काव्य के रचयिता अभिनव कालिदास ने ग्रन्थारम्भ या ग्रन्थान्त में स्वयं अपना परिचय कुछ भी नहीं दिया है। भागवत चम्पू में छः स्तबक हैं। प्रथम, चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ स्तबक के उपसंहार वाक्य में समान रूप से निम्नलिखित श्लोक उपलब्ध होता है—

यस्मिन्छंकरदारसौरभजरीजृम्भत्कटाक्षच्छटा-
पाताः कल्पलतावितानसुमनोगुम्फप्रियंभावुकाः।
तस्यासौ नवकालिदासविदुषश्चम्पूप्रबन्धामृते
पूर्वः काव्यविदां प्रकल्पितसमुल्लासो विलासोऽभवत् ॥१।६८॥

'चम्पूप्रबन्धामृते' को परिवर्तित कर 'काव्ये तृतीयोत्तरः, काव्यामृते' पञ्चमः, षष्ठोऽपि काव्यामृते—स्तबकों के अनुसार रख दिया गया है। इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि इस चम्पू काव्य की रचना, नव कालिदास ने की और वह शक्ति के उपासक थे। राजशेखर चरित के अनुसार यह उत्तरी पेन्नार के किनारे स्थित विद्यानगर के राजा राजशेखर के राजकवि, एवं कविकुंजर के गुरु थे। बल्लाल परिवार से सम्बन्धित आन्ध्र प्रदेश निवासी, इस कवि का नाम अज्ञात है। अभिनव कालिदास इनकी उपाधि थी। राजशेखर को राजेन्द्र चोल एवं विजयवर्मा पाण्ड्य का समकालिक माना

---

१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा-पृष्ठ ४०६।
२. गोपालनारायण कम्पनी, बुकसेलर्स, कालबादेवी मुंबई (बम्बई) से १९२९ में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

जाता है। इन सबका समय ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है। अतः कालिदास का समय भी यही है।[1] भागवत चम्पू की प्रगाढ़-समस्त पदावली एवं विलासपूर्ण-श्रृङ्गार-वर्णन से भी यह प्रतीत होता है कि उनका समय ग्यारहवीं शताब्दी का मध्य भाग ही होगा।

इस भागवत चम्पू का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध है। भवानी और शंकर की स्तुति से इस चम्पू काव्य का आरम्भ हुआ है :—

कल्याणं नः प्रभूतं कलयतु ललितालापशैलेशबाला-
लीलाजालानुकूला शिशिरकरकला भानुमालाजटाला।
एषा शेषाहिभूषा परिकलितसुधापूरधारानुकारा-
भङ्गा मुद्रा विनिद्रा पुरहरणविधौ कापि कारुण्यपूर्णा ॥१।१॥

कस्त्वं घोरविलोचनोऽपि भुजगोत्तंसः कपाली जटी।
देव्याः शासनमन्तरेण भगवन्नन्तःपुरं मा गमः॥
इत्थं द्वारि निवारितं पुरहरं निध्याय दौवारिके,
यन्मातर्विदधासि मन्दहसितं दद्यात्तदिष्टानि नः ॥१।३॥

अभिनवपदपूर्वः कालिदासः प्रगल्भस्त्रिनयनदयितायाः प्रेमडिम्भस्तृतीयः।
विरचयति तयैव प्रेरितः प्रेमपूर्वं हरिगुणपरिणद्धं चारुचम्पूप्रबन्धम् ॥१।७॥

कालिदास ने अपने काव्य के दोषों की उपेक्षा एवं गुणों को ग्रहण करने का आग्रह प्रकट करते हुए, कृष्ण-सम्बन्ध से इसकी सरसता की ओर संकेत किया है।[2] प्रायः अधिकांश चम्पू काव्यों में, कथा का आरम्भ गद्य-काव्यों की भाँति गद्य से ही किया गया है, पर कालिदास ने पद्य से ही वर्णन प्रारम्भ किया है :—

आसीदसीममहिमामहनीयरूपो रूपानुरूपचरितः सुकृतप्रधानः।
राजा परीक्षिदभिधो यदजस्रदाननीरैरुपैति मरुभूमिरनूपभावम् ॥१।१४॥

पूतना द्वारा विष से श्रीकृष्ण को मारने के लिये किये गये प्रयत्न के समय कृष्ण की मनोदशा एवं उनकी महत्शक्ति के गर्व का सुन्दर वर्णन, सार्थक विशेषणों द्वारा किया गया है।

सोऽपि नीलकण्ठवन्दितचरणारविन्दमखिललोकमोहनशिल्पविद्याविशारदमपि मामियमतिसंधातुमध्यवस्यतीति कौतुकेन तदीयच्छन्दमनुसंदधानस्तदीयमपरिमितं

---

१. द्रष्टव्य :—हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर–कृष्णमाचारियर—पृ० ५०६ और संस्कृत लिट्रेचर-चन्द्रशेखरन्—पृ० १३८।

२. १।११७,१२॥

विशेषेण सहबलमपि प्राणसमीरणैः समनैव भोगीशभोगसुखशयनः-श्रीभगवानसिस्वदत् ॥ पृष्ठ १९ ॥

भागवत चम्पू का गद्य भाग कादम्बरी की भांति ही, कहीं रस-प्रवणता का, कहीं कला-सौन्दर्य का, कहीं वक्रोक्तिमय अभिव्यंजना-प्रणाली का, कहीं सानुप्रासिक समासान्त पदावली का[1], कहीं उपमा, दीपक, स्वभावोक्ति और विरोधाभास की रुचिकर योजना का[2] चमत्कार प्रदर्शित करता है। श्लेष और परिसंख्या की भी इसमें कमी नहीं है :—

करुणापूरमपि समुन्नतप्रवणम् असुकरदर्शनमपि सुदर्शनकरम् अब्जासक्तकरमपि निरन्तराब्जपरिपन्थिकरयुगलम्, अविरतानुषक्तगदमपि लोकोत्तरकमनीयविग्रहं,....दामोदरमद्राक्षीदस्तौषीच्च[3] ॥

भागवत चम्पू का पद्य भाग भी अनुप्रास और यमक से पूर्णतः सम्पन्न है :—

रमणीसरोजरमणीयलोचना मधुराधराश्रयधुराधरापि का।
रुचिराचिरांशुरुचिराशयाशयं तरलीचकार मुरलीविनोदनः ॥३।५४॥

कुचेल (सुदामा) के श्रीकृष्ण के पास जाने पर, उनको माध्यम बना कर कृष्ण और रुक्मिणी का वाग्विनोद, विदग्धता और हास्य के सुन्दर छींटे प्रस्तुत करता है। कृष्ण रुक्मिणी के लिये कहते हैं :—

कन्यामसुन्दरतनूमपि रुक्मिमुख्याः,
सम्बन्धिनस्त्विति परे तु भजन्तु लोभात्।
प्रद्युम्नलाभमपहाय न कश्चिदस्याः,
सम्पर्कतः सुखविशेष इति प्रतीमः ॥६।२७॥

रुक्मिणी का एक उत्तर भी अत्यंत व्यंग्यपूर्ण है, जब वह कृष्ण को कहती हैं :—

गुरुधेनोः स्वधेनोर्वा तोषणं नैव दूषणम्।
वस्तुतः परधेनूनां रक्षणं नार्यलक्षणम् ॥६।३४॥

अभिनव कालिदास ने यद्यपि श्रीमद्भागवत को ही, अपने चम्पू-काव्य का आधार बनाया है, पर मुख्यतः वह उत्तान-श्रृंगार के कवि हैं। भागवत की भक्ति-भावना का इसमें समावेश नहीं हुआ है। वन विहार या रास का वर्णन श्रृंगारिक कवियों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र रहा है। आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर, रसराज श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का

---

१. तथा २.—द्रष्टव्य-द्वितीय स्तबक—पृष्ठ २८, ३२, ३५।

३. पृष्ठ ५८।

मार्मिक उद्घाटन श्रीमद्भागवत में भी हुआ है, पर अभिनव कालिदास ने उसके शृंगारिक पक्ष का तो भरपूर वर्णन किया है, पर उसे आध्यात्मिकता में रंगने में सर्वथा असफल रहे हैं। हिन्दी कवि विद्यापति की भाँति इनकी दृष्टि भी उत्तुंग कुचों पर ही अधिक टिकी है।[1] संयोग पक्ष के वर्णन में ये अधिक रमे हैं।

तरुणीविलोलतरुणीहकानने मलयानिलेन कलया विधोः समा।
अपरा समागमपरा मनोरमा रमयांबभूव रमया समं हरिः ॥३।५५॥

हरिःस्मरपरीतापमधुरा मधुराधराः।
न्यषिंचच्चंचलापाङ्गैरेवं नर्मवचोमृतैः ॥३।५७॥

बध्नासि चेतो हरतः परस्य कुचावितीमौ किमु कंचुकेन।
तथापि नैव त्यजतः कठोरं शीलं निजं निग्रहतस्त्यजेत्कः ॥३।६१॥

त्यक्त्वा बहि : केलिविरोधिभावां लज्जां लताकुंजमवापदेका।
पुनस्तदायान्तमवादिवाशु कान्ताकवाटं घटयाम्बभूव ॥३।६६॥

एकेन नीवीमपरेण शौरिः करेण गृह्णन्नधरं प्रियायाः।
स्तनौ च जग्राह करद्वयेन चतुर्भुजत्वं विवरीतुमिच्छन् ॥ ३।८८॥

अवारि मन्दाक्षविमोहमाययाप्यलंघ्यसांद्रोऽपि मनोभवाधिः।
अलम्बि कोपि प्रियदो वधूनां नीवीविमोक्षो न कथं नु मोक्षः ॥३।६०॥

रतानुकूलः परमंगनानां बभूव बन्धो विविधस्तदानीम्।
न जारनाथाश्रयणेपि बन्धः परो मुरारिप्रणयानुभावात् ॥३।६३॥

कृष्ण के अन्तर्हित होने पर गोपियों का विरह-वर्णन, उनके मानसिक उद्वेग का रमणीय चित्र प्रस्तुत करता है, पर वह केवल परम्पराबद्ध ही है :—

सत्वरं कथय केन पथासौ चूतपादप हरिश्चलितः स्यात्।
पल्लवस्य गतिरस्य विबुध्य पल्लवप्रणयिना भवता स्यात् ॥ ।।३।६६॥

प्राणेशमुग्धमधुरं वदनं सकृत्ते संदर्शयाशु न ततोधिकमर्थये त्वाम् ॥
अभ्युद्यतो निरपराधवधूवधार्थमन्तर्दधातु कितव त्रपया शशांकः ॥३।११२॥

कृष्ण के पुनर्दर्शन एवं उस अवसर पर गोपियों के क्रिया-कलाप का जो वर्णन, कालिदास ने किया है वह किसी वन्य प्रान्त का नहीं अपितु रतिश्रान्त किसी विलासी राजा, उसके अन्तःपुर एवं दासियों का सा प्रतीत होता है :—

---

१. द्रष्टव्य :—३।६०-६३, ७५-८३ एवं ६।७६-६४ आदि।

ताश्च तदनन्तरमकाण्डोपलब्धममृतकुण्डमिव मकरकुण्डलं पुण्डरीकाक्षं, अभिलक्ष्य तदीक्षणसुखमखिलविलक्षणमात्मचक्षुभिरतनुरसमनुभूय, भूयोऽपि तत्र काचन चरणसंवाहनेन, तदपरा करावलम्बनेन, तदन्या व्यजनवीजनेन, काचिदालोकयेति शब्दसमुच्चारणेन, कापि ताम्बूलवीटिकाप्रदानेन-काचन स्वेदाम्बुजालकपरिमार्जनेन, कापि पांसुसन्दोहनिरसनेन, काचनताम्बूल-करंगपरिवहनेन, काचित्पल्लवकल्पनेन च यथाभिलषितमासाद्यपरिपूर्ण-मनोरथा बभूवुः ॥ पृष्ठ-५३-५४ ॥

राधा के सम्बन्ध में कालिदास की सूझ सर्वथा नवीन है। सिंहलद्वीप के अधिपति विजय वर्मा को उनकी युवती कन्या के उपयुक्त वर न प्राप्त होने के कारण ब्रह्मा ने स्वप्न में आदेश दिया कि :—

राजन्नाराधिकां कृत्वा राधिकां मुरवैरिणः ।
निर्माणचातुरीं कुर्यां मामिकां फलिनामिति ॥ ६।३६ ॥

और विजय वर्मा ने कृष्ण को बुलाकर, महोत्सव के साथ राधिका को उन्हें समर्पित कर दिया। यह कल्पना सम्भवतः गर्गसंहिता के आधार पर है, जिसमें राधा कृष्ण की स्वकीया पत्नी मानी गई हैं।[1] भागवत चम्पू-काव्यकारों ने राधा को स्वकीया ही माना है।[2]

अन्तिम स्तबक में राधा और कृष्ण का विलास वर्णन है। रास वर्णन के समय कालिदास की लेखनी पर जो यत्किंचित् प्रतिबन्ध, परम्परा का था, उसे तोड़ने के सम्यक् अवसर के सृजन के लिए ही यह राधा-कृष्ण का स्वकीया के रूप में उद्घाटन कालिदास ने किया है। विवाहोपरान्त कृष्ण, राधा को वामाचार की विशेषता बतलाते हैं :—

वामाचारैकगम्यो हि मन्त्रोऽयं तस्य साधने ।
नग्नता मधुनः पानं प्रियोच्छिष्टस्य च ग्रहः ॥६।६१॥

इसके बाद पुन :—नर्मवचन, चुम्बन, अधरामृत की प्रशंसा, कमलकुड्मल-चारुकुचांकुर की प्रशस्ति, अनावरण, रति-युद्ध, शैथिल्य, निद्रा और वैतालिकों द्वारा प्रातःकाल कृष्ण का जगाया जाना, आदि वर्णित है।[3] इसके बाद

---

१. तदा स उत्थाय विधिर्हुताशनं प्रज्वाल्य कुण्डे स्थितयोस्तयोः पुरा ।
श्रुतेः करग्राहविधिं विधानतो विधाय धाता समवस्थितोऽभवत् ॥
—गर्गसंहिता ॥

२. द्रष्टव्य—आनन्द वृन्दावन-आदि ।

३. द्रष्टव्य—भागवत चम्पू—पृष्ठ ११२ से अन्त तक अथवा श्लोक ६।३६-१२१ तक ।

मान वर्णित है और कृष्ण द्वारा प्रसादन भी।[1] कवि की विकृत मनोवृत्ति का चरमरूप अश्लीलता की सीमा का भी उल्लंघन कर जाता है, जब वह कहता है :—

प्राणप्रिया ऋतुमती न समागमार्हा,
तिस्रोनिशा इति विलीनविलासजात: ।
स्वेदं प्रपद्य हृदयस्य विनोदमात्र-
मास्वादयन् सह कयापि विधेयया ते ॥६।११७॥

भागवत-चम्पू-परम्परा का प्रथम-ग्रन्थ होने के कारण, वर्ण्य-विषय की दृष्टि से श्रीमद्भागवत की विशुद्ध धारा को जिस प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये था, कवि नहीं रख सका है। विलासी राज्य-दरबार का पूर्ण प्रभाव, उसके शृंगार-वर्णन में दिखाई पड़ता है। कालिदास को इतना प्राचीन न स्वीकार करने के पीछे उनकी यह शृंगार वृत्ति भी कारण बन गई है—फलस्वरूप कुछ इतिहासकार उन्हें १६ वीं शताब्दी के लगभग हुआ मानते हैं।[2] अक्षय सूरि की व्याख्या सहित भागवत चम्पू का द्वितीय संस्करण भी, बम्बई से प्रकाशित हो चुका है।

८—अभिनव भारत चम्पू[3] :—

अभिनव कालिदास की यह एक अन्य रचना कही जाती है, जो महाभारत की कथा को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करती है। यह कृति प्रकाश में नहीं आई है।

९—भारत चम्पू[4] :—

भारत चम्पू या चम्पू भारतम् के प्रणेता, अनन्त भट्ट का परिचय तथा काल कुछ स्पष्टरूप से निर्दिष्ट नहीं मिलता। परम्परया सुना जाता है कि अनन्त भट्ट, भागवत चम्पू के निर्माता अभिनव कालिदास के प्रतिस्पर्धी थे। उन्हीं की प्रतिस्पर्धा में अनन्त भट्ट ने भी, भागवत चम्पू एवं भारत चम्पू की रचना की थी। इसी परम्परा के आधार पर यह कल्पना की जा सकती है कि अनन्त भट्ट भी अभिनव कालिदास के साथ ग्यारहवीं शताब्दी में

---

१. द्रष्टव्य-भागवत चम्पू पृष्ठ—१११-११८।
२. संस्कृत लिट्रेचर पृ० १३८। आनन्दकन्दचम्पू की भूमिका पृ० ३।
३. द्रष्टव्य—लेविसराइस केटलाग (२४६)। अप्रकाशित।
४. चम्पू भारतम्—अनन्तभट्ट—आचार्य रामचन्द्र मिश्र की हिन्दी टीका सहित, विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला ३१, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी से १९५७ में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

विद्यमान रहे होंगे। इस भारत चम्पू से मालाबार निवासी नारायण भट्टात्रि ने अपने निबन्धों में बहुत से उद्धरण दिये हैं तथा मानवेद ने इस भारत-चम्पू पर टीका भी लिखी है। मानवेद का समय १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है, अतः अनन्त भट्ट का समय १६ वीं शताब्दी से पूर्व ही सिद्ध होता है।[1] भारत चम्पू की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ, दक्षिण भारत के विविध पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं। इससे इसकी लोकप्रियता सिद्ध होती है। प्रेस के अभाव में इसके अत्यधिक प्रचार एवं लोकप्रिय होने में पर्याप्त समय लगा होगा, अतः ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग अनन्त भट्ट की स्थिति मानना असंभव कल्पना नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दी में ही निर्मित भोज का चम्पू-रामायण भी चम्पू-भारत के सदृश ही पद्य-बहुल है। इसके गद्य-खण्ड भी रामायण के सदृश ही छोटे-छोटे हैं। अलंकृत एवं समासबद्ध होते हुये भी यशस्तिलक (९५९ ई०) या वरदाम्बिका परिणय (१६ वीं) की भाँति इसका गद्य-खण्ड बृहत् नहीं है।

चम्पू भारत एक विशाल काव्य ग्रन्थ है, जिसमें महाभारत की कथा संक्षिप्तरूप में बारह स्तबकों में वर्णनात्मक रीति से निबद्ध की गई है। इसमें १०४१ श्लोक एवं लगभग २०० से ऊपर गद्य-खण्ड हैं। इस काव्य की विशेषता इसके पद्यों में ही है।

कथावस्तु का आरम्भ भागवत चम्पू की भाँति ही पद्यबद्ध मंगलाचरण से हुआ है :—

कल्याणं वो विधत्तां करटमदधुनीलोलकल्लोलमाला-
खेलल्लोलम्बकोलाहलमुखरितदिक्चक्रवातान्तरालम्।
प्रत्नं वेतण्डरत्नं सततपरिचलत्कर्णतालप्ररोह-
द्वातांकूराजिहीर्षादरविवृतफणाश्रृङ्गमूषा भुजंगम् ॥१।१॥

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में इससे पूर्व एक और श्लोक उपलब्ध होता है :—

शरदिन्दुविकासमन्दहासां स्फुरदिन्दीवरलोचनाभिरामाम्।
अरविन्दसमानसुन्दरास्यामरविन्दासनसुन्दरीमुपासे ॥[2]

---

१. कृष्णमाचारी का इतिहास–पृष्ठ ५११ अथवा–चम्पू भारत की भूमिका–पृष्ठ ४।

२. द्रष्टव्यः—मद्रास कैट० १२२४४ नं०, कृष्णमाचारी का इतिहास-पृष्ठ ५११।

आरम्भ में पाण्डु की उत्पत्ति-कथा एवं उनका मृगया-विहार वर्णित है। मृगया के ही अवसर पर पाण्डु द्वारा रतिपरायण मृगरूपधारी किन्दम ऋषि को मारने एवं उनके द्वारा दिये गये अभिशाप का वर्णन है। पाण्डु का माद्री से विहार एवं उनकी मृत्यु तक की कथा प्रथम स्तबक में दी गई है। हस्तिनापुर में पाण्डवों का निवास, लाक्षागृह से पलायन, द्रुपद की कन्या द्रौपदी से विवाह तक की कथा द्वितीय स्तवक में, विवाह से खाण्डव-वन दहन तक तृतीय स्तवक में, राजसूय यज्ञ, शिशुपाल वध, वनवास, किरातार्जुनीय की कथा चतुर्थ में, अर्जुन का इन्द्र के यहां निवास, द्वैतवन की घटनायें पचम स्तवक में, विराट के यहां अज्ञातवास, कीचक वध, कौरवों की सेना की विराट् के यहाँ पराजय षष्ठ में, कौरवों का विराट् पर पुनः आक्रमण, उनकी पराजय, उत्तरा और अभिमन्यु का विवाह सप्तम में, युद्ध की तैयारी, कृष्ण का सन्धि प्रस्ताव अष्टम में तथा नवम, दशम, एकादश और द्वादश स्तबकों में, महाभारत के क्रमानुसार ही युद्ध वर्णित है। अंतिम स्तवक में ही भीष्म का युधिष्ठिर को उपदेश और अश्वमेध यज्ञ का भी वर्णन है।

महाभारत की प्रमुख घटनायें ही, इस चम्पू काव्य में गृहीत हैं। उपाख्यानों को इसमें प्रश्रय नहीं दिया गया है।

चम्पू-भारत वीररसात्मक काव्य है। आरम्भ भी पाण्डु के मृगया वर्णन से हुआ है। इस अवसर पर कवि ने प्रकृति का अत्यंत भव्य, मनोरम और यथार्थ चित्रण किया है। पाण्डु को आखेटक के रूप में देख कर हरिणियों की दशा का कितना करुण चित्रण है :—

क्षोणीपतौ मदकलं प्रतिकृष्णसारं तूणीमुखे पतितपाणिनखांकुरेऽस्मिन्।
एणीकुलानि तरलैर्यमुनाजलानां वेणीमिवाक्षिवलनैर्विपिने वितेनुः[1] ॥१।१७॥

पाण्डु को उन्मत्त बना देने वाले वसन्त का वर्णन, गद्य-पद्य दोनों में ही अलंकृत एवं अनुप्रासमयी मधुर-पदावली में किया गया है। इनका पदलालित्य भी दर्शनीय है :—

अथ कदाचिदखिलहरिदन्तरनिरन्तरचलमानमलयपवमानकम्पितचम्पकसम्पादितसौरभसंपदनुकंपितनिलिम्पपथाः केसरकुसुमकेसरशिखरभासुरधूलिधूसरदिशो मनसिजविजयसहकारचतुरसहकारपल्लवतल्लजपरिचर्वणगर्वायमाणकलकण्ठयुवककण्ठोक्तपथिकजनसन्दोहजीवितसंदेहा वनदेवतावदनतिलकायमानतिलककलिकावलिपलितभावुकनमोविभागा मदनहुतभुगंगारसदृशकमलभृङ्गारमधुरसासंगा रचितमद-

१. रघुवंश के—दशरथ के मृगया विहार से-तुलनीय।

शृङ्गारवविभवतुंगा रहितमिथुनशृङ्गाररसाः समुन्मिषद्वासन्तिकामिषेण सीमन्तिनीरतेरुदन्तं दुरन्तं विचिन्त्य रहसि वसन्तं नृपं तमिव हसन्तो वसन्तोदयवासरा मन्दं मन्दमरण्यांगधरण्यां कमपि विकासमापादयामासु[1] ॥

किंशुकस्य वदने रुचिरत्वं किंशुकस्य हृदयेऽपि वशित्वम् ।
किंशुकस्य कुसुमेषु नदन्ती शंसतिस्म मधुपालिरितीव ॥१।६८॥
कुरबकैरवकेलिभृतः सुधा समधुरं मधुरं मधुषट्पदाः ।
पपुरवापुरवार्यमपि स्मयं नृपवने पवनेरितपादपे[2] ॥१।६९॥

अनन्त भट्ट का युद्धवर्णन अत्यंत अनूठा है। उसके भिन्न-भिन्न रूपों पर उनकी सूक्ष्म दृष्टि गई है और परिस्थिति के अनुकूल ही, परन्तु उर्जस्वित भाषा में, उनका वर्णन भी किया गया है। रात्रि के घोर अन्धकार में भीम और कीचक के युद्ध का वर्णन देखिये :—

अवेलितारावमवीरवादम् , अवीक्षकश्लाघनचाटुगुम्फम् ।
अनुच्चनिःश्वासमहुंक्रियाकम् , अभूतपूर्वं तदभून्नियुद्धम् ॥६।७१॥
शिलीमुखैश्चित्तजचापजुष्टैर्दत्तानि रन्ध्राणि दधन्निजाङ्गे ।
स्मोरजातेन विधूनितोऽपि स कीचको नैव चुकूज किंचित् ॥६।७२॥

एक ओर यह शान्त, निस्तब्ध, नीरव युद्ध है, तो दूसरी ओर कुरुक्षेत्र में सिंहनाद करते सेनापतियों एवं हाय-हाय करती सेनाओं का भी, ओजस्वी चित्रण हुआ है :—

धन्वी धानुष्कमारादसिभृतमसिमान् कुन्तिनं कुन्तधारी ।
चक्रास्त्रं चक्रहेतिर्गदिनमपि गदापाणिरन्योन्यमेत्य ॥
स्वस्वास्त्राणां प्रयोगे दृढपरिचितयो हन्तृवध्यत्वशैली ।
साधारण्ये प्रतिष्ठामभिविदधुरमी द्वन्द्वयोधाग्रगण्याः ॥६।३१॥

ततः—धृष्टद्युम्नोत्कृतममणिमग्रे दृष्ट्वा हा हा शब्ददीनां स्वसेनाम् ।
कोदण्डज्यामामृशन्घोरघोषां कोपाद् भीष्मः प्राविशत्पार्थसैन्यम् ॥
॥ ६।३ २॥
ससिंहनादे सरितः कुमारे चापं समाकृष्य शरैर्विमुक्तैः ।
परान्वरीतुं प्रथमं प्रवृत्ते वरान्वरीतुं ववलेऽप्सरोभिः ॥६।३३॥

---

१. पृष्ठ ४६-४७ ।

२. तुलनीय—मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥माघः ६।२०।
विरचितामधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः ।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरवका रवकारणतां ययुः ॥
कालिदास, रघु० ।६।२६।

महाभारत की सम्पूर्ण कथा को समेटने के प्रयत्न में, कई घटनाओं का सांकेतिक वर्णन मात्र ही हुआ है।[1] अनन्त भट्ट की प्रशस्ति सम्बन्धी दो निम्नलिखित श्लोक भी प्राप्त होते हैं :—

दिगन्तरलुठत्कीर्तिरनन्तकविकुंजरः ।
प्राणैस्तुल्यं सरस्वत्याः प्राणैषीच्चम्पुभारतम् ॥१॥
उन्मीलदम्बुजकदम्बकसौरभीणा-
मुन्नृत्यदीशमुकुटी तटिनी सखीनाम् ।
आचान्तवैरियशसाममृतोमिलानां-
वाचामनन्तसुकवेर्वसुधाप्यमूल्यम् ॥२॥

सम्भव है ये दोनों श्लोक, किसी अज्ञात कवि द्वारा निर्मित एवं प्रचलित किये गये हों अथवा इस ग्रन्थ के प्रतिलिपिकार वेंकटेश्वर की रचना हों, क्योंकि दूसरे श्लोक के अनन्तर लिपिकार का साथ ही परिचय दिया गया है :—

निडिगण्ठिवंशतटिनीशचन्द्रमा वटभूरुहोटजनिवासिसेवकः ।
विबुधो लिलेख भुवि वेंकटेश्वरः शुभचम्पुभारतमनन्तनिर्मितम्[2] ॥

चम्पू भारत पर, (१) कुर्वीकुलचन्द्ररामकवीन्द्र, (२) मल्लाडिलक्ष्मण स्वामी, (३) नारायण स्वामी, (४) कुमार तातार्य, (५) नरसिंहाचार्य एवं (६) किसी अज्ञात व्यक्ति को टीकायें उपलब्ध हैं।

१०—भरतेश्वराभ्युदय चम्पू[3] :—

असाधारण विद्वान् एवं दिगम्बर जैनी गृहस्थ पंडितप्रवर आशाधर की यह कृति ऋषभ के पुत्र भरत के चरित को आधार बना कर प्रस्तुत की गई है। भागवत में वर्णित, बाइस अवतारों में आठवें अवतार ऋषभ हैं। यही जैनों के आदि तीर्थंकर हैं। आठवीं शताब्दी से पूर्व ही जिनसेन ने जैनों के आदि पुराण की रचना की है, जिसमें ऋषभ देव के चरित्र के अतिरिक्त छब्बीसवें से अड़तीसवें पर्व तक भरत का विस्तृत चरित वर्णित है। ३७ वें पर्व में भरतेश्वराभ्युदय वर्णित है। अरिष्टनेमिपुराण या जैनों के हरिवंशपुराण के ग्यारहवें और बारहवें पर्व में भी भरत का चरित वर्णित है।

---

१. द्रष्टव्य :—१२।३० में—युधिष्ठिर ने भीष्म से वर्णाश्रम का रहस्य प्राप्त किया इतना ही उल्लेखमात्र है।

२. द्रष्टव्य :—मद्रास कैट०-१२२४४। ३. अप्रकाशित।

मोतीलाल हीराचन्द गांधी के मतानुसार पंडित आशाधर विक्रम सं० १३०० (१२४३ ई०) में विद्यमान थे। जिनयज्ञकल्प, सागर धर्मामृत, अनागार धर्मामृत, सहस्रनाम स्तोत्र, त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र, प्रेयरत्नाकर और भरतेश्वराभ्युदय चम्पू आदि इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला (३६) से प्रकाशित : त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रम् : की भूमिका में पृष्ठ ४ पर उक्त गांधी ने कहा है :—

"भरतेश्वराभ्युदय—उत्तम काव्य, प्रत्येक सर्गाच्या शेवटीं सिद्धः शब्द येतो, तो स्वोपज्ञ टीके सह लिहिला। हा ग्रन्थ सोनागिरिचे भट्टारकांचे भाण्डारान्त आहे—"

११—पुरुदेव चम्पू[1] :—

पंडितप्रवर आशाधर के शिष्य अर्हत् या अर्हदास की यह रचना जैन सन्त पुरुदेव का जीवन-वृत्त प्रस्तुत करती है। आशाधर के शिष्य होने के कारण अर्हदास का समय भी तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध ही है। इनकी अन्य रचनायें हैं—मुनि सुव्रत काव्य एवं भव्यजन कंठाभरण[2]।

आदिपुराण, उत्तरपुराण एवं मुनि सुव्रतपुराण में पुरुदेव का चरित वर्णित है। यह कथा पहले गौतम नामक गणभृत् ने श्रेणिक नामक राजा को सुनाई थी।

> श्रीमद् गौतमनामधेयगणभृत् प्रोवाच यां निर्मलां।
> ख्यातः श्रेणिकभूभृतो जिनपतेराद्यस्य रम्यां कथाम् ॥
> तां भक्त्यैव चिकीर्षतो ममकृतिश्चम्पूप्रबन्धात्मिका।
> वेलातीतकुतूहलाय विदुषामाकल्पमाकल्पताम् ॥१।१६॥

अन्य जैन चम्पू काव्यों के सदृश ही इसमें भी जिनवन्दना है।

> क्रियाद्वः कल्याणं भ्रमरहितसामोदसुमनः।
> समासेव्यः श्रीमानृषभ इति विद्वत्सुविदितः।
> ददानः कल्पद्रुः श्रितजनततेरागमफलम्।
> समासीनो दिव्यध्वनिमृदुलतालंकृतमुखः ॥१।१॥

अपनी कविता के विषय में स्वयं अर्हदास ने कहा है कि वह कोमल-चारु-शब्द-निचय से सम्पन्न है। भगवान् की भक्तिरूपी बीज से, इस कविता-

---

१. बम्बई से प्रकाशित-डि० कैट० मद्रास-१२३२६

२. आशाधरांचें अनेक शिष्य बरेच विद्वान् होते, त्यांपैकी अर्हदास कवींचें पुरुदेव चम्पू, मुनिसुव्रतकाव्य, भव्यजनकंठाभरण हे ग्रन्थ प्रसिद्ध आहेत। त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रम् की भूमिका में—मोतीलाल हीराचन्द गांधी। पृष्ठ ६ ॥

लता का उद्भव हुआ है। विविध वृत्त इसके पल्लव एवं अनेक अलंकार इसके पुष्प-गुच्छ हैं। ऋषभ–कल्पवृक्ष से लिपटी यह कविता-लता व्यंग्य की श्री से सुशोभित है :—

जातेयं कवितालता भगवतो भक्त्याख्यबीजेन मे,
चंचत्कोमलचारुशब्दनिचयैः पद्यैः प्रकामोज्ज्वला।
वृत्तैः पल्लविता ततः कुसुमितालंकारविच्छित्तिभिः,
सम्प्राप्ता वृषभेशकल्पसुतरुं व्यंग्यश्रिया वर्धते॥

गद्य काव्य की भांति अनुप्रासमयी-समस्त-पदावली-संपृक्त-भाषा में नगरी वर्णन से इसका आरम्भ हुआ है :—

अथ विशालवाजिमाला विक्षिप्तविविधमौक्तिकपुञ्जसंजातमरालिका अमसमागतदृढालिंगनमंगलतरंगित... रजताचलस्योत्तरश्रेण्यामलकाभिधाना पुरी वरीवर्त्ति।
। १ स्तबक।

कथा के उपसंहार में अहिंसा के प्रभाव का वर्णन किया गया है और श्रोताओं की सर्वजीवदया की ओर उन्मुखता प्रदर्शित की गई है :—

वृषभसेनमुखा गणिनस्तथा सकलजन्तुषु सख्यमुपागताः।
विमलशीलसुशोभितमानसाः परमनिर्वृतिमापुरिमे क्रमात्॥
जयतां मृदुगम्भीरैर्वचनैः परिनिर्वृतेर्हेतुः।
सुरसार्थसेवितपदः पुरुदेवस्तत्प्रबन्धश्च॥
इत्यर्हद्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे दशमस्तबकः॥

१२—अमोघ राघव चम्पू[1] :—

वाल्मीकि रामायण पर आधारित अमोघ राघव चम्पू के निर्माता दिवाकर के पिता का नाम विश्वेश्वर था। इस चम्पू काव्य की रचना शक १२२१ (१२९९ ई०) में हुई थी। वाल्मीकि और कालिदास की स्तुति में दिवाकर ने अति मनोहर छन्द लिखे हैं :—

वाणी वासमवाप यस्य वदनद्वारिप्रतीक्ष्येव हृत्-
पद्मस्थाम्बुजनामनाभिनिवसल्लोकेशसेवाक्षणम्।
वल्मीकप्रभवाय कल्मषभिदे तस्मै परस्मै नमो-
रामोदात्तचरित्रवर्णनवचःप्रोद्योगिने योगिने॥
रम्या श्लेषवती प्रसादमधुरा शृङ्गारसङ्गोज्ज्वला-
चाटूक्तैरखिलप्रियैरहरहस्संमोहयन्ती मनः।
लीलान्यस्तपदप्रचाररचना सद्वर्णसंशोभिता,
भाति श्रीमति कालिदासकविता कान्तेव तान्ते रता[2]॥

---

१. ट्रि० कैट० V. ६३६५। अप्रकाशित।
२. द्रष्टव्य—कृष्णमाचारी का इतिहास पृष्ठ ५१७।

१३—यतिराज विजय चम्पू[१]:—

इस काव्य के प्रणेता अहोबल सूरि के पिता का नाम, वेंकटाचार्य और माता का नाम लक्ष्माम्बा था। इनके गुरु श्री राज गोपाल मुनि थे। कवि ने इस चम्पू काव्य के उपसंहार में अपने आपको तिरुमलाइ धनगिरि (मुहिल कोण्ड) परिवार से सम्बन्धित बताया है और वेदान्तदेशिक से आशीर्वाद की याचना की है। अहोबल का एक दूसरा चम्पू काव्य-विरूपाक्ष वसन्तोत्सव चम्पू-भी उपलब्ध हुआ है। उसके वर्णन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि, अहोबल विजयनगर राज्य के संस्थापक स्वामी विद्यारण्य एवं हरिहर प्रथम के समय विद्यमान थे। विजयनगर राज्य की स्थापना तुंगभद्रा के तट पर सन् १३३६ ई० में हुई[२]। विरूपाक्ष वसन्तोत्सव चम्पू काव्य में विजयनगर के राजा को चक्रवर्ती कहा गया है। विजयनगर की यह स्थिति लगभग १३५० ई० के समीप आई, जब हरिहर शान्तिपूर्ण ढंग से राज्य कर सकता :—

विद्यारण्ययतीन्द्रनिर्मितपुरश्रीचक्रवर्तीनृपः ॥ पृ० १६ ॥ विरूपाक्ष० ॥

अतः अहोबल का समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा सकता है। वेदान्तदेशिक (वेंकटनाथ वेदान्ताचार्य) विद्यारण्य मुनि के सहपाठी और पुराने मित्र थे। आचार्य वेंकटनाथ, विक्रम सं० १४२६ (१३६६ ई०) में १०२ वर्ष की अवस्था में परलोकवासी हुये[३]। अतः अहोबल द्वारा अपने दोनों चम्पू काव्यों की रचना सम्भवतः १३५० ई० और १३७० ई० के मध्य में की गई है।

यतिराज विजय चम्पू काव्य में सत्रह उल्लास हैं, जिनमें अन्तिम उल्लास अपूर्ण है। इनमें विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा सहित महान् वैष्णव सन्त एवं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के पूर्ण प्रतिष्ठापक यति-राज आचार्य रामानुज के जीवन की प्रमुख घटनाएँ चित्रित की गई हैं।

इस विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा का क्रम इस प्रकार माना जाता है—भगवान् श्री नारायण ने जगज्जननी श्री महालक्ष्मी को

---

१. डि० कैट० मद्रास १२३३८। अप्रकाशित।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृष्ठ ४११ डा० ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद १९५५ (लेविस राइस, माइसोर एण्ड कुर्ग फ्राम दि इन्स्क्रप्सन्स पृ० ११०)

३. हिन्दुत्व—पृष्ठ ६५९-६६०, श्री रामदास गौड़, ज्ञानमण्डल काशी से सं० १९९५ में प्रकाशित।

उपदेश दिया, दयामयी माता से वैकुण्ठ पार्षद् श्री विष्वक्सेन को उपदेश मिला, उनसे श्री शठकोप स्वामी को, इनसे श्री नाथ मुनि को, नाथ मुनि से पुण्डरीकाक्ष स्वामी को, इनसे श्री राम मिश्र स्वामी को और श्री राम मिश्र जी से श्री यामुनाचार्य जी को प्राप्त हुआ[१]। श्री यामुनाचार्य, श्री रामानुजाचार्य के परम गुरु थे[२]। विद्यारण्य स्वामी और वेदान्तदेशिक इसी आचार्य परम्परा में आते हैं।

अहोबल ने स्वयं इस आचार्य परम्परा का निर्देश किया है :—

> आदौ सरश्शठरिपुप्रमुखावतारान् नाथार्ययामुनमुनिप्रवरप्रभावान्।
> **रामानुजस्य चरितं निपुणं भणामि हृद्यैरवद्यविमुखैरथ गद्यपद्यैः ॥१।१०॥**

इस चम्पू काव्य में यमक का स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है। वाक्य-विन्यास में सरलता पर ध्यान रखा गया है। गाढ-समासबद्धता नहीं है। अधिकतर व्यास शैली का ही प्रयोग हुआ है। इस काव्य का आरम्भ वैकुण्ठ-नगर के वर्णन से ही हुआ है—

अस्ति खलु चतुर्दशभुवनात्मा दण्डादुपरिपरस्तात्तमसः कार्यजातमतीत्य शुद्धसत्त्वे सुखाकरे दिवाकरादिविरहेऽप्ययुतादित्यविद्योतिते.... ब्रह्मादिभिरपि दुरासदैः सदैकरूपैर्यानवरैस्सह सर्वतः क्रीडता भगवदनुकूलैकभोगेन महात्मवृन्देन वन्दितं दिव्यावरणशतसहस्रालंकृतं वैकुण्ठनगरम् ॥ सकलबद्धसमुद्धरणाय कमप्युपायं निःश्रेयसदायकं निरपायमारचय्य परित्रातुमर्हसीति भुवनजननी परमपुरुषं प्रार्थयामास ॥
—प्रथमोल्लासे ॥

सोलहवें उल्लास के अन्त में भी मंगलकामना कवि ने व्यक्त की है :—

> **विष्णोर्दिव्यनिकेतनेषु भगवद्भक्तिस्पृशामालये-**
> **ष्वश्रान्तं निगमान्तमोदनवतां वाचां मुखेषु स्थितः ॥**
> **नित्यं मंगलमस्तु ते जयजयेत्थाराधितो भक्तितः।**
> **श्रीमानस्तु समस्तचिन्तितमनःकामाय रामानुजः ॥**

इति अहोबलसूरिणा विरचिते यतिराजचरित्रे चम्पूप्रबन्धे षोडशोल्लासः ॥

१४—विरूपाक्ष वसन्तोत्सव चम्पू[3] :—

अहोबल की यह दूसरी कृति भी खंडित है। अन्तिम परिच्छेद उत्तर तुर्यकाण्ड के आरम्भ में कवि ने बतालाया है कि इस चम्पू काव्य की रचना, पामुडि पट्टन के प्रधान के आग्रह पर की गई है :—

---

१. हिन्दुत्व—पृष्ठ ६४३। २. वही पृष्ठ ६४५।
३. आर० यस० पंचमुखी द्वारा संपादित होकर मद्रास से प्रकाशित।

श्रीपम्पेशरथोत्सवाश्रितकथामेतां सपूर्वेक्षणां-
श्रुत्वा पामुडिपट्टनाधिपमहाभोगीश्वरः सादरम् ।
सुप्रीतः पुनरादिदेश तमिमं विप्रं ततः किं परम् ।
ब्रूहीति स्वयमेवमुत्तरमयं प्राह द्विजोऽहोबलः[1] ।।

यह पामुडि पट्टन अनन्तपुर जिले में है। उस स्थान के शिव भोगीश्वर कहलाते हैं। प्रधान और शिव के नाम में (भोगीश्वरमें) यहाँ श्लेष प्रतीत होता है। अहोबल यहीं के प्रधान के सभा-पंडित थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस चम्पू-काव्य में प्रचुर सामग्री सुरक्षित है। विरूपाक्ष महादेव के इस वर्ण्य-वसन्तोत्सव में सम्मिलत होने के लिये अनेक सामन्त पधारे थे। कवि ने उनका क्रमशः वर्णन किया है। महोत्सव देखने के लिये गये हुये कवि से, किसी पार्श्वस्थित व्यक्ति ने विविध प्रमुख व्यक्तियों के विषय में पूछा। कवि ने पदमर्यादा के अनुरूप सम्भवतः प्रत्येक का वर्णन प्रस्तुत किया :—

सर्वप्रथम वर्णन विद्यारण्य यति का है, जो विजयनगर राज्य के संस्थापक थे। द्वितीय वर्णन काश्मीर के भूपाल का है :—

विविधवर्णविचित्रानेकसुलक्षणोत्तमाश्वपतिः.........श्रीविरूपाक्षदेवमहोत्सवावलोकनाय समागतोऽयं..............काश्मीरभूपालः[2] ।।

तृतीय प्रधान पुरुष राशिदेशाधिपति है। इसे जनाश्रय और अन्नसत्र का संचालक कहा गया है।

द्वितीय और तृतीय पंक्ति के व्यक्तियों में क्रमशः मोक्षपुर के राजा सिद्ध रामेश्वर के उपासक एवं वेल्लारि के अधिपति, विद्यानगर के सेनापति, रायदुर्ग के अधिपति, वनेचर राजा चित्रशीला, हरिहर के एक सामन्त, मल्लारि गिरि के महादेव के उपासक, ब्राह्मण सामन्त भुजंग नगराधिप, विद्यानगर के सम्राट् के महल के सामने ही महासौध में निवास करने वाले ब्राह्मण सामंत ढम्बलपुराधिपति, एवं वंशनगर के अधिपति का परिचयात्मक वर्णन दिया गया है। इनके अतिरिक्त राशिपुर देशाधिपति के अमात्य-पुत्र तथा अश्वपति के मंत्री का वर्णन, उत्तर तुर्यकाण्ड में है।

विद्यानगर, कमलापुर, पम्पा, तुंगभद्रा, अश्वत्थवृक्ष, गुंजामहादेव, पाताल विरूपाक्ष, ऋष्यमूक, मातंग और हेमकूट, किष्किन्धा के गुहामन्दिर में स्थित रंगनाथ का भी वर्णन हुआ है।

---

१. पृष्ठ, ७८ हस्तलिखित प्रति।
२. पृष्ठ, २१-२२।

यह चम्पू-काव्य चार काण्डों में विभाजित है। तृतीय काण्ड के आरम्भ का कुछ भाग नष्ट हो गया है। आरम्भ के तीन काण्ड–पूर्व काण्ड और चौथा–उत्तर तुर्यकाण्ड–कहा गया है। इसमें माधव-नवरात्र के नौ दिनों में होने वाले विरूपाक्ष महादेव के वसन्तोत्सव का वर्णन है। प्रारम्भ के तीन काण्ड में रथयात्रा का और चतुर्थ काण्ड में आखेट या मृगया महोत्सव का वर्णन है, जो साथ-साथ ही सम्पन्न होता था। शिव विरूपाक्ष स्वयं वन में मृगया के लिये जाते थे। यह उत्सव प्रतिपदा के दिन होता था। द्वितीया के दिन पम्पाम्बिका के साथ विरूपाक्ष का विवाहोत्सव होता था। उत्तर काण्ड में मृगया से लेकर अवभृथ तक का वर्णन है।

अवान्तर कथा के रूप में एक लोभी और कंजूस ब्राह्मण की कथा अत्यंत मनोरंजक है। अपने पुत्र की उत्पत्ति, विवाह एवं अन्य अवसरों पर वह कंजूसी की अन्तिम सीमा तक पहुँच जाता है, जब पुत्र के विवाह के लिये भीख मांग कर लाये गये अच्छे वस्त्र को भी बेच देता है।

समय-समय पर अहोबल ने गद्य भाग में बाण शैली का अनुकरण किया है, फिर भी इसकी शैली में स्वाभाविकता और सरलता है। व्यंग्यात्मकता के अतिरिक्त मनुष्यों एवं वस्तुओं के मूर्तीकरण में, उसकी सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति का दर्शन होता है। अनेक छोटी-छोटी वस्तुयें–जैसे मेले में वितरण होने वाली–चने, गुडोदक, पानक आदि—भी उसकी आँखों से ओझल नहीं होने पाई हैं। एक प्रत्यक्षदर्शी की भाँति उसने हर हर महादेव एवं–नमः पार्वतीपतये–के नारों तक का उल्लेख किया है। कवि ने प्रसंगवश विद्यारण्य, वेंकटाचलपति, जयदेव, हरदत्ताचार्य, दीक्षित, विद्यासागर आदि कतिपय कवियों का भी उल्लेख किया है। दम्बलपुर के सामन्त का वर्णन उसकी शैली का परिचय कराने के लिये पर्याप्त है :—

अयं तावन्निजकुलदैवतवेंकटाचलपतिश्रीनिवासमूर्तिचरणसरोरुहपरिचर्याचरण-समासादितानेकभोग्यसकलस्थिरवृत्तिकलितगदाधरपुराग्रहारदेशाधिपत्यसाम्राज्य – लक्ष्मीप्रसन्नवाग्देवताकटाक्षवीक्षणावाप्तसद्गुरूपाध्यायाध्यापितसलक्षणसांगस्वाध्यायसत्काव्यरूपकालंकारशास्त्रजातार्णवविचारमथनसमुदीर्णार्थानुभवामृतनिरन्तरा – स्वादजनितपरमानन्दभरभरितस्वान्तनितान्तचिन्तनोपस्थिताद्वैतसिद्धान्तवेदान्ताधि-करणरत्नमालिकालंकृतवाक्खद्योतप्रकाशनिराकृतारातिदुर्मततिमिरनिकरो .... श्रीनिवासान्वयसंभवो.........विद्वत्प्रभुः वदान्यशिरोमणिः कपोतगिरिसन्निहित दंबलपुरदेशाधिपतिः[1] ॥

---

१. पृष्ठ २६–२७।

१५—रुक्मिणी परिणय चम्पू[1]:—

संस्कृत के परिणय चम्पू काव्यों की रचना विजयनगर के राजा श्री कृष्ण देव के समय (१५०६-१५३० ई०) में अधिक हुई है। तेलुगु साहित्य के काव्य काल का द्वितीय उत्थान, इन्हीं के समय से माना जाता है[2]। अतः सम्भव है इस काव्य के रचयिता अम्मल ने भी इसी के लगभग अपना यह चम्पू-काव्य लिखा हो। यादववंशी राजा महादेव और राजा रामचन्द्र के समसामयिक एक वैष्णव आचार्य एवं विद्वान् अमलानन्द हुये हैं, जिनकी वेदान्त कल्पतरु-(भामती टीका की व्याख्या है) शास्त्रदर्पण एवं पंचपादिका की व्याख्या उपलब्ध होती है। तीनों ग्रंथों की भाषा प्रांजल और भाव गम्भीर है। इनसे अमलानन्द की महान् विद्वत्ता का परिचय मिलता है। ये देवगिरि राज्य के अन्तर्गत किसी स्थान में रहते थे। उनके जन्मस्थान आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता[3]।

यदि इस चम्पू काव्य के प्रणेता ये ही अमलाचार्य हों तो इनका समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध होगा।

रुक्मिणी विवाह की कथा, हरिवंशपुराण के विष्णु पर्व अध्याय ४७ से ६० तक, विष्णुपुराण में (५।२६) ब्रह्मवैवर्त उत्तरार्ध (अ० १०५-१०८) में तथा भागवतपुराण के दशमस्कन्ध के ५३-५४ वें अध्याय में वर्णित है। रुक्मिणी परिणय पर लिखे गये चम्पू काव्यों का मुख्य आधार हरिवंश और भागवत ही रहे हैं। इस चम्पू काव्य की भाषा भी अत्यन्त प्रांजल है।

१६—आचार्य विजय चम्पू[4] :—

इस चम्पू काव्य का दूसरा नाम वेदान्ताचार्य विजय चम्पू भी है। इसके रचयिता कवि तार्किकसिंह वेदान्ताचार्य, कौशिक गोत्रोत्पन्न वेंकटाचार्य के पुत्र तथा परवस्तु वेंकटाचार्य के दौहित्र एवं शिष्य हैं। इन्होंने अपने अध्ययन काल का अधिकांश भाग परवस्तु निगमान्तसूरि के पास व्यतीत किया था। निगमान्तसूरि का सम्बन्ध उस श्रीनिवासार्य के परिवार से था, जिन्होंने जयमंगला नामक किसी सुप्रसिद्ध टीका की रचना की थी। किस ग्रन्थ पर यह टीका थी, यह ज्ञात नहीं है।

---

१. मैसूर कैट०–२७०। अप्रकाशित।

२. तेलुगु और उसका साहित्य–पृ० ४०

३. हिन्दुत्व पृ०–६१८

४. डिस्क्रिप्टिक कैट० मद्रास, १२३६५। अप्रकाशित।

छह स्तबकों का यह चम्पू काव्य खंडित है। इसमें सुप्रसिद्ध आचार्य वेदान्तदेशिक का जीवनवृत्त तथा अद्वैत वेदान्ती कृष्ण मिश्र आदि के साथ हुये उनके शास्त्रार्थ का वर्णन है। वेदान्तदेशिक का समय चौदहवीं शताब्दी का मध्य भाग है। अतः इस काव्य की रचना इससे बाद की ही है। वेदान्तदेशिक की कथा को कवि ने 'प्राचीनोक्ति' कहा है, अतः इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी के पर्याप्त समय बाद हुई प्रतीत होती है।

कल्पद्रुः कवितादिहंसविदुषः प्रज्ञासुधावारिधे-
र्जातः कश्चन कल्पितार्थविततिश्चम्पूप्रबन्धात्मना।
प्राचीनोक्तिवतंसदेशिककथामाध्वीं भजन् षष्ठक-
स्तस्यासौ स्तबकः करोतु सुमनःकर्णावतंसश्रियम्॥

नाथमुनि विजय या यतिराज विजय चम्पू काव्यों की भांति ही इसमें भी आरम्भ में वेदान्ताचार्यों की वन्दना की गई है :—

श्रीमान् वेंकटनाथार्यः कवितार्किककेसरी।
वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि॥१।१॥
नमामि कवितार्किकद्विरदपुंजपंचाननं
कुदृष्टिकदलीवनोन्मथनगन्धदन्तावलम्।
अमेयमहिमानमप्रतिमबुद्धिमश्वानन-
प्रसादविदिताखिलं निगमचूलिकादेशिकम्॥१।२॥
शठद्विषे शान्तिधनाय तस्मै प्रणामवाचं परिशीलयामः।
यत्सूक्तिरूपेण सनातनी सा सरस्वती सर्वजनान् पुनीते।१।१०॥

भाषा सौष्ठव, पदलालित्य, गाढ समासबद्धता, बृहत् वाक्यविन्यास एवं उपमा तथा उत्प्रेक्षा की मालिका प्रस्तुत करने में इस काव्य के निर्माता भी बाण और दण्डी के स्तर तक पहुँच जाते हैं। वेदान्त गुरु का आरंभिक वर्णन ही देखिये :—

चिरन्तनभणितिशिखरपरिषदमृतनिचयपरिचयमृदुलहृदयोदारकेदारसाधिरूढस-मुल्लसद्ग्रहणधारणादिसृदुलपरिष्वंगतरंगितोपचयमतिविततिपुण्डलतिकोदंचितसर्व-तंत्रस्वतन्त्रतागुणभिलनललितयशोधोरणीरमणीयमणिमालिकापरिष्कृतधरणिरमणी-मणिः निर्ममजनहृदनभिमतनर्मभरितचरमयुगपरिकर्मीभूतदुर्मतकथकहतधर्मशर्मनिर्मा-णाखर्वीभवदादरदर्वीकरोर्वीभृदधीशनिदेशावतीर्णसुधाशनविरोधवरूथिनी........

बलराम इव यामुनोत्कर्षकारी, शौरिरिव शतदूषणी, भाषितोत्तरपराकृतकृतकर्मा गमदमघोषजातः, कल्किरिव प्रियविष्णुयशस्सन्ततिः हयग्रीव इव मधुनिरासोल्लसित-सच्चरित्ररहस्यनिक्षेपरक्षाधिकरणसारनिरपायसूक्तिपरिहृतब्रह्मखेदः सूर्य इव सुकृत-

सारसामोदः पूर्णचन्द्र इव पोषितभावजाततात्पर्यचन्द्रिकाह्लादितकुवलयः...वेदान्त गुरुः ।

दर्शन और तत्कालीन काव्य-प्रवृत्तियों का सुन्दर समन्वय इस चम्पू काव्य में हुआ है। इसे पढ़ते हुये गद्य-काव्य का पूर्ण आनन्द उपलब्ध होता है :—

अस्ति खलु विस्तारितलोचनकुतूहलाप्रतिकलविनमदमरपरिवृढमुकुटमहामहानीललोलम्बनिकुरुम्बपरिरम्भचारुचरणारविन्देन........कांचीनाम नगरी ॥

१७—आनन्दवृन्दावन चम्पू[1]:—

इस चम्पू काव्य के रचयिता श्री परमानन्ददास या कवि कर्णपूर का जन्म बंग प्रांत के नदिया जिले के एक गांव कांचनपल्ली में, सन् १५२४ ई० में हुआ था। इनका प्रकृत नाम पुरी दास था। कर्णपूर उपाधि महाप्रभु चैतन्यदेव की दी हुई है। इनके बाल्यकाल में ही इनके पिता शिवानन्द इन्हें साथ लेकर महाप्रभु के दर्शनार्थ गये। महाप्रभु ने इनकी ओर प्यार से देख कर 'कृष्ण कृष्ण' कहा पर यह बिल्कुल नहीं बोले। ऐसी किंवदन्ती है कि महाप्रभु ने अपने पैर का अंगूठा इनके मुंह में कर दिया तब एकाएक इनके मुंह से निम्नलिखित श्लोक निकल पड़ा—

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनतरुणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥[2]

महाप्रभु ने अलौकिक कवित्व शक्ति को देख कर, इनका नाम-कवि कर्णपूर-रख दिया तभी से इनकी ख्याति इस नाम से हुई। श्रीनाथ देव इनके गुरु हैं। कृष्णाह्निक-कौमुदी, चैतन्य-चन्द्रोदय, आदि इनकी अन्य कृतियां हैं।

उपलब्ध सभी चम्पू काव्यों में आनन्द वृन्दावन बड़ा है। इसमें २२ स्तवक हैं, जिनमें श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कृष्ण जन्म से लेकर उनकी किशोरावस्था तक की ललित लीलाओं का वर्णन किया गया है। आरम्भ में कृष्ण-स्तुति द्वारा मंगलाचरण किया गया है—

---

१. यह चम्पू काव्य वृन्दावन मे बंगला लिपि में तथा बनारस से पत्रावली के रूप में नागरी लिपि में प्रकाशित हो चुका है। मूल प्रति द्रष्टव्य—इण्डिया आ० कैट०, ४०३७।४६२

२. आलोचना एवं जीवनी के लिये द्रष्टव्य 'भारती-कवि-विमर्श' ले० रामसेवक पाण्डेय, इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग—पृ० १७८ से २२० तक।

वन्दे कृष्णपदारविन्दयुगलं यस्मिन् कुरंगीदृशां
वक्षोजप्रणयीकृते विलसति स्निग्धोऽङ्गरागः स्वतः ॥
काश्मीरं तलशोणिमोपरितनः कस्तूरिका नीलिमा
श्रीखण्डं नखचन्द्रकांतिलहरी निर्व्याजमातन्वते ॥ १ । १ ॥

सरस्वती या वाणी की वन्दना के उपरान्त, कवि ने अपनी विनम्रता के साथ साथ खलों पर मार्मिक चोट की है :—

निर्म्मलयसि भुवनतलं सतताक्षिप्तेन परमलेन ।
खल-रसने सम्मार्जनि तदपि च भीतिर्भवत्स्पर्शे ॥ १।६ ॥

रास वर्णन के समय चन्द्रोदय का वर्णन, उत्प्रेक्षा की मालिका के साथ कितना मनोरम हुआ है, कवि की कल्पना और वर्णन की चातुरी दोनों का दर्शन यहां होता है—

समुदियाय तुहिनकिरणः स च प्रथमं कोपारुणमुखकमलायाः कमलायाः कपोलपोलककनकताटंक इव युवजनहृत्पटरंगकुण्डवलय इवानङ्गरंजकस्य नभः-कुण्डताण्डविता रसमयसमयनिश्चयघटिका पात्रीव ताम्रमयी सितपरमण्डप इव रश्मिरश्मिवितानितऋतुराजस्य सपल्लवो राजतकुम्भ इव रजनीजनोमहोत्सवस्य विकीर्णतरताराकारातुलमौक्तिकपटलः शुक्तिसम्पुट इव गगनक्षीरनिधेः दर्पण इव शोभादेव्याः, चन्दनतिलक इव रजनिरमण्याः, एकं पुण्डरीकमिवानन्दसरोवरस्य हिण्डीरपिण्ड इव मधुरिमजलराशेः सौध इव सौन्दर्यदेवतायाः सैकतवलय इवाकाशगंगायाः....॥

कहीं कहीं गद्य भाग में, यमकालंकार का अतिशय प्रयोग उसमें कृत्रिमता का सृजन कर देता है। कई स्थलों पर यमक, रसविरोधी नहीं है, जैसे राधा का कृष्ण के प्रति अनुराग देखकर एक गोपी कहती है—

नहि कुमुदो बान्धवमन्तरेण कुमुद्वतीमुद्वती भवितुमर्हति
तपनमण्डलमन्तरेण कमलिनी मलिनीभावमर्हति नहि जलधरोत्संगसंग-
मन्तरेण सौदामिनी दामिनीभवितुमोष्टे ।

वंशी निनाद पर गोपियां किस प्रकार अस्तव्यस्त दशा में, कृष्ण की ओर दौड़ती हैं, इसके वर्णन में कवि की नई सूझ सराहनीय है। दुपट्टे को साड़ी के स्थान पर पहन कर जाती हुई एक गोपी का चित्र देखिये—

उत्तरीयमपि चान्तरीयतामन्तरीयमपि चोत्तरीयताम् ।
यज्जगाम किमभूत् परस्परं पूजनं तदपि नूतमंगयोः ॥

वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी ने, राधा का विविध पुष्पों से वसन्त के समय मानो शृंगार किया हो—

कचौघे पुन्नागं वकुलमुकुलानि भ्रमरके-
ष्वशोकं सीमन्ते श्रवसि सहकारस्य कलिकाः।
स्तनाग्रे वासन्तीकुसुमदलमालेति कुसुमैः-
स्वयं वृन्दा राधां सपदि मुमुदेऽलङ्कृतवती ॥

कर्णपूर भावुक एवं सहृदय कवि हैं। सुकुमार प्रकृति कवि ने ललित कलाओं मुख्यतः नृत्य एवं संगीत का अपना विशद ज्ञान इस चम्पू काव्य में प्रदर्शित किया है। इस चम्पू-काव्य के बीसवें स्तबक में हल्लीसक (स्त्रियों का सामूहिक) नृत्य का अत्यन्त मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें विविध स्वरों, रागों, श्रुतियों, ग्रामों, तानों, मूर्छनाओं और जातियों की गणना की गई है। नृत्य के बोलों के साथ कई श्लोक इसमें दिये गये हैं। उनमें नृत्य करती गोपियों या राधा की भाव-भंगिमा भी चित्रित की गई है। उदाहरण के लिये दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

थै थै थै थै तिगडतिगथै थेति पाठानुकृत्या
विन्यस्यन्त्यो भुवि पदतलं दोर्लतामन्तरिक्षे।
वामावर्तं सकृदथ सकृद्दक्षिणावर्त एव-
न्नृत्यन्त्यस्ताः सरसमधुरं मण्डलस्था विरेजुः ॥

पादाङ्गुल्या क्षितितलमलघुस्फारवक्षोजजानुः
पार्ष्णिद्वन्द्वोपविष्टा हसितवति नमन्नीविविस्तीर्णवक्षाः।
अङ्गुष्ठौ बद्धमुष्ट्योः कुचभुवि करयोर्न्यस्य तालानुकृत्या-
लङ्कारान् कूजयन्ती गदति तथ तथै थै तथै थेति थेति[1] ॥

आनन्द वृन्दावन चम्पू-काव्य के नायक श्रीकृष्ण हैं। वृषभानु नन्दिनी राधा, नायिका हैं। चन्द्रावती, ललिता, श्यामा, आदि उनकी सहचरियाँ हैं। चम्पू का प्रधान रस शृंगार है। स्थल-स्थल पर वीर, अद्भुत, आदि रसों का भी सन्निवेश हुआ है। जिस प्रकार नाटक में विदूषक होता है, उसी प्रकार कवि ने कृष्ण के साथी 'कुसुमासव' को कल्पित किया है, जिसके सहारे हास्य रस का अच्छा परिपाक हुआ है। चम्पू की रचना रीति वैदर्भी है। कहीं कहीं अन्य रसों का अनुसरण करते हुये अन्य रीतियाँ भी हैं। प्रसाद और माधुर्य गुण की बहुलता है।[2]

प्रथम स्तबक में वृन्दावन का वर्णन 'भगवत्स्थानतत्त्ववल्ली विस्तार' है। द्वितीय से सप्तम तक बाल्य लीला लता विलास तथा सप्तम से अन्त तक कैशोर लीला लता विस्तार है। इस पर वृन्दावन चक्रवर्तिन् की टीका है।

---

१. पृष्ठ २००। २. भारती कवि विमर्श-पृष्ठ–१८०।

१८—गोपाल चम्पू :[1]

महाप्रभु चैतन्य के समसामयिक एवं परम वैष्णव जीवराज का यह चम्पू काव्य श्रीमद्भागवत के आधार पर गोपाल चरित प्रस्तुत करता है। महाराष्ट्र-देशोद्भव भारद्वाज गोत्रोत्पन्न श्री कामराज के यह पौत्र थे। गोपाल चम्पू पर इन्होंने स्वयं व्याख्या भी लिखी है। अपना परिचय उन्होंने निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है—

इति श्रीविद्वत्कदम्बहेरम्बसकलविपुलकविकुलतिलकमहाराष्ट्रदेशवारिधिसुधानिधिभारद्वाजकुलकासारराजहंसकाशीस्थजगद्गुरुश्रीमद्दीक्षितकविसोमराजसूरिवर-सूनुश्रीकामराजसूरिवरतनयश्रीव्रजराजकविराजात्मजबालकविश्रीजीवराजविरचितायां चम्पूविहारसमाख्यायां स्वनिर्मितगोपालचम्पूव्याख्यायां पूर्वार्धं समाप्तम् ॥

आरम्भ गंगा की स्तुति से किया गया है—

अम्भोजन्म वमत्यनल्पकरका भृङ्गावलीमेकतः
पंचेषोः शरमन्यतोऽर्द्धशशिनं सूते नवं पल्लवम्।
चित्रं चुम्बति चक्रवाकमिथुनं प्रोद्दामतारागणं
ज्योत्स्ना कापि विधौ गता वितनुतां गंगातरंगान् विधेः ।१।

जीवराज ने नीर विहार के सदृश ही चम्पू विहार को माना है—

मदयति मनो मदीयं तनुजघनभारतीरसविलासः।
किमु सुतनु नीरविहारो नहि नहि चम्पूविहारोऽयम् ॥ अन्तिम श्लोक ॥

इनका समय भी सोलहवीं शताब्दी का मध्य भाग है।

१९—आचार्य दिग्विजय चम्पू :[2]

बाधुल गोत्रोत्पन्न बल्ली सहाय कवि ने सन् १५३९ ई० के समीप इस काव्य की रचना की है। यह प्रति भी अपूर्ण एवं सातवें कल्लोल में खण्डित है। इसमें शंकराचार्य के दिग्विजय का विस्तृत वर्णन किया गया है। शंकराचार्य का आविर्भाव काल आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।[3] सात सौ वर्ष पश्चात् शंकराचार्य के दिग्विजय को प्रस्तुत करने वाले काव्य का आधार आनन्द गिरि रचित शंकर दिग्विजय नामक काव्य है। आनन्द गिरि सुप्रसिद्ध शृंगेरी मठ के अधीश्वर थे। गद्य में

१. मित्रा कैट०, वाल्० १ नं० ७२। वृन्दावन से बंगला लिपि में प्रकाशित।

२. डिस्क्रि० कैट० मद्रास १२३८०। अप्रकाशित।

३. द्रष्टव्य—हिन्दुत्व, पृष्ठ ६०३।

७४ प्रकरणों में 'शांकर दिग्विजय' की रचना उन्होंने की है। इस चम्पू प्रबन्ध-काव्य का वर्ण्य विषय संक्षेप में निम्नलिखित है :—

देवों के आग्रह पर भगवान् शिव ने विश्व से दुराचार की समाप्ति के लिये मलावार के कालडी ग्राम में विद्याधिराज के पुत्र के रूप में जन्म लिया। इनके पिता की मृत्यु के उपरान्त इनकी माता ने ही, सातवें वर्ष में इनका उपनयन संस्कार किया। आठ वर्षों में ही वे सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात हो गये। नदी में स्नान करते समय, एक दिन किसी मगर ने इन्हें पकड़ लिया तथा संन्यस्त जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा करने पर उससे मुक्ति मिली। पुण्डरीक ग्राम के गोविन्द से इन्होंने संन्यास की दीक्षा ली। व्यास के शारीरिक सूत्र पर भाष्य लिखने के उपरान्त इन्होंने आनन्द-गिरि[1], पद्मपाद, हस्तामलक, चिद्विलास-सुधानन्द, ज्ञानकन्द, विष्णु-दर्शन-बुद्धि, विष्णु-गुप्त, समित्पाणि-सुधाकृति तथा बृद्धि-विरंचिन्-नामक नौ शिष्यों के साथ दिग्विजय एवं भ्रमण के लिये प्रस्थान किया।

मध्यार्जुन क्षेत्र में इन्हें अद्वैत दर्शन का ज्ञान हुआ। रामेश्वर क्षेत्र में इन्होंने शैवों के प्रमुख विद्वेषी वीर को शास्त्रार्थ में परास्त किया। अनन्त शयन क्षेत्र में--भक्तविष्णुशर्मन, भागवत ब्रह्मगुप्त, वैष्णव विप्रदेव, पांचरात्र सारंगपाणि, वैखानस माधव और कर्माहीन व्यास दास इनसे प्रभावित होकर इनके मत में दीक्षित हो गये। पवित्र कुमार धारा नदी के समीप सुब्रह्मण्य क्षेत्र में इन्होंने जगद्विधि, होमविधि, सौर, दिवाकर, सुहोत्र और वीति होत्र नामक छः विद्वानों को पराजित कर अद्वैत मार्गी बनाया। गुणपुरम् के गणपालों को परास्त कर भवानीपुर होते हुये यह कुवलयपुर पहुँचे, जहाँ लक्ष्मी के उपासक सारस्वतों और सावित्रों को हराया। उज्जैन में कापालिक प्रमुख वटुक नाथ इनका अनुयायी बन गया। अनुमल्ल में मल्लारि के अनुयायी, वरूथ पुरी में मन्मथ के, अर्थपुर में कुबेर के, इन्द्रप्रस्थ में इन्द्र के अनुयायी भद्रहरि प्रमुख सहित तथा धर्म प्रस्थ में सूर्य के उपासक शंकराचार्य के मत में दीक्षित हो गये। प्रयाग क्षेत्र के निरालम्बी, वाराहोपासक लक्ष्मण, तथा सांख्य योग के अनेकों मतावलम्बी शंकराचार्य से पराजित होकर इनके अनुयायी बन गये। वाराणसी के, चन्द्रोपासक शिवाभरण, पूर्णसमय आदि भी इनके सम्मुख नतमस्तक हुये। यहीं व्यास ने एक वृद्ध के रूप में शंकराचार्य को दर्शन दिया और अद्वैत दर्शन की सत्यता का समर्थन किया। यहीं उन्होंने सर्वमंगल स्तवराज और लिंगपंचक की रचना की।

१. वस्तुतः यह नाम आनन्दतीर्थ होना चाहिये।
(द्रष्टव्य-हिन्दुत्व ६०५ पृ०)

इन विजयों के उपरान्त शंकराचार्य ने हिमालय की यात्रा की। केदार क्षेत्र में मुक्ति लिंग की स्थापना की तथा बद्रिका में उष्ण-जल-सरिता का निर्माण किया। द्वारका में आकर एक शिव लिंग की प्रतिष्ठा की। अयोध्या, गया और बुद्ध क्षेत्र की यात्रा करते हुए शंकर सुप्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट से मिले। मगध में सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी मंडन मिश्र और उनकी पत्नी सरसा (भारती) को परास्त किया। यहीं उन्होंने अमृत नगर के युवराज के मृत शरीर में प्रविष्ट हो कामशास्त्र का अध्ययन किया था। पुनः दक्षिण की ओर आकर ऋष्यशृंग पर्वत के समीप तुंगभद्रा में एक मठ की स्थापना की, वहां शिव लिंग की स्थापना कर भारती को यन्त्रपीठ पर प्रतिष्ठित किया तथा सुरेश्वराचार्य वहां के अधिष्ठाता नियुक्त हुये। वृषाचल और वेंकटाचल में इन्होंने धनाकर्षण चक्र की स्थापना की। कांची में एकाम्र और कामाक्षी के मन्दिरों का निर्माण किया। काम कोटि के मन्दिर में श्रीचक्र की स्थापना की। शंकराचार्य ने वरदराज की भी उपासना की। यहीं इस हस्तलिखित प्रति का अन्त हुआ है।

इस काव्य का आरम्भ शिव स्तुति से हुआ है—

जटाबन्धोदंचच्छशिकरहृताज्ञानतमसे
जगत्सृष्टिस्थेमश्लथनकलनस्फारयशसे।
वटद्मारुएमूलप्रवणमुनिविस्मेरमनसे
नमस्तस्मै कस्मैचन भुवनमान्याय महसे ॥ १ । १ ॥

इस का पद्य भाग सरल एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है—

भूतेशस्य विहारभूमिरतुला काप्यस्ति वाचामभूः।
प्राचामप्यतिवेलनैजगरिमा कैलासनामा गिरिः ॥ १ । ३ ॥

गद्य भाग में अनुप्रास एवं यमक के प्रयोग का प्रयत्न दिखाई पड़ता है-

यः किल जगति सौवर्गविषयपरवशनिर्जरवर्गनिरर्गलसुखभरनिशमनक्षणतिसंहितबुद्धिभिरभिसंधिमत्कर्मततिनिर्माणसुदूरोर्मिलप्रशस्तिभिरप्राकृतचर्मदेहैः कर्मदेवैः।

'कल्लोल' के स्थान पर वल्ली सहाय ने 'कोलाहल' शब्द का प्रयोग भी किया है—

बाघुलगोत्रमहनीयगुहान्तरोद्यद्वल्लीसहायकविसिंहमुखोदितेऽस्मिन्।
आचार्यदिग्विजयसंज्ञमहाप्रबन्धे कोलाहलोऽयमुदभूत्प्रथमः प्रथीयान् ॥

२०—काकुत्स्थ विजय चम्पू[1]:—

वल्ली सहाय कवि का यह द्वितीय चम्पू काव्य है। इससे यह ज्ञात होता है कि नारायण इनके गुरु थे—

---

१. इण्डिया आफिस कैट०, ४०३८/२६२४। अप्रकाशित।

इति श्रीमद्वाधुलवंशपारावारपारिजातेन कवितारसधाराविश्रावणद्रोणी-भवच्चरणनारायणविपश्चिद्वरणसेवकच्छात्रशतावृतेन बल्लीसहायकविना विरचितः काकुत्स्थविजयाख्यश्चम्पूप्रबन्धः पर्याप्तः ॥

इस चम्पू काव्य में राम की कथा वर्णित है और इसका आधार वाल्मीकि रामायण है। रचना काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से, आचार्य विजय की भांति ही साधारण श्रेणी की है। इसमें कुल आठ उल्लास हैं—

काकुत्स्थविजयसंज्ञं काव्यं बल्लीसहायकरचितम्।
पर्याप्तमतुलभाग्यात् उल्लासेनाष्टमेन च सहैव ॥

२१—वरदाम्बिका परिणय चम्पू[1] :—

इस प्रख्यात एवं लोकप्रिय चम्पू काव्य की निर्मात्री, महाराज अच्युत राय की राजमहिषी तिरुमलाम्बा हैं। विजय नगर के महाराज अच्युत राय का राज्याभिषेक काल, सन् १५२९ ई० था, ऐसा कलहस्ति के शिला-लेख से ज्ञात होता है। इस काल के अनन्तर ही इस चम्पू काव्य की रचना हुई होगी। अच्युतराय की राज्यावधि सन् १५४२ ई० तक है[2]। इस चम्पू काव्य की कथा अच्युत राय के पुत्र चिन वेंकटाद्रि के युवराज पद पर अभिषिक्त होने तक की है। अतः लगभग १५४० ई० के समीप इस काव्य की रचना हुई होगी।

तिरुमलाम्बा, विजय नगर के राजा अच्युत राय की राजमहिषी थी। हाम्पी नगर के विठ्ठल मन्दिर में अच्युतराय के प्राप्त अनेक ताम्र लेखों में से एक पर अच्युत राय के द्वारा दिये गये सुवर्ण-मेरुदान का उल्लेख है। यह ताम्र प्रशस्ति वोडुआ तिरुमलाम्बा के द्वारा रचित श्लोकों में उपनिबद्ध है। इस चम्पू के उपसंहार वाक्य से स्पष्ट है कि वही तिरुमलाम्बा इस चम्पू की भी निर्माणकर्त्री हैं। अन्य कवियों की भांति अपना परिचय न देते हुए भी, तिरुमलाम्बा ने उपसंहार में जो कुछ लिखा है उससे उसकी प्रतिष्ठा और गौरव का पता चल जाता है :—

इत्येकवाराकर्णनमात्रदृढावधारितनव्यकाव्यनाटकालंकारपुराणागमरहस्यसार-स्यानुबन्धसमिन्धानस्वाभाविकप्रतिभानुभावया विद्याविशेषनिरवद्यविद्वद्वरसकल-कविकुलश्रवणानन्दचिन्तितानन्ताभीष्टफलाश्रयणविश्राणनकामगवीभवदशेषभाषावि-

---

१. स्वर्गीय डा० लक्ष्मण स्वरूप द्वारा सम्पादित होकर लाहौर से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त। इसकी मूल प्रति संस्कृत ग्रंथागार तंजौर में सुरक्षित है।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृष्ठ-४३०।

षयसविशेषोन्मुखचतुरिमगर्भितसरसप्रबन्धसन्दर्भया विविधविद्याप्रगल्भराजाधिराजाच्युतरायसार्वभौमप्रेमसर्वस्वविश्वासभुवा निरुपाधिकमहोपकारनिर्माणधर्मनिर्मलहृदयया निखिललिपिविलेखननियतवितरणकृतहस्तहस्तारविन्दया, विरिंचचंचलनयनानखांचलसमुदंचितविपंचीप्रपंचितपंचममधुरिमोदंचनविकस्वरकण्ठस्वरया, विपुलतलातलविहारविनोदसाकारावतीर्णशतपर्णासनवरवर्णिनीमतिनिर्णायिकया, नानादेशप्रतिष्ठितानेकविरचितवाजपेयपौण्डरीकसर्वतोमुखमहाध्वरद्विजवरवितीर्यमाणाशीर्विशेषपरिपोषितभाग्यसौभाग्यया, नियतरक्षितकविकुटुम्बया तिरुमलाम्बया निर्मितं वरदाम्बिकापरिणयन्नाम चम्पूकाव्यम् आचन्द्रतारकम् अभिवर्द्धताम् ।

यह चम्पू काव्य कथावस्तु की दृष्टि से भी राजकीय है। सारा वर्णन राज-परिवार से सम्बन्धित है। कथा का आरम्भ एक विस्तृत वंशावशी से हुआ है—

> अस्ति खलु समस्तजगदानन्दमूलकन्दलम्, इन्दीवरकुलतपःफलम्....
> ओषधिपतिर्नाम ॥

ओषधि पति-बुध-पुरुरवा-आयु-नहुष-ययाति-तुर्वसु-क्रमशः राजा हुये। तुर्वसु के वंश में तिम्म नामक राजा हुये। तिम्म ने देवकी से विवाह कर, ईश्वर नामक पुत्र प्राप्त किया। ईश्वर एवं बुक्कमाम्बा से नृसिंह नामक राजकुमार उत्पन्न हुये।

नृसिंह ने विजय के लिये प्रस्थान किया। पूर्व दिशा को जीत कर दक्षिण दिशा में चोल देश में आये। भयानक युद्ध के उपरान्त चोल राज की पराजय हुई। फिर नृसिंह ने रामेश्वर जाकर उनकी वन्दना की। समुद्र में सेतु का निर्माण किया। श्रीरंगपट्टण नामक नगरी में प्रविष्ट हुये। वहां के अधीश्वर महावीर ने नृसिंह के चरणों में सिर झुकाया। नृसिंह ने मतरंग दुर्ग लेकर शेष राज्य उन्हें लौटा दिया। इसके उपरान्त गोकर्णनाथ में अनेक दान सहित तुला पुरुष दान किया। उत्तर दिशा में प्रस्थान कर काम्बोज, वाह्लीक, तुखारादि देशों को जीत बादशाह सुरत्राण को पराजित कर उसे अनुग्रह पूर्वक छोड़ दिया। अनेक प्रकार की धन सम्पत्ति को लेकर अपनी राजधानी विद्यापुरी में लौटे और आसेतु हिमालय के स्वराज्य में सुशासन स्थापित कर पृथ्वी का पालन करने लगे।

तब नृसिंह ने सूर्यवंशोद्भवा रामाम्बासुता उमाम्बा से विवाह कर, अच्युत के प्रसाद से अच्युत नामक पुत्र प्राप्त किया। अच्युत राय के यौवन में प्रवेश करने पर नृसिंह देवलोक वासी हुये। अच्युतराय सिंहासन पर बैठे।

एक दिन अच्युतराय ने उद्यान में प्रतिष्ठित भवानी-मन्दिर में किसी बाला को देखा। उसकी रूप माधुरी ने राजा को आकृष्ट किया। वह सूर्यवंश की ललामभूता वरदाम्बिका, वहां गौरी पूजन के लिये आई थी। वह भी राजा पर मुग्ध हुई। दोनों एक दूसरे को अपलक देखते रहे, जब प्रधान मन्त्री ने कार्य वश आकर उसमें बाधा उपस्थित की। दोनों का पृथक्-पृथक् विरह वर्णन है। अच्युतराय ने उस कन्या की याचना कर उसे प्राप्त कर लिया। विधिवत् विवाह कर उसे पट्टाभिषेक महिषी का पद दिया गया।

कुछ समय बाद दोनों से चिनवेंकटाद्रि नामक कुमार पैदा हुआ। कुमार की असाधारण प्रतिभा देख कर, अच्युतराय ने उन्हें बाल्यकाल में ही युवराज पद दे दिया :—

अत्यादरादच्युतदेवरायं वरेण्यशीलां वरदाम्बिकां च।
श्रेयोनिधानं चिनवेंकटाद्रिं श्रीवेंकटेशश्चिरकालमव्यात् ॥
(१७०)

ऐतिहासिकों की दृष्टि में अच्युत राय विजयनगर के वीर राजा कृष्णदेव राय (१५०९-१५३० ई०) के उपरान्त सिंहासन पर बैठा और उसका भाई था। इतिहासकार अच्युतराय को एक अत्यन्त अयोग्य शासक मानते हैं[१]। इस चम्पू काव्य में भी अच्युतराय की किसी विजय का वर्णन नहीं है। दिग्विजय का वर्णन नृसिंह का है और वह बहुत कुछ कालिदास के रघु-दिग्विजय की अनुकृति मात्र है। अच्युतराय के वर्णन में–नव यौवन—अंग, हृदय–वर्णन, अश्वक्रीडा, राजस्तुति, उद्यान, वहाँ राज–कन्या दर्शन, पत्र–व्यवहार, राज-कन्या चिन्तन, विदूषक वचन, राजकन्या की विरह दशा, मधुमास, उपवन विहार, पुष्प चयन, जल-क्रीड़ा, वरदाम्बिका का गर्भ धारण करना—पुत्र-जन्म-शैशव और यौवनराज्य पद पर उसका अभिषेक ही वर्णित है।

इतिहास और कल्पना के समन्वय से, इस चम्पू काव्य की कथा-वस्तु तैयार की गई है। राजनाथ के अच्युतरायाभ्युदय में वरदाम्बिका सलग राज की कन्या कही गई है[२]। इस प्रणय काव्य में तिरुमलाम्बा ने भाषा पर अपना प्रगाढ़ आधिपत्य व्यक्त किया है। वर्णन में कुछ शब्दों के तो सभी पर्याय उपलब्ध होते हैं। कर, करवाल आदि शब्दों के सभी पर्यायवाची

१. द्रष्टव्य :—मध्ययुग का इतिहास-पृष्ठ ४३०।

२. महत्तरे मानवलोकशासितुर्मनोऽनुकूला महिषीपदे तदा।
कृताभिषेका सलगक्षितीशितुर्वरात्मजासीद्वरदाम्बिका वधूः ॥
(अ० रा०)

शब्द मिल जाते हैं। ओज और गाम्भीर्य की प्रचुरता है, पर उसी मात्रा में माधुर्य व्यंजक शब्दावली नहीं है। वाक्य प्रायः समासबहुल हैं, और संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध दीर्घ समासों से भी लम्बी समस्त पदावली इसमें उपलब्ध होती है :—

निरन्तरान्धकारितदिगन्तरकन्दलदमन्दसुधारसविन्दुसान्द्रतरवनाघनवृन्दसंदेह-करस्यन्दमानमकरन्दविन्दुबन्धुरतरमाकन्दतरुकुलतल्पकल्पमृदुलसिकताजालजटिल-मूलतलमरुवकमिलदलघुलघुलयकलितरमणीयपानीयशालिका बालिका करार-विन्दगलन्तिका गलदेलालवंगपाटलवनसारकस्तूरिका अतिसौरभमेदुरलघुतरमधुर-शीतलतरसलिलधारा निराकरिष्णुतदीयविमलविलोचनमयूखरेखा अपसारितपिपा-सायासपथिकलोकान्।

पृ० ३१-३२।

कादम्बरी और हर्ष चरित के समासों से भी वृहत् समासों का प्रयोग काव्य के गद्यभाग को सघन-वन का रूप दे देता है। हिंस्र पशु भय के सदृश बीच-बीच में, दुरूहार्थ-पद-क्लिष्टता का भय भी उत्पन्न होता है। अनुप्रासों में अपूर्वता न होते हुये भी, प्रवाहशीलता के कारण यह दुरूहता खटकती नहीं है। समास-प्रचुर-गद्य के उपरान्त ललित-पद्य श्रमापनोदन एवं विनोद दान में पूर्ण समर्थ हैं। रसों की विविधता, पर्वत मार्ग के निर्झरों सा आनन्द देती है, जब कि इसके गद्य-पद्य भाग गिरिशिखरारोहण के आरोहावरोह जनित श्रान्ति-विश्रान्ति। अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में कालिदास की अनुकृति देखी जा सकती है—

गृहीतमात्रे युधि चोलभूपे कृपानिधिः श्रीनरसिंहदेवः।
स तां न्यषेधत् समरात्स्वसेनां सतां प्रसादः सहजो न रोषः

॥ ४७ ॥ पृ० ६६

कयाचिदाकुंचितमुक्तशाखस्तरुः प्रसूनान्यवितीर्य पूर्वम्।
ववर्ष पश्चादिव सानुतापस्तीव्रानुरागं हि तनोत्युपेक्षा।

॥ १४३ ॥ पृ० १६२

गद्य भाग की अपेक्षा पद्य भाग में लावण्य भी अधिक है और कवयित्री की सूझ तथा कल्पना की नव्यता भी अधिक निखरी हुई दिखाई पड़ती है। रूपक और हेतूत्प्रेक्षा के आवरण में नई कल्पना का सौंदर्य दिखाई पड़ता है। इस श्लोक में देखिये :—

अपरगिरितरक्षोरातपच्छायलेशैर्हरितमलिनवर्णैं रंचितस्यांशुमाली।
कवलितदिनधेनोः कंठरक्तेन रक्तं विरमरनिजपादैः श्मश्रुलं प्रोथमासीत्।

॥ १५६ । पृ० १७१ ॥

नल-चम्पू, यशस्तिलक चम्पू के उपरान्त शाब्दी क्रीड़ा का, अलंकारों के प्रदर्शन का, गद्य-काव्य के सौष्ठव को समाहित करने का, बृहत्समस्त पदावली के सम्पादन का, वर्णन सौंदर्य के साथ कथावस्तु के विकास का, परम्पराबद्धता का, रस एवं वर्ण्य विषय की अनुकूलता के साथ रीतियों और वृत्तियों के परिवर्तन का, यदि कोई चम्पू काव्य भव्यतम रूप प्रस्तुत करता है, तो वह वरदाम्बिका परिणय चम्पू काव्य ही है। भाव-तरङ्गों के साथ भाषा के रूप में भी परिवर्तन देखना हो तो नरसिंह और चोल राज के एक युद्ध वर्णन में देखा जा सकता है।

अन्धीकृतहरिदन्तरालरजोन्धकारनिकरसद्योजातखद्योतविद्योतमानवलिगतखांगितनिरर्गलखङ्गि पुङ्खानुपुङ्ख तरंगितस्फुलिंगदुर्लंघ्यप्रतापशिखिभयंकरम्....
....प्रचण्डमदकण्डूलभुजदण्डवीरप्रकाण्डकरतलाहिण्डितमण्डलाग्रखण्डितसपत्न – मुण्डमेदितमार्तण्ड' ..
....कबन्धनर्तनानुकूलफालितनरकपालयुगलतालखोत्ताल-वेतालबहलहलाहलिकाकलकलपरिहृतरोदनभूतराजबालकम्, सरसतररसास्वादनगर्धनगृध्रमिथुनचंचलचंचुसंदंशिकांचलसमुद्धृतान्त्रमालिकान्तरलम्बमानमानवकलेवरतनुतरदोलामंचकान्तरालाधिरोपितबालकोपलालनलोलनीलाक्षकाकोलिकागानाकर्णनरसावमानितरुधिरपानावधानयातुधानम्....

...कान्तारमिव खड्गिकुलपरिवृतम् अमरोद्यानमिव आविष्कृतकल्पागमाटोपम्-पयोधिसलिलमिव प्रकटितभङ्गोदयम् दुर्मदपदसंहरणोपबृंहितसिंहनादभंजितरोदसीशृंगाटकम् अतिभयंकरं संगरमभूत्॥

व्यूहावुभौ तौ विहितोरुघोषौ वितेनतुर्विग्रहमाग्रहेण।
संव ... रसीमसमीरवेगसंघट्यमानाविव सानुमन्तौ॥

(३४। पृ० ६३)

कोपाटोपाच्चोलभूपालको दुष्प्रापानेकानेकपानीकपार्श्वः।
आगाद्वेगादभ्यमित्रं जिगीषुश्छागैः साकं केसरीन्द्रं करीव॥

(३६। पृ० ६३)

गद्य और पद्य का इससे सर्वथा भिन्न, कोमलकान्तपदावली सम्पन्न रूप भी उपलब्ध होता है:—

अवारितपरस्परकलहलम्पटकुचयुगलान्तरकान्तकेसरकुसुममालिकाम्।

(कासारवर्णनम् पृ० १६५)

सततसलिलवसतिजनितजडिमहरणकरणतरणिकिरणपरिचरणपरजलमानव - माणवकारोहावरोहसन्दितपुरन्दर उर्मिसन्ततिम्।

(कावेरीवर्णनम् पृ० ६५)

अंभोजभाजनभृतान्यलिनीलरत्नान्यादाय सांजलिरनोकहमंजरीभिः ।
निस्सीमविभ्रमरसं नृपसार्वभौममासेवितुं समुदभूदधिभूर्ऋतूनाम् ॥
(१२६ पृ० १४६)

२२ वसु चरित्र चम्पू[1] :—

तेलुगु में लिखे गये श्रीनाथ के वसु चरित्र के आधार पर, इस चम्पू-काव्य की रचना हुई है। इसके रचयिता कवि कालहस्ति सुप्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित के शिष्य थे, अतः इनका समय भी सोलहवीं सदी है। डा० बर्नेलों (Burnell) ने उपसंहार वाक्य के भीतर दिये गये कवि के विशेषण कामाक्षिदास को ही माना है :—

—इति श्री कामाक्षदासकालहस्ति कविकृतौ वसुचरित्रचम्पुकाव्ये षष्ठ आश्वासः, वसुचरित्रकाव्यमिदं सम्पूर्णम् ।

कवि ने आरम्भ में गणेश वन्दना की है और पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों का नाम स्मरण किया है :—

कल्याणमावहतु नः करिराजवक्त्रो ब्रह्माण्डपादकटको बलिसद्मपादः ।
पाथोधिवृन्दवमथुः परमेशभाग्यं तारासमं हि सुमनस्तबकीकृतेन्दुः ॥ १ ॥

गद्यवाक्यानि—अथ निरतिशयशैशव एव यो महनीयो रुचिभिः फलमोंहरुचिभिश्च तरुणतरुकवलनसमृद्धिं दर्शयामास ।

वाल्मीकिपाराशरिकालिदासदण्डिप्रहृष्यद्भवभूतिमाघान् ।
वल्गन्मयूरं वरमारविं च महाकवीन्द्रान् मनसा भजे तान् ॥ २ ॥

अन्त में अनुप्रासमयी भाषा में कवि ने कामाक्षी देवी की स्तुति की है—

कामाक्षि देवि करुणामयि कामकोटि
काँचीपुरीश्वरि कदम्बवनीनिवासे ।
कान्तैकचूतपतिना कलितावधाना,
कर्णामृतं कलय काव्यमिदं मदीयम् ॥

२३—नाथमुनि विजय चम्पू[2] :—

यह चम्पू काव्य चार उल्लासों में पूर्ण हुआ है। इसमें नाथमुनि से लेकर रामानुज तक विशिष्टाद्वैत के वेदान्ताचार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके रचयिता मैत्रेय गोत्रोत्पन्न कृष्णमाचार्य के पुत्र रामानुज दास हैं। कवि ने श्रीशैलाधिप और सुन्दरवर का उल्लेख करते हुये अपने पूर्वजों में वेंकटाचार्य और नरसिंह की भी गणना की है। अतः इनका

---

१. तंजोर कैट० नं० ४१४६ । अप्रकाशित ॥
२. डिस्क्रिप्टिव कैट० मद्रास १२३०६ ॥ अप्रकाशित ॥

समय इन दोनों आचार्यों के बाद लगभग सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग होना चाहिये। इनकी अन्य कृतियां वेंगलार्यगुरुपरम्परा, उपनिषदर्थ विचार और भगवदाराधन प्रयोग हैं। इस चम्पू काव्य में कवित्व कम तथा विवरण और तथ्य-निरूपण अधिक है। आरम्भ में यतिराज आदि की भांति ही अन्य वेदान्ताचार्यों की वन्दना की गई है :—

श्रीशश्रीपृतनाधिनाथशठजिन्नाथाब्जदृग्राघव-
श्रीमद्यामुनयोगिपूर्णयतिराड्गोविन्दभट्टारकान्।
सेवे वेदशिरोमुनीन्द्रकलिजित् कृष्णान् जगद्देशिक-
श्रीशैलाधिपयोगिसुन्दरवरान्हृद्यानवद्यान् गुरून् ॥ १।१॥

श्रीनारसिंहगुरुशेखरवेंकटार्य...रतातगुरून् गुणाढ्यान्।
श्रीश्रीनिवासगुरुवेंकटशिङ्गरार्यश्रीवेंकटार्यनरसिंहगुरून् नमामि ॥१।२॥

गद्य का अधिक भाग समास बहुल है :—

वसिष्ठवासिष्ठपराशरपाराशर्यशुकशौनकात्रिमैत्रेयवाल्मीकिसनकसनन्दनादिसकल-मुनिजननतदिव्यभव्यचरित्रः....भवतिमिरशठः शठमर्षणाभिधानः ब्रह्मर्षिश्रेष्ठः।

२४—श्री रामानुज चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता रामानुजार्य का समय, लगभग सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग है। कवि ने ग्रन्थारम्भ में अपने कुल का जो विस्तृत परिचय दिया है, उसके अनुसार महान् आचार्य रामानुज के भ्रातृव्य एवं शिष्य दाशरथि मुदलियाण्डन से कवि का सम्बन्ध है। उसी वंश में राजा कृष्णराय से पूजित श्री रंगार्य हुये। इनके पुत्र घनवरद मद्रास के समीप तिरुवेल्लोर में निवास करते थे। इनके पुत्र श्री रामानुज धुरंधर विद्वान् थे। वरदगुरु और शरणम्माचार्य इनके पुत्र थे। शरणम्माचार्य के चार पुत्रों में कनिष्ठ श्री भावनार्य के पुत्र श्री रामानुजार्य (रामानुजाचार्य) इस चम्पू काव्य के प्रणेता हैं। कवि ने वाधुल गोत्र के श्री वेंकटार्य से 'दिव्य प्रबन्धम्' तथा अपने बहनोई यज्ञनारायण से व्याकरण का अध्ययन किया था। लक्ष्मणाचार्य से उसने श्री भाष्य भी पढ़ा था।

यह रामानुज चम्पू जीवन चरितात्मक है। इसमें दस स्तबक हैं जिनमें विशिष्टाद्वैत के प्रतिष्ठापक आचार्य श्री रामानुज का विस्तृत चरित वर्णित है।

---

१. मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट सीरिज-नं० ६. मद्रास से १९४२ में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त :

आचार्य रामानुज का जन्म कांची के समीप श्री पेरूम्बुदूर में शक ९३९ (१०१७ ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम केशवाध्वरि एवं माता का नाम भूदेवी था। केशव हारीत गोत्र के थे। श्री वैष्णवों के धर्मगुरु एवं यामुनाचार्य के शिष्य श्री शैलपूर्ण तिरुपति से केशव को बधाई देने आये। श्रीशैल रामानुज के मामा थे। उन्होंने ही बच्चे का नामकरण किया। सातवें वर्ष में आचार्य रामानुज का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और अपने पिता से ही उन्होंने वेद वेदांग की शिक्षा प्राप्त की। विवाह के बाद वह यादव प्रकाश से अद्वैत वेदान्त का अध्ययन करने कांची आये।

श्री शैलपूर्ण की दूसरी बहन के पुत्र गोविन्द (जन्म १०२५ ई०) भी रामानुज के पास यादव प्रकाश से पढ़ने आ गये। रामानुज प्रायः यादव प्रकाश द्वारा किये गये उपनिषदों के अर्थ को न स्वीकार कर अपना अर्थ करते थे। एक दिन छान्दोग्योपनिषद् के 'तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी' की व्याख्या में 'कप्यास' का अर्थ यादव प्रकाश ने 'कपिजघन' किया जिसको सुनकर रामानुज को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपनी व्याख्या सुनाई—

अक्ष्णोरतुलां कलयितुं किल पुण्डरीकं
मार्तण्डमण्डलजुषः पुरुषोत्तमस्य।
कप्यास वागतिगभीरजलप्ररूढ-
सन्नालमर्ककरफुल्लमियं ब्रवीति ॥३।२४॥

इस पर यादव प्रकाश बहुत क्रुद्ध हुये और उन्होंने रामानुज को विद्यालय से निकाल दिया। भविष्य में विरोध की सम्भावना देखकर उन्होंने रामानुज को उनके गाँव से पुनः बुलवा लिया। यादव प्रकाश ने गोविन्द और रामानुज के साथ बनारस की तीर्थ यात्रा इस उद्देश्य से आरम्भ की कि वहाँ रामानुज को गंगा में डुबा सकेंगे। मध्य मार्ग में विन्ध्य के वनों में से जाते समय गोविन्द ने रामानुज को गुरु की इस नीयत की सूचना दे दी। रामानुज-गोविन्द मानो लक्ष्मण और राम की भाँति स्नेह सम्पन्न थे। रामानुज धीरे से विन्ध्य के वनों में खिसक गये। घूमते-घूमते सन्ध्या हो गई। रामानुज भयभीत होकर भगवान को पुकारने लगे। वहाँ मानो प्रभुस्वरूप ही एक शबर दम्पति आये और वे रामानुज को कांची ले आये। यादव प्रकाश भी कांची लौट आये।

श्रीरंग निवासी यामुन मुनि ने, रामानुज का वृत्तान्त सुना, वह स्वयं कांची जाकर उनसे मिले। लौटते समय मार्ग में यामुन मुनि ने अपना चरित वर्णन किया। रामानुज ने एक राज कन्या को ब्रह्म-राक्षस से मुक्त

किया। रामानुज ने यादव प्रकाश के समीप पुनः विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया, पर उन्होंने रामानुज को निकाल दिया।

रामानुज का यश फैलने लगा। यामुन मुनि ने रामानुज को बुलाने के लिये महापूर्ण को भेजा। आने पर रामानुज ने यामुन मुनि से अभिसन्धित्रय की पूर्ति की, प्रतिज्ञा की। श्रीरंग से कांची लौटकर महापूर्ण और रामानुज साथ-साथ रहने लगे।

एक दिन दोनों की पत्नियों में झगड़ा हो गया, जिससे महापूर्ण दुःखी होकर श्रीरंग चले गये। स्वयं रामानुज श्रीरंग पहुँचे और महापूर्ण से क्षमा चाहने लगे। विरक्त होकर रामानुज ने संन्यास ग्रहण कर लिया। कूरेश और दाशरथि दोनों कुशाग्र बुद्धि छात्र रामानुज के पास अध्ययन के लिए आये। यादव प्रकाश ने भी विशिष्टाद्वैत मत ग्रहण कर त्रिदण्डी संन्यासाश्रम स्वीकार कर लिया।

श्री रामानुज को भक्तों ने पुनः श्रीरंग बुलाया। वहाँ जाकर रामानुज ने भगवान की मूर्ति की वन्दना की। रामानुज ने मन्दिर की व्यवस्था की। यहीं महापूर्ण से दिव्य प्रबन्ध पढ़ा, मालाधर से द्रविडाम्नाय रहस्य का अर्थ समझा, यज्ञ मूर्ति नामक दण्डी पराजित होकर विशिष्याद्वैतानुयायी बना। शैवधर्मानुयायी गोविन्द वैष्णव धर्म में प्रविष्ट हुये। रामानुज उनसे मिलने गये। वहीं वेंकटाद्रि में श्री शैल पूर्ण से रामायण का रहस्य प्राप्त किया। श्रीरंग आने पर रंगामृत देशिक ने रामानुज-शतक की रचना की।

रामानुज ने काशी जाकर अपने शिष्य कूरनाथ के साथ काशीराज की सभा को अलंकृत किया। बौधायन वृत्ति की खोज की और श्रीरंग लौट आये। यहाँ श्रीभाष्य का निर्माण कर दिग्विजय के लिये निकले। काशी में शारदा देवी ने उनके श्रीभाष्य का अनुमोदन किया। इसके बाद वह बदरिका, जगन्नाथ एवं श्रीकूर्म आदि स्थानों पर गये। वेंकटाद्रि पर आकर वेंकटाचल पति विष्णु की स्थापना की। श्रीरंग लौट कर नरेश के पुत्रों का व्यास एवं पाराशर तथा गोविन्द के अनुज-पुत्र का परांकुश नामकरण किया।

महाशैव चोलराज ने रामानुज को अपनी सभा में बुलाया। वहाँ महापूर्ण और कूरेश गये। राजा ने रुष्ट होकर महापूर्ण और कूरेश की आँखें निकाल लेने की आज्ञा दी। कूरेश ने स्वयं अपने नेत्र निकाल दे दिये। दोनों के लौटने पर रामानुज दुःखी होकर उनके साथ पश्चिम दिशा की ओर चल दिये। मार्ग में विठ्ठल रायपति की कन्या को ब्रह्मराक्षस की पीड़ा से मुक्त किया। सालग्राम जाकर यादवाचल पर श्रीनारायण

की प्रतिष्ठा की। दिल्ली जाकर अपहृतरामप्रिय-उत्सव विग्रह को लाकर, उसे पुनः प्रतिष्ठित किया।

दिल्लीश्वर तनया का 'रामप्रिय' के प्रति विरह का अनुभव, आचार्य द्वारा उसे रामप्रिय से मिलन कराना, यवन पति तुरुष्क, शिखामणि का श्वशुर भाव से भगवान् राम प्रिय को अनेक बहुमूल्य वस्तुओं की भेंट करना, कृमिकण्ठ चोल राज की मृत्यु, उसके पुत्र द्वारा रामानुज से श्रीरंगागमन की प्रार्थना, रामानुज का पुनरावर्तन, कूरनाथ के साथ कांची गमन, वरदराज की स्तुति से कूरनाथ द्वारा पुनर्नेत्रलाभ एवं रामानुज का पुनः श्रीरंग आकर निवास करना, अन्तिम दशम स्तबक में वर्णित है।

आरम्भ में विविध वेदान्ताचार्यों की स्तुति करते हुये कवि ने कहा है—

प्रवृत्तोऽहं लब्धुं परमरुषानुग्रहमयं,
महार्घमाणिक्यं यतिपतिचरित्राब्धिजठरे। (१।५१)

इस सम्पूर्ण चम्पू काव्य का गद्य भाग, अनुप्रास और यमक से अलंकृत है। सर्वत्र समासबहुला गौडी रीति प्रयुक्त हुई है। गद्य काव्य की भांति वृहत्समस्त पदावली दिखाई पड़ती है। आरम्भ के सत्तर पदों के बाद दो पृष्ठों में महाभूत नगरी का वर्णन एक ही क्रिया के आश्रित किया गया है:—

अस्ति किलानवरतपापठ्यमानघोषार्भटीविदीर्यमाणदिग्वप्राणां ...... भक्तानुरागवता भगवता शिरोभूषणवती धरणी रमणी शिरोमणिरीतिमती श्रीमती महाभूतपुरी नाम नगरी। (पृ० ११-१२)

उसी नगरी का वर्णन पुनः पन्द्रह पद्यों में किया गया है—

श्रीकेशवाङ्घ्रिसरसीरुहचंचरीक-
स्तन्नामधेयवररत्नकिरीटधारी।
धन्याग्रणीर्धरणिभृन्मणिमौलिसेव्य-
स्तां यायजूकतिलकः पुरमध्यवात्सीत्॥ (१।८३)

श्री रामानुज के पिता का परिचय देकर विष्णु द्वारा शेष को रामानुज के रूप में जन्म लेने के आदेश का वर्णन है। (१।८६) आरम्भ में वर्णन का विस्तार एवं शब्द क्रीडा के प्रदर्शन की रुचि अधिक दिखाई पड़ती है—

यतः सुदर्शनो न सुदर्शनं पालयितुं प्रगल्भते। विनतानन्दनो न विनतानन्दनचातुरीमंचति। विष्वक्सेनो न विष्वक्सेनां चालयितुं शक्नोति।
(पृ० १५)

इस चम्पू-काव्य की दो विशेषतायें मुख्य रूप से ध्यान आकृष्ट करती हैं। वर्णन विस्तार होते हुये भी चरित वर्णन की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और घटनायें एक के बाद एक उत्तरोत्तर अग्रसर होती रहती हैं। अवान्तर कथाओं का समावेश न करने के कारण कथा की रोचकता बनी हुई है। इसकी दूसरी विशेषता, कवि की मार्मिक स्थलों की पहचान है, जिसके कारण उसकी सहृदयता एवं काव्यकला का मनोहर रूप सामने आ सका है। विन्ध्याटवी में एकाकी रामानुज का वर्णन देखिये—

किंचिद्दवपदं समंचन् कुतकैरिव कण्टकैराकीर्णं दुर्वादिभिरिव दुष्टमृगैः सम्पूर्णमातपतप्तसिकताचूर्णं विदीर्णविशीर्णशिलाशकलोदीर्णाभ्युर्णं दुस्तरं दन्तुरं कान्तारान्तरं समन्तादवेक्षमाणः कायक्लेशमुपेक्षमाणश्चण्डातपतापासहिष्णुतया क्वचन विश्रान्तिमपेक्षमाणः सरभसमितस्ततो धावन् विधावर्पितमरो लक्ष्मणविबुधवरो लक्ष्मीरमणकटाक्षात् कंचन छायावृक्षमाश्रित्येत्थमभ्यनन्दत्—

किरति मिहिर एष स्फारमङ्गारजातं
दहति वसुमतीयं कण्टकैः कीलिताङ्गी।
अशरणभिरिणेऽस्मिन् आग्यताहो मयाहः
करिशिखरितटस्थः कल्पशाखीव शाखी॥ (३।३५।)

रूप-चित्रण में कवि सिद्धहस्त है। सीधी सादी शब्द-रेखाओं से शबर-दम्पति को कितना मूर्तरूप दिया गया है :—

बिभ्रत् कोदण्डदण्डं भुजशिखरयुगे सानुषङ्गौ निषङ्गौ
फालस्थस्निग्धमुग्धद्विरदमदमषीरेखया राजमानः।
चर्मोष्णीषं दधानो वनतरुकुसुमस्तोमक्लृप्तावतंसो
रक्ताक्षः श्यामधामा पृथुलतरपदत्राणशाली समेति॥ (३।४५)

विस्तीर्णे कर्णपत्रे द्विपदशनमये कर्णयोर्धारयन्ती
गुंजामालां दधाना गलभुविवलये शङ्खक्लृप्ते वहन्ती।
कस्तूरीचित्रकोद्यन्निटिलशशिकला देवतेवाटवीनां
काचित् कान्तारपार्श्वे विलसति किमयं व्याधयूथाग्रगण्यः॥
(३।४६)

कथावस्तु का विकास गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से हुआ है।[१] यादव प्रकाश का कृत्रिम शोक प्रदर्शन[२], (शिवात्परतरं नास्ति) के स्थान

१. द्रष्टव्यः ३/४८, ४६ आदि।
२. पृ० ४६।

पर (द्रोणमस्ति ततः परम्) लिखने पर कूरनाथ के नेत्रोत्पाटन की आज्ञा[1], यामुनाचार्य के प्रयाण के अवसर पर रामानुज की प्रतिज्ञा[2] आदि अत्यन्त मार्मिक स्थल हैं, जहाँ कवि की वाग्धारा अनवरत तीव्र वेग से प्रवाहित हुई है।

इस चम्पू काव्य का अन्तिम स्तवक अपने ढंग का सर्वथा अनूठा है। सोलहवीं शताब्दी के संस्कृत, तमिल एवं तेलुगु सहित सभी दक्षिण भारतीय भाषाओं में शृङ्गार की जो माधुरी सहृदय-हृदय को आप्लावित कर रही थी, उसके प्रभाव से रामानुज भी अपने को अछूता नहीं रख सके हैं। दशम स्तवक उस प्रभाव की देन है। इतना अवश्य हुआ है कि यवन-कन्या के विरह वर्णन को कवि ने भक्ति के रंग में रंग दिया है। जिस समय आचार्य भगवान् रामप्रिय के विग्रह को लेकर यादवाचल पर आ जाते हैं उस समय यवनकन्या वियोगाकुल हो जाती है। उसके विरह वर्णन का रूप देखिये—

श्रीरामानुजयोगिनेतरि यदुक्षोणीभृदीशं गते
लब्ध्वा श्रीपदसंगतिं प्रविलसन्नारायणाख्यं पुरीम्।
व्यामोहं यवनाधिराजतनया तस्मिन् समाबध्नती
तद्विश्लेषभरासहिष्णुरभवत् तान्तातिकान्ताकृतिः॥

(१०।१)

स्मारं स्मारं मदनजनकं तद्वियोगातिखिन्ना
नाहारेच्छां कलयति परं नो विहारेषु वांछाम्।
आशाः सर्वाः स्तिमितनयनं शश्वदालोकयन्ती
कान्ता सेयं सपदि सुतरां भ्रान्तचित्तेव जाता॥

(१०।२)

तदानीं किल निखिलनिरन्तरविसृमरपरिमलभरमनोहरसुमनोगणविराजमान-माधवीवल्लीपरिवेल्लितपाटलचम्पकवकुलमन्दारप्रमुखपादपपरम्पराप्रकटितकुसुमजातस्यन्दमानमकरन्दबिन्दुसन्दोहसमास्वादनतुन्दिलेन्दिन्दिरनिकरझंकारपरिपूरितविहारोपवनपरिकथितनिजसमागमान् चन्दनाचलसमुदंचत्पवमानबालकल्लोलासंचरणापहृतपरभृततरुणमिथुनरतिश्रमान्....... मधुवासरानवलोक्य यवनविभुतनया पंचशरशरनिकरपरिमथितनिजाशया निजरमणविश्लेषभरमसहमाना अवाङ्मनसगोचरसमुपचीयमानविचारपरिदूयमानमानसा मज्जनाशनादिष्वपि निरुद्यमा बभूव।

(पृ० १४६।१४७)[3]

१. पृ० १३६-४०। २. पृ० ६६।

३. तुलनीय-वरदाम्बिका परिणय--पृ० ३१-३२।

कान्ता सन्ततकान्तसंगतिपराक्रान्ते वनाभ्यन्तरे
चूतान् वीक्ष्य लतासमावृतनिजस्कन्धान् परं ताम्यति।
पद्मिन्यामपि चक्रवाकमिथुनान्यालोक्य चिन्ताकुला
हा नाथाद्य विहाय मां सुवचनामन्यां समाश्लिष्यसि ॥

(१०।४)

यवनाधिराजतनया समधिगतनया समग्रतरविनया।
करकमले चित्रपटं चकार सा चित्रपटमालिखितुम् ॥

(१०।५)

रे रे राकाहिमकररविजायसे त्वं मदक्ष्णो-
स्तापरताढ्ङ् मलयपवनोजृम्भते तावकीनः।
किं वक्ष्येऽहं भवति भवतोरन्यथाभाव एवं
तत्सुव्यक्तं चपलचपलं मानसं ज्ञातमासीत् ॥

(१०।११)

भक्तिपरक प्रणय में कामव्यथा, चन्द्रोपालम्भ आदि सबका समावेश इस यतिराजचरित में भी युग भावना के अनुसार हो ही गया है। इस अवसर का सृजन कवि की अनूठी सूझ है। कवि भावुकता ने कतिपय स्थलों पर रामानुज को अतिमानवीय शक्ति सम्पन्न अवश्य प्रदर्शित किया है। उनकी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा भी की है। पर यशस्तिलक के कवि की भाँति अपने सम्प्रदाय के प्रचार के साथ सिद्धान्तों के निरूपण में संलग्न नहीं हुआ है। इसलिये कथावस्तु या वर्णन की मधुरिमा में कहीं भी व्याघात नहीं उपस्थित हुआ है।

२५—कल्याण वल्ली कल्याण[1]:—

इस चम्पू काव्य के रचयिता श्री रामानुज देशिक, भावनाचार्य के बड़े भाई एवं रामानुज चम्पू काव्य के निर्माता रामानुजाचार्य के पितृव्य एवं गुरु हैं। रामानुज चम्पू के उपसंहार में उन्होंने स्वयं ही इनका परिचय दिया है—

इति श्री वाधूलकुलकलशजलनिधिकौस्तुभोभयवेदान्ताचार्यसाम्राज्यपट्टाभिषिक्तकल्याणवल्लीकल्याणवेदपादरामायणाद्यनेकप्रबन्धनिर्माणधुरीणश्रीमद्रामानुजदेशिकसार्वभौमचरणारविन्दचंचरीकेण तत्कृपालब्धसकलविद्यावैशद्येन तत्सागर्भ्यविभूषणब्रह्मर्षिभावनाचार्यविबुधवर्यतनूभवेन श्रीरामानुजदासेन विरचिते श्रीरामानुजचम्पूप्रबन्धे दशमः स्तबकः। (रामानुज चम्पू पृ० १५९)।

१. डि० कैट० मद्रास २१/८२७५ (अप्रकाशित)।

इस आधार पर रामानुज देशिक का समय भी सोलहवीं शताब्दी का उत्तर भाग सिद्ध होता है। लिंग पुराण का 'गौरी-कल्याण' इस चम्पू का मूल स्रोत है।

२६—भागवत चम्पू[१]:—

इस चम्पू काव्य की तीन हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं। दो तंजोर में और एक मद्रास में। तीनो प्रतियों का आरम्भ निम्नलिखित श्लोक से हुआ है—

अस्तु श्रियै श्रीसुहृदच्युतेन्दोरैश्वर्यसिद्ध्यै पतिरंजनाद्रेः।
बलाय जेता बलिदानवस्य पुमर्थहेतोः पुरुषः पुराणः॥ १। १॥

तीनों ही प्रतियों के आरम्भ में अच्युतराय का वर्णन है। अच्युतराय विजयनगर के राजा थे और इनका शासन काल (१२३० ई०-१२४२ ई०) तक था। मद्रासवाली प्रति में अच्युतराय की जो वंशावली प्रस्तुत की गई है, वह वरदाम्बिका-परिणय में दी गई वंशावली से मिलती है। इसका आरम्भ करते हुये कवि ने लिखा है—

वंशावलीमच्युतभूवतलारेर्वक्ष्यामि वर्धिष्णुवदान्यलोकाम्।
मनोक्तिरेषा महतस्स्तवेन पवित्रिता स्यादिति पार्थिवेन्दोः॥

तंजोर की प्रति में भी यह वर्णन है—

पुष्यात्पुरन्ध्रीपुरशासनस्य पुंखानुपुंखां श्रियमच्युतेन्दोः।
कलानिधानं दधती कवय्यां संयोजयन्तीव सदा रजन्याः॥

कवि ने वर्णन का आरम्भ करते हुये पहले राजा का ही वर्णन किया है—

अस्ति खलु कुवलयामोदहेतुरम्बरचरपरिषदायुष्यावलम्बनमवतंसमणिरम्बिकापतेः....। कदाचन कविबुधनायकवैहासिकवन्दिवृन्दारकानवद्यपरीक्षणविनोदकलिपतकालक्षेपः........।

सोऽयं कविस्तदनुशोणगिरीन्द्रसूनुराज्ञा गिरं नरपतेरवतंसयित्वा।
चम्पूप्रबन्धमजहत्सरसोक्तिबन्धं वक्तुं समारभत वाग्विभवानुकूलम्॥

तंजोर की प्रथम प्रति में कवि का नाम रामभद्र दिया हुआ है—

दुर्मतिशरदि विबुधदेशिकदिने हरिदश्वे च हर्यारूढे वलक्षे च पूर्व-पूर्व तिथौ विद्वदतिथिसत्कारधुरन्धरस्य संगीतसाहित्यमुखविद्यावदुद्यानस्य सकलगुणसम्पन्नस्य श्रीरामभद्रस्य भागवतचम्पूप्रबन्धः सम्पूर्णो जातः।

---

१. तंजोर कैट० वा० ७,४०६६-७० (अप्रकाशित)।

मद्रासवाली प्रति में—इति श्री राजनाथकविकृतभागवतचम्पूप्रबन्धः समाप्तः—दिया हुआ है।

इन प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह अनुमान होता है कि इस भागवत चम्पू के निर्माता 'अच्युतरायाभ्युदय' काव्य के प्रणेता, राजनाथ ही हैं। उन्हीने उक्त काव्य की रचना के उपरान्त राजा अच्युतराय की आज्ञा से इस चम्पू काव्य की रचना की।

राजनाथ का पूरा नाम–अय्यल राजुराम भद्र था। यह नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अवकलार्य (मद्रासवाली प्रति में अरुण गिरिनाथ) था। इन्होंने तेलुगु में 'रामाभ्युदयम्' नामक काव्य लिखा है। इसकी शैली प्रौढ़ तथा विद्वतापूर्ण है और इसमें यमक, श्लेष तथा अनुप्रास की पूर्ण छटा है।[1] नाम के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में ही नामभेद आ गया है। इनका समय सोलहवीं शताब्दी का मध्य भाग है।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कंसवध तक की घटनायें इसमें वर्णित हैं—

> इन्धानः सममग्रजेन जननीं हृष्यन्मुखीं देवकीं
> वन्दित्वा वसुदेवमप्यविरमद्वात्सल्यमाभ्यां पुनः।
> आश्लिष्टं कृतनन्दनं धुरमसौ राज्ये तथा माथुरे
> विन्यस्य स्वयमुग्रसेनमतनोद्विश्वत्रयीपालनम्॥ (तंजोर प्रति)

२७—भागवत चम्पू[2]:—

इस भागवत चम्पू काव्य के रचयिता चिदम्बर, कौशिक गोत्रोत्पन्न सूर्यनारायणाध्वरि के पौत्र एवं अनन्तनारायण के पुत्र हैं। इनका समय सन् १५८६ ई० और १६१४ ई० के मध्य निश्चित हो चुका है[3]। 'राघव यादव पाण्डवीयम्' इनकी काव्य निपुणता का प्रमाण है जिसमें एक साथ राम, कृष्ण एवं पाण्डवों की कथा प्रत्येक श्लोक में वर्णित है। शब्दार्थ-चिन्तामणि में भागवत और रामायण की कथा साथ-साथ वर्णित है। श्लेषचिन्तामणि के अतिरिक्त चिदम्बरविलास इनका पांच सर्ग का खण्ड-काव्य है जिसमें नटराजचिदम्बरम् (स्थानीय देवता) का वर्णन किया गया है। उक्त कृतियाँ इनकी विद्वता का परिचय देती हैं। विजयनगर के राजा वेंकट प्रथम के यह सभापंडित एवं कवि थे।

---

१. द्रष्टव्य : तेलुगु और उसका साहित्य-पृ० ५०

२. तंजोर कैट० वा० ७।४०६७। अप्रकाशित।

३. द्रष्टव्य-संस्कृत लिटेचर पृष्ठ १२२-वेंकट राय के समय के लिये-तेलुगु और उसका साहित्य—पृष्ठ ५४।

यह भागवत चम्पू तीन स्तबकों में है। आरम्भ में मंगलाचरण है। काव्य-रचना के सम्बन्ध में इन्होंने विनम्रता से कहा है—

काव्येषु सत्स्वपि महत्सु कवीश्वराणां
प्रायो मितापि भणितिः प्रमुदे मदीया।
कूलंकषेषु भुवने सरितां कुलेषु
कुल्यापि किं न सरसा कुरुते प्रमोदम् ॥ १ । ६ ॥

इसकी शैली पौराणिक है और उसी प्रकार कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है—

एष किल निशापतिकुलविशेषको मुनिशापतिरस्कृतान्तःपुरादिव पुरन्दरः
पुरा कदाचन पुराणपुरुषस्य पादारविन्दगलिताया:....
सुपरिक्षितमोक्षोपायं परीक्षितं निरीक्ष्य सविधगतसप्तविधमुनिगणे
परिलसितपरिसरभागं भागवतवतंसं भगवन्तं शुकमेवमन्वयुक्त।
वंशे यदूनां वरदो नृपाणामंशेन भूमावत्तीर्य देवः।
किं शेषशायी कृतवान् स कृत्यं किं शेमुषीमन् वद तन्ममेति ॥

भाषा अनुप्रासमयी, सरल और प्रसादगुण सम्पन्न है। इसमें श्लेष की श्लिष्टता नहीं है। तंजोर की अपेक्षा मद्रासवाली प्रति अधिक शुद्ध है। उदाहरण के लिये—

नवनवकृतिचित्रैः पद्मनाभस्चरित्रै-
र्भुवनमतिपवित्रैर्द्वारकाभूनिवासी।
अवनविरचनायामङ्गिना जागरूको
नव न विषयभूमानन्दयामास देवः
(मद्रास की प्रति से)

अवनविरचनायमङ्कितां जागरूको
नवनवविषयभूमानन्दयामास लोकम्
(तंजोर प्रति से)

१८—पंचकल्याण चम्पू[1] :—

चिदम्बर का यह दूसरा चम्पू काव्य है।

१९—पारिजातहरण चम्पू[2] :—

सपत्नी की ईर्ष्या एवं मान का वर्णन करने वाले इस चम्पू काव्य के रचयिता शेषकृष्ण का समय भी सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। कृष्ण

---

१. तंजोर कैट० ७।३०८२। डि० कैट० कुप्पू स्वामी—वा० ६,२९४०। (अप्रकाशित)।

२. काव्यमाला १४, निर्णयसागर प्रेस बम्बई से १९२६ ई० में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

द्वारा पारिजात हरण की यह अत्यन्त लोकप्रिय कथा हरिवंशपुराण के विष्णुपर्व में अध्याय ६४ से ७६ तक, पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय २७५ में तथा विष्णुपुराण के पंचम भाग के तीसवें अध्याय में वर्णित है। शेषकृष्ण के पिता का नाम नरसिंह सूरि था। इस काव्य की रचना श्रीमन्महाराजाधिराज नरोत्तम के आदेश से की गई है। यह नरोत्तम संभवतः काशिराज के अनुज थे :—

वरः किल नरोत्तमो जयति काशिराजानुजः

॥ १ १३ ॥

प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में भी कवि ने उनका गुण-गान किया है—

वैरिस्वैररणे परोपकरणे लोकापदां वारणे

सद्धर्माचरणे बुधानुसरणे यः क्ष्माभृतां दीक्षितः

तस्यादेशवशान्नरोत्तमविभोः कृष्णस्य सन्निर्मिता-

वुच्छ्वासः किल पारिजातहरणे पूर्णोऽभवत् पंचमः

॥ ५ । ७३ ॥

मङ्गलाचरण के उपरान्त कवि ने आरम्भ में नरोत्तम का ही वर्णन किया है। यह वर्णन, गद्य-काव्य या चम्पू-काव्यों के नायकों की ही भाँति, अनुप्रासमयी समस्त पदावली संयुक्त भाषा में अतिशयोक्तिपूर्ण किया गया है—

अस्ति समस्तसामन्तसीमन्तिनीसीमन्तसिन्दूरपूरसूरास्ताचलः सकलजलधिवेलावलयितेलावलयतिलकायमाननिखिलभूपालमौलिमालामिलन्मुकुटतटनटन्मणिमरीचिमंजरीपुंजपिंजरितमंजुपादाम्बुजः, प्रचण्डभुजदण्डचण्डिमाकर्णकुण्डलितकोदण्डहिण्डमानकाण्डप्रकाण्डताण्डवाडम्बरोद्दण्डखण्डितारिमुण्डपुण्डरीकखण्डमण्डिताण्डभूमण्डलः, विलसदनवद्यगद्यपद्याद्यनेकहृद्यविद्याविनोदोद्योतखद्योतीकृतविद्यापतिः···नरोत्तमो नाम ॥ पृष्ठ ७ ॥

यश्च किल प्रथमः प्रथावताम् द्वितीय इव कनकाचलस्य तृतीय इवाश्विनेययोः चतुर्थ इव सप्तार्चिषाम् पंचम इव पुरुषार्थानाम् षष्ठ इव कुसुमशरशराणाम्। ॥ पृ० ७ ॥

इस चम्पू-काव्य का गद्य-भाग या तो बृहत्समस्त पदावलीसम्पन्न है अथवा उत्प्रेक्षा की माला से अलंकृत है। मात्रा में वह पद्य की अपेक्षा अत्यन्त स्वल्प भी है। गौडी रीति अपनाते हुये भी कुछ स्थलों को छोड़कर माधुर्य गुण सम्पन्न पदावली ही अधिक प्रयुक्त हुई है।

नारद द्वारा कृष्ण को पारिजात पुष्प दिया जाना, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी को उसे भेंट कर देना, सत्यभामा की ईर्ष्या एवं कृष्ण से मान, कृष्ण का

अनुनय-विनय, सत्यभामा द्वारा पारिजात वृक्ष लाने की याचना, कृष्ण का नारद से इन्द्र के पास सन्देश भेजना, अस्वीकृति पर पारिजात का यादवों द्वारा अपहरण और सत्यभामा की प्रसन्नता वर्णित है। युद्ध का वर्णन अन्तिम पाँचवें स्तबक में है। शृङ्गार प्रधान होने के कारण अभिनव कालिदास की भाँति ही, शेषकृष्ण ने भी इसका उपयोग किया है। सत्यभामा के मान पर कृष्ण सोचते हैं—

मानुष्यस्य विभूषणं तरुणता तस्याः पुनर्वैभवं
तस्यानामयमस्य चोन्नतकुचद्वन्द्वाङ्गनालिङ्गनम्।
तस्याप्यश्रु कुलाकुलांसवलितग्रीवप्रतीपाङ्गना
वक्त्रालोकनमस्य च प्रणयिनीमानापनोदक्रमः॥

(२।१२)

मानिनी सत्यभामा का चित्रण भी अनुरूप ही हुआ है—

किंचित्कुंचितलोचनं विरचितभ्रू भङ्गमभ्युन्नम-
न्मध्यं वेल्लितबाहुवल्लिसरसव्याक्रोशवक्त्राम्बुजम्।
प्रोदंचत्कुचमानमत्तनुगलद्वेणीमिलद्भूतलं
सज्या कामधनुर्लतेव हरति व्याजृम्भमाणा मनः॥

(२।१५)

कुचगिरिमधिरुह्योत्सर्पिणी भोगिनीव
व्यथयति कबरीयं हारनिर्मोकमुक्ता।
इह बहिरुपयान्त्या नाभिमूलाद् गभीरात्
सरणिरुदयतेऽस्या रोमराजीमिषेण॥

(२।१६)

कर किसलय शय्या पर लेटी उच्छ्वास छोड़ती एवं निरन्तर आँसुओं से कुच-शिव का अभिषेक करती, सत्यभामा का मान-तप किसी भी रीति-कालीन विरहिणी नायिका की साधना से कम नहीं है, फिर नायक कृष्ण क्यों न विचलित हो उठते—

करकिसलयशय्याशायि निःश्वासतापा-
दविरलगलदश्रु त्वन्मुखं मां दुनोति।
द्विजपतिमभिभूयोद्भूतपापानुतापं
कुचशिवमभिषिंचत्स्वं किमेतत्पुनीते॥

(२।५६)

बिहारी की नायिका के कोमल शरीर पर गुलाब की पंखुड़ियों से भी खरोंच पड़ती थी सत्यभामा उससे कहीं अधिक कोमल है—

किं खिद्यसे मलयजैर्मलयानिलैर्वा
किं वा मृणालवलयैर्नलिनीदलैर्वा ।
संशीलितापि ननु शीतलसंविधानै-
र्हा हन्त हन्त हृदयं मम दन्दहीषि ।।

(२।६०)

श्रीकृष्ण की मनोविनोद-भूमि कपट विकट चेटिकाओं से विकृत कर दी गई है—

कपटविकटचेटिकावचोभिर्गमयितुमर्हसि नो मनो विकारम् ।
रचयितुमितरेतरं वियोगं कलिकुतुकग्रहिलाः खला भवन्ति ।।

(२।६४)

सम्बोधनों की माला बहुत कम कवियों ने तैयार की है। शेषकृष्ण की निपुणता इसमें आगे बढ़ गई है—

तन्निवारय नेत्रवारि वारिजाक्षि ! धारय धैर्यम् । नाशय शोकमशोककिसलयशये ! परिहर सितवसनमसितनयने ! परिगृहाण मण्डनानि चण्डरोषे[1] !

(पृ० ३२)

युद्ध वर्णन में भाषा का रूप परिवर्तित हो गया है तथा कुछ पद वर्ण्य विषय के अनुकूल ध्वन्यात्मक एवं ओज गुण सम्पन्न पदावली से ग्रथित हैं—

क्षुभ्यत्क्षोणि विदीर्यदद्रि निपतत्तारावलि प्रज्ज्वलद्-
दम्भोलि ध्वनदुद्धतोदधिचलच्चण्डांशुशीतद्युति ।
कुप्यत्यत्त्रिपति त्रसत्सुरतति स्विद्यद्द्युलीलावति
स्पर्धेद्धं सुरवैरि-भूधरभिदोर्युद्धं तदाभून्महत् ।।

(५।१४)

अथवा

क्षुधितोग्रकरालकालजिह्वानिबहाह्वायकमापतत्तदस्त्रम् ।
क्षयकालघनाघनातिघोरैर्वनघोषैर्बधिरीचकार विश्वम् ।।

(५।२०)

इस चम्पू-काव्य का मुख्य रस शृङ्गार ही है। वीर रस केवल अंग या सहायक बन कर ही आया है। उपसंहार सत्यभामा के मान-भंग एवं संतोष में ही हुआ है[2]।

---

१. सम्बोधनों की माला—द्रष्टव्य-चम्पूरामायण युद्ध काण्ड—पृष्ठ—४८३।
२. द्रष्टव्य—५।६६—७२।

तीर्थ-यात्रा-प्रबन्ध चम्पू[1] :—

तीर्थयात्रा का कवित्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत करने वाले इस चम्पू-काव्य के रचयिता, समरपुंगव दीक्षित वाधूल गोत्र में दक्षिण के वटवनामिधान[2] नामक नगर में पैदा हुये थे। इनके पिता का नाम वेंकटेश एवं माता का नाम अनन्तम्मा था। 'कनकाठ पाठ' इनका विरुद था—

इति श्रीवाधूलकुलजलधिकौस्तुभस्यातिरात्रयाजिनःसाहित्यगुरोः कनकाठपाठविरुदांकस्य वेंकटेशसुमतिसहधर्मिणीमनन्तम्मागर्भशुक्तिमुक्तामणेः समरपुंगवदीक्षितस्य कृतौ चम्पूकाव्ये यात्राप्रबन्धे परिपूर्तिशोभितविलासो नाम नवम आश्वासः। (पृ० १७६)

शंकराचार्य के अद्वैत मतानुयायी श्री रंगराजाध्वरि के पुत्र एवं धुरन्धर विद्वान् अप्पय दीक्षित से इन्होंने विद्याध्ययन किया था—

सौभागिनेयः स तदा शोभायै श्रुतिसंपदाम्।
असेवत शिवाकल्पकल्पमप्पयदीक्षितम्॥ (२। ८६)

समरपुंगव ने यात्राप्रबन्ध में ग्रन्थनायक की जन्मकालीन ग्रहस्थिति दी है—

अथाध्युषितकेसरिण्यहिमभासि मेषं गते
कलावति तुलाधरोदयमुपेयुषि स्वामिनि।
स्वतुङ्गजुषि वाक्पतौ मकराभाजि मित्रात्मजे
शुभैकजनने दिने सुतमसूत शातोदरी।
(२। १६)

सिंहिकातनुभुवा सहयोगः सांप्रतं मृगपतेरजनीति।
स्पर्धमान इव पुत्रमुदारं प्रत्यपद्यत स पूरुषसिंहः
(२। २०)

ग्रन्थ नायक समर पुंगव का भाई है। यह ग्रहस्थिति १५७४ ई० के लगभग की है। अप्पय दीक्षित का समय ई० १५५१ से १६२३ ई० तक है[3]। अतः समरपुंगव का समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। सूर्यनारायण और धर्म इनके दो भाई थे।

---

१. यात्रा प्रबन्ध :—काव्यमाला ६० निर्णयसागर प्रेस बम्बई से १६३६ में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

२. पृ० २।

३. हिन्दुत्व—पृष्ठ ६२६।

नौ आश्वासों में प्रस्तुत इस चम्पूकाव्य का वर्ण्य विषय निम्नलिखित है—

मंगलाचरण के उपरान्त वटवनाभिधान राजधानी का वर्णन है। धर्मशिव योगी की बहन के साथ समरपुंगव के पिता वेंकटेश का विवाह, पुत्र प्राप्ति के लिये वेंकटेश द्वारा शिवाराधन, 'विमुक्तिकासार' में स्नान, सूर्य स्तुति, कात्यायनी का दर्शन एवं स्तुति, गणेश, नन्दिकेश्वर शिव और गौरी की स्तुति तथा वेंकटेश-पत्नी का गर्भधारण आदि प्रथम आश्वास में वर्णित है।

द्वितीय आश्वास में पुत्रोत्पत्ति, विद्याभ्यास, पाणिग्रहण और सूर्यनारायण के साथ अप्पय दीक्षित के यहां शास्त्राध्ययन वर्णित है। तृतीय में वसन्त वर्णन, तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान, कांचीपुरी गमन, पुरी एवं एकाम्रेश्वर का वर्णन तथा स्तुति, कामाक्षी स्तुति, विष्णु दर्शन एवं विष्णु स्तुति, चतुर्थ आश्वास में सूर्योदय, उद्यान, सन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रसंगवश दूती प्रेषण, संभोग आदि वर्णित है।

पंचम आश्वास में, कावेरी, सेतु, गन्धमादन पर्वत स्थिति शिवस्तुति, पाण्ड्यदेश गमन, हालास्यपुर में मीनाक्षी स्तुति, शिवस्तुति, ग्रन्थनायक का द्वितीय विवाह आदि विषय हैं। छठें आश्वास में, ग्रीष्म वर्णन, गयायात्रा, कार्तिकेय स्तुति, माक नृप से भेंट, वेंकटेश दर्शन, कालहस्तिपति शिव स्तुति, अम्बिका स्तुति, श्रीपर्वत गमन, अहोबलपति दर्शन, चण्डी स्तुति, तथा सप्तम् आश्वास में, गोकर्ण गमन, कई नदियों एवं नगरों का वर्णन, मथुरा के मुकुन्द की स्तुति, गंगा स्तुति आदि हैं।

अष्टम आश्वास में, केदारेश्वर, बदर्याश्रम, कामरूपकामाक्षी, कपिल, आश्रम, नीलगिरि, जगन्नाथ पुरी, गया क्षेत्र, विन्ध्येश्वरी, त्रिवेणी, साकेत आदि स्थानों का वर्णन एवं वहां के विविध देवी-देवताओं की स्तुति है। अन्तिम नवम आश्वास में, वाराणसी गमन, नगरी और विश्वेश की स्तुति, ईश्वरी स्तुति तथा ग्रन्थ की समाप्ति पर, उपसंहार आदि वर्णित हैं।

एक सौ छिहत्तर पृष्ठ की इस विस्तृत रचना में, कवि ने कहीं भी नायक का नाम नहीं दिया है। नायक के लिये–बालः, शिशुः, सः, भूसुरसूनुः-आर्यसेवी आदि विशेषणात्मक शब्दों से ही काम चला लिया गया है। नायक कवि का सहोदर भाई है इसमें तो सन्देह है ही नहीं। अन्य पुरुषात्मक वर्णन से यह भी आभास होता है कि वह उसकी जीवनी नहीं है, अतः सूर्यनारायण के अतिरिक्त सम्भवतः धर्म की ही यात्रा का विवरण प्रस्तुत

किया गया हो। क्योंकि अप्पय दीक्षित के पास नायक इन दोनों (कवि और नारायण) के साथ विद्याध्ययन के लिये गया था—

असौ....सूर्यनारायणसमरपुंगवाभिधानाभ्यामसमानविनयधुर्याभ्यां सोदर्याभ्यां........महान्तमन्वभूदानन्दम् ॥ (पृ० ३०)

इस चम्पू काव्य में उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के अनेक तीर्थों का वर्णन है। इन तीर्थों की सीमा उत्तर में बद्रिकाश्रम, पूर्व में कामरूप कामाक्षी तथा दक्षिण में रामेश्वर सेतु है। इस प्रकार भारत-यात्रा में केवल पश्चिमी भाग ही छूट गया है। इस दृष्टि से भूगोल की प्रचुर सामग्री इसमें सन्निहित है। नायक की यात्रा किस प्रकार सम्पन्न हुई है, इसका भी संकेत है—

अपि माधुकरीं वृत्तिमंचतो भ्रमवर्जितान् ।
अपि निःसीमकारुण्यानक्षनिग्रहनिर्दयान् ॥ ३ । ५१ ॥
आर्यसेवी स निध्यातुमगादेकाम्रनायकम् ।
वर्धते सुकृतश्रद्धा वार्धके वरिवस्यताम् ॥ ३ । ६३ ॥[1]

इस चम्पू काव्य को महाकाव्य के वर्ण्य विषयों से सज्जित करने का प्रयास किया गया है। बाह्यलक्षणों पर अधिक ध्यान दिया गया है। मंगलाचरण, कविवंशवर्णन, नायक का विस्तृत शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक का जीवनवृत्त, नगर, नदी, पर्वत, ऋतु आदि का वर्णन समाविष्ट किया गया है, परन्तु स्तुतियों की इतनी भरमार है कि कथा-प्रबन्ध में वे बाधक बन गई हैं[2]। एक-एक देवी-देवता की स्तुति में एक साथ पचासों श्लोक मिलते हैं। इन स्तुतियों में रूपचित्रण एवं महत्त्ववर्णन दोनों साथ साथ उपलब्ध होते हैं। रूपचित्रण में कवि की सूक्ष्मदर्शिता एवं रुचि की अभिव्यक्ति अधिक हुई है।

वदनश्रियो विधात्रा विधृतस्य विधुच्छलातपत्रस्य ।
मृगमदतिलकमिषेण च्छायावलयं चकास्ति तव फाले ॥

(३।१११)

इस चम्पू-काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकृति के रमणीय चित्रों का अंकन है। सेतुवर्णन देखिये।

चलकङ्कणैः पयोनिधिशयने वेलावधूर्मिहस्तैर्यः ।
आस्फालितोरुभागः स्वपितीव चकास्ति सेतुराजोऽयम् ॥

(५।२७)

---

१. ३/५० से ३/६३ तक वर्णित सभी श्लोक एक कुलक के अंग हैं।

२. द्रष्टव्य–३/६५ से ३/१३६ पुनः ३/१३७ से ३/१६६ तक भारती–स्तुति।

सेतुर्जयति यदाक्रमरांभ्रमलोला: समुद्रकल्लोलाः ।
विश्वत्रयीविलंघनलाघवशिक्षारता इवाभान्ति ॥
(५।२८)

सम्पूर्ण काव्य में कतिपय स्थलों को छोड़कर, गद्य के छोटे-छोटे रमणीय मणिखण्ड ही जटित हैं।[१] गद्य के भी वे ही भाग अत्यधिक सुन्दर हैं जहाँ प्रकृति के चित्र प्रस्तुत करने का अवसर कवि को मिला है। कावेरी नदी का वर्णन एक नायिका के सदृश हुआ है :—

अथ बुधपुंगवः सह्यगिरिशंकुसंदानितां बन्धरशनामिव सिन्धुराजपटमंडपस्य विधिवनचरप्रसारितां व्यापादनवागुरामिव पातकभरश्वापदपरंपरायाः सैकतनितम्ब-संगिनीं मेखलामिव जगतीमृगीदृशो निरतिशयसलिलकेलिनिरंकुशचोलीविशंकट-वक्षोजघनविक्षोभजातवेदनामिव। प्रतिमुहुरूर्मिपवनापदेशेन विनिःश्वसन्तीं बहुदूरग-मनखेदालसामिव पदे पदे तरंगकरेण तटभूमिमवलम्बमानां कलिविजयकर्मविहि-तं यमस्य धर्मक्ष्मापतेः कटकसंनिवेशैरिव कलशाम्बुराशिकल्लोलपाण्डरैरमरनिकेत-नप्रासादमण्डलैरविरहिततीरदेशां लासिकामिव रभसविभावितभ्रमीसहस्रशालिनीं नारायणीमिव नवकुवलयश्यामलां कौमुदीमिव कुमुदवनामोदिनीं वनमालिमूर्तिमिव वारिजसमर्चितां पंचशरवैजयन्तीमिव पाठीनपरिशोभितां विलासवतीमिव विधृत-फेनधवलचारुचन्दनामगाहत कवेरनन्दनाम् ॥ पृष्ठ ७६ ॥

सप्तम आश्वास तो रमणीय वर्णनों से सम्पन्न है। यमुना के किनारे पहुँच कर कवि की कल्पना उस युग में पहुँच गई है, जब कृष्ण की विश्व-मोहिनी वंशी के स्वर पर यमुना की ऊर्मियों के साथ साथ गोपबालायें नृत्य करती थीं[२] :—

वृषमौक्तिकसंहतेर्विधात्रा वणिजां विपणौ विसारितायाः ।
परभागकरी पटीव नीला प्रतिभाति द्युमणेरियं कुमारी ॥७।४०॥
मिहिरांशुविलीनमेघमार्गद्रवदिग्धन्दततौ परं किलास्याम् ।
यमुनेति कलिन्दजेति सिन्धोरबलेति प्रथते नृणां विमोहः ॥७।४१॥
अनुवारमवाप्तवारिकेले रसिताया मुरशासनस्य मूर्तेः ।
अयमाविशदंशुमालिकन्यामभिरामः किमु नीलिमातिरेकः ॥७।४४॥
कराम्बुजस्तम्भितकिंकिणीरवं पदे पदे कल्पितपार्श्ववीक्षणम् ।
शनैः शनैराकलितांघ्रिचङ्क्रमं विनौमि शौरेव्र्रजगव्यमोषणम् ॥७।८२॥

---

१. पद्येषु बाहुल्यमिह प्रबन्धे मितानि गद्यानि तु तावतापि ।
अस्येव लक्ष्मानुगमो रसज्ञैर्विच्छित्तिभेदाः परमीक्षणीयाः ॥
(१।११। यात्राप्रबन्धे)

२. द्रष्टव्य : ७।३६ से ७।१३५ तक।

कलशीनिहितं पयः कथं वा परिपीतं भवलेति राधयोक्ते ।
अधरामृतपारणामसुष्या विदधानं विभुमेवमित्युपासे ॥७।८५॥
अनुभवेयमहं किमु जातु चिन्मुरभिदो मुरलीनिनदामृतम् ।
किसलयांजलिशालिमुखांजलैः किमपि सेवितमन्यभृतैर्द्विजैः ॥७।६८॥

प्रकृति के सुन्दर चित्रों के साथ श्रृङ्गार और भक्ति का सुन्दर रूप स्थान स्थान पर उपलब्ध होता है। एक तीर्थयात्री के जीवन में प्रणय का अवसर आना असंभव तो नहीं है, पर चतुर्थ आश्वास का पूर्ण विवरण काव्य में श्रृङ्गार के आवश्यक समावेश की युग-मांग की पूर्ति ही प्रतीत होती है। दूतीप्रेषण, स्मर-दग्धता, चन्द्रोपालम्भ, समीरोपालम्भ से लेकर—

निर्विशङ्कनखसंनिवेशनः पाणिरोधरहितोष्ठचुम्बनः ।
स्वस्तिकोज्झितकुचोपगूहनः स्वैरलब्धरशनावमर्शनः ॥१।१२७॥

तक के वर्णन से ही कवि को सन्तोष नहीं हुआ है, वह अभिनव कालिदास और शेषकृष्ण से दो हाथ आगे बढ़कर महाभयानक रति-युद्ध[1] के वर्णन में भी प्रवृत्त हो गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि कवि की कल्पना ने इस काव्य में अनेक ऐसे वर्णन दिये हैं, जिनमें भक्ति की गंगा, शृंगार की यमुना और कला की कावेरी के दर्शन होते हैं पर साथ ही कलुषित नालों के पंकिल क्षेत्रों में भी वह उसी मस्ती के साथ घूमी है। कल्पना की इसी बहुरंगता के कारण इस काव्य को, सम्भवतः प्रियता भी प्राप्त हुई है और कुछ व्यक्ति इसे चम्पू काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण भी समझते हैं[2]।

३१—आनन्दकन्द चम्पू[3]

समरपुंगव दीक्षित का दूसरा उपलब्ध चम्पू काव्य है। इसमें आठ आश्वास हैं जिनमें शैव सन्तों एवं सन्तिनियों के चरित्र अंकित हैं। यह एक प्रकार का वर्णनात्मक संग्रह है और इसमें अविच्छिन्न कथा का अभाव है। इस काव्य की समाप्ति में भी वही श्लोक उपलब्ध होता है, जो यात्राप्रबन्ध में—

आर्यैश्चक्रसरोऽवगाहनियमैरश्रान्तयात्राक्रमै-
रस्तोक-द्विजसौहितीं विरचनैरावश्यकैरध्वरैः ।

---

१. पृष्ठ ७३ से ७५ तक।
२. "Which answers more the requirements of a Champu." Sanskrit Lit. Page—125.
३. इण्डिया आ० कैट० वा० ७,४०३६।२६०D (अप्रकाशित)

विद्याव्याकरणैश्च शिष्यसदसे, विश्वेशमाराधयन्
काश्यामस्तकलत्रसूनुसुखिनः कल्याणसंवृद्धये ॥

(आ० क० च०)

यात्राप्रबन्ध में—अस्तोकद्विजसौहितीं–के स्थान पर—अस्माकं द्विजनौहितींपाठ है तथा अन्तिम चरण है --वाधूलान्वयमौलिरावसदसौ वाराणसीमृद्धिमान्।[1] आनन्दकन्द चम्पू के उपसंहार वाक्य से इसका रचनाकाल १६१३ ई०ज्ञात होता है :—

इति श्रीसमरपुंगवदीक्षितकृतौ चम्पूकाव्ये अष्टम आश्वासः। सं० १६७० मार्गशीर्षमासे एकादश्यां तिथौ शनिवासरे..........।

मंगलाचरण का श्लोकहै—

महाकविसरस्वतीमधुरकाव्यनिर्वर्तने,
प्रसन्न-पदलिप्सया परमुखानि नावेक्षते।
अलंकृतिविधौ मणेरधिगमाय किं गाहते,
भुवं त्रिदशधाम वा भुजगराजसीमन्तिनी ॥१।१॥

३२—नृसिंह चम्पू[2] :—

नृसिंह चम्पू काव्य की रचना संगीतागम-काव्य-नाटकपटु दैवज्ञ सूर्य ने की है। चम्पू काव्य के अन्त में कवि ने स्वयं अपना परिचय दिया है—

आसीदस्तसमस्तदोषनिवहं गोदो विदर्भायुतेः
क्रोशेनोत्तरतस्तदुत्तरतटे वार्थाभिधानं पुरम् ॥५।७६॥
तत्रासीद् गणकाग्रणी (बुधवरः) श्रीनागनाथो द्विजो,
भारद्वाजकुलेऽथ तस्य तनयः श्रीज्ञानराजाभिधः ॥
यद्ग्रन्थान् समधीत्य शिष्यनिवहोऽप्याचार्यचर्यामगात्ः।
तत्सूनुर्गणितार्णवप्रतरणे सत्कर्णधारः सुधीः ॥५।७७॥
संगीतागमकाव्यनाटकपटुः सूर्याभिधानः कवि।ः
चम्पूकाव्यमिदं चकार चतुरं लक्ष्मीपतिप्रीतये ॥५।७८॥

इसके आधार पर गोदा-तटवर्ती वार्था नामक नगर में, भारद्वाजकुलोत्पन्न नागनाथ के पौत्र एवं ज्ञानराज के पुत्ररूप में इनका जन्म हुआ था।

---

१. द्रष्टव्य-यात्रा प्रबन्ध ६।११२।
२. डा० सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित—तथा कृष्ण ब्रदर्स जलन्धर से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

इनकी अन्य अनेक कृतियों में लीलावती और बीजगणित की टीका उपलब्ध होती है। अपने ग्रंथों की नाम-गणना इन्होंने लीलावती टीका के अन्त में की है। उपर्युक्त श्लोकों के सदृश ही कुछ विशिष्ट विशेषणों की वृद्धि कर, उन्होंने लीलावती की टीका के अन्त में भी अपना परिचय दिया है। वार्था के स्थान पर वहाँ पार्था नाम दिया गया है। लीलावती की टीका का रचनाकाल शक १४६३ (१५४१ ई०) है, अतः सोलहवीं शताब्दी का मध्य भाग इनका रचना काल मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इनकी कवि-कुशलता गणित के प्रश्नसम्बन्धी श्लोकों की टीकाओं में भी दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिये—

'बालेमरालकुलमूलानि सप्त' की टीका का रूप देखिये—

पुरःपरिसरसमीरनिस्सृतसीकरनिकरसंस्कृतविलसतावतंसहंसहंसीनिवहगतिबिलासमवलोक्य विपुलजलं कल्लोलविलोलकलेवरं कलितकोमलकमलं विमलनालं कुरलकूजितकेलिकलहकोलाहलशीलं मरालयुगलमद्राक्षीदित्यर्थः।[1]

नृसिंहचम्पू में कुल पाँच उच्छ्वास हैं। प्रथम उच्छ्वास में केवल दश श्लोक हैं, जिनमें वैकुण्ठ एवं नृसिंह की स्तुति है। द्वितीय में हिरण्यकशिपु द्वारा अपने पुत्र प्रह्लाद को दी गई विविध यातनाओं का वर्णन है। तृतीय में नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध, चतुर्थ में देवताओं, सिद्धों द्वारा नृसिंहस्तुति तथा अन्तिम पंचम उच्छ्वास में नृसिंह की प्रसन्नता एवं शान्ति का वर्णन है। इनमें कुल ७५ श्लोक एवं १६ गद्य चूर्णक हैं। अन्त में तीन श्लोकों में कवि का परिचय है—

कवि की अपनी ही उक्ति[2] के अनुसार इस चम्पू में क्रमशः, भयानक, रौद्र, वीर, बीभत्स, अद्भुत, हास्य, करुण, शृङ्गार और शांत रसों का समावेश किया गया है। इस प्रकार कवि ने सभी रसों का एकत्र आस्वादन कराने का प्रयत्न किया है। रसों का वर्णन, गद्य एवं पद्य दोनों को समान महत्त्व देकर किया गया है।

> **ततः सुररिपुरपि स्फुरितगुरुवरकरालकरकलितकरालकरवालः कोपकृशानुकलुषितनयनः शयननिलीनभोगः पदाहतिक्षोभितो भुजंग इव कल्पान्तकालकलितकलेवरोऽपरः कृतान्त इव श्रवणकटुपटुतरबहुवचनरचनासंभूतसंरम्भारम्भः स्तम्भं बिभेद** ॥पृ० ५॥

१. कविपरिचय एवं उद्धरण के लिये द्रष्टव्य—गणक तरंगिणी पृ० ६५-६७।

२. द्रष्टव्य-श्लोक १,८।

भयानक—

चण्डाडंबरभृड्डमरुकध्वानावधानाकुला
लुभ्यद्भीषणभूरिभैरवरवैरुद्भीषिता द्यौरपि ॥
खेलत्खेचरयोगिनीकलकलद्वेतालकोलाहलैः
स्वं गर्भं विससर्ज तर्जितमतिस्ताराप्रपातच्छलात् ॥३-४॥

क्रुद्ध नृसिंह को शांत करने के लिए कोई भी देवता समीप जाने का साहस नहीं कर पाता। उनकी स्थिति के वर्णन द्वारा कवि ने हास्य का सृजन किया है—

विष्णो विष्णोः समीपं व्रज यजनशतैः प्राप्तमिन्द्रत्वमेतद्
देवः संयातु पाथः पतिरिति मघवन् सेऽस्ति कान्ता नवोढा ॥
चित्ते वित्तेश धैर्यं कुरु मम शिशवो हन्त पश्यन्ति मार्गं,
वायो वायो यजत्र प्रिय उरगपतिः पृष्ठतः किं न दृष्टः ? ४।७॥

इस चम्पूकाव्य की विशेषताओं का निर्देश करते हुए डा० सूर्यकान्त जी लिखते हैं—

लेखनपद्धतिश्चोत्कलिकाप्राया। क्वचिद् वृत्तगन्धितापि दृश्यते परमल्पशः, वाचां धोरणी चास्याः न बाणकवेरिव प्रसन्नगम्भीरा नापि दण्डिन इव शिथिल-ललिता। नापि सुबन्धोरिव श्लेषबहुला। नापि धनपालस्येव वर्णनबहुला मुक्तक-प्रचुरा च। नानन्तकवेरिव पद्यबहुला भारते। न त्रिविक्रमभट्टस्येव क्लीबस्त्रीसंकुलज-श्लेषप्राया। न भोजराजस्येवाहृदयङ्गमानुप्रासबहुला चम्पूरामायणे। किन्तु समु-त्कंठितकण्ठीरवात्यद्भुतार्थसन्दर्भा पंडितरूपवेदैव। वीरो रसश्च प्रधानम्। यम-कानुप्रासबाहुल्यं तु पदे पदे प्रतीयते। चम्पूश्चेयं सर्वैरपि गुणैरहीना अलंकाररी-तिलक्षणैरहीना रसभावापराचीना चेति सर्वं निरवद्यम्। (भूमिका से)

नृसिंहावतार की कथा अनेक पुराणों में वर्णित है।[१] इस वीर रस प्रधान चम्पू काव्य में भी नृसिंह के क्रोध की शान्ति के लिये कवि ने रमा को उपस्थित कर शृंगार का भी समावेश कर दिया है—

सौन्दर्येण भृशं दृशोर्नरहरेः साफल्यमातन्वती
सभ्रूभङ्गमपांगवीक्षणवशादाकर्षयन्ती मनः ॥

---

१. श्रीभारते भागवते च विष्णुधर्मोत्तरे वैष्णवमात्स्ययोश्च।
श्रीनारसिंहेऽप्यथ नारदीये कौर्मे पुराणेषु तथापरेषु ॥१।१॥ प्रहलाद विजय काऽतिरुवेंकटनाथः ॥ क्षेमेन्द्र के दशावतारचरित में चतुर्थ अवतार नृसिंह का वर्णित है।

स्फूर्जत्कंकणकिंकिणीगणझणत्कारैः कृतार्थं भुवो
कुर्वन्ती शनकैर्जगाम जगतामाश्चर्यदात्री रमा ॥५।३॥

एवमरविंदविगलदमन्दमकरंदविंदुसंदोहवदिन्दिरासुंदरतरवदनमधुराधरसुधासम्बन्धनिःसृतमृदुतराक्षरनिकररचितकर्णरसायनस्य चिरतरविरहसोत्कंठहृदयसंभावितसंभोगारम्भसम्भवतोषाभिलाषमिषेण कमलाविमलमुखकमलमधुपानसादरनयनभृंगस्य विपुलपुलककुलकलितकलेवरस्य भगवतः क्षणमन्तःकरणं शृङ्गाररसार्णवे मग्नमासीत् । पृ० ६२ ॥

३३—मन्दार-मरन्द चम्पू :[1]

गद्य-पद्यमयी कोई भी रचना चम्पू कहला सकती है, इस तथ्य की पुष्टि करने वाले इस मन्दार-मरन्द चम्पू के रचयिता श्री कृष्ण कवि हैं। उपसंहार वाक्य से इनका जो परिचय मिलता है उससे यह वासुदेव योगीश्वर के शिष्य एवं गुहपुर नामक स्थान के निवासी एवं विविध भाषाओं के पारंगत विद्वान् कहे जा सकते हैं—

श्रीमद्घटिकाशतशतविहिताष्टभाषासरसकविताचरणनिपुणस्य
वासुदेवयोगीश्वरस्यान्तेवास्यन्यतमस्य गुहपुरवासशर्मणः कृष्णशर्मणः
कवेः कृतौ मन्दारमरन्दे चम्पूप्रबन्धे शेषविन्दुरेकादशः समाप्तिमगमत् ॥
(पृष्ठ १६६)

इनका समय १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं १७ वीं का पूर्वार्ध है। यह वस्तुतः एक लक्षण ग्रन्थ है। स्वयं कवि ने इसके वर्ण्य विषय को निम्नलिखित ग्यारह विन्दुओं में विभाजित कर दिया है—

चम्पूप्रबन्धे मन्दारमरन्दाख्ये कृतौ मम।
वृत्तसारश्लिष्टचित्रबन्धगुप्ताः स्नर्तनाः ॥१।७॥
शुद्धरम्यव्यङ्ग्यशेषा इत्येकादश बिन्दवः।
तत्रादिमे वृत्तविन्दौ वृत्तलक्षणमुच्यते ॥१।८॥

ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य भी कवि ने स्पष्ट कर दिया है—

प्राचीनानां नवीनानां मतान्यालोच्य शक्तितः।
रचितं बालबोधाय तोषाय विदुषामपि ॥ (पृष्ठ १६६)

इसमें सोदाहरण दो सौ दो छन्दों के लक्षण तथा काव्य के अन्य अंगों—नायक-श्लेष-यमक-चित्र-बन्ध-नाटक-भाव-रस, एक सौ सोलह अलंकार, सत्तासी दोष-गुण शब्दशक्ति-पदार्थ-पाक-वर्ण्यावर्ण्य आदि का विवेचन किया गया है।

---

१. निर्णयसागर प्रेस बम्बई काव्यमाला ५२ में प्रकाशित १९२४ की द्वितीय संस्करण वाली प्रति प्रयुक्त।

भूमिका के रूप में किसी प्रकार प्रबन्धत्व लाने के लिये एक गन्धर्व-दम्पति की कल्पना कर ली गई है—

यथा-अथ कदाचित्—

भूमीलोकदिदृक्षया दयितयाभीक्ष्णं समभ्यर्थितो,
गन्धर्वः कलगीतिनामकलितः साकं तया कान्तया।
आरुह्योरुविमानमाशु गगने गच्छन्नपश्यन्भुवं,
तत्रैकां नगरीं विलोक्य ललनामित्यब्रवीत्सादरम्॥१।१३॥

अस्ति पुरःपश्यप्रशस्तविभवैः समस्तलोकसुखकरी रजतपीठपुरी (पृष्ठ ६)

इसके बाद छन्दों के लक्षण और उदाहरण में नगरी का वर्णन आरम्भ हो जाता है। रूप्यपीठ नामक नगर के वर्णन के उपरान्त एक देवालय का वर्णन होता है। मध्वाचार्य के द्वारा रचे गये भाष्य और अच्युतप्रेक्ष की भी चर्चा की गई है। कथा का रूप यहाँ से बदल जाता है—

ततः किल कलगीतप्रेयसी कलाज्यायसी गीतश्रेयसी नाम्नी प्रसादसीम्नि प्रियाख्यानप्रस्तावनायां नर्मसखीरिदमवादीत्—

वरतालसदक्षेण द्योलोकसुहृदावृतम्।
शिरःफलसमूहेन मयालोकि महीतलम्॥३।१॥

यत्र च कृतविटपानमना उद्यानतरवो न सुन्दरीजनः विपदाक्रान्तः कुलायो न धनिकलोकः वर्तते नवबन्धनं विदुषां न चोराणाम्। श्लिष्ट बिन्दु (पृष्ठ ३७)

कथाधारा के लिये यह बहाना भी कवि समाप्त कर देता है तथा काव्य के विवेचन में संलग्न हो जाता है। यदि कहीं रुचि हुई तो उदाहरण के लिये एक दो पंक्तियां कृष्ण और राधा को आधार बना कर लिख दी हैं।[1] कहीं कहीं प्राचीनोक्ति भी दी गई है, जो भिन्न भिन्न प्रकार की है[2]—

दृढतरनिबद्धमुष्टेः कोशनिषण्णस्य सहजमलिनस्य।
कृपणस्य कृपाणस्य च केवलमाकारतो भेदः॥१०।६१॥

आरम्भ में सानुप्रास समस्त पदावली सम्पन्न कुछ गद्य खण्ड हैं—

अथ सकलकलाविलाससललितललनाजनलपितमालाजितशुकाकलितमंजुल-पिंजरजटिलविशङ्कटविटङ्कां स्फुटतरस्फाटिककुट्टिमाकरतलकलितकनककुम्भैरुन्नमत्कुचभारामिव.............।

---

१. द्रष्टव्यः—शेष बिन्दु, बिना उदाहरण का, शुद्ध बिन्दु कहीं कहीं उदाहरण सहित।

२. पृष्ठ १२६-१२७।

कलिन्दनन्दिनीतुङ्गतरङ्गभङ्गिसकूलदुकूलसंवीतसारसारसदृशां कामिनीजनकमनीयजनमवीणानिनादैर्गायन्तीमिव सुधाधवलिम्ना हसन्तीमिव सौधश्रेणीं वर्णयन्तं निजकान्तमप्राक्षीदायताक्षी (पृष्ठ १२)

रम्यबिन्दु में शृङ्गार के विविध अंगों को प्रदर्शित करने वाले श्लोक रचित हैं—

सुमिललतांगीकृतरतिरपि वनपुष्पेषु लोलचित्तोऽयम् ।
कृष्णभुजंगः पश्य त्वामभि समुपैति शीघ्रमित एहि ॥ ६/२१ ॥

स्वच्छन्दाचार का निर्भर्त्सन यहां अनुभव रूप में वर्णित है (पृ० ६५) मन्दारमरन्द में कवि ने आवश्यकतानुसार अन्य कवियों की सूक्तियों और प्रौढ़ोक्तियों को ग्रहण किया है, पर उसका मुख्य उद्देश्य विविध छन्दों में विविध प्रकार की रचना-निपुणता की क्षमता की, अपनी घोषणा करना ही है।

३४—विद्वन्मोदतरंगिणी[1]

गौड़ देशोद्भव चिरंजीव भट्टाचार्य शतावधान की यह रचना भी मन्दारमरन्द की ही परम्परा में सम्मिलित है। इसके प्रथम तरंग में कवि ने अपनी कुल परंपरा का परिचय दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि यह एक विद्वान परिवार में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम श्री राघवेन्द्र था। राघवेन्द्र राढापुर-निवासी काश्यपगोत्रीय काशीनाथ के द्वितीय पुत्र थे। कवि का वास्तविक नाम वामदेव था। पिता स्नेहवश इन्हें चिरंजीव कहते थे, अतः इसी नाम से यह प्रसिद्ध हो गये।

कलकत्ता कालेज[2] की सूची में एक प्रति दी हुई है जिसमें काल-निर्देशक—शाके वेदहुताशसिन्धुशशभृद्माने मुनीन्द्वंशके—पंक्ति दी हुई है। इस आधार पर कुछ विद्वान १४३४ शक और कुछ १७३४ शक अर्थ करते हैं। मतभेद-सिन्धु-का अर्थ चार या सात करने में है। प्राचीन परम्परा चार ही मानती आई है, अतः इनका समय ई० सन् १५१२ सिद्ध होता है। उक्त पंक्ति प्रकाशित प्रति में नहीं है। परम्परा इन्हें सोलहवीं शताब्दी में हुआ मानती है।[3]

विद्वन्मोदतरंगिणी में आठ तरंग हैं। प्रथम में कविवंश-वर्णन, द्वितीय में वैष्णव, शैव, शाक्त, अद्वैतवादी, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा-वेदान्त,

---

१. श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से सन् १६२८ (सं० १६८५) में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

२. कलकत्ता संस्कृत कालेज कैटलाग नं० ६३।

३. द्रष्टव्य : आनन्दकन्द चम्पू की भूमिका पृ० ४।

सांख्य और पातंजल योग के ज्ञाताओं, पौराणिक, ज्योतिषी, आयुर्वेदज्ञ, वैयाकरण, आलंकारिक और नास्तिक विद्वानों का समागम, तृतीय से लेकर अष्टम तरंग तक इनमें से प्रत्येक मतानुयायी द्वारा स्वपक्ष-प्रतिपादन और परपक्ष-खण्डन है। अन्तिम भाग में सकल विद्यानिधि विद्वान् द्वारा समन्वय-वादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन है। इसमें पद्य की बहुलता है। गद्य भाग या तो परपक्ष को संबोधित करने के लिये प्रयुक्त हुआ है या व्यंग्य कसने के लिये अथवा कवि द्वारा सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने के लिये। इसका गद्य भाग निरलंकृत है वाक्य छोटे छोटे हैं—

(१) अथ सोपहासं सर्वे हसन्तिस्म। आः पापो दुरात्मा क्वासौ कुत आगत इति प्रकटं जगदुः।

(२) अथ नास्तिकः आः पापोऽहं दुरात्मा भवन्तः पुनः पुण्यशीलाः।

(३) मीमांसकः (साटोपम्) पश्य रे मूढ ! (गद्य-प्रयोग के त्रिविध रूप हैं-पृ० १३) नास्तिक के वर्णन में जैन मुनि के रूप का सांकेतिक वर्णन हुआ है।—

सम्मार्जितक्षितिन्यस्तपादो हिंसाभयादयम्।
नास्तिकोऽत्र समायाति समुल्लुंचितमूर्द्धजः ॥ २/२९ ॥

इसका प्रत्युत्तर जैसा होना चाहिये नास्तिक महोदय देते ही हैं, पर साम्प्रदायिक असहिष्णुता का सुन्दर रूप इस चम्पू में प्रदर्शित किया गया है। सम्भवतः चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक यह असहिष्णुता अपने चरम रूप में विद्यमान थी। एक शिलालेख में जैन मुनि की ललकार देखिये—

रे रे चार्वाक गर्व्वं परिहर विरुदालिं पुरैव प्रमुंच
साङ्ख्यासङ्ख्येयराजत्परिकरनिकराद्याप्तघट्टोऽसि भट्ट।
पूर्णं काणाद तूर्णं त्यज निजमनिशं मानमापन्निदानं,
हिंसन् पुंसोऽभिशंस्यो व्रजति यदपरान् वादिनः सिंहणार्यः[1] ॥ ५८ ॥

अष्टम तरंग में, रामोपासकों और कृष्णोपासकों द्वारा राम और कृष्ण की महिमा का जो वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है, अपेक्षाकृत उनमें व्यक्त सौन्दर्य अधिक है।[2]

मकरकुण्डलमण्डनमण्डलोदितनिशापतिनिर्मितलोचनः।
मुकुटदीधितिदीधितिमद्द्युतिः स मुनिमानसमानसहंसराट् ॥ ८/८१ ॥

---

१. जैन शिलालेख संग्रह १०५ (२५४) रचनाकाल शक सं० १३२० (ई० १३९८)।

२. द्रष्टव्य—पृष्ठ ४७ से ५७ तक।

शेष अंश तत्वनिरूपणात्मक ही अधिक हैं। उपसंहार समन्वय से हुआ है।

शिवे तु भक्तिः प्रचुरा यदि स्याद् भजेच्छिवत्वेन हरिं तथापि।
हरौ तु भक्तिः प्रचुरा यदि स्याद् भजेद्धरित्वेन शिवं तथाऽपि।

(८/१३३। आदि)

३५—माधव चम्पू[1]

चिरंजीव भट्टाचार्य का यह दूसरा चम्पू काव्य है। विद्वन्मोदतरंगिणी की भांति ही आरम्भिक मंगलाचरण का श्लोक है—

तमोगणविनाशिनी सकलकालसुद्द्योतिनी,
धरातलविहारिणी जडसमाजविद्वेषिणी।
कलानिधिसहायिनी लसदलोलसौदामिनी,
मदन्तरवलम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी॥

(माधव चम्पू। विद्वन्मोदत०)

विद्वन्मोद-तरंगिणी में कवि का दार्शनिक और पाण्डित्य-पक्ष प्रकट हुआ है और माधवचम्पू में उसका कवित्व-पक्ष। इस चम्पू काव्य के नायक तो माधव (कृष्ण) हैं पर कथा सर्वथा काल्पनिक है। इसमें कुल पांच उच्छ्वास हैं जिनमें माधव और कलावती का विवाह वर्णित है।

प्रथम उच्छ्वास में माधव अपने प्रमुख सेवक कुवलयाक्ष के साथ वृन्दावन में मृगया के लिये जाते हैं। कवि ने मृगया का वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति की भांति किया है। माधव अनेक वन्य-पशुओंका बाण से शिकार करते हैं। थक कर वह विश्राम के लिये एक सरोवर के किनारे जाते हैं।

द्वितीय उच्छ्वास में कलावती नामक एक बाला के, उसी सरोवर में स्नान करने के लिये सखियों के साथ आने का वर्णन है। कलावती के कटाक्ष-पात से माधव का हृदय विचलित हो जाता है। इसी बीच एक शुक माधव से उनका परिचय पूछता है। शुक से मानव-वाणी सुन कर माधव विस्मित होते हैं, तभी कुवलयाक्ष उत्तर देता है:—

श्रीमाधवाख्यो वसुदेवसूनु-
र्वृन्दावने किंच कृताधिवासः।
समागतोऽयं मृगयाविधान-
श्रान्तोऽत्र विश्रान्तिकृते चिराय॥

माधव, शुक से अपनी प्रणय-पीड़ा बतला कर, अपना कल्याण करने की शुक से प्रार्थना करते हैं। शुक जाकर पता लगाता है और बतलाता है कि

१. कलकत्ता से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

कलावती उत्कल नरेश मुकुन्दसेन की कन्या है। वह कलावती की स्थिति का वर्णन करता है कि किस प्रकार माधव के विरह में उसकी दयनीय दशा हो गई है।

तृतीय उच्छ्वास में, कलावती के स्वयंवर का वर्णन है जिसमें विविध देश के राजाओं का वर्णन है। कलावती माधव के गले में जयमाला डाल देती है। दोनों का विवाह हो जाता है।

लौटते समय राक्षसराज का दूत माधव से कहता है कि—

कन्या कापि मुकुन्दसेननृपतेर्याता जगन्मोहिनी
आकर्ण्यैव मुहुः सुधीरमनसा चिरान्तरे रक्षिता।
अज्ञात्वैव विशेषमित्थमधुना सेयं त्वयोद्वाहिता
श्रुत्वेति प्रणयेन राक्षसपतिर्बालामिमां याचते ॥ ४/३ ॥

इस पर बलदेव क्रुद्ध होते हैं। अस्वीकृति पर ससैन्य राक्षसराज के साथ कृष्ण और बलराम का भयंकर युद्ध होता है। माधव के बाण से राक्षसेन्द्र मारा जाता है। उसकी पत्नी विलाप करती है। यह चतुर्थ उच्छ्वास में वर्णित है।

पंचम उच्छ्वास में माधव और कलावती का केलि वर्णन है। फिर कृष्ण नारद के कहने से द्वारका जाते हैं। कलावती हंस को दूत बना कर द्वारका भेजती है। हंस कलावती की विरह-दशा का वर्णन कृष्ण को सुनाता है। यहीं ऋतु-वर्णन के साथ उसकी दशा का वर्णन है। माधव शीघ्र ही रुक्मिणी को छोड़कर मधुपुर चल देते हैं। वहां कलावती से मिलते हैं।

इस चम्पू काव्य का वस्तु-संगठन अत्यन्त अनूठा है। शृंगार के सारे साधन एवं प्रणय की सभी दशाओं को उपस्थित करने के लिये कवि ने कल्पना की सारी शक्ति लगा दी है। प्रणय कथा का आरम्भ द्वितीय उच्छ्वास से होता है—पूर्वराग, मिलन की आकुलता, स्वयंवर, शुक का माध्यम, विवाहोपरान्त स्त्री के लिये युद्ध, राजमहल का केलिविलास, प्रवास, प्रवासजन्य विरह, हंस दूत, ऋतुवर्णन और पुनर्मिलन—ये सभी वर्णन सामन्तवादी युग की वीरता और विलासिता का एकत्र दर्शन कराते हैं। मृगया-वर्णन कथावस्तु की पृष्ठभूमि है। रासो के—पद्मावती समयो—की घटनाओं से इसकी घटनाओं का पर्याप्त साम्य है। अन्त का सामन्ती विलास-वर्णन युग का प्रभाव है जो सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी के चम्पू काव्यों में अभिव्यक्त हो रहा था। वीर रस यहाँ शृंगार का अंग बन कर आया है।

वर्णन की दृष्टि से सारा चम्पू काव्य अत्यन्त सुन्दर है। गद्य भाग निरलंकृत एवं सरल है। वह चम्पू काव्यों में प्रयुक्त गद्य की अपेक्षा पंचतन्त्र और हितोपदेश के गद्य सा है। पर पद्य भाग चम्पू काव्यों की तरह ही रमणीय है। कवि की कुशलता उसके पद्य भाग में ही व्यक्त हुई है।

शूकर-महिष का आखेट वंगीय सामन्त अधिक करते थे। आखेट-वर्णन के समय इन दोनों का चित्रण कवि ने निम्न लिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है—

ईषत्कण्टकितप्रकम्पितलसल्लोमावली मण्डितो
दन्ताभ्यामवनीं स्पृशन्ननुदिशं व्याघूर्णयँल्लोचने।
सर्व्वा एव दिशोऽतिघुघु रवैरापूरयंञ्छूकरः
क्रोधोद्दामनिकामभीषणतनुर्निःशंकमभ्यागतः ॥१/३५॥
ताराकारविलोचने प्रतिदिशासूद्ग्रीवमाघर्णयन्
गर्जन् वारिदवन्मुहुर्महिदिव प्रोद्दाममायात्यसौ ॥१४०॥ पृष्ठ १०॥

बलराम की वीरोक्ति भी द्रष्टव्य है—

एतस्मिन् मुशलायुधे रणभुवो मूर्द्धानमारोहति
प्रोद्यद्भास्वरमण्डलो दिनमणिः खद्योतपोतायते॥
शुक्रः पृष्ठगकातरेक्षणगणैरस्यास्यमालोकयन्,
धावन् मूर्च्छति संगरात् तव पतिः कोऽयं पतंगाकृतिः॥ ४/७॥

लौटती हुई बारात का सीधा सादा चित्रण सैन्य सज्जा और शोभा यात्रा दोनों का रूप प्रस्तुत करता है।

आदावेव गजेन्द्रमौलिविलसद्दण्डा पताकावली
पश्चाद्वारणराजधोरणिरतिप्रोद्दामयोधाश्रिता।
उद्दण्डद्भुजलांछिताप्यथ घनीभूता रथानां तती
तत्पश्चात् तुरगावली विजयते योधैः समं सर्व्वतः।४/२०॥

रूप-चित्रण और अनुभावों को मूर्त रूप देने की, कवि की प्रवृत्ति दोनों ही चम्पू-काव्यों में दिखाई पड़ती है। कलावती का एक वर्णन देखिये—

आलीभिर्नलिनीदलैः प्रतिदिशं दूरीकृतालिव्रजै-,
मालाकारतया पुनः पुनरुपायातैः समासेविता।
ईषद्वक्रितकन्धरं प्रकटितप्रेमोत्तरं प्रेयसी,
किंचिच्चंचलचेलकांचलचलन्नेत्रांचलं पश्यति॥२/६॥

ऋतु-वर्णन में कोई सौन्दर्य नहीं है। वे संक्षिप्त रूप में उद्दीपन विभाव के रूप में ही वर्णित हैं।[1] विरह दशा की मूर्छा, भ्रम, स्तम्भ, आदि

१. द्रष्टव्य—५/४०-४७।

अवस्थायें एक ही पद में गिना दी गई हैं।[1] प्रभात वर्णन में एक कल्पना सुन्दर दिखाई पड़ती है।

करनखरविदीर्णध्वान्तकुम्भीन्द्रकुम्भात्
तुहिनकणमिषेण च्चिसमुक्ताप्ररोहः।
अयमुदयधरित्रीधारिमूर्धाधिरूढो
नयनपथमुपेतो भानुमत्केशरीन्द्रः ॥५।२॥

पर यह भी हर्ष के एक श्लोक की छाया प्रतीत होती है।[2]

३६—वीरभद्रदेव चम्पू[3] :—

इस चम्पू-काव्य के निर्माता श्री पद्मनाभ मिश्र के पिता का नाम, बलभद्र मिश्र एवं भाइयों का नाम गोवर्धन मिश्र तथा विश्वनाथ मिश्र था। यह काव्यमर्मज्ञ तो थे ही दर्शन-ग्रन्थों पर उपलब्ध इनकी टीकायें, इनकी विद्वत्ता की भी सूचना देती हैं।[4] जयदेव के चन्द्रालोक पर इनकी शरदागम चन्द्रालोक प्रकाश नाम की टीका भी है, इस टीका की रचना महाराज रीवा नरेश रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र के आग्रह पर की गई है, जिनके नाम पर इस चम्पू-काव्य की रचना हुई है। वीरभद्र देव ने स्वयं भी कन्दर्प-चूडामणि नामक काव्य की रचना १५७७ ई० में की थी। इस चम्पू का रचना काल भी विक्रम संवत् १६३४ (सन् १५७७ ई०) है।

युगरामर्तुराशांके वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे।
श्रीवीरभद्रचम्पूः पूर्णाभूच्छ्रेयसे विदुषाम् ॥७।७। पृष्ठ १७॥

कवि का विरुद सकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतन भट्टाचार्य था।

---

१. ५/२३।

२. रजनिवमथुप्रालेयाम्भःकणक्रमसम्भृतैः
कुशकिसलयस्याच्छैरग्रेशयैरुदविन्दुभिः।
सुषिरकुशलेनायःसूचीशिखांकुरसंकरैः
किमपि गमितान्यन्तर्मुक्ताफलान्यवमेनिरे।
नैषधीय चरिते। १९/६ ॥

३. प्राच्यवाणी संस्कृत टेक्स्ट सीरीज वाल० १२ सं० जे० बी० चौधरी (डा०) प्राच्यवाणी मन्दिर ३ फेडरेशन स्ट्रीट कलकत्ता ९ से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

४. इनके ग्रन्थों की संख्या ग्यारह गिनाई गई है। द्रष्टव्य-ग्रन्थ की भूमिका—पृ० २।

रीवाँ नरेशों का सम्बन्ध दिल्ली के मुगल बादशाहों से बड़ा घनिष्ठ था। रीवाँ नरेश रामचन्द्र का अकबर से, उनके पिता वीरभानु का हुमायूँ से और वीरभानु के पिता शालिवाहन का बाबर से समीप का सम्बन्ध था। अकबर ने वीरभद्र के जन्म के समय रामचन्द्र के पास उपहार भेजा था। रामचन्द्र ने ही सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन को भेंट के रूप में अकबर के पास भेजा था।

वीरभद्र की महत्ता का वर्णन करने के लिये कवि ने सर्वथा नई सूझ का परिचय दिया है। मन्दोदरी लंकाधिपति विभीषण से आकाश को धूल से आच्छादित देख कर प्रश्न करती है—

अथ कदाचन प्रत्यर्थिपार्थिवसार्थकदर्थनासार्थकमनोरथस्य निरस्तगमनार्थिव्रातकृतार्थीकरणाल्पीकृतकल्पतरुयशसः विरोधिवधूमानसोदंचदानन्दसंदोहकुमुदचण्ड-महसः श्रीमतो रामचन्द्रदेवस्य तनूजन्मनः श्रीवीरभद्रदेवस्य यात्रायां कटकोत्थिता धूलीरालोक्य मन्दोदरी लंकाधिपतेरंकनिविष्टापि सातंकमाह प्रिय किमिदमाकस्मिकं दिक्चक्रवालमाक्रम्य भूलोकादुत्थितं व्योमान्तरालमावृणोति ।।पृष्ठ १।।

रामचन्द्र के पुत्र की सेना के प्रयाण से उठी हुई यह धूलि है, सुनकर मन्दोदरी लंका के पुनर्विनाश की आशंका से त्रस्त हो जाती है। वह प्रश्न करती है कि क्या यह वही रामचन्द्र हैं जिन्होंने सेतु बाँध कर लंका पर आक्रमण किया था।१।७।।

विभीषण उसे सान्त्वना देता है :—

विभीषण : यद्यप्यमुष्यापि—

अयोध्यानगरी नित्यं प्रतिपन्ना निशाचरैः।

तथापि रामचन्द्रोऽयं दशाननभिदः परः ।।१।८।।

मन्दोदरी : किमस्यापि वीरभानोरन्वयः ?

विभीषण : तन्वि वीरभानोर्न तु भानोः।

मन्दोदरी : कान्त किं भास्वतश्चन्द्रमसश्च परम्परातः सन्त्यन्येऽपि राजानः ?

विभीषणः : प्रिये

वंशः प्राप्तपराभवो भगवतः क्षात्रद्रुहो भार्गवा-

दाज्ञायां विबुधोपमो विजयते राज्ञा वघेलाभिधः।

शक्त्या स्कन्द इव श्रिया स्मर इव ख्यात्या विवस्वानिव

स्फीत्या शक्र इवात्र राजति सदा श्रीरामचन्द्रो नृपः ॥ १/९ ग.

किंच : सहजधवलमच्छं भालबालेन्दुयोगा-

दपि च विमलकान्ति स्वधुनीवारिपूरैः।

निजवपुरमृताभं निर्जितं यस्य कीर्त्या
धवलयति नितान्तं भस्मना भूतनाथः । १/११ ॥

मन्दोदरी : हरभालानलाधिकज्वालप्रतापमार्तण्डतापितारातिराजन्यावरोधवधू-
पगीयमानयशसोऽस्य का राजधानी–

विभीषण : अस्ति प्रशस्तिभिरलंकृतदिग्विभागा राजानुरक्तमनुजा नगरी गहोरा ।
यस्यां मदालसगजालिकपोलपालि लोलालिविभ्रमगजाः परितः
स्फुरन्ति ॥१/१२ ॥

कि रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र अपने पिता के पास ससैन्य बान्धवगढ़ जा रहे हैं, जहाँ से विजय के लिये रामचन्द्र प्रस्थान करेंगे, क्योकि वीरभद्र की माता यशोदा ब्राह्मणों को गज-दान करना चाहती है।

द्वितीय और तृतीय उच्छ्वास में देश के विविध भागों का वर्णन है। चतुर्थ में रामचन्द्र की प्रशस्ति वर्णित है। पंचम में प्रयाग तीर्थ एवं श्यामवट का वर्णन है। इसके गंगा यमुना के तीर पर बसी अलर्क नगरी[1] का वर्णन है-

यस्यां तर्कार्क-भासा प्रतिहतसुगताद्युक्तिगाढान्धकारे–
श्रौते मार्गे चरन्ती विगतभयमसौ ब्रह्मविद्या चकास्ति ।
सार्धवैशेषिकाद्यैरपि च सुमतयो यत्र विध्वस्तमोहा–
मीमांसा-सांख्य-पातंजल-फणिभणितीः पाठयन्तो जयन्ति ॥

इसमें ही विन्ध्याचल और उसके बन्धुबान्धव नामक पर्वत का वर्णन है। उस पर्वत से रीवाँ पर्यन्त पथ का वर्णन भी है। रीवाँ राज्य एवं राजा रामचन्द्र के वर्णन से इस उच्छ्वास की समाप्ति होती है।

षष्ठ उच्छ्वास में वीरभद्र का विस्तृत वर्णन है। इस उच्छ्वास से रीवां की तत्कालीन समृद्धि का भव्य चित्र सामने आता है। प्रतापरुद्रदेव, उदयभानु, मन्त्री तुलाराम, वीरभद्र के धात्री पुत्र कर्पूर, वीरभद्र के पितामह वीरभानु के सहोदर यामिनीभानुदेव जैसे ऐतिहासिक पुरुषों के अतिरिक्त-वीर बघेला, तोम्बरा, कठरिया, यादव, खीवर, त्वरप, पवार, एकवार, किकाण, बडगूजर, सकरवार, गहरवार, चन्देल, सूर्यवंशी, सुरुकिवर, चंद्रवंशी, नागवंशी, कुशिक, चालकी, पुलस्ति, रखसेला, भरद्वाज, कछवाह, परिहार, सिसोदिया, प्रतिष्ठान और मुद्गल सेनाओं का उनकी विशेषता के साथ वर्णन है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से यह उच्छ्वास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

१. इलहाबाद के समीप यमुना पर नैनी स्टेशन से १ मील-वर्तमान नाम 'अरइल'।

वंश वर्णन के ही प्रसंग से ज्ञात होता है कि प्रतापरुद्रदेव और उदयभानुदेव यामिनीभानुदेव और भीष्म देवी के पुत्र थे।

अन्तिम सप्तम उच्छ्वास में विभीषण का एक चर उसके पास पहुँच कर उसे सावधान करता है तथा मार्ग में देखे हुये रत्नपुर का वर्णन करता है। कवि-वंश के वर्णन के उपरान्त चम्पू काव्य समाप्त होता है।

इस चम्पू काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी कथोपकथन शैली में रचना है। मन्दोदरी जिस प्रकार का प्रश्न करती है उसका उत्तर विभीषण अतिशयोक्तिपूर्ण अलंकृत गद्य-पद्य में उत्तर देता है। कहीं तो समासबहुलता गौड़ी रीति अपनाई गई है—

नृत्तावृत्तिप्रवृत्तिधूर्जटिजटाजूटस्खलदमन्द-मन्दाकिनीप्रवाहपटल-प्रक्षालिततद्-बालमूलमिलिता-कलंककलानिधिखण्ड-करनिकराक्रान्त-हिमाचलशिलाशकल-निपतित-पुण्डरीकपाण्डुर-यशोमण्डलधवलीकृताखण्ड ब्रह्माण्डभाण्डोदरी। पृष्ठ ४ ॥ प्रथम उ० ॥

कहीं सरल नाटकी संवाद शैली—

मन्दोदरी—प्रिय कीदृशोऽस्य तनयः ?

कहीं उपमा की माला पिरोई गई है—

पयोधिरिवानुपप्लुतमर्यादः सुमेरुरिवानेकचिन्तामणिः

। पृ० १२ ॥ प्रतापरुद्रदेव का वर्णन ॥

गद्य के सदृश ही पद्य भाग भी महत्त्वपूर्ण है। छोटा से छोटा पद भी लालित्यपूर्ण है—

रचितद्विषदवहेला जलनिधिवेलावधिप्रथिताः।
संगरभुवि कृतखेला वीरबवेला मया दृष्टाः ॥६।१५॥

वर्णन का कुछ भाग मन्दोदरी को विभीषण सुनाता है, कुछ प्रसादप्रापक, विभीषण को। कल्पित कथावस्तु के साथ ऐतिहासिक वीरपुरुष का चरित प्रस्तुत करने वाला, यह चम्पू काव्य भाषा-शैली, पदलालित्य, अलंकारों की सज्जा एवं वर्णन प्राचुर्य के कारण चम्पू-काव्यों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सोलहवीं शताब्दी एवं उसके बाद के उपलब्ध चम्पू-काव्य

३७—मत्स्यावतार प्रबन्ध[1] :—

केरल के सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि नारायण भट्ट की यह रचना श्री मद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में वर्णित मत्स्यावतार

१. दी युनिवर्सिटी मैन्युस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् (१९४५ ई०) से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त। कवि का परिचय इसी ग्रन्थ की भूमिका के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

की कथा पर आधारित हैं। नारायण भट्ट ने चौदह चम्पू-काव्य लिखे हैं। संख्या की दृष्टि से इतने अधिक चम्पू-काव्य किसी भी कवि ने नहीं लिखे हैं फलतः चम्पू-काव्य साहित्य को समृद्ध करने का बहुत बड़ा श्रेय इस कवि को भी प्राप्त है। कवि और शास्त्रकार दोनों रूपों में इनका पर्याप्त महत्त्व है। यह महान भक्त थे। नारायणीय इनका सुप्रसिद्ध स्तोत्र काव्य है। मलावार के पोन्ননि तालुके के एक गाँव मेलपुत्तूर (उपरिनवग्राम) में इनका निवास एक भगवती के मन्दिर के समीपस्थ घर में था, ऐसा कहा जाता है। इनके पिता मातृदत्त मीमांसा के धुरंधर विद्वान थे। इनकी माता भी एक मीमांसक पय्यूर भटात्रि के परिवार से सम्बन्धित थीं। इनका आरम्भिक जीवन उच्छृंखलता में व्यतीत हुआ। एक दिन सुप्रसिद्ध ज्योतिषी अच्युत पिशारोटि ने इनके अब्राह्मणीय कार्य पर खूब धिक्कारा। इसका इनके जीवन पर प्रचुर प्रभाव पड़ा और लगन से इन्होंने वेदों और शास्त्रों का अध्ययन किया। अच्युत से व्याकरण एवं अपने पिता से इन्होंने मीमांसा, दामोदर से तर्क, तथा माधव नामक विद्वान् से वेदों का अध्ययन किया। रोगाक्रान्त होने पर इन्होंने स्तुतिपरक नारायणीय की रचना कर स्वास्थ्य लाभ किया। यह एक भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो गये। इनकी कवित्व शक्ति पर केरल के तत्कालीन राजा बहुत मुग्ध हुये।

इनकी प्रतिभा का सम्मान कालीकट के मान विक्रम, कोचीन के वीरकेरल वर्मा वटक्कुड्कुर के गोदवर्मा, तथा अम्पलपुक के देवनारायण नामक राजाओं ने किया और नारायण ने सबकी प्रशस्ति लिखी। गोश्रीनगर वर्णन में इन्होंने कोचीन का मनोरम वर्णन किया है। देवनारायण की आज्ञा से इन्होंने प्रक्रिया सर्वस्व नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा। अन्य रचनाओं में मानमेयोदय मीमांसा का ग्रन्थ है। श्रीपादसप्तति भक्तिपरक और धातु काव्य व्याकरणपरक रचनायें हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त चौदह चम्पू-काव्य हैं।

वंश परम्परा के आधार पर सन् १५६० से १६६६ ई० के मध्य इनकी विद्यमानता सिद्ध होती है। इनके कई विद्वान् शिष्य हो गये हैं।

मत्स्यावतार प्रबन्ध एक लघु काव्य है इसमें ६७ पद्य और १२ गद्य खण्ड हैं। मनु मत्स्य कथा शतपथ ब्राह्मण से लेकर कई पुराणों तक में वर्णित है। ब्रह्म की निद्रा में हयग्रीव नामक असुर ने वेदों को चुरा लिया। सारा भुवन, त्रयी-रहित हो गया। पद्मनाभ ने वेदों के उद्धार की कामना से शफरी के रूप में अवतार लिया। स्नान करते हुये द्रमित देश के राजा सत्यव्रत नामक तपस्वी की अंजलि में वह मत्स्य आ गया। मत्स्य की

प्रार्थना पर उन्होंने उसे अपनी कुण्डिका में रख लिया। जैसे-जैसे वह बढ़ता गया, क्रमशः कुम्भ, कूप, वापिका, सरोवर तथा समुद्र में मुनि उसे डालते गये। मत्स्य ने मुनि को प्रलय की सूचना दी और सप्तर्षियों के साथ नौका पर आरूढ़ हो उन्हें बचने की सम्मति दी। ऐसा ही हुआ। प्रलय के समय नौका पर बैठे सत्यव्रत को अद्वैत का ज्ञान हुआ।

स्पष्टं नश्वरतामशेषजगतां दृष्ट्वैव निश्चिन्वतो,
विश्वव्याततरूपितामपि विभोर्निस्संशयं पश्यतः।
अद्वैतागमतत्त्वमस्य सुगमं सत्यव्रतस्याभवत्,
प्रत्यक्षानुगृहीतमागमवचः श्रद्धेयमद्धा भवेत् ॥२७॥

विमोह गलित होने पर मुनि तो मनु बने और मत्स्य ने हयग्रीव का वध कर वेदों का उद्धार कर दिया।

इस प्रबन्ध में केवल कथा भाग ही भागवतानुसृत नहीं है अपितु अनेक श्लोक भी उसकी छाया प्रतीत होते हैं—

आश्रितं मामनाथे किं प्राप्स्यसि त्वं नदीजले।
मात्स्यनीतिमतिक्रूरां वेत्सि किं न महामुने।

(म० प्र० ६)

यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल।
कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन्सरिज्जले ॥

(भा० म० ८/२४/१४)

अथवा

ततो ह्यल्पकालेन वर्धमानः कमण्डलौ।
उदंचितमहातेजाः कथंचिदिव तस्थिवान्।

(१०/म० प्र०)

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ।
अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥

(भागवत ८/२४/१६)

यह सादृश्य कथा साम्य के कारण है। प्रलय काल में नौका की स्थिति एवं हयग्रीव और मत्स्य का युद्ध कवि द्वारा मनोहर रूप में प्रस्तुत किया गया है। भागवत का मत्स्य स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुआ है किन्तु इस प्रबन्ध का पुंलिंग में। कई स्थलों पर भाषा और भाव का सुन्दर योग इस प्रबन्ध में दिखाई पड़ता है—

उद्यत्ताराभिरामां विधिमयवदनालयकामानुबन्धां
सोऽयं प्रौढार्थवादप्रचयकुचभरां चारुमन्त्रानुलापाम् ॥

गूढाद्वैतप्रदेशात्मकगुरुजघनामुल्लसत्पादशोभा-
मापूर्णांगीं त्रिवेदी सुदशमपहरन् पूर्णकामो बभूव ॥४॥

मत्स्य की वृद्धि पर असह्यामुन्नतिं भेजे नवीन इव भूपतिः तथा नौका की स्थिति पर नौकानृपश्रीरिवमन्त्रिहीना आदि उपमानों की खोज में उनकी कल्पना चमत्कार का भी दर्शन हो जाता है।

गद्य भाग अधिक प्रौढ है। प्रलय वर्णन की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है—

उन्मील्य सकलदिक्षु विक्षिप्तचक्षुषि विजृम्भितहृदन्तरे भ्रमन्ततो दिगन्ततः—समिन्धानसन्तमसन्ततिभिरन्धीकृत इव स्थिते मुनीश्वरे पुष्कलतरपुष्करभरभूरितेषु पुष्करपथनिरोधिषु पुष्कलावर्तकेषु नीलिमाभिमानिनीरदकुलपरिचूर्णितधवलिमगर्वितशर्वपर्वतसवर्णैर्विकीर्यमाणशकलनिवहशङ्काकरैरतिकर्कशजलशर्कराजालैर-भिमिलितासु प्रथमपतितासु पृथुलतरजलधारासु,....... (पृष्ठ ११)

केरल में कुछ मन्दिरों का महोत्सव है। उस अवसर पर चाक्यार (नर्तक) मन्दिरों में पौराणिक कथाओं को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि राव नर्तक के आदेश से नारायण ने इन अनेक पौराणिक आख्यानों को चम्पू रूप दिया है—

अनुनासिकरहितानि व्यतनोदेतानि गद्य-पद्यानि।
नारायणाभिधानो द्विजपोतो रविनटेश्वरादेशात् (निरनु० उप०[1])

३८—राजसूय प्रबन्ध[2]

नारायण कवि का यह दूसरा चम्पू प्रबन्ध है। महाभारत के सभापर्व में वर्णित युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के आधार पर इस चम्पू काव्य की रचना की गई है। कवि ने ग्रन्थारम्भ में स्वयं कहा है—

गोविन्दमानन्दरसैकसान्द्रमावन्द्यनारायणभूसुरेन्द्रः।
निर्माति धर्मात्मजराजसूयसम्पन्मयं सम्प्रति चम्पुकाव्यम् ॥ १ ॥
कामं भीमार्जुनाद्यैरजितपृथुमहो वर्धितैरुद्धतानां
पृथ्वीशानां जयेन प्रसभमुपहृते निस्तुले वित्तराशौ।
तद्वृत्तं धर्मसूनुस्सपदि परममित्राय भर्त्रे यदूना—
मावेद्य व्याससुख्यैस्सममभृतपरद्रव्यवद् द्रव्यभारम् ॥ २ ॥

---

१. रविनर्तक ने चाणक्य कथा की रचना की है। द्रष्टव्य-भूमिका पृष्ठ ५ ॥

२. संस्कृत साहित्य परिषद कलकत्ता द्वारा वा० १७ नं० १० में प्रकाशित।

महाभारत की कथा का वही भाग विस्तृत रूप में वर्णित है जिसमें युधिष्ठिर के प्रचुर दान का वर्णन है।

३९—पांचाली स्वयंवर[1]

इसमें महाभारत के आधार पर (आदिपर्व पांचाली स्वयंवर) पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह वर्णित है। हस्तलिखित प्रति के आरम्भ और अन्त के कुछ पृष्ठ नष्ट हो गये हैं अतः कवि का परिचय आदि ज्ञात नहीं होता परन्तु नारायण के नाम से ही यह रचना मलयालम् में प्रकाशित हो चुकी है।[2] इसमें कथानक का आरम्भ लाक्षागृह के जलने के बाद पाण्डवों की गुप्त यात्रा से होता है—

उल्कामुत्कलयन् करेण पुरतो वृत्रारिपुत्रो ययौ
पश्चादुच्चतनुः प्रभंजनसुतः स्कन्धेन कुन्तीं वहन्।
पश्चात्तस्य यमौ ततश्च नृपतिर्धर्मात्मजन्मा स्वयं
पान्थैः सार्धममी निशीथसमये गंगातटं संगताः ॥ १ ॥

यह चम्पू काव्य अत्यन्त प्रौढ है। वर्णन में सौन्दर्य है और भावों की अनुकूल अभिव्यक्ति के लिये अलंकृत तथा उपयुक्त पदावली का प्रयोग किया गया है। जल विहार करते हुये अंगारपूर्ण गन्धर्व की गर्वोक्ति दर्शनीय है—

तदनु ददृशिरे ते किंचिदंचद्विलासं,
कुचकलशनितम्बाघातघूर्णत्तरंगम्।
पयसि वरवधूनां मण्डलं तस्य मध्ये,
तरुणमपि च कंचित् पंचबाणोपमानम् ॥ २ ॥
क इह कुमतयोऽस्मत्स्वैरसंचारयोग्यं
समयमगणयित्वा मर्तुमभ्यापतन्ति।
इति स युवतिमध्यादुत्पतन् क्रोधशाली
हरिणमिव हरीणां मार्गकेपा रुरोध ॥ ३ ॥

इसका गद्य भाग भी अनुप्रासमयी ललित पदावली से सम्पन्न है—

केयूरहारमकरकुण्डलादिभिरशेषनेपथ्यविशेषैर्विरोचमानमभिनवबलाहकरुचि-पश्यतोहरकायकान्तिकुवलयितदशोवकाशमतिरुचिरलोचनाभिरामया रमया ध परी(त)म्।

---

१. डिस्क्रि० कैट० मद्रास १२३१७। अप्रकाशित।

२. द्रष्टव्य—मत्स्यावतार प्रबन्ध-भूमिका-पृ० ३, कैरली सा० दर्शन-पृष्ठ ५४-५५।

४०-- स्वाहा-सुधाकर चम्पू[1]—

नारायण द्वारा रचित इस चम्पू काव्य में अग्नि-पत्नी स्वाहा एवं चन्द्रमा का प्रणय वर्णित है।[2] कीथ ने इस चम्पू काव्य के विषय में लिखा है—

Late, but of special interest are the Svaha Sudhakar Champu of Narayan written in the seventeenth Century, which describes the loves of Agni's wife Swaha and the moon in an idyllic manner which has been compared by Pischel, with Homer's pictures of the loves of Ares and Aphrodite······(It) is admittedly a product of the art of extempore composition (आशु-कविता) of which poet is (Poets were) in ordinately and most foolishly proud.

(A history of Sanskrit Literature, page 337)

४१—कोटि विरह[3] —

नारायण भट्ट का यह चम्पू काव्य नागरी लिपि में तो प्रकाशित हुआ ही है, मलयालम् में भी प्रकाशित हो चुका है। यह भी एक प्रणय काव्य है जिसमें मिलन और विरह का कवित्व-पूर्ण चित्रण हुआ है। इस काव्य के विषय में रत्नमयी दीक्षित ने लिखा है।

कोटियविरहं अर्थात् भीषण विरह चम्पू के कवि ने भी यद्यपि अज्ञात रहना ही पसन्द किया है वह निस्सन्देह एक अच्छा पंडित रहा होगा। इस प्रबन्ध के अनेक संस्कृत पद्य कालिदासादि महाकवियों की कृतियों से उद्धृत किये हुये हैं। इसमें दो खण्ड हैं—पूर्व और उत्तर। पूर्व खण्ड में नायिका-नायक का मिलन तथा विरह और उत्तर खण्ड में उनकी विरह-व्यथा तथा पुनर्मिलन वर्णित है। समग्रतः उत्तर खण्ड, पूर्व खण्ड से उत्कृष्ट मालूम पड़ता है। कवि की वाक् तथा वर्णन पटुता के उदाहरणों की कमी कहीं नहीं है।[4]

---

१. काव्यमाला-चतुर्थ गुच्छक में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, से प्रकाशित।

२. ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति खंड के चालीसवें अध्याय में, तथा वायुपुराण के उन्तीसवें अध्याय में स्वाहा एवं उसके पुत्रों का वर्णन है।

३. काव्यमाला गुच्छक ५ में, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।

४. कैरली साहित्य दर्शन—पृष्ठ ५४।

यह निर्णीत हो चुका है कि यह रचना भी नारायण भट्ट की है। उन्हीं के नाम से यह कृति प्रकाशित हो चुकी है।

४२—नृग मोक्ष[1] :—

नारायण भट्ट का यह चम्पू काव्य श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के चौसठवें अध्याय में वर्णित नृगोपाख्यान पर आधारित है। इसमें राजा नृग का ब्रह्म-शाप ग्रस्त होकर गिरगिट योनि में पड़ने तथा कृष्ण द्वारा उनके मोक्ष की घटना वर्णित है। कृष्ण द्वारा उद्धृत होकर नृग ने पुनः अपना राज्य वैभव प्राप्त कर लिया था। भक्तिपरक इस चम्पू काव्य का आरम्भ सीधे कथा के वर्णन से हुआ है—

तत्रैकदा मनुजवृत्तिमुपाचरिष्णुर्विष्णुः स्वयं पुरवरे मणिमन्दिरान्ते।
सेवासमामिलदनेकयदुप्रवीरस्वैरालुलापसरसो निषसाद मोदात्॥ १॥

तदानीं च किमिदमिति सकलयदुलोकैः मृदुहसितलसितेन च भगवता दूरादेव विलोक्यमानागमनाः संभ्रमविस्मयसूचकचटुलचरणन्यासाः किमपि समुन्मिषितघर्मकणांकितवदनपंकजा रौक्मिणेय-सात्यभामेय-जाम्बवतेय-प्रमुखाः सकलयदुकुमाराः..........प्रतिकलकलितविहरणरसाः परिश्रमवशादुद्भूतां पिपासामुपासीदन्तः प्रतिदिशप्रहितलोचनाः प्रहितमिव काचिद् दूरादालोकिष्महि ततश्च त्वरमाणा वयं परिहीणसंचारस्य तस्य कूपस्य प्रमुषितप्रायोपपन्नाहं पीनाहदेशमासाद्य विलोक्यमानाः......... ॥

नृग की करुण दशा के चित्रण के उपरान्त कवि ने करुणाकर की त्वरा का सुन्दर वर्णन किया है—

श्रुत्वैतत्करुणाकरस्स भगवानुत्थाय सद्यो मिलद्-
भृत्यालीयदुवीरपौरपटलीपर्यावृतो निर्ययौ।
चित्रालोकनसक्त्यनुद्रुतजनो गत्वा च कूपान्तिकं,
प्रत्यैक्षिष्ट तमश्रुविस्नुतिजुषा पश्यन्तमुच्चैर्दृशा॥

अन्त में कवि ने विप्रवंदना की है और विप्रेष्वप्रियकारि दोरपि निजं सद्यो मया छिद्यते के कृष्ण कथन से काव्य की समाप्ति की है। भाषा और शैली की दृष्टि से नारायण की यह रचना उनके अन्य प्रबन्धों की ही भांति है।

मत्स्यावतार प्रबन्ध की भूमिका पृष्ठ ३ पर नारायण रचित निम्नलिखित चम्पू काव्य का उल्लेख किया गया है :—

---

१. डी० सी० मद्रास १२३१६। अप्रकाशित।

४३—सुभद्राहरण : ४४—पार्वतीस्वयंवर : ४५—नलायणीचरित : ४६—कौन्तेयाष्टक : ४७—दूतवाक्य : ४८—किरात : ४९—निरनुनासिक चम्पू : ५०—दक्षयाग ।

अन्तिम छः चम्पू काव्यों के मलयालम् संस्करण उपलब्ध हैं (कैरली साहित्य दर्शन पृ० ५४-५५) ।

५१—व्याघ्रालयेशाष्टमी महोत्सव चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता भी नारायण भट्ट हैं। इस चम्पू का दूसरा नाम अष्टमी महोत्सव भी है। इस काव्य में ट्रावनकोर स्थित वैक्कम के सुप्रसिद्ध शिवमन्दिर के उस महोत्सव का वर्णन है जो कार्तिक कृष्ण पक्ष की अष्टमी को सम्पन्न होता है। इस उत्सव के समय उदयनपुरम् के सुब्रह्मण्य मन्दिर से सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) की प्रतिमा लाकर वैक्कम के शिव मन्दिर में रक्खी जाती है। उदयनपुरम् समीपस्थ एक गांव है। दोनों के एकत्रित होने पर शिव और सुब्रह्मण्य के सम्मान में यह महोत्सव बड़ी धूम-धाम के साथ पूर्ण होता है। उपलब्ध प्रति पर लेखक का नाम नहीं है पर मलयालम् में यह भी प्रकाशित हो चुकी है। कवि की व्याघ्रालयेश के प्रति प्रगाढ़ भक्ति झलकती है—

स मूर्धा किमु नो येन व्याघ्रग्रामेश्वरो नतः ।
स पुमान् किन्नु यस्तस्य दृष्टवानष्टमीमहम् ॥

नारायण की यह सम्भवतः सब से बाद की रचना प्रतीत होती है क्योंकि अन्य चम्पू काव्यों की अपेक्षा यह रचना उत्तम है। भाषा की परिमार्जित रूप रेखा का दर्शन इसमें आदि से अन्त तक दिखाई पड़ता है। मंगलाचरण से ही प्रवाहमयी अनुप्रासशीला पदावली का दर्शन होने लगता है—

शैलेन्द्रकन्याकुचकुम्भशुम्भत्कस्तूरिकाकर्दमपिच्छिलानि ।
व्याघ्रालयस्थानि भवन्तु भूत्यै तत्त्वावबोधद्रुमपल्लवानि ॥ १ ॥
वैदेहीपीनतुंगस्तनभरयुगली गाढगाढाङ्कपाली
केलीसम्मर्दमिश्रीकृतघुसृणलसच्चारुदोरन्तरालः ।
कौसल्याभाग्यसीमा बलमथनमणिश्यामलः कोमलाङ्गः
कश्चित्सच्चिन्मधूलीरसनवलहरीस्यन्दगन्धस्समिन्धे ॥ २ ॥

कथा की भूमिका पद्य में ही आरम्भ कर दी गई है—

अस्ति प्रशस्ततरनिस्तुलकीर्तिजाल-
ज्योत्स्नाकरम्बितसमस्तदिगन्तरालः ।

---

१. डी० सी० मद्रास, वा० २१-१२३७९ । अप्रकाशित ।

विद्याधरः सरसकाव्यरसप्रवीणः
संगीतदेशिक इति प्रथितस्त्रिलोक्याम् ॥

गद्य भाग में लालित्य है तथा रूपकों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है—

स कदाचित् श्रृङ्गाररसतरंगिण्या संगीतसुधारसपारावारपारीणया सकलकलाप्रवीणया वीणया विलसितकरपल्लवया सह वल्लभया पुरन्दरपुरं प्रति जगाम ।

व्याघ्रालयेश का यह महोत्सव दस दिन तक मनाया जाता था । उत्सव किस प्रकार का होता था यह एक श्लोक में कवि ने संकेत किया है—

प्रातः प्रभूतपटमूलमहोत्सवानि
मध्याह्नबद्धधरणीविबुधाशनानि ।
रात्रावपि प्रथितदीपमहोत्सवानि
यातान्यहो दशदिनानि मनोहराणि ॥

इस प्रकार नारायण भट्ट रचित उक्त पन्द्रह चम्पू काव्य कहे जाते हैं । इनके विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन्होंने तत्कालीन चम्पू काव्य में प्रचलित पौराणिक प्रणय एवं स्थानीय देवताओं के महोत्सव सम्बन्धी तीनों प्रकार के चम्पू काव्यों की रचना की है ।

५२—आनन्दकन्द चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के प्रणेता श्री मित्र मिश्र शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न गोपाचल (ग्वालियर) निवासी परशुराम मिश्र के पुत्र थे । वीरेश्वर और चक्रपाणि इनके अग्रज तथा योगादित्य और सुनीति इनके अनुज थे । धर्मज्ञ दीक्षित ने अद्वैतविद्या तिलक दर्पण नाम्नी टीका में इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—

अस्ति प्रशस्तचरितो भुवि मित्रमिश्रः
शाण्डिल्यगोत्रकलशाम्बुधिलब्धजन्मा ।
पुंसः परस्य हृदयङ्गमकौस्तुभोऽसौ
सर्वासु दिक्षु विततोर्जितकीर्तिराशिः[2] ॥

---

१. सरस्वती भवन टेक्ट्स नं० ३६ बनारस से १९३१ में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त सं० म० म० गोपीनाथ कविराज, कवि परिचय, इसी ग्रन्थ की नन्दकिशोर शर्मा लिखित भूमिका से ।

२. सरस्वती भवन ग्रन्थमाला, बनारस, से प्रकाशित अद्वैतविद्यातिलके पृ० १।

वीरमित्रोदय (धर्मशास्त्र ग्रन्थ) वीरमित्रोदय (गणित ग्रन्थ) वीरमित्रोदय नाम्नी याज्ञवल्क्य स्मृति टीका तथा आनन्दकन्द चम्पू नामक इनकी चार रचनायें प्रकाश में आई हैं।

मित्र मिश्र ओरछा राज्य के प्रतिष्ठापक प्रतापरुद्र देव के पौत्र वीरसिंह देव के आश्रित कवि थे। वीरसिंह देव का शासनकाल ई० सन् १६०५ से १६२७ ई० तक माना जाता है। अतः मित्र मिश्र का भी यही समय निश्चित होता है।

आनन्दकन्द चम्पू के अन्त में इसकी रचना के समय की ग्रहस्थिति तथा रचनाकाल लिखित है—

प्राप्य श्रीमित्रमिश्रोयमतमिस्त्रत्रयोदशीम् ।
अतुलां स तुलां सूरे गते चम्पूमपूरयत् ॥ ८ । १०४ ॥
मीनारोहिणि रोहिणीसहचरे कृत्वान्तिके रेवतीं
याते चण्डमरीचिमालिनि तुलां वारे च वाचस्पतेः ।
शाके शाङ्कगजर्तुभूपरिमिते ह्यानन्दकन्दाभिधां
चम्पूं पूरितवान्सितस्मरतिथौ श्रीमित्रमिश्रः कृती ॥ ८ । १०५ ॥

—शाकेशांकगजर्तुभूपरिमिते-का अर्थ कवि की दृष्टि में शाकेश-अंक (९) गज (८) ऋतु (६) और भू (१) अर्थात् विक्रम संवत्सर १६८९ है। किन्तु ग्रहस्थिति के आधार पर शाके—विक्रम संवत् तथा शांक को अशुद्ध मानकर साष्ट-पाठ शुद्ध कल्पित कर इसका रचना काल सं० १६८८ (सन् १६३१ ई०) कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार माना गया है।[1]

आनन्दकन्द चम्पू आठ उल्लासों में विभक्त है जिनमें भागवत दशम स्कन्ध की कथा संक्षेप में वर्णित है। अष्टम उल्लास के उत्तरार्ध में वीरसिंह देव की बृहत् प्रशस्ति, ओरछा नगर का वर्णन एवं कवि का परिचय (कवेरात्मकथा) दिया हुआ है।

चम्पू में प्रायः सर्वत्र ओज गुण का समावेश है। गौडी रीति का आश्रय लिया गया है।[2] कहीं-कहीं वर्णन में पूर्ववर्ती कवियों की भाव छाया का दर्शन हो जाता है। जैसे :—

---

१. उक्त काल-निर्देश-एन इण्डियन एफेमेरीज वा० ६ पृ० ५९, ६५ गवर्नमेण्ट प्रेस, मद्रास, १९२२ ई० के आधार पर किया गया है। द्रष्टव्य-हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, ले० पी० वी० काणे गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सीरीज वा० १ पृ० ४२६ सन् १९३० बम्बई।

२. उदाहरण के लिए द्रष्टव्य—पृ० ३१ यशोदा का वर्णन।

बद्धोपान्ताः कनकनिकरैः पद्मरागानुविद्धै-
रिद्धैर्नानामणिभिरधिकोन्नद्धसोपानवीथीः ।
वापीरम्भोरुहवलयिता यत्र हंसाः सवंशाः
संवीक्षन्ते हुतवहधिया सन्निधौ न प्रयान्ति ॥ १/४९ ॥

आनन्दकन्द चम्पू का यह श्लोक उत्तर मेघदूत के निम्नलिखित श्लोक से पर्याप्त साम्य रखता है—

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनीलैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ उ० मे० १३ ॥

शब्दों के प्रयोग में कवि ने पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है तथा देशी शब्दों का प्रयोग भी स्वच्छन्दता से किया है—

उदंचितकचोरिका मधुरिका मनश्चोरिका
सुधारसपुरी पुरी न लुचिवीसमोर्वीतले ।
हरेर्हरिणलोचना हरिणहीनचन्द्रानन-
त्रपोषितसुधानिधिः सुमधुवाटिका रोटिका ॥ ५/१४ ॥

वृन्दावन के वर्णन में श्लेष[1] परिसंख्या आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग मिलता है—

ये खलु पत्रिणोपि न पत्रिणो नापत्रिणोपि अविपल्लवा अपि सविपल्लवाः सपल्लवाश्च, फलिनोपि फलिनः, लतोपनद्धा अपि नलतोपनद्धाः, विपुलस्कन्ध-बन्धुरा अपि नविपुलस्कन्ध-बन्धुराः, चीरैकमात्रपरिच्छदा अपि न चीरैकमात्र-परिच्छदाः रामादयः उल्लसत्करवीरा अपि नोल्लसत्करवीराः वाहिन्यः अर्जुन-सहिता अपि नार्जुनसहिताः युधिष्ठिरादयः.... ॥ पृ० ५४–५५ ॥

कहीं-कहीं गद्य भाग में वृत्तगन्धिता का भी दर्शन होता है। देवकी कृत कृष्ण स्तुति देखिये—

श्रुतिकुलसारज्ञपितनिकारब्रह्माकारप्रशमितपृथ्वीपृथुतरभारप्रकटितनिरुपधि-जगदुपकारस्फारविलोचनविगतिविमोचनदानवकैरवकुलसङ्कोचनमुनिगणमानस-कमलविरोचनः.... ॥ पृ० २२ ॥

मित्र मिश्र ने वीरसिंह देव का उनके दान का, इतना विस्तृत और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है कि अन्य राज्याश्रित कवि भी उसे पढ़ कर दांतों तले उंगली दबा लें।

---

१. श्लेष वर्णन का अन्य उदाहरण पृ० १९२ पर द्रष्टव्य ।

उदाहरण के लिये देखिये :—

> वीतांहोनृपवीरसिंहसुयशःशुभ्रारविन्दाङ्कुरो
> भित्वा पंकमशंकमेव जगतां दानाम्बुसंभावितः।
> कुर्वन् ब्रह्मकटाहभेदनमथो तन्मूर्धपाथोन्तरे
> सब्रह्माण्डमखण्डपाण्डिमसरोजन्मेव शर्मादिदे ॥ ८/३३ ॥

कर्णपूर के आनन्द वृन्दावन चम्पू में जो काव्य सौन्दर्य है, भक्ति-भावना है, भागवत का आधार लेते हुये भी कवि की जो अनूठी उक्तियां व्यक्त हुई हैं, रास वर्णन में अनुभावों का जो मूर्त चित्रण है वह सब समान वर्णन होते हुये भी आनन्दकन्द चम्पू में नहीं है।[1] मित्र मिश्र की कल्पना ने वीरसिंह की प्रशस्ति के लिये जितनी दौड़ लगाई है उतनी कृष्ण कथा के वर्णन में नहीं।[2] वर्णन सौन्दर्य की दृष्टि से कृष्ण कथा में कंस वध के अवसर पर सप्तम उल्लास में युद्ध वर्णन अवश्य अत्यन्त ओजस्वी है। देवकी, ब्रह्मा आदि की कृष्ण स्तुति पारम्परिक ही है।[3]

५३—नृसिंह चम्पू[4] :—

इस चम्पू काव्य का दूसरा नाम प्रह्लाद चम्पू है। इस चम्पू काव्य के कर्ता केशव भट्ट लौगाक्षी परिवार के श्री केशवार्य के पौत्र एवं अनन्त के पुत्र हैं। यह गोदावरी जिले के पुण्यस्तंव नामक स्थान के निवासी थे। इस काव्य का रचना काल १६८४ ई० है। नृसिंह चम्पू में छः स्तबक हैं जिनमें प्रह्लाद एवं नृसिंहावतार की सुप्रसिद्ध पौराणिक कथा वर्णित है। केशव ने इस चम्पू काव्य की रचना उमापति दलपति की आज्ञा से की है—

> किं भोजः किमु विक्रमः किमपरः कर्णावतीर्णः कलौ
> सर्वेषामिति यत्र धीर्भवति स क्षोणीतले नन्दति।
> शूरः श्रीमदुमापतिर्दलपतिर्गोविन्दभक्तिप्रियः
> श्रीमत्केशवपंडितो वितनुते चम्पूं तदीयाज्ञया ॥ १/३ ॥

आरम्भ का मंगलाचरण सुन्दर है—

---

१. तुलनीय—आनन्द वृन्दावन १९-२१ स्तवक तथा आनन्दकन्द का छठा उल्लास।

२. द्रष्टव्य—पृ० १९० से २०७ तक अष्टम उल्लास।

३. द्रष्टव्य—पृ० ९२ पंचम उल्लास का अन्तिम भाग।

४. कृष्णा जी गणपत प्रेस बम्बई से १९०९ में प्रकाशित—संपादक हरिप्रसाद भागवत।

कनकरुचिदुकूलः कुण्डलोल्लासिगण्डः
शमितभुवनभारः कोपि लीलावतारः ।
त्रिभुवनसुखकारी शैलधारी मुकुन्दः
परिकलितरथांगो मंगलं नस्तनोतु ॥ १/१ ॥

रचना साधारण श्रेणी की है और वर्णन विस्तार की अपेक्षा कथा को शीघ्रता से पूरा किया गया है । उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां देखिये—

"ततस्तदीयोग्रतेजःप्रचयेन प्रतप्ताः सुमनसः सर्वे समुज्झितत्रिदिवाधिवासाः कथमपि ब्रह्मलोकमागत्य धात्रे विज्ञापयामासुः ॥ ३ ॥
ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसमें प्रह्लाद के पिता का नाम उत्तमपाद दिया हुआ है ।

५४—विश्वगुणादर्श चम्पू–[1]

पंडित-मण्डली में अत्यन्त लोकप्रिय इस चम्पू काव्य के रचियता महाकवि वेंकटाध्वरि विशिष्टाद्वैत के प्रतिष्ठापक आचार्य रामानुज के मतानुयायी एवं महालक्ष्मी के परम भक्त थे । यह अप्पय गुरु के नाती (नप्ता) एवं रघुनाथ दीक्षित के पुत्र थे । यह अप्पय गुरु, कुवलयानन्द, चित्रमीमांसा आदि के कर्ता सुप्रसिद्ध अद्वैतवेदान्ती अप्पय दीक्षित से भिन्न हैं । उन्होंने ताताचार्य के मत का वेंकटपति की सभा में खण्डन किया था । कहा जाता है कि ताताचार्य उसी समय से अप्पय दीक्षित के परमविरोधी बन गये ।

ताताचार्य कर्नाटक देश के राजा कृष्णराय के गुरु थे । यह अप्पय गुरु इसी ताताचार्य के भागिनेय थे ।

बम्बई के कर्नाटक प्रेस से प्रकाशित पुस्तक की भूमिका में कहा गया है–"ये विश्वगुणादर्शकर्त्ता वेंकटाध्वरि नामक कवि नीलकंठ दीक्षित के समकालिक एवं सहाध्यायी थे । नीलकंठ दीक्षित, अप्पय दीक्षित के पौत्र एवं नारायण दीक्षित के पुत्र थे । उनके नीलकंठ चम्पू में उद्धृत एक श्लोक[2] से ज्ञात होता है कि उसकी रचना कलि संवत् ४७३८ अर्थात् १६३७ ई० में हुई थी । अतः इसी के लगभग वेंकटाध्वरि ने भी अपनी रचना की थी ।

एक अन्य प्रकाशित पुस्तिका की भूमिका से इनका यह वृत्त मिलता है— "यह वेंकटाध्वरि कांचीपुर के समीप अर्शनफल (अर्सनपल्ली) नाम के अग्रहार में

---

१. निर्णय सागर प्रेस बम्बई से १९२३ में प्रकाशित, सं० बी० जी० योगी और एम० जी० वाक्रे । कवि परिचय योगी लिखित भूमिका से ।
२. द्रष्टव्य-नीलकंठ विजय चम्पू । १।१० ॥

रहता था। यह वडघल नामक वैष्णव सम्प्रदाय के पक्षपाती ताताचार्य के वंश में उत्पन्न हुए थे। रामानुज के मतानुयायियों के दो वर्ग हो गये थे "तेंगले" और "वडघले" (महाराष्ट्री में तिंगळ और वडगळ)। वडघले उत्तरदेशीय थे जो वैदिक एवं शास्त्रीय आचारों का सम्मान करते थे। वेंकटाध्वरि इसी मत के थे। पूर्वभाग का अनुसरण करते हुये दाक्षिणात्य "तेंगले" कहलाये। यह भेद आज भी है। वडघले मतानुयायियों ने तेंगलों की जो अवमानना की, जो स्पर्धा की, जो छल किया उसी को स्पष्ट करने के लिए कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की।"

यह वृत सर्वथा काल्पनिक नहीं है। रामानुज के वर्णन में कृशानु के मुख से विश्वगुणादर्शकर्त्ता ने कहलाया है—

> हत्वा मार्गे द्विजादीनखिलमपि धनं हन्त हृत्वातिदृप्ता
> दुर्वृत्तास्तस्करा ये वनगिरिनिलया ये च नीचा इहान्ये।
> कृत्वा चक्राङ्कमेषां झटिति विदधतः किं च मन्त्रोपदेशं
> तद्दत्तैरेव वित्तैर्दधति तनुममी वंशपारंपरीभिः ॥ २४९ ॥

किंच—

> जारान् चोरान् किराताञ् जनपददमनान् राजपाशान् महीशाञ्
> शिष्यान् कृत्वातिदृप्ताः श्रुतिपथविधुराः श्रोत्रियैर्ब्रह्मनिष्ठैः।
> साकं नो भुंजतेमी सकृदपि विनतिं कुर्वतेग्रे न तेषां
> संकेतेनैव सिद्धं तदिदमविदुषां श्लाघ्यमाचार्यपुंस्त्वम् ॥ २५० ॥

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि वेंकटाध्वरि को तेंगलों द्वारा निम्नवर्ग को मन्त्रदीक्षा देना अच्छा नहीं लगता था, फिर भी ग्रन्थ रचना का कारण इसे ही नहीं माना जा सकता। वस्तुतः विश्ववैचित्र्य की अभिव्यक्ति ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।

काल निर्णय के लिए एक और श्लोक पर ध्यान देना आवश्यक है—

> हूणाः करुणाहीनास्तृणवद् ब्राह्मणगणं न गणयन्ति।
> तेषां दोषाः पारे वाचां ये नाचरन्ति शौचमपि ॥

अतः ग्रन्थ रचना का काल १६४० ई० के लगभग ही है जब पोर्तुगीज गोरांग हूण इस देश में आ चुके थे।

वेंकटाध्वरि "प्रलयकावेरी" किसी राजा की सभा के मुख्य पंडित थे। इनकी लक्ष्मीसहस्रम् एवं हस्तिगिरि चम्पू नामक दो अन्य रचनायें हैं।

इस चम्पू काव्य में विश्वावलोकन के लिए उत्सुक कृशानु और विश्वावसु नामक दो गन्धर्वों की कल्पना की गई है। कृशानु केवल दोषदृक् है और विश्वावसुगुणग्रहणैककौतुकी। विश्वावसु पहले दृश्य वस्तुओं की प्रशंसा करता

है तब कृशानु उनके दोषों का उद्घाटन करता है। विश्वावसु पुनः उन दोषों का निराकरण करता है। इस प्रकार कथोपकथन पद्धति में सारा चम्पू-काव्य प्रस्तुत किया गया है। यह दोष गुण वर्णन पद्धति स्पर्धामूलक भावना नहीं सूचित करती उसमें मार्मिकता है। रामानुज मतानुयायी होते हुए भी अन्य सम्प्रदायों के यथार्थ ज्ञान को कवि ने सामने रखा है। एक दन्तकथा सुनी जाती है कि स्तुति निन्दात्मक विश्वगुणादर्श काव्य लिखने के कारण देवकोप से वे अन्धे हो गये थे तथा लक्ष्मीसहस्रम् की रचना से उन्हें पुनर्दृष्टि प्राप्त हुई।

नाम के अनुसार इसमें सारे विश्व का वर्णन नहीं है, किन्तु अपनी बहुविधता में वह स्वयं एक विश्व है। उपोद्घात में मंगलाचरण के उपरान्त कवि ने दो श्लोकों में अपना परिचय दिया है एक में चम्पू काव्य की प्रशस्ति है और दो श्लोकों में कृशानु तथा विश्वावसु का परिचय है—

कृशानुरकृशासूयः पुरोभाविपदं गतः।
विश्वावसुरभूद्विश्वगुणग्रहणकौतुकी ॥ १/६ ॥

इसके पश्चात् क्रमशः सूर्य, भूलोक, बद्रिकाश्रम, अयोध्या, गंगा, काशी, समुद्र, जगन्नाथक्षेत्र, गुर्जरदेश, यमुना, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, वेंकटगिरि, वन, घटिकाचल, वीक्षारण्य, रामानुज, चन्न पट्टन, कांची, वेदान्तदेशिक, कामासिकानगर, नृसिंह, त्रिविक्रम, कामाक्षी, एकाम्रेश्वर, क्षीरनदी, वाहानदी, तुण्डीर मंडल, चंधीपुरी, पिनाकिनी गरुडनदी, श्रीदेवनायक, श्रीमुष्णक्षेत्रयज्ञवराह, कावेरी, श्रीरंग, जंवुकेश्वर, चोलदेश, कुम्भघोणशार्ङ्गपाणि, चम्पकारण्य, श्रीराजगोपाल, सेतु, ताम्रपर्णी, कुरुकानगर श्री शठकोप, पाण्ड्य चोलदेश निवासि स्मार्त शैवादि, वेदान्ति, ज्योतिषिक, भिषग्, कवि, तार्किक, मीमांसक, वैयाकरण, वैदिक, राजसेवक, दिव्यक्षेत्रादि वर्णन के साथ उपसंहार एवं कवि वाक्य वर्णित हैं।

उक्त सूची से स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि जिधर घूमी है उधर ही की दृश्य-वस्तु का उसने वर्णन कर दिया है। इस वर्णन में व्यक्ति भी हैं स्थान भी हैं। नदी, समुद्र सहित देश भी हैं और स्थानीय देवता भी। तीर्थयात्रा प्रबन्ध के सदृश ही यह भी एक यात्रावृत्त ही है पर उसमें समरपुंगव ने प्रबन्धात्मकता बनाये रखने का प्रयास किया है और यह एक संग्रहग्रन्थ प्रतीत होता है जिसे दो पात्रों के माध्यम से सम्बन्धित करने का यत्न है।

इस चम्पू काव्य का गद्यभाग तो केवल वर्ण्यवस्तु का संकेत मात्र करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। वर्णनशैली के परिचय के लिए बदरिकाश्रम का वर्णन देखिये—

"इति विमानमग्रतः प्रस्थापन्नङ्गुल्या निर्दिश्य—

विश्वावसु—

इदं बदरिकाश्रमस्थलमिहैष नारायण-
स्तपस्यति नमस्यतां स्थिरतमं तमः शोषयन् ।
विकासिधिषणोन्मिषद्विषयवर्जनाः सज्जना
जनार्दनमहर्दिवं भुजगमञ्चमर्चन्त्यमी ॥ ३३ ॥

कृशानु—

सखे तवात्र गुणवत्तासमर्थनं न रोचते मह्यम् ।

कुतः—

यदत्र जागर्ति शिलासमं हिमं
सुशीतला गन्धवहाश्च दुःसहाः ।
जलावगाहाच्चकितो जनस्ततः
कुतस्त्वनुष्ठास्यति कर्म निर्मलम् ॥ ३४ ॥

विश्वावसुः—

अस्मन्मतानुकूलमेवैतद्भवति भवदुक्तम् ।

यतः—

परमहिमयुतत्वात् प्राप्तवैकुण्ठसाम्यं
पदमिदमुपयान्तः पण्डिताः शान्तिमन्तः ।
मुहुरिह समयेषु स्नानहेतोः सरोगा-
स्तदपि भृशमरोगास्तार्क्ष्यकेतोः प्रसादात् ॥ ३५ ॥

देशों[1] और नदियों[2] के वर्णन में लालित्य अधिक है। व्यक्तियों और सम्प्रदायों के वर्णन में कृशानु का व्यंग्य तीखा अधिक है।[3] मुख्य भाग पद्य में ही वर्णित है। भाषा सरल है। कुल ५९७ श्लोक एवं २५४ खंड हैं। अन्त में कवि ने कहा है—

प्रकाशदोषप्रचुरेप्यमुष्मिन् ग्रन्थे मदीये करुणानुबन्धात् ।
प्रसादवन्तो न कृशानवन्तु परन्तु विश्वावसवन्तु सन्तः ॥ ५९७ ॥

५५—वरदाभ्युदय या हस्तिगिरि चम्पू[4] :—

वेंकटध्वरिन् के इस चम्पू काव्य की रचना लक्ष्मीसहस्रम् काव्य के उपरान्त हुई है। इसमें जगत के माता-पिता लक्ष्मी और नारायण का विवाह वर्णित हैं।

---

१. चोलव० ४४९ श्लोक, गुर्जर ब० ११५-११६ ।

२. यमुना व० १२६ श्लोक

३. द्रष्टव्य-ज्योतिषी ५२८ एवं वैयाकरण ५६८-५६९ श्लोक में वर्णित ।

४. संस्कृत सीरिज मैसूर से १९०८ में प्रकाशित, डी० सी० मद्रास १२३४५।

वस्तुतः इसकी रचना कांची के देवराज के धार्मिक गौरव एवं महत्त्व के वर्णन के लिए हुई है। इसमें पांच विलास हैं। इसके उपसंहार वाक्य में कवि ने अपना परिचय निम्नलिखित रूप में दिया है—

"इति श्रीकाञ्चीनगरनायकताताचार्यभागिनेयसर्वपृष्ठाप्तोर्यामादिश्रीनिवासार्यतनूभवस्य श्लेषयमकचक्रवर्तिनो रघुनाथार्ययज्वनस्तनयेन श्रीनिवासकृपातिशयसुविदितनयेन सीताम्बागर्भसंभवेन श्रीमदात्रेयवेंकटार्ययज्वना विरचितवरदाभ्युदये पञ्चमो विलासः।"

इससे केवल इतनी ही नई सूचना मिलती है कि इनकी माता का नाम सीताम्बा था। विश्वगुणादर्श की अपेक्षा इसमें गद्य की मात्रा अधिक प्रयुक्त हुई है। कथा का आधार पौराणिक है। ब्रह्मा ने भृगु को और उन्होंने नारद को सुनाई थी।

वरदाभ्युदय—

कल्याणैकनिकेतनं तदनघं कालाम्बुदश्यामलं
चित्ते नृत्यतु शेषभूधरशिरोरत्नं चिरत्नं महः।
यस्योरस्यनिशं सुता जलनिधेर्यस्यास्ति तन्मेखला
पार्श्वे यस्य पदे च तत्प्रियतमा यत्तत्र शेते स्वयम् ॥ १/१ ॥

"कदाचिदहमुदारविभवनिदानगदाधरसाक्षात्काराय स्पृहयालुः॥"

या कथा लोकधात्रैव वर्णिता कर्णिता मया।
कथये तामहं तुभ्यं निधये तपसां मुदा॥

इति महिमनि हार्दादीरिते वारणाद्रेः समधिकमतिसम्पत्सारदे नारदेन।
भृगुरपगतहर्षः कोऽत्र नः श्रोत्रसौख्यं सपदि भजति साधोस्संगमेनैति मेने॥
पृष्टेन तेन पुनरागमनस्तवाद्यैस्तुष्टेन विश्वगृहिणा द्रुहिणात्मजेन।
अष्टांगयोगमुपदिष्टमिहाधिगच्छन्नच्छाशयो भृगुरनन्तरमाननन्द॥

५६—उत्तररामचरित्र चम्पू[1] :—

वेंकटाध्वरि के नाम पर प्रकाशित यह तीसरा चम्पू काव्य है। यह भोज के चम्पू रामायण के उस भाग की पूर्ति करता है जिसे लक्ष्मणकवि ने युद्धकाण्ड लिखकर भी छोड़ दिया था। इसमें रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है और रचना अपूर्ण प्रतीत होती है।

अयोध्या में पुनरागमन के पश्चात् राज्य सिंहासन पर एक दिन राम सीता के साथ बैठे हुए थे। अनेकों तपस्वी अपने आश्रम से आनन्दित हो कर निकले—

---

१. गोपाल नारायण एण्ड कं० बम्बई से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

"पद्माकरमिव हंसाः पयसां निधिमिव सरित्प्रवाहाः प्रपोद्देशमिव तृषिताः सनीतिकमिव संपदः, सविवेकमिव गुणाः गुरु कुलक्लिष्टमिव वेदाः गुप्तमन्त्रमिव कार्यसिद्धयो महावीरमिव जयश्रियः अरविन्दमिव मिलिन्दाः दानशीलमिव कीर्तयः दयावन्तमिव धर्माः निखिलभुवनपालनकलानिस्तन्द्रं रामचन्द्रं महर्षयः सहर्षमभिजग्मुः ॥ २ ॥

स्तनभरानतया सह सीतया कनकपीठमनर्घप्रतिष्ठितम् ।
रघुपतिं कृतकृत्यमवेत्य तैरतितरां समहर्षि महर्षिभिः ॥ १० ॥

ऋषियों ने राम के दीर्घायुष्य की कामना प्रकट की तथा रावण वध जैसे महत्कार्य पर आश्चर्य प्रकट किया। तब राम ने रावण का पूर्णवृत्त जानने की इच्छा प्रकट की। इस पर सर्वविद् अगस्त्य ने क्रमशः पुलस्त्य ऋषि विश्वश्रवा का वर्णन किया, रावण, विभीषण, कुम्भकर्णादि के जन्म, लंकानगरी के निर्माण, रावण द्वारा विविध मंत्रियों सहित लंका को जीतकर उसमें प्रवेश, चारों दिक्पालों की रावण द्वारा पराजय, रम्भा के साथ हठपूर्वक रमण करने पर नलकूबर का शाप, यम के साथ युद्ध, बालि से रावण की पराजय, मुक्ति एवं रावण सहित राक्षसों के प्रताप का वर्णन किया है। अन्त में राम ने हनुमच्चरित्र सुनने की इच्छा प्रकट की (२४५) और हनुमान जन्म, रवि-भक्षण, ब्रह्मा का वरदान आदि भी वर्णित हैं। अन्त में ऋषियों ने राम के दानादि की प्रशंसा की है—

दशाननारे नवकुम्भिनीन्द्र दानाम्बुभिर्यस्य कराजयार्द्रम् ।
तदेव तस्यावसथाङ्गणं च कुम्भीन्द्रदानाम्बुभिरार्द्रमास्ते ॥ २७९ ॥

इस प्रशंसा के उपरान्त चम्पू काव्य समाप्त हो गया है। अतः इस रचना को या तो अपूर्ण माना जाय अथवा यह मान लिया जाय कि कवि का उद्देश्य रावण, बालि एवं हनुमान का चरित्र वर्णन एवं महत्त्व का अंकन ही है।

उत्तर रामचरित्र चम्पू एक प्रौढ़ रचना है। कवि की लेखनी ने जिधर मुँह मोड़ा है उधर ही वर्णन सौन्दर्य की आभा बिखर पड़ी है। वह कोमल से कोमल शृंगार ध्वनि में भी उतना ही सफल है—

चंचत्कुन्तलवान्तदिव्यकुसुमस्त्यानोपवानंचल-
न्मुक्ताहारमरीचिवीचिविसरप्रस्मेरवाहान्तरम् ।
तादृक्कुण्डलताण्डवाभिहतिभिः संरक्तगंडस्थलं
तन्वङ्ग्याः पुरुषायितं चिरतरं धन्यः पुमानन्वभूत् ॥ १२९ ॥

कैलाशवर्णनम् ।

अपरत्र च—

श्रमजलकण्ठीः पाद्यार्घादीन्वधूर्मधुपर्कम-
प्यधरमधुभिर्दत्वा कंदर्पदैवतपूजने ।
श्लथकचमुखेनैव व्यातन्वती कुसुमांजली-
नुरसि पतिता भर्तुः कर्तुं प्रमाणममिवाततः ॥ १३० ॥

जितना भयंकर और ओजस्वी युद्ध वर्णन में—

अन्योन्यव्यतिपिंजितोग्रविशिखप्रोत्क्षुण्णवक्षस्थल-
श्रोतल्लोहितपूरकल्पितमहाहोलाकहेलाकयोः ।
ज्याटंकारतिरोहितातिविकटाहङ्कारहुङ्कारयोः
कष्टं हन्त कृतान्तपंक्तिमुखयोर्युद्धं प्रवृद्धं बभौ ॥ ११० ॥

कहीं उक्तिवैचित्र्य की झलक दिखाई पड़ती है—

चकितहरिणशावचंचलाक्षी मधुररणन्मणिमेखलाकलापम् ।
चलवलयमुरोजलोलहारं प्रसभमुमा परिषस्वजे पुरारिम् ॥ ७८ ॥

तो कहीं शब्दालंकारों की छटा दिखाई पड़ती है—

तरसाशाधिपोप्याजौ तरसाशाधिपार्जनात् ।
निर्माताम‌हतामार्तिनिर्माता महतामगात् ॥ १७४ ॥

यमरावणयुद्ध

कहीं तो विस्तृत गद्यावली ही दिखाई पड़ती है,[1] कहीं गद्य-पद्य की समान ग्रन्थि । आदि और अन्त में श्लोक मानों कथा के दोनों छोरों को जोड़ने वाले सूत्रांश हैं । कुछ उपमायें कवि के निजी अनुभव को व्यक्त करती हैं—

"अथ सुकविप्रबंधवत्सदसि संघर्षणेन शोभमानं कुकविप्रबन्धवदुच्चावच-शब्दं उद्यानमिव शिलीमुखक्षतसुमनस्कं ̇ ̇ ।" पृ० ४५ ॥ देवों से युद्ध ।

हनुमच्चरित्र का एक उद्धरण दे देना पर्याप्त होगा । विविध वरदानों से विभूषित हनुमान की बाल्यक्रीड़ा का दर्शन कीजिये—

आचामन् सोममुच्चैः सहचमसतयानर्दयन्नाज्यपूर्णां
स्थालीमालिह्य गर्जन्मुहुरनुगमयन्नद्भिरग्नीन्प्रगीतान् ।
स्वादं स्वादं हवींषि क्षपितपरिजनो यूपमुत्पाट्य नाट्यं
कुर्वन्पीडामृषीणामदिशतुदजभू(१)भंजनादंजनाभूः ॥ २५६ ॥

[य]पि कवि ने स्वयं आरंभ में कहा है—

यः काण्डान्निबबन्ध चम्पुविषयान् पंचापिभोजः कवि-
र्यो वा षष्ठमचष्ट लक्ष्मणकविस्ताभ्यामुभाभ्यामपि ।

---

१. द्रष्टव्य—पृष्ठ ८ से १३ तक वासुदेव-वर्णन ।

कारुण्यादविशेषितं कलिमलक्षेपाय रामायणे
काण्डं सप्तममुद्गृणातु रसना चम्पुप्रबन्धात्मना ॥ ८ ॥

परन्तु भोज और लक्ष्मण में वाल्मीकि का पूर्ण अनुसरण किया है। इसमें वैसा अनुसरण लक्षित नहीं होता। कवि ने स्वतन्त्र प्रतिभा को अनुकरण के भार से दबने नहीं दिया है। यह रचना अपने आप में एक स्वतन्त्र चम्पू काव्य है। किसी ग्रन्थ का अंग बनने से इसका गौरव नहीं बढ़ जाएगा। गद्य-पद्य का समान महत्त्व प्रदर्शित करते हुए दोनों के उपयुक्त मिश्रण की पद्धति प्रत्यक्ष करने वाला यह अकेला चम्पू है।

"यादवराघवीयम्"

श्लेषप्रधान रचना भी इन्हीं की है।[1]

५७—नीलकंठ विजय चम्पू[2] :—

नीलकंठ विजय चम्पू काव्य के निर्माता श्री नीलकंठ दीक्षित भरद्वाज कुलोत्पन्न श्रीकण्ठ मत के प्रतिष्ठापक एवं प्रख्यात विद्वान् अप्पय दीक्षित के सहोदर अचा दीक्षित के पौत्र एवं नारायण दीक्षित के पुत्र थे। इनकी माता का नाम भूमि देवी था। नीलकण्ठ दीक्षित अपने पितामहाग्रज अप्पय दीक्षित के अत्यन्त प्रियपात्र थे। चिदम्बरम् में अपनी मृत्यु के समय अप्पय दीक्षित ने अपना सर्वाधिक स्नेह नीलकंठ पर ही प्रकट किया था। अप्पय दीक्षित की मृत्यु संवत् १६८० (सन् १६२३) में हुई थी।[3] सम्भव है उस समय नीलकंठ प्रतिभा-सम्पन्न बालक रहे हों।

नीलकंठ विजय का रचना काल कवि ने स्वयं दिया है—

अष्टत्रिंशदुपस्कृतसप्तशताधिकचतुःसहस्रेषु।
कलिवर्षेषु ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोयम् ॥ १/१० ॥

इस आधार पर ग्रन्थ निर्माणकाल कल्यब्द ४७३८, ई० सन् १६३६ सिद्ध होगा। इस प्रकार अप्पय दीक्षित की मृत्यु के तेरह वर्ष बाद इस ग्रन्थ की रचना हुई। सत्रहवीं शताब्दी पूर्व का भाग नीलकंठ का समय था, यह निर्विवाद है।

इस चम्पू काव्य में पांच आश्वास हैं जिनमें क्रमशः देवताओं और दैत्यों का संघर्ष तथा देवों की पराजय, देवताओं का बृहस्पति की सम्मति से ब्रह्मा, विष्णु

---

१. द्रष्टव्य-संस्कृत लिट्रेचर पृष्ठ १२३

२. बालमनोरमा प्रेस (७ नं०) माइलापुर, मद्रास से प्रकाशित प्रति प्रयुक्त (सन् १९४१)।

३. द्रष्टव्य-हिन्दुत्व पृष्ठ ६२६-६२७।

और शिव की शरण के लिए घूमना, बृहस्पति द्वारा देवों और दैत्यों की सन्धि-योजना, समुद्रमन्थन का उद्योग, वासुकी-मन्दर आदि को मंथन कार्य के लिए तत्पर करना, समुद्र-मन्थन, चतुर्दशरत्नों की प्राप्ति, विषाक्त संसार की रक्षा के लिए नीलकंठ का गरलपान, मोहिनी द्वारा अमृत वितरण, देव-दानवों का पुनः संघर्ष और देवों द्वारा स्वपद की पुनःप्राप्ति वर्णित हैं।

समुद्र मंथन की कथा भागवत के अतिरिक्त कई पुराणों में वर्णित है।[1] कवि ने पौराणिक कथा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है किन्तु वर्णन को राजनीतिपरक बनाने का प्रयास अवश्य किया है। अप्पय दीक्षित के समय में विजयनगर राज्य में बड़ी उथल-पुथल मची, राज्यवंश बदले। नीलकंठ ने यह सब कुछ अप्पय दीक्षित से सुना होगा। विलासी राजाओं के प्रति उनकी घृणा कितनी थी यह देवताओं की पराजय के उपरान्त उनके प्रति प्रयुक्त शब्दावली बतलाती है—"हन्त चिरादिमान् देव पशूनद्राक्षम" (पृष्ठ ३७)। आरम्भ में महेन्द्रपुरी का विलास वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है—

"अपनय वल्कलमित्यपनेतुकामेषु कुचदुकूलानि, नलोहितं कुर्यादिति निषेधत्सु नखक्षतानि, आः कष्टमसंमतोयं पन्थाः शिष्टानामिति पिहितकर्णेषु चुम्बनभेदप्रस्तावनायां, निवीतधारणव्यग्रेषु नीवीमोचनावसरे द्वितीयसुरतारम्भ एव देहि मे कमण्डलुमिति त्वरमाणेषु मन्दाकिनीगमनाय विहसन्ति विषीदन्ति, विलज्यन्ते विस्मयन्ते च रम्भादिमेनकान्ता देववारकान्ताः। पृ० ६॥

इस विलास-वर्णन के समय कतिपय नायिका भेद भी दिखाई पड़ता है—

मन्दानिलव्यतिकरच्युतपल्लवेषु
मन्दारमूललवलीगृहमंडपेषु।
पुष्पाणि वेणिवलयेषु गलन्ति तस्यां
साद्धं वहन्ति सुरवासकसज्जिकानाम् ॥ १/१६ ॥

गायन्ति चाटु कथयन्ति पदा स्पृशन्ति,
पश्यन्ति गाढमपि तत्र परिष्वजन्ते।
कल्पद्रुमानपि समेत्य सुपर्वकान्ता
मुग्धा द्रुमैरतदितरैश्चिरविप्रलब्धाः ॥ १/१७ ॥

कवि ने देवताओं के पतन का जो कारण प्रस्तुत किया है वही दानव-दैत्य संघ का भी। प्रचुर साधना के उपरान्त प्राप्त अमृत की उपेक्षा कर जब विश्व मोहिनी पर विमुग्ध दानवों ने उसे कहना प्रारम्भ किया—

---

१. हरिवंश भविष्य पर्व ३० अ०, अग्निपुराण ३ अ०, स्कन्दपुराण वैष्णव-खंड, पद्मपुराण, उ० खं० २६० अ० एवं भागवत ८।६-७ द्रष्टव्य।

त्वं नो राज्यं त्वं बलं त्वं धनानि
त्वं नः प्राणास्त्वं भवस्यन्तरात्मा ।
त्वद्दासाः स्मस्त्वत्कटाक्षप्रतीक्षा-
स्त्वं यद् ब्रूयास्तत्प्रमाणं परं नः ॥ ५/४७ ॥

तब अमृत खो गया और वे भी उसी प्रकार पतन के गर्त में समा गये। नीलकंठ दीक्षित ने ऐसा कथानक चुना है जिसमें युगानुकूल शृङ्गार का चित्रण भी हो सके और विलासिता पर भयानक चोट भी की जा सके। बृहस्पति ने अपनी नीति उस व्यक्ति को बताई है जो पश्चात्ताप में तपकर "श्रियं पुनरभीप्सु" बन गया है।[1] नीतिमय उक्तियां देखिये—

अनालोच्य निजां शक्तिमदृष्ट्वाकार्यगाधताम् ।
औत्सुक्यादवगाहन्ते मन्दा मज्जन्ति चातलम् ॥ ३/४ ॥
"सन्धिर्नाम ऋजूपायः····।" पृष्ठ ६१ ॥

अलंकृत विशेषण पदावली का प्रयोग गद्य चम्पू काव्य की परम्परानुसार है—

"अस्ति च तामधिवसन् वसन्त इव ऋतूनां, वासुकिरिव फणाभृतां, चन्दन इव वृक्षाणां, चन्द्रमा इव ऋक्षाणां····चन्द्रचूडचरणारविन्दपरिचरणानन्दसाम्राज्यधुरंधरः पुरन्दरो नाम।" पृष्ठ ७-८ ॥

युद्ध वर्णन अत्यन्त ओजस्वी एवं प्रत्यक्षदर्शी जैसा है।[2] व्यूह-रचना का एक रूप देखिये—

"आदिश्य च ततः शतमन्युरन्तकमग्रतः सेनामुखे, पार्श्वयोरस्य पवनपावकौ, पृष्ठतः स्वस्य पुण्यजनेश्वरं, अन्तिक एव धनदमाहवशूरान् सभाजयितुं, अध्वनि शिबिरे च विद्विषामपांपतिं, आयुधक्षतान् भिषजयितुमाश्विनेयौ··" पृष्ठ १९-२० ॥

प्रास्ति गायक के लिए कोई भी राजा हो, उसे क्या? कवि ने उन पर कितना बड़ा व्यंग्य कसा है—

ब्रह्मर्षयोऽपि दनुजेन्द्र सभां प्रविष्टा
मन्त्राक्षराणि मघवादिपदाङ्कितानि ।
ऊहेन दानवपदान्युपवेशयन्तो
हर्षाय पेठुरसुरेन्द्रपुरोहितानाम् ॥ १/५० ॥

---

१. श्लोक २।१।
२. द्रष्टव्य-पृष्ठ १६ से २६ तक।

युग की परिस्थिति एवं दृष्टकोण की अभिव्यक्ति का ध्यान कवि ने पूरा रखा है—

विद्वांसः प्रथमेऽभवन् विवसनाः सौत्रान्तिकाः साधवो,
मुख्या माध्यमिकाखिलोकगुरवश्चार्वाकतन्त्रे स्थिताः ।
पाषण्डा निगमागमव्यसनिनः कालः कलिः शाश्वतो
दैत्ये शासति देवराज्यमजनि त्रैलोक्यमित्थं तदा ॥ १/५१ ॥

विरोधाभास अलंकार के दर्शन के लिए पृष्ठ ९६, प्रकृति के मनोरम चित्रों के लिए क्षीर सागर का वर्णन (४७-४९), तात्त्विक ज्ञान की अभिव्यक्ति के लिए (२।३४), शिव एवं शैवमत के लिए आदर भाव के लिए (पृष्ठ २७) तथा शिव-स्तुति में जहां कवि की वाग्धारा अजस्र गति से प्रवाहित हुई है (पृष्ठ ९४-९८), आदि द्रष्टव्य स्थल हैं। ग्रन्थ भी कवि ने शिव को ही समर्पित किया है—

वाचं व्याकुरुते चिरंतनगिरं मीमांसते चोभर्यी
पान्थः काव्यपथेषु पादकमले सक्तः पुरारेरिति ।
मामेतत्कथयिष्यतीति रचितं काव्यं मया तत्पुन-
स्तावद्वक्ष्यति वा न वा तदुपरि न्यस्तः समस्तो भरः ॥ ५/६३ ॥

इस काव्य में कुल २७९ श्लोक एवं मात्रा में इससे कुछ कम गद्यभाग है।

५८—त्रिपुर विजय चम्पू[1] :—

अतिरात्रयाजिन् रचित यह त्रिपुर विजय चार आश्वासों में था। हस्तलिखित प्रति के प्रथम आश्वास के आरम्भ एवं चतुर्थ आश्वास के बाद के पृष्ठ विलुप्त हैं। द्वितीय आश्वास के उपसंहार वाक्य से प्रतीत होता है कि कवि नीलकंठ दीक्षित का सहोदर भाई था—

"इति श्रीमद्भरद्वाजकुलजलधिकौस्तुभश्रीकण्ठमतनिर्वाहधूर्वहचतुरधिकशतप्रबन्धनिर्मित्यलंकर्मीणश्रीमदप्पयदीक्षितसोदर्यश्रीमदच्चादीक्षितपौत्रस्य श्रीनारायणदीक्षितात्मजस्य श्रीमदतिरात्रयाजिनः कृतिषु त्रिपुरविजयनाम्नि चम्पूकाव्ये त्रिपुरदानवमोहनं नाम द्वितीय आश्वासः।"

इसका आरंभ—

"नारायणमेव शरणमिच्छन्तः धनमन्दिरं क्षीरसागरमुद्दिश्य प्रमुदिताः प्रतस्थिरे……।"

और अन्त—

स्पष्टीभूतभुजंगलोकमभितो व्याकीर्णरत्नोत्करं
व्यावल्गज्जलजन्तुशान्तवडवावक्त्रानलाडम्बरम् ।

---

१. तंजोर कैटलाग नं० ४०३७। अप्रकाशित।

कल्लोलैः स्थलतः क्षणात् स्वयमुपर्युत्प्लुत्य दुग्धार्णवः
प्रायेणायतबुद्बुदाकृतिधरस्तूणीरभावं य— ॥

नीलकंठ दीक्षित के सहोदर होने के कारण इनका समय भी सत्रहवीं शताब्दी का मध्य भाग है। त्रिपुरदहन की कथा विविध पुराणों-स्कंद पुराण, ब्राह्मखंड १२२ अ., शिवपुराण रुद्र संहिता ५ युद्धखंड अ. १-१२, हरिवंश भविष्यपर्व अ. १३३ तथा मत्स्य पुराण १२९-१३७ अ.-में वर्णित है।

५६—त्रिपुर विजय चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के प्रणेता नृसिंहाचार्य तंजोर के भोंसला राजा एकोजि के अमात्य प्रवर थे। अतः यह नृसिंहामात्य के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम आनन्द यज्वा था। यह भारद्वाज कुल में उत्पन्न हुए थे। गणेश और शिव की स्तुति से इन्होंने काव्य का आरम्भ किया है—

अथ गणपतिमाद्यं भावयन्नन्तरंगे
रजतशशिसवर्णं चन्द्ररेखावतंसम्।
सुरवरमुनिवृन्दैरर्चितांघ्रिं नितान्तं
निरवधिकरुणानां नीरधिं नित्यमीडे ॥ १ ॥

क्रमशः सरस्वती, गुरु तथा महाकवियों को प्रणाम करने के उपरान्त कवि ने आत्मपरिचय दिया है। रचना का कारण अपनी चपलता बतलाई है ॥ ८ ॥

श्रीमानभूद् भूधरचक्रवर्ती
कैलासनामा कमनीयमूर्तिः।
कर्पूरकान्तिः कलधौतसूनुः
कलानिधिर्दीधितिकोशगेहः ॥ १० ॥

कैलाश का वर्णन करते हुए कवि ने कथा का आरंभ किया है। संक्षेप में त्रिपुर दहन की कथा इसमें वर्णित है। रचना प्रौढ़ नहीं है। इसका अन्तिम श्लोक है—

ब्रह्मादयोपि ते सर्वे प्रणम्य परमेश्वरम्।
तदाज्ञां शिरसा धृत्वा स्वं स्वं धाम प्रपेदिरे ॥ ३८ ॥

---

१. तंजोर कैटलाग नं० ४०३६। अप्रकाशित।

६० —केरलाभरणम्[1] :—

इस चम्पू काव्य को भी यात्रा प्रबन्धों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसके निर्माता रामचन्द्र दीक्षित, रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित के परिवार से संबंधित हैं। वंशावली का क्रम इस प्रकार है—

रत्नखेट

केशव अर्धनारीश्वर राजचूडामणि

|

पतंजलि

केशव

रामचन्द्र दीक्षित

इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है। कथा की भूमिका इन्द्र के दरबार में वशिष्ठ और विश्वामित्र की इस विवाद चर्चा से बाँधी गई है कि कौन सा देश रमणीय है—

कतमो देशो रम्यः कस्याचारो मनोहरो महताम्।
इति वादिनि देवपतौ संघर्षोभूद्वशिष्ठगाधिजयोः ॥ १८ ॥

वशिष्ठ कहते हैं—

"देवपाकशासन कौंकण-कलिंग-मागध-कामरूप-गुर्जर-कुन्तल-नेपालान्विना सर्वे देशाः समीचीनाः। समीचीनाचाराश्चेति ममाभिप्रायः।"

विश्वामित्र इसका प्रत्याख्यान करते हैं। फलस्वरूप मिलिन्द और मकरन्द नामक दो गन्धर्व भेजे जाते हैं। वे विविध तीर्थों आदि का भ्रमण करते हैं। देशों और स्थानों के वर्णन की पद्धति संवादरूप में है। अन्त में दोनों पुनः इन्द्र के दरबार में पहुँचकर अपनी सम्मति प्रकट करते हैं। कवि ने केरल के प्रकृति-सौन्दर्य का रुचिपूर्वक चित्रण किया है। केरलीय होने के कारण उसने इसे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है। आचारों के विषय में भी उसने स्पष्ट कर दिया है—

"दृष्टसुखेषु देशेषु केरलाः समीचीनाः। इतरे देशाः सत्यशीलवत्तया परिग्राह्याः। मतप्रस्तावे च मध्वरामानुजावग्राह्यौ।"

विश्वगुणादर्श की भांति इसका सौन्दर्य भी इसके पद्यों में है। आरम्भिक मंगलाचरण से ही भाषा की प्रौढ़ता और अनुप्रासमयता सहित लालित्य छलकने लगता है। कुछ पद्य उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं—

उल्लोलमदकल्लोलहल्लोहालितगल्लया।
लीलया मंडितं चित्तं मम मोदकलोलया ॥ १ ॥

---

१. तंजोर कैटलाग—४०३१। अप्रकाशित।

नलिनसहोदरनयनं कुलभूधरकुतुकसम्पदामयनम् ।
करुणालयमरुणाभं प्रणमामः शम्भुभाग्यपरिणामम् ॥ २ ॥
नतान्मन्ये येषां कुकवनमहादावदहन-
प्रसर्पज्ज्वालाभिः प्रलयमुपयात्येव भुवनम् ।
निगुम्फो यद्वाचां स जयतु विरिंचाननपुटी
नटद्वाणीपाणिस्फुरितमणिवीणाध्वनिसखः ॥ १० ॥
संगीतश्रवणक्षणे सुखकरं नृत्तं तथालोकने
कामिन्या नवविभ्रमाः कुचपरीरम्भान्तसौख्यप्रदाः ।
वाचां गुम्फनसम्भ्रमस्तु सुकवेराचन्द्रतारं यशो
लोके स्थापयति प्रमार्ष्टि दुरितान्यानन्दमासिंचति ॥ १४ ॥

६१—वैकुण्ठ विजय चम्पू[1] :—

इस चम्पूकाव्य के रचयिता श्रीवत्सगोत्रोत्पन्न श्रीनिवासाचार्य के पुत्र श्री राघवाचार्य हैं। यह अहोविलम् मठ के प्रधान श्री रंगनाथ के शिष्य एवं रामानुज के मतानुयायी थे। इन्होंने श्रीनिवास स्वामिन् से धर्मग्रन्थों एवं पुराणों का अध्ययन किया था। अन्य विशिष्टाद्वैतवादी कवियों की भाँति इन्होंने भी काव्य के आरंभ में अनेक वेदान्ताचार्यों की वन्दना की है। इनका समय भी सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है। मंगलाचरण में कवि ने भक्ति की याचना की है—

श्रियः पत्यौ पत्यौ निखिलजगतां निर्ममजने-
र्निषेव्ये निस्तुल्ये निरवधि महानन्दजलधौ ।
निराबाधैश्वर्ये निजपदतनव्रातसुलभे
भवादीनां भाव्ये भवतु मम भक्तिर्भगवति ॥ १/१ ॥

इसके बाद अहोविलम् के अधिष्ठातृ देवता की स्तुति की गई है—

श्रीमानहोविलगुहास्थितिमाननन्तत्रय्यन्तवेद्यनिजरूपगुणप्रभावः ।
प्रह्लादरक्षणकृते प्रथितावतारः प्राग्भिः स्तुतो नरहरिः प्रथयेद् धियं नः ॥२॥

शठकोपमुनि एवं आचार्य रामानुज की स्तुति दर्शनीय है—

भवजलधिनिमज्जत्सज्जनोज्जीवनीभि-
र्भणितिभिरमलाभिः सर्वलोकोचिताभिः ।
परमपुरुषमस्तौन्निस्तुलं यस्तु सोयं
शठमिथुनमुनिर्मे भूयसे श्रेयसे स्यात् ॥

---

१. डी० सी० मद्रास-१२३७४ या (डी० सी० २१,८२९८) अप्रकाशित।

श्रीमान् रामानुजार्यो जयति यतिपतिस्सर्वसिद्धान्तवेत्ता
दौरात्म्यध्वान्तकुक्षिम्भरिहरिचरणप्रेमभूमोदिताभिः ।
फुल्लन्मल्लीमतल्लीमधुरमधुझरीमाधुरीसोदरीभि-
स्त्रय्यया वैयाकुर्ली यः फणितिभिरनघोशीशमच्छ्रीशसेवी ॥

कवि को अपनी रचना के सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास है कि वह पाठकों को अवश्य आनन्दित करेगी—

काव्यान्यपूर्वरचितान्युपजीव्यजाताप्येषा मदीयकविता स्वदते गुणाढ्या ।
अम्भोनिधावुदितमप्यवलोक्य चन्द्रं सर्वे जना भुवि परं मुदिता भवन्ति ॥

जिस प्रकार विश्वगुणादर्शकार ने दो पात्रों की कल्पना कर उन्हें सम्पूर्ण तीर्थों में घुमाकर उन्हीं के माध्यम से वर्णन करना चाहा है ठीक उसी प्रकार इस कवि ने भी जय–विजय को त्रिलोकी चरित जानने के लिये अनेक स्थानों पर भ्रमण कराया है—

विजयजयसमाख्यौ पूरुषौ हि त्रिलोकीचरितसमवगत्यै लोकसंचारकामौ ।
गुणतदितरजालग्राहिणौ तत्र चाद्यः स्वसुकृतपरिपाकाच्छ्रीशभक्तो बभूवे ॥

वर्णन की शैली में विश्वगुणादर्श का अनुकरण होते हुए भी इसका गद्यभाग अधिक ललित और अलंकृत है—

"तत्र खलु निखिलजगदुदयविभवविलयनटनपटिमजटिलपरमपुरुषमहित-गरिमकथनविवशनिगममुकुटसततमननसमधिगतसकलदिग्विजयो विजयः नि-ष्प्रत्यूहं निखिललोकसंचरणसंपत्तये भगवन्तम् आपादचूडमभिध्यायति ॥"

कथोपकथन की रीति अनुकृत ही है—

जयः—

गंगा सभंगा जडधीष्टसंगा कपालिनोऽगे कलितानुषंगा ।
सुरापगेति प्रथिता कथं तु तोष्टूयतेसौ भवता निकामम् ॥

विजयः—

गुणत्वेनावस्थितानां दोषत्वेनाभिधानं भवतो मतिमान्द्यं व्यक्तमात्रं वा भवति ।

यह प्रति अपूर्ण है ।

६२—उत्तर चम्पू रामायण[1] :—

वैकुण्ठविजय चम्पू काव्य के निर्माता तिरुवेल्लोर (जि० चेंगलट) निवासी राघवाचार्य की ही यह दूसरी चम्पू रचना रामायण के उत्तरकाण्ड पर आधारित है ।

---

१. राइस, १८८४, कैट० नं० २२८९, पृष्ठ २४६ (डी० सी० २१, ८१-८४) । अप्रकाशित ।

६३—द्रौपदी परिणय चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता चक्र कवि के पिता का नाम लोकनाथ एवं माता का नाम अम्बा था। इन्होंने अपने बड़े भाई रामचन्द्र एवं छोटे भाई पतंजलि का आदरपूर्वक उल्लेख किया है (द्र० १। ११-१२ यही चम्पू)। चक्र कवि के आश्रयदाता पाण्डय और चेर देश के राजा थे। चक्रकवि ने नीलकंठ दीक्षित का उल्लेख किया है[2] और नीलकंठ का समय १६३७ होने से इस परिणय-काव्य के प्रणेता का समय भी सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जा सकता है।

चक्रकवि की अन्य रचनायें-रुक्मिणी परिणय, जानकी परिणय, पार्वती परिणय और चित्ररत्नाकर हैं। इनमें रुक्मिणी और पार्वती परिणय रचनायें प्रकाश में नहीं आई हैं।

इस चम्पू काव्य में ६ आश्वास हैं जिनमें कुन्ती सहित पाण्डवों के एकचक्रपुरी में निवास करने से आरंभ कर, बकवध, ऋतुवर्णन एवं पांचालनगरी में पाण्डवों का निवास, स्वयंवर में आये अनेक राजाओं का वर्णन, अर्जुन द्वारा लक्ष्यभेद एवं द्रौपदी की प्राप्ति, पाण्डवों से द्रौपदी का विवाह एवं अन्य राजाओं द्वारा पांचाल राजधानी घेरने पर युद्ध एवं पाण्डवों की विजय, धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देना, इन्द्रप्रस्थ नगरी का निर्माण एवं कृष्ण के द्वारका जाने तथा युधिष्ठिर द्वारा राज्य करने-तक का वर्णन है।

कथा का आधार महाभारत के आदिपर्व में वर्णित एतत्सम्बन्धी घठनाएँ ही हैं। कवि ने कहीं भी थोड़ा भी परिवर्तन नहीं किया है। भाव साम्य तो अनेकों स्थलों पर मिलेगा। द्रौपदी को लेकर जब पाण्डव, कुन्ती के पास गये तो जैसी उक्ति पाण्डवों ने कही थी वह तुलना के लिए उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा।

कुलालभवनं गत्वा तदन्तःस्थां कुरूद्वहाः।
आनीता कापि भिक्षेति मातरं वाचमूचिरे ॥ ४/१४ ॥
सरसा सा समानीता भवद्भिर्भुज्यतामिति।
कथयन्ती बहिः कुन्ती निरगात्तदगारतः ॥ ४/१५ ॥

कहीं-कहीं वर्णन सौन्दर्य उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है—

"तुषारवर्षसंप्लुष्टसारसवनसरसीसंचरद्राजहंससंसत्प्रतीक्षितवासन्तवासरोदयः" पृष्ठ १७।

---

१. श्रीवाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम् से श्रीवाणीविलास संस्कृत सीरीज १७ में प्रकाशित प्रति प्रयुक्त।

२. द्रष्टव्य—द्रौपदी परिणय चम्पू—५।८७।

पंचम आश्वास में द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्त एवं पाँच पति होने के कारण का वर्णन करते हुए शिव की स्तुति एक स्तोत्र काव्य सी ही प्रतीत होती है। इन्द्र द्वारा कृत स्तुति में काव्य सौन्दर्य नहीं है—

"रागदोषरहिताय ते नमो राजराजमहिताय ते नमः।" पृष्ठ ७५ ॥

कवि ने समासबहुलता को ही वर्णन का सौन्दर्य समझ लिया है—

दीव्यन्नालीकपालीदलितनरवपुर्जांगलाहारदृप्यद्-
गोमायूदारकोलाहलविहितभटश्रेणिकावीरवादम्।
तीक्ष्णप्रासप्रहाराहितदलनगजोत्तुङ्गकुम्भान्तराल-
च्योतद्रक्तस्रवन्तीसमुदयविहरद्गृध्रहंसावलीकम् ॥ ५/८४ ॥

चतुर्थ आश्वास में वर्णित युधिष्ठिरादि पांचों भाइयों का परिचय उनकी चारित्रिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति करता है।

आरंभ में कवि ने वाल्मीकि से लेकर भारवि तक कवियों की वन्दना की है। इसमें कालिदास के प्रति कही गई सूक्ति सुन्दर है—

प्राचेतसे या जगति प्ररूढा या पुष्पिता सत्यवतीकुमारे।
सा कालिदासे फलिता कवीनामेकोपमाने कवितालताऽभूत् ॥ १/८ ॥

हर्ष कवि के समान ही[1] चक्र कवि ने भी आश्वासों के अन्तिम श्लोक में अपने परिचय की पद्धति रखी है। अन्तिम पंक्तियाँ बदलकर अपने ग्रन्थों का भी परिचय दे दिया है—

पुत्रं चक्रकविं गुणैकवसतिः श्रीलोकनाथः सुधी-
रम्बा सा च पतिव्रता प्रसुषुवे यं मानितं सूरिभिः।
तस्याभूद् द्रुपदात्मजापरिणये चम्पु-प्रबन्धे महा-
नाश्वासः प्रथमो विदर्भतनयापाणिग्रहभ्रातरि ॥ पृष्ठ १७ ॥

६४—गोदा परिणय चम्पू[2] :—

श्रीवेदाधिनाथ भट्टाचार्य केशवनाथ विरचित इस चम्पू काव्य में तमिल की सुप्रसिद्ध सन्त कवयित्री गोदा (आण्डाल) का श्रीरंगम् के अधिष्ठातृ देवता रंगनाथ के साथ विवाह वर्णित है। इसमें पांच स्तबक हैं—

"इति गोदापुरोहितेन वेदाधिनाथभट्टाचार्येण श्रीकेशवनाथेन विरचिते गोदापरिणये चम्पूकाव्ये पञ्चमस्तबकः।"

आरंभ में कवि ने गोदा की स्तुति की है—

---

१. द्रष्टव्य—नैषधीयम् १।१४५ या २।११० आदि सर्गान्त के श्लोक।
२. डी० सी० मद्रास १२२३० या (डी० सी० २१, ३१९६)। अप्रकाशित।

कल्याणं करुणासारशीतलापांगवीक्षणे ।
कुर्वती पातु मां नित्यं गोदा वेदान्तदीपिका ॥ १/१ ॥
गोविन्दानन्दजननीं कोमलार्थपदावलिम् ।
गोदा ददातु मे वाणीं मोदाय कविचेतसाम् ॥ १/२ ॥
गोदापरिणयं वक्तुं तदादेशेन निर्भया ।
चपला मम जिह्वेयं चम्पुमारभते बुधाः ॥ १/३ ॥

यह स्तुति सरस्वती वन्दना की भांति है और कवि के लिए गोदा का आदेश भावात्मक है ।

गोदा का तमिल में शुद्ध नाम "कोदै" है, जिसका अर्थ माला है । इसीको विद्वानों ने "गोदा" बनाकर "कविता मालायें अर्पित करनेवाली" अर्थ निकाला है । ईसा की छठी शताब्दी में विद्यमान सुप्रसिद्ध वैष्णव सन्त पेरियाल्वार (विष्णुचित्त) की पोषिता कन्या गोदा थी । बारह वैष्णव सन्त कवियों की चार हजार कविताओं का संग्रह दक्षिण में "तमिलवेद" के नाम से प्रसिद्ध है । पेरियाल्वार इनमें से प्रथम तीन संरक्षकों में हैं । इस नैष्ठिक ब्रह्मचारी और परमभागवत सन्त की छाया में रहते हुए गोदा ने अपने आपको पूर्णतः रंगनाथ को समर्पित कर दिया । वह कृष्ण को अर्पित की जाने के पूर्व ही अपने पिता की बनाई हुई मालाओं से अपने आपको सुसज्जित कर लेती थी और उसी के द्वारा उसके पिता रंगनाथ की पूजा करते थे । एकदिन उसके पिता ने इस कार्य को देख लिया, गोदा को डाँटा-फटकारा और पुनः दूसरी मालायें बनाकर पूजा के लिए ले गये । कहा जाता है कि एक अशरीरी वाणी द्वारा भगवान् ने उन मालाओं को अस्वीकृत कर दिया और गोदा की पहनी हुई मालायें ही माँगीं । पिता ने पुत्री के भगवत्प्रेम को पहचाना और अन्त में उसका विवाह भी गोदा के ही हठ के कारण भगवान रंगनाथ से हो गया । सोलह वर्ष की आयु में ही वह भगवान् में विलीन हो गई ।

मीरा विधवा थी, गोदा कुमारी, पर भाव की दृष्टि से दोनों की कविताओं में एक ही भावधारा बहती हुई दिखाई पड़ती है । परवर्ती वैष्णव आचार्यों, यहाँ तक कि आचार्य रामानुज पर भी गोदा की भक्ति-श्रृंगार-परक कविताओं का प्रभाव माना जाता है ।[1] गोदा का दूसरा नाम "आण्डाल" है जिसका अर्थ "रक्षा करने वाली" होता है । विजयनगर के सम्राट् कृष्णदेव ने गोदा का वृत्त अपने तेलुगु काव्य "आमुक्तमाल्यदा" में प्रस्तुत किया है ।[2]

---

१. द्रष्टव्य—तमिल और उसका साहित्य-पृष्ठ ४५ ।
२. द्रष्टव्य—तेलुगु और उसका साहित्य-पृष्ठ ४०, कृष्णदेव का काव्य ७ आश्वासों में है ।

यह चम्पू काव्य भी उक्त किंवदन्ती पर आधारित है। चम्पू काव्यों की तरह की आलंकारिकता का इस काव्य में दर्शन नहीं होता। इसका महत्व गोदा के चरित्र वर्णन के कारण है। उद्धरण के लिए निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

"गोदापरिणयसन्तोषेण स तत्कालोचितशीघ्रवाहिने विनयवते वैनतेयाय व्यादिशदेकासनेष्येकदेशाध्यासनम्।"

कन्यानुरागस्य तथात्मभर्त्रे श्रीविष्णुचित्तस्सदृशं सभायाम्।
भूषाम्बरालेपनपुष्पमाल्यैरपूजयत्तं त्रिदशादिपूज्यम्॥

कवि की भरतवाक्योक्ति द्रष्टव्य है जिसमें उसकी व्यापक भावना व्यक्त हुई है—

गेहे गेहे निरवधिरभूत् सर्वसम्पत्समृद्धिः।
काले काले निरमुचदपि प्राणिनां वृष्टिमिन्द्रः॥

इसका रचनाकाल भी सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है।

६५—गौरी मायूर माहात्म्य चम्पू[1] :—

मयूरवरम् के समीप किल्लपुर निवासी अप्पा दीक्षित की यह रचना मायावरम् की पौराणिक महत्ता का वर्णन करती है। मायावरम् तंजोर जिले में है। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर एवं अठारहवीं का पूर्व भाग है।[2] इस चम्पूकाव्य में पांच तरंग हैं। कवि ने चम्पू की रचना के सम्बन्ध में कहा है—

भोजादिभिः कृतपदं कविभिर्महद्भि-
श्चम्पूक्तिसौधमधिरोढुमहं यतिष्ये।
निःशंकमम्बरतलं पततः पतत्रि-
राजस्य मार्गमनुसर्तुमिवाण्डजोन्यः॥ १/५॥

काव्य का आरंभ पौराणिक शैली पर हुआ है—

"अथ कदाचिदकामानामप्यवाप्तसमस्तकामानां स्वाधीनानामपि मन्त्राणां तन्त्रेणानुष्ठानं विना वैयर्थ्यमर्थतो मन्वानानां न्यायार्जितानां नैमिषारण्ये महतामनेकेषामृषीणामभवत्समाजः।"

सूत द्वारा सुनाई गई कथा का उपसंहार मुनिमण्डली की प्रसन्नता के वर्णन से हुआ है—

इत्याकर्ण्य महेशस्य वैभवं सूतभाषितम्।
गौरीमायूरमाहात्म्यं मुमुदे मुनिमण्डली॥

---

१. तंजोर कैट० ४०३५। अप्रकाशित।

२. जे० ओ० आर० मद्रास। वोल० ३ के एक लेख के आधार पर। द्र०—"गौरी मायूर माहात्म्यम्" लेख।

इसकी भाषा सरल तथा शैली कथावाचकों की सी है, पर कवि ने अपने चम्पू काव्य को गुणगणमणिमालालंकृत कहा है—

इति विरचितमप्पादीक्षितेनेश्वरस्य
क्षितिधरपतिकन्यामान्यवामांगकस्य ।
गुणगणमणिमालालंकृतं गद्यपद्यै
र्धरत हृदि बुधेन्द्राः साधु चम्पूप्रबन्धम् ॥

—पंचम तरंग का उपान्तिम पद्य ।

६६—वेंकटेश चम्पू[1] :—

तंजोर निवासी धर्मराज की इस कृति में तिरुपति के अधिष्ठातृदेवता वेंकटेश की पौराणिक कथा को आधार बनाकर उनकी महत्ता वर्णित की है। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है ।[2] काव्य के लक्षणों के अनुसार इसमें आरंभ में मंगलाचरण, सज्जन स्तुति, खलनिन्दा आदि तथा अन्त में भरत-वाक्य है ।

धर्मराज प्रतिभासम्पन्न एवं प्रकृत कवि ज्ञात होते हैं। इनकी वाणी में मर्म को गुदगुदाने वाली क्षमता है । इनकी सूक्तियों में व्यंग्य की तीखी चोट है—

दोषाकरो भवतु वेंकटनाथचम्पूः सन्तस्तथापि शिरसा परिपालयन्तु ।
दोषाकरस्तु लभते निजमूर्धिन शम्भोः सर्वज्ञता न किमसौ सकलोपवन्द्या ।
वाणीह रञ्जयति मे रसिकानतीव सर्वान्खलानपि तथापि न चित्रमेतत् ।
ये निन्दितुं च तरुणीमवलोकयन्ति तानप्यलं झटिति सा हि वशीकरोति ॥

इसके गद्यभाग में भी कादम्बरी और दशकुमार चरित की भांति अनुरंजकता है । वासवदत्ता की श्लिष्टता इसमें नहीं है—

"अस्ति समस्तदुरितपुञ्जभंजनविरुदशीकरनिकरनिरन्तरतुन्दिलमन्थरविहृतिसदम्भगन्धवहडिम्भसंचारमात्रपवित्रीकृतदिगन्तरा······ किं बहुना, अनुपमत्रैभववैखरीसुवर्णमुखरी··· ॥"

भरत वाक्य में सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना है—

पर्जन्यः परमादरेण जगतीसंजीवनं जीवनं
काले सम्प्रददातु सा च धरणी सस्यैः समृद्धा त्वियम् ।
राजानो निखिला भवन्तु सुतरां धर्मे रताः ब्राह्मणा
भूयासुः श्रुतिसम्पदः सततषट्तन्त्रा स्वन्त्राः परम् ॥[3]

---

१. तंजोर कैट० ४१५८ । अप्रकाशित ।

२. हिन्दुत्व-पृष्ठ ६३४ ।

३. तुलनीय-शाकुन्तलम् ७।३४, ३५ ।

६७—भैष्मी परिणय चम्पू[1] :—

विश्वामित्र कुलोत्पन्न लक्ष्मीधर के पुत्र रत्नखेट श्री निवासमखिन् की यह रचना अपूर्ण उपलब्ध है। इनकी उपाधि दन्तिद्योतिदिवाप्रदीप, षड्भाषाचतुर और अद्वैतविद्यागुरु आदि थी। अपने परिचय में इन्होंने कहा है—

सा विद्या प्रथमं यमद्भुतगुणं वव्रे स्वयं भारती
षड्भाषाचतुरश्चकास्ति भुवने विख्यातकीर्तिः कृती।
दन्तिद्योतिदिवाप्रदीपविरुदो यो द्वैतविद्यागुरु-
र्विश्वामित्रकुलाम्बुधेर्हिमकरो लक्ष्मीधरस्यात्मजः॥
स्वायत्तीकृतवेदतन्त्रनिचयो यः साग्निचिद्विश्वजिद्
याजी तेन हि रत्नखेटमखिना सेयं कृतिस्तन्यते।

इन उपाधियों से ऐसा प्रतीत होता है कि राजचूडामणि दीक्षित के पिता श्री निवास यही हैं। यदि यह वे ही श्रीनिवास हों तो इनका समय भी निश्चित रूप से सत्रहवीं शताब्दी का मध्योत्तर भाग होगा।

गद्य और पद्य दोनों भागों में यमक की छटा दिखाई पड़ती है—

ध्वनयध्वन्यधिकं चमत्कृतियुता यस्याद्भुताः सूक्तयः
सारस्येन सुधां सुधां विदधिरे तां शर्करां शर्कराम्॥

सा विद्या—

"अस्ति खलु—प्रशस्तशोभानन्दितजननयनतारका द्वारका नाम पुरी"।

जैसे वाक्य विन्यास छोटे-छोटे हैं। अर्थान्तरन्यास का एक उदाहरण देखिये—

"किं च मन्मथाशां लोके को वा व्यावर्तयितुं शक्तः। तथा हि—मृगा अपि सदारामानुषक्ताः पक्षिणोपि सुन्दरीसक्ता गजा अपि कान्तारागानुसारिणो भृंगा अपि तलांगीकृतप्रणयाः।"

इसमें भागवत के आधार पर कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह वर्णित है।

६८ बाणासुर विजय चम्पू[2] :—

सुरसिद्धगिरि नगर निवासी श्रीनिवासाचार्य के पुत्र वेंकट कवि या वेंकटार्य की इस रचना में ६ उल्लास हैं। कवि ने अपना परिचय निम्नलिखित रूप में दिया है—

"इति श्रीमद्वाधुलकुलकलशपाथोनिधिराकासुधाकरसर्वतन्त्रस्वतन्त्रोभय-वेदान्ताचार्यवरदगुरुवरकरुणाकटाक्षलब्धश्रीभाष्यार्णवतात्पर्यतदनुग्रहग्राहितपाणि-

---

१. डी० सी० मद्रास १२३३३। अप्रकाशित।
२. डी० सी० मद्रास १२३१९। अप्रकाशित।

नीयोदयनीयजैमिनीयादिसम्प्रदायेन श्रीमत्कन्दालकुलतिलकचतुस्तन्त्रदिवाप्रदीप-विरुदांकश्रीश्रीनिवासार्यतनयेन सहजविनयेन सुरसिद्धगिरिवास्तव्येन नव्य-दिव्यगद्यभव्यसाहितीसम्प्रदायपारदृश्वना वेंकटार्येण कलिते बाणासुरविजयाह्वये षष्ठोल्लासः।"

कवि ने वेंकटेश, कण्ठीरव, वरदाचार्य, देशिक मणि आदि गुरुजनों कीआरंभ में स्तुति की है। तंजोर के घनश्याम कवि की कण्ठीरव, कविकुंजर आदि उपाधि थी। उनका समय अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वभाग माना जाता है अतः इस कवि का समय भी सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से अट्ठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है। इनके पिता श्रीनिवासार्य का समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है।[1]

इसमें श्रीमद्भागवत पर आधारित उषा-अनिरुद्ध का प्रणय परिणय वर्णित है। मंगलाचरण के दो श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं—

श्रीलक्ष्मीकान्तनाभीकमलमधुझरीलोललोलम्बमाला
झंकारस्सम्पदोघं दिशतु विधिचतुर्मुख्युदीर्णागमानाम्।
तादात्म्यं ख्यापयन् यस्स्वरनिकरमयः पादपद्मानताना-
मिन्द्रेशानादिदेवप्रवरपरिषदां कामितार्थामरद्रुः ॥ १ ॥
अत्युत्साहनटन्महातटजटाजूटाटवीसंभ्रमाद्
गंगा तुंगतरंगसंगरपटुः प्रौढोक्तिकृद्वैभवा।
श्रीभर्तुः कुहनाहयस्य नितरां लोकत्रयोज्जीवनी
ह्येषा दोषविनाशिनी विजयतामास्माकजिह्वांचले ॥ २ ॥

६६—तत्त्वगुणादर्श[2] :—

इस चम्पू काव्य के प्रणेता श्रीअण्णयार्य, श्रीशैलपरिवार के अण्णयार्य के पौत्र एवं श्रीनिवास ताताचार्य के पुत्र थे। श्रीनिवासाचार्य के भाई एवं सम्राट वेंकट द्वितीय के सभा-कवि थे। अतः इनका समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम एवं अट्ठारहवीं का पूर्व भाग है।

इस चम्पू काव्य का आदर्श वेंकटाध्वरि का विश्वगुणादर्श चम्पू है। उसी के सदृश कथोपकथन शैली में वैष्णव और शैव विचारधारा को अभिव्यक्ति दी गई है। कवि ने चम्पू शैली अपनाने का निम्नलिखित कारण दिया है—

१. द्रष्टव्य-हिन्दुत्व—पृष्ठ ६६२।

२. डी० सी० मद्रास १२२९५ या (डी० सी० २१, ८२२३)। अप्रकाशित।

लोके श्लोकाननेकान् विदधति कृतिनः श्रीकरास्तोकपाका-
नेके गद्यानि हृद्यान्यतिमधुरपदास्वाद्यपद्यानि चान्ये ।
पार्श्वाभिव्यक्तमुक्ताफलकलनकलत्पद्मरागोज्ज्वलस्रग्-
बन्धच्छायानुबद्धं रचयति कविराडेष चम्पूप्रबन्धम् ॥ ४ ॥

रचना का उद्देश्य है—

तत्त्वार्थनिर्धारणबुद्धबुद्धी मत्वा स्वमत्या निखिलं च शास्त्रम् ।
मोदान्मिथश्चक्रतुरप्रमादं वादं मुदा शाम्भववैष्णवौ द्वौ ॥ ५ ॥

विश्वगुणादर्श के सदृश ही इसमें दो पात्र हैं-जय(शैव) और विजय (वैष्णव)। दोनों के दृष्टिकोण का अन्तर कवि ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है—

शाम्भवस्तमसाबुद्धेः स्तम्भनादतथात्वदृक् ।
वैष्णवस्त्वभवद् भूष्णुः सत्त्वतस्तत्त्ववित्तमः ॥ ६ ॥

कथा के आरंभ में भूमिका दी गई है और तत्पश्चात् जय-विजय का संवाद ।

"ततः कदाचन मुदा समुपजाते प्रभाते विरचितस्नानः कृतसन्ध्यावन्दनाद्यनुष्ठानः पुरस्कृतश्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिप्रमाणानुसन्धानः परमपुरुषं भगवन्तमरविन्दनयनमवन्दत स्वसमयनियतनियमनिष्णातः श्रीवैष्णवः ।"

रचना में तत्त्वार्थ निरूपण और कवित्व चमत्कार प्रदर्शन की ओर अधिक ध्यान दिया गया है ।

७०—धर्मविजय चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता नल्ला दीक्षित, रामभद्रदीक्षित के शिष्य एवं उन्हीं के परिवार से सम्बन्धित हैं । रामभद्र का समय सत्रहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है । कवि ने आधुनिक भोज एवं तंजोर के शासक शाहजी का जीवन-वृत्त इस चम्पू काव्य में प्रस्तुत किया है । शाहजी का समय १६८४ ई० से १७-१० ई० तक इतिहास सिद्ध है अतः कवि का भी यही समय है । गंगाधर की भोसल वंशावली और शेषाचलपति के ६ सर्गीय काव्य कोशलभोसलीयम् में शाहजी का चरित वर्णित है । लक्ष्मण कृत शाहराज सभासरोवर्णिनी तथा श्रीनिवास कृत शाहराजाष्टपदी, शाहजी के गौरव वर्णन से ही सम्बद्ध हैं ।

इस चम्पू काव्य में चार स्तबक हैं । कवि ने भोंसल वंश को राम से सम्बन्धित बताया है अतः काव्य के आरंभ में राम की ही स्तुति की गई है :—

विबुधकुलसमृद्धिः सुस्थिरा येन क्लृप्ता
प्रणमदभयदाने यस्य दीक्षा प्रतीता ।

---

१. तंजोर कैट० ४२३१ । अप्रकाशित ।

जनकनृपतिकन्याधन्यपार्श्वः स देवः
सहजिनरपतीन्दोः श्रेयसे भूयसेस्तु ॥ १ ॥

शाहजी के वर्णन से उनका चरित आरंभ होता है—

विश्वख्यातैकराजामितसुकृतपरीपाकभूतो नुतश्रीः
कौशल्यायामिवाभूद् रघुकुलतिलको योत्र दीपाम्बिकायाम् ।
स श्रीमद्भोसलाख्यामलकुलजलधेरिन्दुरिन्धानतेजः
सान्द्रः शाहावनीन्द्रो जगति विजयतां मूर्तिमान्राजधर्मः ॥ २ ॥

प्रथम स्तबक के अन्त तक कवि ने जिस अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन का आश्रय लिया है उसका उपसंहार द्रष्टव्य है—

"किं बहुना तस्य किल भोसलकुलकलशसिन्धुकुमुदबन्धोरपरिमितान् अखिलजगत्प्रतीतान् सकलजनानन्दनचरणान् सद्गुणगणान् वर्णयितुमलब्धवर्णः सहस्रमुखोपि वैदुष्यशालिप्रमुखो विशेषस्तपोविशेषेण विमुक्तसंख्यामुखानि विगतेयत्तामपि विद्वत्तामवाप्तुकामो नूनं पवनाशन एव रसातलगर्तैवर्तत ।"

सायं मुहुः सुमनसामुपसेवनीयो
हृद्यैः करैः कुवलयस्य विकासकारी ।
सर्वज्ञमौलिमणिरत्न समाः सहस्रं,
सन्मण्डलो जयतु शाहमहीमहेन्दुः ॥

पद्मनाभ मिश्र कृत वीरभद्र चम्पू के तथा मित्र मिश्र कृत आनन्दकन्द चम्पू के वीरसिंह देव वर्णन से इसकी तुलना की जा सकती है। दरबारी कवियों की वर्णन पद्धति का इनमें प्रचुर दर्शन होता है। उपसंहार वाक्य से ज्ञात होता है कि कवि का दूसरा नाम "भूमिनाद" भी था—

"इत्यभिनवभोजराजशाहमहीमहेन्द्रसुन्दरमुखचन्द्रसंदर्शनमहिमसान्द्रीकृत-वाग्विलासस्य रामभद्राध्वरिवरप्रियशिष्यस्य तदीयवंशजन्मनो भूमिनाद-विद्वत्कवेः कृतौ धर्मविजये चतुर्थस्तबकः ।"

७१—भोसल वंशावली चम्पू[१] :—

यह रचना शरभोजी (१७११ ई०-१७२८ ई०) के राजकवि (नैध्रुव) वेंकटेश की है। इसमें भोसल वंश का संक्षिप्त परिचय देकर मुख्यरूप से शरभोजी का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है। इसमें कुल एक ही आश्वास है। इसका वर्णन आरम्भ निम्नलिखित पद से हुआ है—

१. तंजोर कैट० ४२४० । अप्रकाशित ।

वाणीपादयुगं प्रणम्य कलये चम्पूप्रबन्धं कविः
श्लाघ्यं श्रीशरभोजिराजचरितव्याख्यानमर्थोज्ज्वलम् ।
कंदर्पप्रमदाकराब्जकलशीमाध्वीकसेकस्फुर-
न्मृद्वीकाफलमाधुरीसहचरी यत्रास्ति वाग्वैखरी ॥ ५ ॥

उपसंहार में अन्य कवियों की भाँति कवि ने अपना परिचय नहीं दिया है—

"इति भोसलवंशावलिचम्पुप्रबन्धे श्रीशरभोजिराजचरितवर्णनं नाम प्रथमाश्वासः समाप्तः ।"

७२—श्रीनिवास चम्पू[1] :—

यह रचना वेंकटाध्वरि के नाम से प्रकाशित है। श्री कृष्णमाचारी ने इसे वेंकटेशकवि की रचना माना है।[2] उपसंहार या आरम्भ में कवि ने स्वयं अपना परिचय नहीं दिया है जिससे निर्णय किया जा सके कि यह किस वेंकट कवि की रचना है। अन्तिम श्लोक में कवि ने कहा है—

कण्ठे कण्ठीरवाख्यां प्रतिकलमधुरां बिभ्रतः सूरिचूडा-
रत्नस्यान्ते वसन् यः कलयति कवितां गद्यपद्यावबद्धाम् ।
तस्य श्रीश्रीनिवासप्रभुवररचिते वेंकटेशस्य काव्ये
पर्याप्तः श्लेषसारे कविमशकशिशोः पञ्चमोयं विलासः ॥उ ५/२४॥

इति श्रीमन्निखिलश्लिष्टकाव्यरचनाधौरेयकविचूडामण्डितमुकुटललामावलीनीराजितचरणयुगलश्रीमद्वेंकटाध्वरिविरचितायां श्रीनिवासविलासाभिधाशालिन्यां चम्प्वां उत्तरविलासे पंचमोऽयम् उल्लासः ॥ ५ ॥

वेंकटाध्वरि ने वरदाम्युदय में जिस प्रकार उपसंहार लिखा है उससे यह सर्वथा भिन्न है,[3] अतः संभव है यह अन्य किसी वेंकट कवि की रचना हो।

इस चम्पू काव्य के दो भाग हैं पूर्वविलास और उत्तरविलास। पूर्वविलास में पाँच उच्छ्वास हैं और उत्तरविलास में पाँच उल्लास।

एक ही चम्पू काव्य के दो विभागों का विभाजन भिन्न भिन्न रूप में हुआ है। पूर्वभाग में कथावस्तु का समावेश एवं विकास हुआ है। अतः कवि ने उसके परिच्छेदों का नाम उच्छ्वास रखा है किन्तु उत्तर भाग में केवल वाग्विलास का चमत्कार दिखाया गया है अतः उसके परिच्छेदों को उल्लास मात्र कहा गया है। चम्पू काव्यों के वैशिष्ट्य प्रदर्शन में एक कवि के दृष्टिकोण की झलक इससे प्राप्त होती है।

१. गोपाल नारायण कं० बम्बई से प्रकाशित।
२. द्रष्टव्य—कृष्णमाचारी का सं० सा० का इतिहास-पृष्ठ ५२१।
३. द्रष्टव्य—(६०) वरदाम्युदय चम्पू में उद्धृत उपसंहार अंश।

पूर्वभाग में पांच उच्छ्वास हैं—प्रथम में राजा श्रीनिवास का अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन है—

धनुर्विद्यावतां श्रेयान् ज्योतिषां योंशुमानिव ।
यशसा यस्य भाति स्म द्वितारानाथवज्जगत् ॥ पृ० ७ ॥

सुरवरदः सुरवरदः सकलः सकलोरुबली बली सततम् ।
ललितप्रमदो ललितप्रमदः सरसश्च सरसश्च ॥ पृ० ९ ॥

शेषाचल के वर्णन में कहीं तो—

सुहितमिलिन्दा बहुलमरन्दा परिमलपुंजा कलितकरंजा ।
इह नृपवल्लीव्रततिमतल्ली निबिडितपत्रा कुसुमविचित्रा ॥ पृ० ११ ॥

प्रकृति का सीधा सादा रूप प्रस्तुत किया गया है। कहीं श्लेष के चमत्कार प्रदर्शन में—

इतः पुरस्ताद्भारतसमर इव धनञ्जयोल्लासो दृश्यते । तथाहि विपत्तीभूय शकुनिर्नश्यति द्रोणोपि मृतितपत्त्रभीष्मोयमुल्कोपि ग्रस्तः । अत्रात्र पलायितं शल्येन । कर्णोपि दग्धः । एकाकिना धार्त्तराष्ट्रेण उत्पतितम् ।

अत्रात्र शरासनभङ्गः शिलीमुखाश्च्युतलक्ष्याः सञ्चरन्ति सर्व एते भूभृतं खेदयन्ति ।

दावाग्नि को महाभारत के युद्ध सदृश चित्रित किया गया है। कासार, कुहना-वराह, चोलराज की शापग्रस्तता आदि प्रथम उच्छ्वास में ही हैं।

द्वितीय में नारद का आगमन, उनके द्वारा आनन्द कानन, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, गोदावरी, करवीपुर, रामसेतु आदि का संक्षिप्त वर्णन, कासार के समीप पद्मावती का दर्शन, राजा का मृगया एवं पद्मावती का सखियों के साथ वनविहार, श्रीनिवास और पद्मावती का एक दूसरे के प्रति आकर्षण वर्णित है। पद्मावती के वन से प्रस्थान के उपरान्त श्रीनिवास के लौटने पर उनकी मनोदशा का चित्रण देखिये—

"भगवानपि तत्कटाक्षार्धचन्द्रव्रणितहृदयः किंचिद्दूयमानेन मनसा वातोज्जीविनीमिव पश्चात्तदेवोपगन्तुमिच्छन्तीं चेतोवृत्तिं बलादाकृष्य[1] ।" पृ० ४५ ।

तृतीय उच्छ्वास में श्रीनिवास और पद्मावती का विरह वर्णन, चन्द्र, वसन्त, मरुत आदि का उपालंभ, श्रीनिवास द्वारा बकुला को नारायणपुर भेजना वर्णित है।

चतुर्थ में बकुला-नारद की भेंट, नारद का उपदेश, बकुला का आकाश-भूपति के पास जाकर श्रीनिवास के लिये पद्मावती की याचना वर्णित है। यहाँ बकुला ने पद्मावती एवं श्रीनिवास का जो परिचय दिया है वह द्रष्टव्य है—

---

१. तुलनीय—कालिदास के "गच्छति पुरः शरीरं धावति···" शाकुन्तलम् १।३६। से ॥.

"तदनु चित्रभानुप्रवेशनिर्गमपूता सीता प्राप्तराज्यं राममवादीत्। आर्यपुत्र मायासीतेयमायासिता दुरात्मना रावणहतकेन तदियं भार्यापदे स्थापनीयेति रामस्तु तदाकर्ण्य, प्रिये जानकि एकपत्नीव्रतधरोहमिदानीं कृतकृष्णावतार-स्तारेशमुखीमेनां मेनांगजातामिव शिवो भूभृत्सुतामंगीकरोमीत्यभाणीत्। राजन् सैवेयं पद्मावती स एव श्रीनिवासः। तयोरुचित एव सम्बन्धः कोत्र संदेहः किं विलम्बेन लिख्यतां लग्नपत्रिकेति।" पृष्ठ ८९ ॥

पद्मावती को लेकर शुक राजा श्रीनिवास के पास आया और दोनों का मिलन हो गया—

प्रतिपाद्य दुहितरं स्वां गंगां भर्त्रे स्रवन्तीनाम्।
जगृहे तदीयकन्यां लक्ष्मीं कृष्णः कलत्रार्थी ॥ पृष्ठ ८९ ॥

पंचम उच्छ्वास में श्रीनिवास द्वारा विधि विधान के साथ पद्मावती का पाणिग्रहण वर्णित है।

उत्तर विलास के प्रथम उल्लास में राजशेखर के राज्य से आये हुए दो कवियों के साथ वाग्विलास वर्णित है। उदाहरण के लिए देखिये—

"द्वितीयः—सदाश्लेषविचक्षणो भवानिति द्रष्टुमुत्कण्ठितं नश्चेतः। तच्छ्रुत्वा साहित्यसारमंजूषा कमलिनी प्राह। न केवलं वचसामेव किं तु वनितामपि।।" पृष्ठ १०६।

समस्यापूर्ति सहित श्रीनिवास की प्रशस्ति इसमें प्रस्तुत की गई हैं। प्रसन्न श्री निवास ने—

अरिरूपं चक्रं श्रीरधिकमलस्था पतग्यं तार्क्ष्यः।
नागो विषमहितोयं दययालं श्रीनिवासभूप तव ॥ पृ० १०९ ॥

यह अन्तिम श्लोक सुनकर कवियों का सम्मान किया और—

विना सुरमणीं देवः सर्वाण्याभरणान्यदात्।
तथा पद्मावती ताभ्यां ददौ स्वं नायकं विना ॥ पृष्ठ १०९ ॥

द्वितीय उल्लास में अनेक कवियों—हंस, शुक, नीलकंठ, वेलावेदक आदि की सूक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं। कमलिनी द्वारा प्रस्तुत समस्या की पूर्ति नीलकंठ कवि ने इस प्रकार की है—

वर्षालंकरणं तनोति नितरां यज्जीवनं प्राणिनां
सूर्यानन्दकरं विसारि भुवने यद्धीवरोल्लासकम्।
भान्युच्चैर्यशसां कदम्बकमिदं श्रीश्रीनिवासप्रभो-
र्जम्बूवज्जलबिन्दुवज्जलजवज्जम्बालवज्जालवत् ॥ पृष्ठ १११/११२ ॥

तृतीय उल्लास में पद्मावती, कमलिनी, केतकी, मालती का वाणी विलास वर्णित

है। संवाद रूप में एक श्लोक की पूर्ति को कवि ने मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है। श्रीनिवास के आने पर देवी पद्मावती पूछती है—

देवी—"कस्त्वं

श्रीनिवासः—चक्री

देवी—(साश्चर्यं) नरेन्द्रालयभुवि ?

श्रीनिवासः—ललने श्रीनिवासः

देवी—(समन्दहासं) सुमन्त्रिश्लाघ्यायाम्

श्रीनिवासः—हास्मि कृष्णः शशिमुखि

देवी—(सावहेलम्) कमये, तार्क्ष्यराजावृतायाम्।

श्रीनिवासः—मद्भोगे देहि दृष्टिम्

देवी—(सरोषम्) स मम पतिपदाघातभग्नः

श्रीनिवासः—स को वा

देवी—कंसारिः

श्रीनिवासः—सोऽहमस्मि

ततश्च। इत्युदितवति-हरौ राजहासोत्पलाक्षी[1] ॥" पृष्ठ ११५-११६ ॥

चतुर्थ उल्लास में परादेवी, वराह, पद्मावती और श्रीनिवास का संवाद प्रस्तुत है। पंचम उल्लास में तोण्डिमान और कुमार को राज्य का आधा आधा भाग देकर श्रीनिवास का पद्मावती के साथ भोगीन्द्राचल (शेषाचल) निवास के लिए जाना वर्णित है।

सम्पूर्ण चम्पू काव्य में श्लेष और यमक की छटा दिखाई पड़ती है। श्रीनिवास ही वेंकटेश हैं, यह धारणा कवि के सम्मुख सदा प्रस्तुत रही है। परिणयकाव्यों की सभी विशेषतायें इसमें उपलब्ध हैं। उत्तानश्रृङ्गार के चरमरूप को प्रस्तुत करने की अपेक्षा कवि ने वाक्सौन्दर्य एवं सूक्ष्म तथा कल्पना की भव्य उड़ान तक ही अपने को सीमित रखा है। रूप चित्रण में भी कवि ने श्लेष का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त उपमान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है जैसे—"नारद-सदृशः केशपाशः।[2]" ऋतुवर्णन में समासबहुला गौडी रीति प्रयुक्त हुई है।[3] नारद

---

१. कस्त्वं चक्री नरेन्द्रालयभुवि ललने श्रीनिवासः सुमन्त्रि-
श्लाघ्यायां हास्मि कृष्णः शशिमुखि कमये तार्क्ष्यराजावृतायाम्।
मद्भोगे देहि दृष्टिं स मम पतिपदाघातभग्नः स को वा
कंसारिः -सोऽहमस्मीत्युदितवति हरौ राजहासोत्पलाक्षी ॥

२. पृ०—२९।

३ पृ०—३६।

का उपदेश भी राजनीति के अनुकूल है—

"तोषहेतुर्धरणी न तरुणी महत्त्वं दर्पेण न कन्दर्पेण। अंगीकुरु सैन्यं न दैन्यं... ।" (पृष्ठ ७६)

वारवनिताओं का भी यथार्थ वर्णन हुआ है (पृ० ८२)। यमक के कुछ उदाहरण देखिये—

"पालितार्जुनोपि भग्नार्जुनश्चासौ"। पृष्ठ ८६,

कमला कमला यस्य तार्क्ष्यस्तार्क्ष्यो धरापते।
नन्दिनी नन्दिनी यस्य स ते राजन् वरो वरः ॥ पृष्ठ ८५ ॥

विविध प्रकार के चक्रबन्ध, आतपत्रबन्ध आदि छन्दबन्ध भी दिखाई पड़ते हैं (पृष्ठ २४ और ११८)। छन्दों के आधार पर हरिणीवृत्तं, करिणीवृत्तं, तरुणीवृत्तं, कुसुमविचित्रा आदि भी श्लेष के उपकरण बने हैं। काव्यकौशल का बहुविध प्रदर्शन इस चम्पू काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

७३—दत्तात्रेय चम्पू[1] :—

आत्रेय गोत्रोत्पन्न वीरराघव और कुप्पमा के पुत्र एवं मीनाक्ष्यार्य के शिष्य दत्तात्रेय द्वारा रचित इस चम्पू काव्य में विष्णु के अवतार दत्तात्रेय का चरित्र वर्णित है। दत्तात्रेय का चरित वायुपुराण अ० ६०, भविष्यपुराण उ० ५१, मार्कण्डेय पुराण अ० १६ एवं ब्रह्मपुराण अ० ८ में वर्णित है। गणेश वन्दना से काव्य का आरंभ हुआ है।

भजे गजाननं चित्ते प्रत्यूहविनिवृत्तये।
देवासुरमृधे स्कन्दो यमंचति सतीसुतम् ॥ १/१ ॥
वेतण्डाननमाद्योक्तिनलिनीमानसौकसम्।
प्रत्यूह-शैल-भिदुरशुण्डादण्डमुपास्महे ॥ २ ॥
पीठे पाणितले गले कुचयुगे पादद्वये मानसे
दन्तालौ कचसीम्नि निर्भरकृपापूर्णे कटाक्षाङ्कुरे।
भक्ताभीष्टफलाप्तये नवनिधीन्धत्तेनिशं या क्रमात्
प्रेम्णा सा कमलालया कमलया श्रेयांसि भूयांसि नः ॥ ३ ॥
अज्ञातशास्त्रतत्त्वार्थान् मूढान् पंडितमानिनः।
दुष्कवीन् न स्मराम्येष ग्रन्थादौ मंगलाप्तये ॥ १/४ ॥
दत्तात्रेयोदयकथामधिकृत्य गरीयसीम्।
दत्तात्रेयकविश्चक्रे चम्पूकाव्यमनुत्तमम् ॥ १/५ ॥

इस चम्पू काव्य में तीन उल्लास हैं। गद्य भाग सरल, एवं उपमादि अलंकारों से कहीं-कहीं जडित है—

---

१. डी०सी०मद्रास १२३०० या डी० सी० २१,८६२५। अप्रकाशित।

"अस्ति किल निखिलमुनिकुलनिरन्तरनिवासरुचिरे परमपावनपयःपूरभरितगोदावरीसरित्परिसरे....."अतिमनोहरमाश्रमं सुधर्माश्रमं नाम। तदधिवसति तपोनिधिर्विश्वसर्गोत्सुकहिरण्यगर्भमानसपयःपारावारसुधाकरः छाययेव चित्रभानुसेवाजागरूकया जायया सह भगवान् ब्रह्मर्षिरत्रिर्नाम ॥"

निजधर्मरतस्तत्र सत्यात्रिरनसूयया ।
तपस्तेजोज्वलन्मूर्तिर्न्यवसत् सुखितश्चिरम् ॥
तनयसंभवलालससूचकं वचनमात्मवधूसमुदीरितम् ।
झटिति सोपि निशम्य कुतूहलात्तमधिगन्तुमियेष मनोरथम् ॥

रचना सामान्य श्रेणी की है। "पयःपारावार" का कवि बहुत प्रेमी ज्ञात होता है—

"इति श्रीदत्तात्रेयगोत्रपयःपारावारसुधाकरवीरराघवविपश्चिद्वरतनयदत्तात्रेयगुरुचरणारविन्दभृङ्गायमाणान्तरङ्गदत्तात्रेयकविविरचिते श्रीमद्दत्तात्रेयचम्पूकाव्ये तृतीयोल्लासः ॥"

७४—मद्रकन्या परिणय चम्पू[1] :—

उदय परिवार के दत्तात्रेय के पुत्र गंगाधर कवि की यह रचना मद्र देश के राजा बृहत्सेन की कन्या लक्ष्मणा और कृष्ण की परिणय कथा का वर्णन करती है। इसका आधार श्रीमद्भागवत है। गंगाधर की दो और कृतियां हैं—शिवचरित्रचम्पू एवं महानाटकसुधानिधि। इसका आरम्भ—

कल्याणमव्याहतमातनोतु स ध्यानलीलाकृदभूद् गजास्यः।
कर्णानिलेनापसृतेंऽशुकान्ते यो वल्लभायाः स्मितपल्लवेन ॥

इस मंगलाचरण से हुआ है।

कथा का आरम्भ सरल एवं पद्यबद्ध वर्णन से हुआ है—

श्रीमान् बृहत्सेन इति प्रतीतः मद्राधिपूर्भद्रगुणैकतानः।
आस्ते किलाद्याखिलदिग्वधूटीशाटीभवत्कीर्तिरुदारचेताः ॥

गद्य में कादम्बरी की वर्णन शैली का दर्शन हो जाता है—

"हैमवतीवाचलसार्वभौमस्य वैदेहीव विदेहवसुमतीजनपतेः शकुन्तलेव गाधिनन्दनस्य कादम्बरीव गान्धर्वधराकमितुः चित्रसेनस्य शमनस्वसेव कलिन्दभूधरस्य समजनिष्ट।"

लक्ष्मणा, श्रीकृष्ण से पहले से ही स्नेह करती थी। शुक के द्वारा कृष्ण स्नेह की बातें सुनकर वह और भी उनमें आसक्त हो जाती है—

---

१. डी०सी०मद्रास १२३३४ या (डी०सी० २१,८२६५)। अप्रकाशित।

शुकनिगदितवाचं राजकन्या निशम्य
स्थपुटितहृदया सा मोदखेदादिभावैः ।
करनिहितकपोला प्रांशुनिश्वासधारो-
द्गमनचलदुरोजा नैव किंचिज्जगाद ॥

मद्रेश ने स्वयंवर की आयोजना की और "नानादेशाधिनाथानयनपटुमतीन्-मन्त्रिवर्यान्" मन्त्रियों को भेजा। स्वयंवर में कृष्ण और लक्ष्मणा का विवाह होता है।

इस चम्पू काव्य में चार उल्लास हैं और कथा का आधार भागवतपुराण[1] है। कवि का समय सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग है।

७५—भारतचम्पू तिलक[2] :—

इस चम्पू तिलक के रचयिता शनगर निवासी लक्ष्मण सूरि हैं। इनके माता-पिता गंगाम्बिका एवं गंगाधर हैं। कवि ने उपसंहार में अपना परिचय दिया है—

इत्थं लक्ष्मणसूरिणा शनगरग्रामावतंसायित-
श्रीगंगाधरधीरसिन्धुविधुना गंगाम्बिकासूनुना ।
श्राव्ये भारतचम्पुकाव्यतिलके भव्ये प्रणीते मह-
स्याश्वासोभिनवार्थशब्दघटनासार्थश्चतुर्थोगमत् ॥

भोज के चम्पू रामायण के युद्धकाण्ड के रचयिता ये ही लक्ष्मण कवि हैं। वहाँ भी इन्होंने कहा है—

साहित्यादिकलावता शनगरग्रामावतंसायित-
श्रीगंगाधरधीरसिन्धुविधुना गंगाम्बिकासूनुना ।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोपि जीयाच्चिरम् ॥ यु० ११०॥

लक्ष्मण एक कवि परिवार से सम्बन्धित हैं। इनके पितामह दत्तात्रेय, पिता गंगाधर दोनों ने ही चम्पू काव्य लिखे हैं। परिणय काव्यों का आरम्भ १६वीं शताब्दी के मध्य से होता है। गंगाधर ने मद्रकन्या परिणय लिखा है अतः बहुत संभव है इनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध हो, यद्यपि अभी तक इनका समय अनिर्णीत है।

भारत चम्पू, महाभारत की केवल पाण्डवों से सम्बन्धित मुख्य घटनाओं का ही वर्णन करता है। पाण्डवों के जन्म की कथा से इसका आरंभ होता है

१. द्रष्टव्य १०।५८।
२. डी०सी०मद्रास. १२३३२ या (डी०सी० २१,८२६३)। अप्रकाशित।

और युधिष्ठिर के सुखपूर्वक राज्य करने के वर्णन से समाप्त। कवि की यह आरम्भिक रचना है क्योंकि युद्धकाण्ड में भोज के समकक्ष कवि की जो निपुणता दिखाई पड़ती है वह इसमें उपलब्ध नहीं होती है। प्रौढ़ता की दृष्टि से फिर भी यह अनेक चम्पूकाव्यों से श्रेष्ठ है। कुन्ती और पाण्डु का संवाद देखिये—

"...बिभर्ति सपुत्रनिर्भरं गर्भमप्रकृतपुण्यस्य मे कुतस्तथाविधं भागधेयं किमनेन तपोधनवते न सत्यपत्ये न फलमखिलमेतदहन्तु, तपस्विशापोपहतस्तदधुना स्वधाभुजामन्तःसन्तापहरणाय महीयसो द्विजन्मनः सुजन्मानं तनयं लभस्वेति वदति पृथ्वीपतौ पृथा प्रत्युवाच—

परानपेक्षा च धवानुवर्तनं पतिव्रताचार इति प्रतीयते।
विरुद्धमेवात्र भवान् ब्रवीति मां कथं त्वदन्यं कलये पृथापतिम् ॥ १ ॥
यदि त्वमेवं मनुषे प्रजाक्षये शृणु प्रियं किंचिदगर्हितं सताम्।
सपर्यया मह्यमतिप्रसन्नधीरपत्यदं मन्त्रमदात्तपोनिधिः ॥ २ ॥"

७६—चम्पूरामायण युद्धकाण्ड[1] :—

लक्ष्मण कवि ने भोज की स्तुति करते हुए इस युद्धकाण्ड का आरम्भ किया है। भोजकृत पांच काण्डों को एवं युद्धकाण्ड को पढ़ते हुए यह अनुभव नहीं होगा कि यह किसी अन्य कवि की रचना है यदि लक्ष्मण कवि के अपने परिचयात्मक तीन (१, २, ११०) पद्यों को निकाल दिया जाय। सैन्यवर्णन, प्रकृतिवर्णन, युद्ध वर्णन सभी प्रौढ़ता सम्पन्न हैं। लंका से प्रत्यागमन वर्णन (९९ से १०७ गद्य-पद्य सहित) कालिदास के रघुवंश के रामप्रत्यागमन वर्णन के सदृश ही मनोरम है। महेन्द्रपर्वत समीपस्थ वन में वानरों के विचरण का वर्णन देखिये—

सरसपटीरकुञ्जवनसंजवनाभिपतन्
मृगमदगन्धगन्धवहमेदुरितेम्बुनिधिः।
तटनिकटे लुठत्पनसतालरसालफलै-
रुदितमदा विचेरुरुदरंभरयो हरयः ॥ यु० का० ११ ॥

गुप्तचरों से राम के सैन्य का वर्णन सुनकर मन्त्रणागृह में प्रवेश वर्णन देखिये—

"अनन्तरमपरमिव चलितं महाम्भोधिम्, चलितमम्भोधिरोधस्यम्भोधिविलंघनविश्रृङ्खललाघवं राघवानीकमनीकोन्मुखं चारमुखादवधार्य धार्यमाणहृदयातंकः पंकलीनचरण इवैरावणो रावणो परमपरमजानन् जानकीमप्यविमोक्तुकामः कामपरतन्त्रो मन्त्रिभिः समं समाजगाम।" पृष्ठ ३९३ ॥

यमक और उपमा का प्रयोग दर्शनीय है।

---

१. भोज के चम्पू रामायण के साथ प्रकाशित।

७७—कुमार भार्गवीय[1] :—

गणपति के पुत्र भानुदत्त का यह चम्पूकाव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिवपुराण से सम्बन्धित जितने भी चम्पू काव्य लिखे गये हैं उनमें न केवल आकार की दृष्टि से ही वृहत् है अपितु काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी प्रौढ़तम रचना है। इस चम्पू काव्य में बारह उच्छ्वास हैं जिनमें कुमार कार्तिकेय के जन्म से लेकर तारकासुर वध तक की घटना वर्णित है। मुख्य रूप से शिवपुराण[2] का कुमार-खण्ड एवं स्कन्दपुराण का माहेश्वर खण्ड एवं अन्य पुराणों में गौण रूप से वर्णित कुमार जन्म एवं तारकासुर वध का प्रसिद्ध पौराणिक वृत्त इसका मूल स्रोत है।

कवि ने आरंभ में वराह की स्तुति की है—

भूयादेष सतां हिताय भगवान् कोलावतारो हरिः
सिन्धोः क्लेशमपास्य यस्य दशनप्रान्ते नटन्त्या भुवः।
तारा हारति वारिदस्तिलकति स्वर्वाहिनी माल्यति
क्रीडादर्पणति क्षपापतिरहर्देवश्च ताटंकति ॥ १/१ ॥

कथावर्णन के साथ प्रकृति के रमणीय दृश्यों के चित्रण में कवि सिद्धहस्त है—

"—कणितकनककलसकान्तिमनुवहति भगवति विवस्वति मधुमधुर-निस्वने सारसमिथुने समुल्लसति दक्षिणमरुति चानुकूले स्वावासस्थलहेतो-रुत्तमां दिशं भूषयितुं शुभप्रस्थानं कृतवान् भगवान् ॥" प्र० उ० ॥

यात्रा के लिए सारसमिथुन का कलरव और पवन की अनुकूलता शुभ-शकुन हैं। कुमार की युद्धयात्रा का वर्णन दशम उच्छ्वास से आरंभ होता है—

करेण कोदण्डलतां विधृत्य मातुर्नमस्कृत्य पदारविन्दम्।
इति सनाथं वसुधाधिनाथं जेतुं भवानीतनयः प्रतस्थे ॥ १०/१ ॥

भाषा के गुणों में भावानुकूल परिवर्तन की क्षमता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। कहीं अनुप्रास की छटा है कहीं यमक की, कहीं उपमा और उत्प्रेक्षा की माला पिरोई गई है। उदाहरण के लिए देखिये रणसज्जा की त्वरा शब्दों की ध्वनि एवं प्रवाह-शीलता से ही ध्वनित होती है—

"अथ भांकारयन्तु भेरीः प्रताडयन्तु पटहान् तरलीकुर्वन्तु तुरगान् मदयन्तु मतंगान् चमत्कारयन्तु चापवल्लीः शीलयन्तु शरान् श्रयन्तु शक्तीः खेलयन्तु

---

१. इण्डिया आफिस कैट०, ४०४०।४०८ (पृष्ठ १५४०)। अप्रकाशित।
२. रुद्रसंहिता-पार्वती खंड—१ से ५५ अध्याय तक।

खड्गान् दीपयन्तु दहनवानादीत्युभयोः सेनयोः समभूवन् सामन्तानां ध्वनयः॥" १२ उ० ॥

यहाँ "दहनवान्" का प्रयोग विचारणीय है। मशाल जलाने, अग्नि प्रज्वलित करने के अतिरिक्त तोपों पर पलीता लगाने के लिए भी सम्भवतः "दीपयन्तु दहनवान्" का प्रयोग हुआ हो।

विजय से पुलकित कार्तिकेय के गृह लौटने का वर्णन सरल किन्तु मनोरम है—

पुलकांकुरशोभमानमूर्तिः सुरकान्ताकुलगीयमानकीर्तिः।
अरविन्दमरन्दचारुहास्यो बहुलास्यो भगवान् गृहं प्रतस्थे ॥ १२ अ. ॥

कवि की काव्य के प्रति भावना एवं विनम्रता भी द्रष्टव्य है—

भवतनयो बहुधारण कुत्त्रिकौतुकी यावत्।
तावत् कुमारभार्गवि भगवति भवार्चिता यदभूत् ॥
बालो मुहुरलंकारमर्थं विस्मरति व्रजन्।
धीमान् कण्ठे तमादत्ते न तु चित्ते न दुष्यति ॥

७८—उत्तर चम्पू[1] :—

वाल्मीकि रामायण के उतरकाण्ड पर आधारित इस चम्पू काव्य के रचयिता भगवन्त कवि हैं। इन्होंने स्वयं अपना परिचय दिया है—

एकोजिक्षितिपालमुख्यसचिवश्रेष्ठस्य गंगाधरा-
मात्यस्यात्मसमुद्भवेन भगवन्ताख्येन विख्यायते।
प्रोक्तं रामचरित्रमार्यनरसिंहस्य प्रसादादिदं
श्रीमत्त्र्यम्बकवर्यवंशतिलकस्यास्तां चिरं श्रेयसे ॥

इससे स्पष्ट है कि यह एकोजि के मुख्य सचिव गंगाधरामात्य के पुत्र थे। एकोजि का समय १६८७ ई० से १७११ ई० था। अतः इनका समय भी सत्रहवीं शताब्दी का अन्त एवं अठ्ठारहवीं शताब्दी का पूर्व भाग मानना चाहिए। यह नरसिंह के शिष्य थे। इसमें मुख्यतः राम के राज्याभिषेक का वर्णन है। रचना साधारण है—

"ततः द्वास्थोऽपि चतसृभ्यो दिग्भ्यः प्राप्तान् कुम्भसम्भवप्रमुखान् मुनीन् रामाय निवेदयामास। मुनिजनाभ्यागमनसंजातहर्षेण सादरकृतप्रणामेन रामेण कृतातिथ्याः कुशलं पृष्टाश्च।"

---

१. तंजोर कैट०, ६, ४०२८। अप्रकाशित।

७६—विक्रमसेन चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के निर्माता नारायण राय स्वयं मराठा शासन में सचिव रहे हैं। इन्होंने अपना जो परिचय दिया है उससे यह भगवन्त के भाई सिद्ध होते हैं—

"इति श्रीत्र्यम्बकार्यतार्तीयीकाधमर्ण्यपारीणगंगाधरामात्यनारायणरायसचिवविरचितो विक्रमसेनचम्पूप्रबन्धः समाप्तिमगमत् ।"

गंगाधर अमात्य के पुत्र नारायणराय की यह रचना काल्पनिक कथा को आधार बनाकर प्रस्तुत की गई है। इसमें प्रतिष्ठानपुर के राजा विक्रमसेन का चरित वर्णित है। आरंभ में शिव की स्तुति की गई है—

सायं प्रस्तुतचण्डताण्डवचलद्गंगातरङ्गावली-
रिङ्खत्पद्मरजोतिवेलकमिलच्छ्रीभृज्जटामण्डलः ।
नृत्ताटोपविलोककौतुकजुषां वैमानिकानां मनः-
पाथोजातविकासवासरमणिः पायादुमाया पतिः ॥ १ ॥

भगवन्त के उत्तर चम्पू की अपेक्षा इसका गद्यभाग मनोहर, ललित एवं अनुप्रास संच्छन्न है—

"अस्ति खलु निखिलजननयननालीनसमुदयमुखविधायिगुणगणरमणीया मदजलमेदुरगण्डमण्डलीहिण्डमानमधुकरनिकरमधुरझंकारकैतवकृतस्वस्तिभिः मदहस्तिभिः...अध्वरशालाभिश्च विराजमाना नीतिशास्त्रविशदमतिपंडितप्रतिष्ठाभिधाना नगरी राजधान्यासीत् ॥"

नारायण राय बालकवि थे इसका संकेत उन्होंने स्वयं किया है—

विद्वत्कल्पतरोस्त्र्यम्बकविभोः पौत्रेण गंगाधरा-
मात्यस्यात्मभवेन बालकविना नारायणेन स्वयम् ।
अभ्यासाय महाप्रबन्धकरणे सद्वाप्यसद्वा कृतं
श्रीमद्विक्रमसेनराजचरितं नन्दन्तु सर्वे बुधाः ॥

अभ्यास प्रबन्ध होते हुए भी रचना प्रौढ़ है और कवि की उर्वर कल्पनाशक्ति का प्रतीक है। इनका समय भी सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम एवं अट्ठारहवीं का पूर्व भाग है।

८०—श्रीकृष्णविलास चम्पू[2] :—

लक्ष्मी एवं अनन्त नारायण के पुत्र नरसिंह सूरि द्वारा यह चम्पू काव्य विरचित है। यह भी आत्रेय गोत्रोत्पन्न हैं। इसमें सोलह आश्वास हैं जिनमें भागवत की कथा वर्णित है—

---

१. तंजोर कैट० ७, ४१४८। अप्रकाशित।

२. डी० सी० मद्रास १२२२९ या (डी० सी० २१,८१९३)। अप्रकाशित।

"आश्वासो भुवि षोडशोऽपि विदुषां मोदाय जीयाच्चिरम् ।"

इसके १४ आश्वासों तक कलानिधि को कल्लोलनाम्नी टीका है। भागवत की कथा का जैसा वर्णन कालिदास, कर्णपूर, मित्र मिश्र आदि ने किया है उसी प्रकार की इसमें भी वर्णित है। आरम्भ वासुदेव की बन्दना से हुआ है—

आनन्दे चिति सत्यनन्ययुजि च स्वस्मिन्नविद्याकृत-
प्रारम्भादसतो निवृत्तमनसामस्मादबुद्धात्मनाम् ।
एतत्तथ्यमिव स्वसंगततया तन्वन् जगद्यस्स्वरा-
डात्मेवात्मविदां विभाति स सदा वो वासुदेवोऽवतात् ॥

वर्णन विस्तार इसमें अधिक है और भाषा अलंकारों से बोझिल न होकर प्रवाहमयी है—

"अथ तत्र कुत्रचिद्विविक्ते देशे भृशमुद्विग्नमना मुखस्रवदश्रुपरिप्लुताङ्गा युगलं धवलं विलूनचरणं वृषभं च तदुपान्ते वृषलमप्यतिनिशितकृपाणपाणिं कृपाशून्यमपश्यदप्राक्षीच्च स सव्यथं तन्मिथुनम् ॥"

८१—शंकरानन्द चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता गुरु स्वयंभू नाथ राम हैं। इसमें महाभारत के आधार पर किरातार्जुनीय की कथा वर्णित है। इसमें पाँच उच्छ्वास हैं। अन्तिम कुछ पृष्ठ विनष्ट हैं। आरम्भ गणेश वन्दना से हुआ है—

श्रीकण्ठस्नेहसर्वस्वनिधिं लम्बोदरं भजे ।
शिखावतंसशीतांशुलेखाभिज्ञानचीटिकम् ॥ १/१ ॥

कथा का आरंभ कैलाश के मनोरम वर्णन से हुआ है—

"अस्ति समस्तवस्तुभुवनमहिमाहिमालयभुवा सविशेषभूषिताभोगः······ कैलासः सानुमाली ।"

आरुह्य यत्र हरवाहमहोक्षमोहाद्
गण्डोपलं गमनवीथिषु नेतुकामः ।
आस्फालनोत्तरलहस्ततलस्सहास-
मालोक्यते च समममम्बिकया कुमारः ॥

शिव ने विनोद एवं अर्जुन की परीक्षा के लिए माया का आह्वान किया—

तदा विनोदाय भवो भवान्यास्सभाजनानां च सभाजनाय ।
सस्मार मायां निजरूपदीपच्छायां त्रिलोकीपुरशिल्पकारी ॥
तत्क्षणमेव देवदेवस्य भाववेदिनी सिद्धयोगिनी भूमिकामादाय पुरोबभूव ।

---

१. डी०सी०मद्रास १२३७७। अप्रकाशित।

शिव द्वारा अपना वास्तविक रूप दिखाने पर अर्जुन की दशा का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है—

"ततः प्रमोदाश्रुधारापूर्वमेव चन्द्रशेखरचरणारविन्ददत्तचक्षुरिन्द्रियो माहेन्द्रियः परमानन्दपरवशेन चेतसा मूर्च्छित इव मुहूर्तमात्मानमपि·····तपःफलवशात्साक्षादिदं लक्ष्यते ।"

रचना सामान्यतः उत्तम है और पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण होते हुए भी कवि की प्रतिभा का चमत्कार वर्णन की मार्मिकता में दिखाई पड़ता है।

८२—विबुधानन्द प्रबन्ध चम्पू[1] :—

वेंकटकवि, इस काव्य के प्रणेता वीर राघव के पुत्र, बालशयन या इलमपलि परिवार के सदस्य थे। कवि विद्या हनुमत् नामक आचार्य का शिष्य था। वेंकट वीर राघव चेंची निवासी एवं कृष्ण के पुत्र थे जो राघवाचार्य के शिष्य थे। इस दृष्टि से कवि का समय अट्ठारहवीं शताब्दी प्रतीत होता है। कवि ने आरंभ में वेदान्त देशिक की बन्दना की है अतः वैष्णव सम्प्रदाय का है—

कवितार्किककेसरिणं वेदान्ताचार्यनामधेयजुषम् ।
आम्नायरक्षितारं कमपि प्रणमामि देशिकं शिरसा ॥

कथा कल्पित है। इसमें बालप्रिय एवं प्रियंवद, कमलिनी देश के राजा कंदर्प के पुत्र मकरंद एवं शीलवती के विवाह में सम्मिलित होने बद्रिकाश्रम की यात्रा करते हैं। मार्ग में श्रीरंगम्, श्रीमुष्णम्, तिरुकोयिलूर और कांची आदि तीर्थों का संवाद रूप में वर्णन करते हैं। दोनों पात्र शुक हैं, कवि का विश्वास है कि—

"शुकनिगद्यमानं भागवतविविधविभवप्रपञ्चं नितरामपि संभावयन्ति, किल भगवच्चरणारविन्दलग्नमनसो विबुधाः। त एते रसज्ञास्तादृशीं कृतिं कथं नाम मनसा वा परित्यक्तुमुत्सहेरन् ।"

राजधानी का वर्णन देखिये—

"लीलाविलोलानेकबालामालासन्तोषितजनजाला समन्तादभ्युल्लसद्राजवधूकेलिशैला निरर्घगुणशालिनी कमलिनी नाम राजधानी ।"

यह काव्य भी "यात्रा प्रबन्धों" की परंपरा में ही है।

८३—दिव्यचाप विजय चम्पू[2] :—

यह चम्पू काव्य तिरुपुल्लाणि के धार्मिक महत्व एवं पवित्रता का वर्णन करता है। इसमें फुल्लर्षि की उत्पत्ति के साथ उन पौराणिक कथाओं का भी वर्णन है जो इस स्थान से सम्बन्धित हैं।

---

१. डी० सी० मद्रास १२३५१ या (डी० सी० २१,८२८५)। अप्रकाशित।
२. डी० सी० मद्रास १२३०२। अप्रकाशित।

इस काव्य के रचयिता चक्रवर्ती श्रीवेंकटाचार्य हैं। इनके पितामह वेंकटाचार्य एवं पिता श्री शैलवार्य थे। इन्होंने अपने पितामह से विद्याध्ययन किया था। वेदान्तोदयनाचार्य परिवार के श्रीगोपाल देशिक से कवि ने वेदान्त का अध्ययन किया। इन्होंने अपने मातामह कृष्ण सूरि तथा अपने सहोदरों वेंकट कृष्ण एवं रघुनाथ का बड़े आदर से उल्लेख किया है। उपसंहारवाक्य में कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

"इति श्रीचक्रवर्तिकुलकलशजलनिधिकलानिधिश्रीवेंकटाचार्यचरणकमलमधुव्रतमानसस्य श्रीमद्वेदान्तोदयनाचार्यान्ववायकमलाकरबालदिवाकरश्रीगोपालदेशिककरुणारसशिशिरकटाक्षलब्धवेदान्तद्वयसम्पदः श्रीवेंकटाचार्यस्य कृतिषु दिव्यचापविजये चम्पूप्रबन्धे षष्ठः स्तबकः।"

इस चम्पू काव्य में ६ स्तवक हैं जिनमें "दर्भशयनम्" की पौराणिक कथा वर्णित है। जलधि कन्या वल्लभ दिव्यचाप की स्तुति कवि ने निम्नलिखित रूप में की है—

जयति जलधिकन्यावल्लभो दिव्यचापो
जयति रघुकुलेन्दुर्दर्भतल्पे शयानः।
जयति निरुपमश्रीः श्रीधरोऽश्वत्थरूपो
जयति जनिकृदेनोवारणं चक्रतीर्थम्॥

इस पौराणिक कथा का आरंभ भी पौराणिक शैली पर ही हुआ है—

"अखिलमुनिशरण्ये नैमिषारण्ये निभृतसमाधिका अपि निरस्तसमाधिकाः शौनकादयो मुनयो निगमचूडापीडचरणारविन्दं··· तत्र सत्रे समेधमाने,

पराशरसुतच्छात्रं मुनयो रौमहर्षणिम्।
अभ्ययुर्हरितस्वस्य करीरमिव लम्भकम्॥"

यमक की ओर कवि की रुचि अधिक दिखाई पड़ती है—

"सूतसुजनसुकृतप्रसूतभवता भवतापहृता जगदानन्दधुना कथामधुना वयमप्याप्यायनीयाः कथितं च सिद्धिक्षेत्रप्रसंगात् फुल्लारण्यं नाम भगवदभिव्यक्ति···।"

प्रसंगवशात इसमें रामकथा वर्णित है। अश्वत्थ वर्णन भी है। आरम्भिक मंगलाचरण में—

लीलालोलाम्बुरुहनिलयावल्लिकाश्लेषधन्यो
वाहाशाखाङ्गुलिकिसलयश्रीर्नखांशुप्रसूनः।
भक्तैस्सेव्यो निखिलफलदश्छायया श्यामलात्मा
सन्तापं मे शमयतु श्रियः कृष्णसन्तानशाखी॥ १/१॥

काव्य रचना में कारण का उल्लेख कवि ने बड़ा सुन्दर दिया है—

कवयः कति वा न सन्ति तेषां कृतयो वातुलचातुरीगुणाः ।
रचयन्ति तथापि काव्यमन्ये रसयन्त्येव तदग्रपंडिताः ॥

८४—मार्ग सहाय चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता वेदपुरीश्वराध्वरि के पुत्र नवनीत हैं। इसमें ६ आश्वास हैं जिनमें उत्तरी आर्काट जिले के विरंचिपुरम् गांव के शिव मंदिर के अधिष्ठातृ देवता मार्गसहाय देव की पूजा का वर्णन है। कवि ने मंगलाचरण में गणेश की स्तुति में गंगा पर रुष्ट होते हुये उनके रूप की स्तुति की है—

अंके शंकरवल्लभस्य पृथुको निःशंकमासेदिवान्
ऊर्ध्वीभावितपुष्करो विजयते विघ्नेश्वरो लीलया ।
मौलौ तिष्ठति जाह्नवी कथमियं मन्मातुरुच्छ्रायिणी
तामुर्व्यामधुनेति रोषपरुषस्सम्पातयिष्यन्निव ॥ १/२ ॥

अपनी इस रचना के सम्बन्ध में कवि ने कहा है—

सूक्तिः कदर्थैर्मम दूषितापि किं निन्द्यते चम्पकपुष्पमाला ।
संघः सतां मद्गिरमातनोतु संघर्षणात्केवलमेव लघ्वीम् ॥

यह चम्पू काव्य भी पौराणिक शैली का आश्रय लेकर कथा की भूमिका बाँधता है—

"अथ कदाचिदखिलजननयनानन्दसन्दोहसुलभनैपुण्ये पुण्येतरपुरुषागण्ये नैमिषारण्ये निखिलमुनिजनवरिष्ठमात्मनिष्ठं भगवन्तं वशिष्ठमन्तेवसन्तः तपस्यन्तः सर्वेऽपि मुनयो विनयोज्ज्वला एवमप्राक्षुः ॥"

उपसंहार में कवि ने संकेत कर दिया है कि उसने मार्गसहायदेव के प्रचलित आख्यान का आश्रय लिया है—

एवं प्रभावपरिपाटिकया प्रपंचे प्रांचन्विरंचिपुरमार्गसहायदेवः ।
अत्यद्भुतानि चरितान्यवनौ वितन्वन् नित्यं तरंगयति मंगलमंगभाजाम् ॥

८५—मारुति विजय चम्पू[2] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता रघुनाथ कवि (कुप्पाभट्ट रघुनाथ) हैं। इस चम्पू काव्य में सात स्तबक हैं जिनमें वाल्मीकि के सुन्दरकाण्ड रामायण के आधार पर हनुमान के उन महत्कार्यों का वर्णन है, जो उन्होंने सीता के लंका से

---

१. डी०सी० मद्रास १२३३६ । तंजोर कैट०वा० ४,५८२८ । अप्रकाशित ।
२. तंजोर कैट०, ४१०६ । अप्रकाशित ।

उद्धार के लिये सम्पन्न किये थे। इस चम्पू काव्य के सातों स्तवकों में श्लोक संख्या लगभग चार सौ छत्तीस है—

> चूर्णान्तरस्तबकसप्तविभज्यमानं
> षट्त्रिंशदुत्तरचतुश्शतपद्यपूर्णम् ।
> चंपुं परं सकलदेशनिवासिधीराः
> पश्यन्तु यान्तु च मुदं विधुताभ्यसूयाः ॥ १/४ ॥

कवि ने आरंभ में गणेश और हनुमान् की स्तुति की है—

> श्रीमानेष सुधांशुमौलितनुजो रम्यद्विपेन्द्राननः
> प्रत्यूहाचलभेदिपादकुलिशो दीर्घैकदन्तोज्ज्वलः ।
> दैतेयौघतमस्सहस्रकिरणो वन्दारुकल्पद्रुमो
> हेरम्बः कृपया हिमाद्रितनयासंलालितः पातु नः ॥ १/१ ॥
> समीरवेगं कुशकोटिबुद्धिं सीतासुतं राक्षसवंशकालम् ।
> नयाकरं नन्दितरामभद्रं नित्यं हनूमन्तमहं नमामि ॥ १/२ ॥

चम्पू काव्य के आरंभ में सातों स्तवकों की अनुक्रमणिका है। यह प्रति बनारस में वामन भट्टाचार्य के किसी शिष्य द्वारा लिपिबद्ध हुई है। उसी से इनके पूरे नाम का "रघुनाथ कुप्पाभट्ट" पता चलता है। अन्त में एक चाटु श्लोक है—

> कान्तासु त्रिजगद्विमोहयति कस्तं को ददाह स्फुटं
> तस्मात्किं दितिजा ययुः करिवरं को न दष्टं पपौ ।
> गंगा को नु भगीरथेन चलितां करिमन्प्रियं वज्रिणो
> यत्प्रश्नोत्तरपूर्ववर्णघटितं काव्याभिधानं विदुः ॥

८६—मीनाक्षीकल्याण चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के निर्माता तेलुगु ब्राह्मण कन्दुकुरी नाथ हैं। यह प्रति द्वितीय आश्वास में खण्डित है अतः अपूर्ण है। इसमें पाण्ड्य देश के प्रथम राजा कुलशेखर (मलयध्वज) की कन्या मीनाक्षी का शिव से विवाह वर्णित है। वस्तुतः मीनाक्षी, पार्वती का ही दूसरा नाम है। कुलशेखर पाण्ड्य देश की प्रथम राजधानी कल्याणपुरी में शासन करते थे। शिव ने पाण्ड्य राज को स्वप्न में बतलाया कि वह नगर के समीपस्थ वन-प्रान्त के एक मन्दिर में ठहरे हुये हैं। उन्होंने राजा को आदेश दिया कि उसी स्थान को अपनी राजधानी बनाकर वह शिवाराधन करे। राजा ने इस आदेश का पालन किया और वहां अपनी नई राजधानी बनाई। वही स्थान आजकल मदुरा कहलाता है। राजा ने अपनी

१. डी०सी० मद्रास १२३३७। डी० सी० मद्रास वा० २१, ८२७०। अप्रकाशित।

कन्या मीनाक्षी का स्नेह शिव से जानकर उसका विवाह भी उन्हीं से कर दिया। इस सारी कथा का मूलस्रोत "हालास माहात्म्य" है।

इस काव्य का आरम्भ गणेश और मीनाक्षी की स्तुति से हुआ है—

यत्कटाक्षोपविक्षिप्तनिरूढनिजसम्पदः।
प्रत्यूहा विनिवर्तन्ते कलये तं विनायकम्। १॥
यत्पदाम्भोजसेवाद्यैरयत्नागतसम्पदः।
ब्रह्मादयः सुमीनाक्ष्यास्तद् वन्दे पादपंकजम्॥ २॥

आरंभ परम्परानुरूप राजा के वर्णन से हुआ है—

"स्वस्ति। अस्ति हि खलु सकलसद्गुणगणभूषणभूषितः चतुःषष्टिकलानिष्णातः पितृवत्प्रजापालनतत्परः सोमवंशजलधिसोमः सकलपरिपंथिमुकुटकोटिप्रभालंकृतचरणयुगलः चन्द्र इव प्रतिक्षणसंवर्धितकुवलयः कुलशेखरो नाम स्वकुलकुलशेखरः कल्याणपुरवासी पाण्ड्याधीशः।"

कथा की गतिशीलता में सरल भाषा का प्रयोग हुआ है—

"अनन्तरमुद्यद्यौवना सती सुमीननयना राजराजेश्वरी हे अम्ब! स्वानुरूपः पतिः को वाद्य वर्तत इति साकं कांचनमालया जनन्या समालोच्यात्रस्थिताया मम स्वानुरूपः पतिः को वा प्रियतमो भविष्यति इति मनसि निधाय—।"

अतः पतिर्मे शिव एव नान्यः स्वसुस्तवावेद्य मुदा समेत्य।
निवर्तनीयः खलु मे विवाहः त्वमेव मां बन्धुमतीं विधेहि॥

कवि स्वयं मदुरा निवासी हैं और पार्वती परिणय के प्रणेता रामेश्वर इसी परिवार के हैं।

८७—भिल्लकन्या परिणय चम्पू[1]:—

किसी नृसिंह भक्त कवि द्वारा यह रचना प्रस्तुत की गई है। इसमें वनाटपति हेमांग की कन्या कनकांगी और नृसिंह देवता का परिणय वर्णन है। रचना अपूर्ण उपलब्ध है। आरम्भ में नृसिंह स्तुति है—

श्रीवक्त्राम्बुजदर्शनोत्सवदरस्मेरं पुरस्तान्नम-
त्प्रह्लादाभयदानवाक्यचटुलं प्रान्तोच्चलत्केसरम्।
दंष्ट्राकान्तिविचित्रकुंडलरुचिप्रस्फीतगंडस्थलं
देवान्मर्त्यहरेर्मुखाब्जमचिराच्छ्रेयांसि भूयांसि नः॥ १॥

---

१. ट्रीनियल कैट० वौल १, पार्ट १, १९१०-१३। जी०ओ०एल०मद्रास न० ३६६ एफ। अप्रकाशित।

कनकांगी के रूप चित्रण सम्बन्धी निम्नलिखित पद्य शृंगारिक परम्परा के अनुकूल हैं—

यस्मिन् सूनमरन्दपानमधुरध्वानालिराजिर्गिरौ
दृष्ट्वा व्यालभुजः पयोधरधिया नृत्यंति संमोहिताः ।
नाना मंजुलकुञ्जपुञ्जविहरद् भिल्लांगनाभंगसद्-
गीतैः कीरपिकारवैर्मुखरितस्ताद्दर्याचलो राजते ॥
वातोच्चलन्नवलतावृतपत्रजालैः संदृश्यमानकनकोज्ज्वलदेहकान्तिः ।
दृग्वीथिमाप नृहरेर्नवनर्मलीला बाला तदा जलदमध्यतडिल्लतेव ॥

कीरदूत की योजना इसमें भी है—

"एवं पुनः पुनः प्रवर्धमानवेदनां पद्मवदनामवलोक्य तत्रत्याः काश्चित् प्रियालयः एतस्या राजतनयायाः शिशिरोपचारैः विश्रान्तिं कृत्वा मदीयकीरराजो नागतः कालविलम्बो जातः इति वदतीषु सतीषु तत्र निजनिवासे नरहरिरश्रान्तकान्ताविरहव्यथाविधुरितहृदयः भोः सखि मृगांकानने कानने आवयोर्वयोनुरूपयोः परस्परानुरक्तमधुरोक्तिः ॥"

कनकांगी ने अपना परिचय भक्तिपूर्ण सरल वाणी में दिया है—

भिल्लान्वये जनिर्मे जनको हेमांगको वनाटपतिः ।
कनकांगीं जानीहि त्वं मां भो देवदेवेश ॥

"ह्रिया भीत्या बाला सहचरवयस्या निकटगा" में कनकांगी की लज्जा एवं भय का एक साथ कवि ने संकेत किया है। रचना में लोककथात्मक रूप अधिक है— चम्पू काव्य का वर्णनात्मक रूप कम।

८८—रामायण (युद्ध काण्ड)[1] :—

"वाल्मीकि रामायण पर आश्रित इस चम्पू काव्य के रचयिता राजचूडामणिदीक्षित तंजोर के रघुनाथ भूपति के समय विद्यमान थे। यह रत्नखेटदीक्षित (संभवतः भैमी परिणय निर्माता) के पुत्र थे। इनकी भी कई रचनायें हैं जिनमें "रुक्मिणीकल्याणम्" वाणी विलास प्रेस से प्रकाशित हो चुका है। सात से अधिक इनके और काव्य कहे जाते हैं। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी है।[2]

८९—शिवचरित्र चम्पू[3] :—

कविवादिशेखर की यह रचना भगवान् शिव द्वारा किये गये महान कार्यों का वर्णन करती है। तंजोर वाली प्रति में केवल प्रथम आश्वास है। मद्रास वाली

१-२. संस्कृत लिट्रेचर-पृष्ठ १२४। अप्रकाशित।
३. तंजोर कैट० ४१५९। डी० सी० मद्रास—१२३१८। अप्रकाशित।

प्रति तृतीय आश्वास के मध्य से खण्डित है। इस चम्पू काव्य के प्रथम आश्वास में नृसिंह, पद्म (उ. २३६) और मार्कण्डेय पुराण (५२. अ) में वर्णित मार्कण्डेय की कथा पर आधारित है। मार्कण्डेय ने अपनी अल्पायु से मुक्ति पाने की साधना शिव की भक्ति द्वारा की इसमें उन्हें दीर्घायुष्य प्राप्त हुआ।

द्वितीय आश्वास में समुद्रमंथन द्वारा उत्पन्न कालकूट के शिव द्वारा पानकर त्रैलोक्य रक्षा का वर्णन है और तृतीय में दक्षयाग का विध्वंस वर्णित है। कांची में तापसवेशधारी शिव ने कवि को स्वप्न में अपने चरित्रवर्णन का आदेश दिया। फलस्वरूप इस चम्पू-काव्य की अवतारणा हुई। आरंभ में कवि ने गणेश की वन्दना की है—

वन्दे वेतण्डवदनं यच्छुण्डालीलयोद्धृता।
ब्रह्माण्डमण्डपारम्भस्तम्भतां लभते क्षणम् ॥
वाणी ताण्डवमाधत्तां मज्जिह्वारङ्गमण्डपे।
हृद्या यद्भूमिका लीला विद्यावेदपुरस्सरी ॥ १/१ ॥

इस चम्पू रचना का कारण है—

श्रीकण्ठदर्शननिरूपणभाग्यलक्ष्मी-
सिंहासनप्रथमदेशिकतानिबद्धः।
पट्टाभिषेचनविधिः प्रथितः पृथिव्या-
मेकाम्रनाथसविधेजनि यस्य काञ्च्याम् ॥ १/२ ॥
तमादिशत्तापसवेशधारी स्वप्ने कदाचित्स्वयमेव शम्भुः।
निजापदानैर्निखिलैरुपेतं प्रबन्धमेकं परिकल्पयेति ॥ १/३ ॥
तत इदमभिजातगद्यपद्यप्रतिपदपल्लवितप्रसादरम्यम्।
अकृत स कविवादिशेखरो यं शिवचरितं रसभासुरं प्रबन्धम् ॥१/४॥

कवि ने कालिदास और क्षेमेन्द्र को भी विनयांजलि प्रस्तुत की है—

कृतिने कालिदासाय क्रियते विनयाञ्जलिः।
कवितामौक्तिकं यस्य त्रिलोकीतिलकायते ॥
क्षेमेन्द्राय कवीन्द्राय क्षेममाशास्महे वयम्।
स्वादुना यत्कवित्वेन सुधास्तुतिविधा मुधा ॥

काव्य के सम्बन्ध में कवि का दृष्टिकोण यह है कि सुकुमार काव्य में कहीं-कहीं काठिन्य (ओजस्विता) काव्य को और अधिक प्रिय बना देता है—

"काव्येषु सुकुमारेषु काठिन्यं कुत्रचित्प्रियम् ॥"

कथा का वर्णन सीधी-सादी पदावली में हुआ है। पात्रपरिचय में न तो अतिशयोक्ति का पुट है न रूप वर्णन की बहुलता—

आसीदाजन्मशुद्धानां नासीरो ब्रह्मवादिनाम् ।
मृगकण्डूयनपरो मृकण्डुरिति तापसः ॥
तस्य शीलवती नाम समजायत गेहिनी ।
अरुन्धतीगुणश्लाघां न्यरुन्धच्चरितेन वा ॥

"ततः स मुनिनन्दनोऽपि शंकरप्रसादादतिशयभाजनमात्मानं परमपावनं मन्यमानो जनितपरमानन्दपरिवाहितहृदयाभ्यां स्वमातृपितृभ्यामन्वागतो निमिषमिव तत्परिचरणमहोत्सवैः कल्पमनल्पमपि सुखविभवमन्वभूत् ॥"

२—अथेदानीमीश्वरस्य कालकूटकवलनकथा प्रस्तूयते—

पुरा पुराणपुरुषं पुरोधाय सुरासुराः ।
मन्मथुर्वाहिनीबन्धुं दुग्धसिन्धुं सुधाशया ॥

३—अथेदानीं दक्षाध्वरध्वंसकथा प्रस्तूयते—

"पुरा खलु पुरातनस्त्रिभुवनभवनशिल्पकारः कल्पादौ कतिपयभूतकलासृष्टिः परमेष्ठी ।......"

वर्णन की पद्धति कथावाचकों की पौराणिक शैली सी है ।

६०—चोल चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य की रचना परमशैव विरूपाक्ष कवि ने की है। कवि ने इस चम्पू काव्य में अपना थोड़ा भी परिचय नहीं दिया है। विरूपाक्ष नामक कवि की एक अन्य रचना "शिवविलास चम्पू"[2] भी उपलब्ध है। उसमें कवि ने लिखा है—

तातो यस्य शिवो गुरुश्च नितरां दासः शिवस्यैव यो
माता यस्य तु गोमती स हि विरूपाक्षाभिधोयं कविः ।
श्रीमत्कौशिकगोत्रजः शिवविलासाख्यं शिव-प्रीतये
चम्पूकाव्यमिदं करोति दिशतात्स्फूर्तिं परां शारदा ॥ १/१ ॥

इससे ज्ञात होता है कि विरूपाक्ष कवि कौशिक गोत्रोत्पन्न थे और इनके माता-पिता का नाम गोमती एवं शिवगुरु था। इससे अधिक कवि के विषय में कुछ पता नहीं चलता। चोल चम्पू की भूमिका में डा० वी० राघवन ने कवि का अनुमानित समय सत्रहवीं शताब्दी माना है।[3] संस्कृत लिट्रेचर के लेखकों ने भी एक विरूपाक्ष

---

१. मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सीरिज़ एल १२, तंजोर सरस्वती महल सीरिज़ नं० ५५ मद्रास से प्रकाशित ।

२. तंजोर कैट० ४१६० ।

३. पृष्ठ-४ ।

कवि, उसकी रचना "नरकासुरविजयम्" का उल्लेख किया है। उन्होंने कवि का समय चौदहवीं शताब्दी माना है।[1]

इस चम्पू काव्य में खर्वट ग्राम वर्णनम्, कुलोत्तुंगवर्णनम्, कुलोत्तुंग की शिवभक्ति, वर्षागम, शिवदर्शन, कुलोतुंग को शिव द्वारा राज्यदान, कुबेर का आगमन तंजासुर कथा, कुबेर की प्रेरणा से कुलोत्तुंग का राज्य ग्रहण, राज्य का वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन, पत्नी कोमलांगी से संभोग, प्रभात वर्णन, पुत्रजन्म, महोत्सव, राजकुमार को अनुशासन, कुमार देवचोल का विवाह एवं पट्टाभिषेक, कुलोत्तुंग का अनेक वर्षों तक राज्य कर सायुज्य प्राप्त करने तथा देवचोल के शासन करने की सूचना—प्रस्तुत किये गये हैं।

इस चम्पू काव्य का आधार भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत बृहदीश्वर माहात्म्य का चतुर्थ से अष्टम अध्याय है जिनमें मुख्यरूप से कुलोत्तुंग[2] एवं देवचोल का वर्णन है। कुलोत्तुंग एवं देवचोल ने क्रमशः अपने ९० और ६० वर्ष के शासन-काल में अनेक शिवमन्दिरों का निर्माण किया था। बृहदीश्वर माहात्म्य प्रलयोपरान्त ईश्वर (शिव) एवं पार्वती के संवाद रूप में वर्णित है तथा शिव वर्णित इस कथा को सूत ने नैमिषारण्यवासी मुनियों को सुनाया है। तीस अध्यायों में कुलोत्तुंग और कोमलांगी चोल दम्पत्ति से लेकर कल्याण चोल और उसकी पत्नी सुभद्रा तक सोलह चोल राजाओं का वर्णन किया गया है। कवि ने माहात्म्य में वर्णित कुलोत्तुंग के चरित्रवर्णन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है। बृहदीश्वर में "सूर्यान्वयसमुदभूतः कुलोत्तुंगो महीपतिः"[3] कहा गया है जब कि चोल चम्पू में "न जातिः कारणं भक्तिरेव गरीयसीति प्रकटयितुमिव तुरीयजातिं तिलकयन् कुलोत्तुंग इति यथार्थनामा बभूव शूद्रः।"[4] वह शूद्र कहा गया है।

रचना की सुन्दरता इसकी अतिशय शिव-भक्ति के वर्णन में है। शृङ्गारवर्णन के कतिपय स्थल होते हुए भी भक्त हृदय की विनम्रता स्थान-स्थान पर व्यक्त हुई है (पृ० ७-८)। राज्य के गुण और अवगुणों के वर्णन (पृ० ११-१३) तथा राजकुमार देवचोल के अनुशासन में कादम्बरी के शुकनासोपदेश की छाया दिखाई पड़ती है। उद्धरण के लिये कुछ पंक्तियां दी जाती हैं—

---

१. द्रष्टव्य—पृ०-१२२।

२. हिन्दुत्व पृष्ठ ६५१ पर द्वितीय राजेन्द्रचोल को कुलतुंग कहकर लेखक ने उसका शासनकाल रामानुज के समय में १०७० ई० से ११२७ ई० तक माना है।

३. पांचवाँ अ० बृह०।

४. पृष्ठ—६।

"एवं क्रमेण प्रवृत्तासु वर्षासु गिरिवरसुन्दरकन्दरान्तरप्रारभ्यमाणशिखण्डिताण्डवासु मदनमहाराजविजयघोषणायमानकेकिकेकारवमण्डितदशदिशासु खण्डितमानिनीमानासु दण्डितधार्तराष्ट्रासु आखण्डलधनुर्दण्डसमलङ्कृतगगनमण्डलासु कदाचित् प्रचण्डतरधाराधरनिस्सरज्जलधारासहस्रनिरन्तराले गगनान्तराले कदम्बकुसुमकदम्बकोद्गारिसुगन्धवाहिन्यङ्गीकृतमन्दिमनि वहति गन्धवहे……।" पृष्ठ १० ॥

चक्राकारभृतस्त्वमुष्य शशिनो यत्काष्ठसंयोजना–
यैव च्छिद्रमकारि भूरियशसः शम्भोः पुरां भेदने ।
तद्द्वारा स्फुरतीन्द्रनीलसदृशं व्योमेव नान्यन्मुधा
भ्रान्त्यायं जगतीतले शश इति ख्यातः प्रवादश्चिरम् ॥ ६२ ॥

६१—शिव विलास चम्पू[1] :—

विरूपाक्ष कवि की यह दूसरी रचना चार उल्लासों में प्रस्तुत की गई है। इसमें भी शिव की भक्ति का महत्त्व अंकित है। मृकण्डुमुनि की अपने पुत्र मार्कण्डेय की अल्पायु का ज्ञान होने पर चिन्ता, उपनयन संस्कार, ऋषिदर्शन, शिव की भक्ति एवं मृत्यु योग से मुक्ति इसमें वर्णित हैं। इस कथा का आधार भी मार्कण्डेय, वायु, स्कन्द आदि पुराणों में वर्णित प्रसिद्ध कथा ही है। भागवत आदि वैष्णव पुराणों के अनुसार शिव की भक्ति से इस चम्पू काव्य का आरंभ भी शिवस्तुति से हुआ है—

ईश्वरं सर्वभूतानां निश्चलं निर्मलं विभुम् ।
निर्गुणं शाश्वतं शान्तं शिवं वन्देऽहमद्वयम् ॥ १/१ ॥

चोल चम्पू में जिस प्रकार आरम्भ खर्वट ग्राम के वर्णन से हुआ है। इसका भी आश्रम वर्णन से—

"आसीदशेषसुरासुरचक्रवन्द्यमानशीतलतोयायाः समच्छवपुषं प्रवाहं हंसजालब्धं धारयन्त्याः……गङ्गायास्तीरे……अभ्यस्यमानयोगनिष्कलमषमनोवृत्तिमहाजनपरिष्कृतः एकतश्च समुदंचितज्ञानरविप्रणष्टाज्ञानतिमिरनिरभिमाननिरतिशयसुखानुभवतुन्दिलमहायोगिजनाध्यासितः धर्माश्रयो नाम यथार्थनामा महाश्रमः।"

कथा का उपसंहार मृत्युविजयी मार्कण्डेय के माता-पिता के पास पुनरावर्तन के वर्णन से हुआ है।

---

१. तंजोर कैट० ४१६० । अप्रकाशित ।

६२—कार्तवीर्य प्रबन्ध[1] :—

कार्तवीर्यविजय प्रबन्ध चम्पू काव्य के रचयिता ट्रावनकोर के युवराज आश्विन श्री रामवर्मा हैं। इनका समय ई० १७६५ से १७९४ ई० है। शृङ्गार सुधाकरभाण स्यानन्दूरपूर वर्णन आदि इनकी अन्य रचनायें भी उपलब्ध हैं। यह चम्पू काव्य रावण पर प्राप्त कार्तवीर्यार्जुन की विजय का वर्णन करता है। नर्मदा के किनारे कार्तवीर्य ने रावण को पराजित करके उसे कैद कर लिया। रावण के पितामह पुलस्त्य ऋषि ने कार्तवीर्य को प्रसन्न कर उसकी कैद से रावण को छुड़वाया। सम्पूर्ण तथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (अ० ३१-३३) पर आश्रित है।

लघुकाय होते हुए भी रचना प्रौढ़ है और कवि की काव्यकुशलता की परिचायक है। मंगलाचरण के उपरान्त कवि ने जिह्वा को सम्बोधित करते हुये कहा है—

जिह्वे बह्ववलम्बसे किमनृतव्याहारधन्वस्थली-
यातायातपरिश्रमं शृणु हितं किंचिद् वयं ब्रूमहे।
पुण्यश्लोकशिरःस्रजां क्षितिभुजां नारायणांशात्मना-
माकण्ठं पिब सत्कथां नवरसस्रोतस्सुधास्यन्दिनीम् ॥ २ ॥

गद्य भाग के प्रत्येक चूर्णक में गाढबद्धता के साथ अनुप्रासमयी ललित पदावली प्रयुक्त हुई है—

"अथ कदाचिदुपचीयमानविकचविचकिलसुलभसौरभसम्भारकुम्भीलक-समीरडिम्भसरभसपरिरम्भसम्भृतरसरम्भोरुषु मधुमदान्धकुसुमन्धयनीरन्ध्रितो-दरविघटमानपाटलपटलपतयालुपांसुकुलमांसलितपान्थजनमोहान्धकारेषु·····।" पृ० १॥ "तौ च कौचन कुलाचलाविव कूलेचरौ निसर्गकरालखड्गवल्गनभयंकरौ निशाचरपतिकिंकरौ···।" पृ० ४ ॥

युद्धवर्णन में ओजस्विता का समावेश हुआ है—

रे दोर्मदान्ध ! दशकन्धर चन्द्रहासः, प्रत्यर्थिपार्थिवकरोटिनिशातधारः।
आलिम्पतस्तव परं निजदोषपंकैः कण्ठं कटूक्तिसरणिं तरसा छिनत्तु ॥२६॥

मुख्य रस वीर है। अन्त में कवि ने विष्णु की स्तुति की है।[2]

---

१. यूनिवर्सिटी मैन्यूस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम, नं० ४ में प्रकाशित— १९४७ में।

२. द्रष्टव्य—श्लोक २६।

६३—शंकरचेतो विलास चम्पू[1] :—

यह चम्पू काव्य ढुण्ढी राज के पौत्र एवं बालकृष्ण के पुत्र शंकर दीक्षित (शंकर मिश्र) की रचना है। कवि का समय काशी राज चेतसिंह (१७७० ई० १७८१ ई०) का शासनकाल है। इस काव्य के उपसंहार में उसने स्वयं लिखा है—

"बहिरङ्गणशालोपविष्टनिगमागमकलादिविद्यानिधानगन्धर्वाप्सरः-पुलकाश्रु-प्रकटदृश्यमानमानसभावसहस्रदोहोद्वेलितपादारविन्द-काशीराजचेतसिंहप्रोत्साहितसाहित्यपारावारपारीणश्रीमद्दीक्षित-बालकृष्णसूनुशङ्करविरचिते शंकरचेतोविलासचंपूप्रबन्धे लक्ष्मीनारायणांके नगरवर्णनं नाम तृतीय उल्लासः।"

कवि ने आरंभ में ओजस्वी भाषा के साथ महाराज चेतसिंह के लिए गणेश से मंगल-कामना की है—

उद्यत्सिन्दूरदण्डप्रतिकृतिविलसद्भालबालेन्दुखण्डः
प्रत्यूहव्यूहचण्डः पददलितबलीमण्डिताखण्डमण्डः।
वेगादुद्धूतशुण्डः सुररिपुविजयोद्दण्डदण्डः प्रचण्डः
कुर्याच्छ्रीचेतसिंहक्षितिपतिभवने मंगलं वक्रतुण्डः॥ १/३ ॥

इस चम्पू काव्य में काशी नगरी का वर्णन अत्यन्त अनूठा है। रचना अपूर्ण है।

६४—गंगावतरण चम्पू प्रबन्ध[2] :—

इस चम्पू प्रबन्ध के रचयिता भी शंकर चेतोविलास के रचयिता शंकर दीक्षित ही हैं। इस काव्य का उपसंहार वाक्य भी ऊपर के वाक्य से मिलता-जुलता है—

"इति श्रीमत्समस्तशास्त्रपारङ्गमदीक्षितढुण्ढिराजात्मज-साहित्यपारावारपारीणकविताकान्तारकण्ठीरवसर्वस्वदानदीक्षाविचक्षणश्रीमद्दीक्षितबालकृष्ण-सूनुशङ्करविरचिते गङ्गावतरणचम्पू-प्रबन्धे गङ्गाचरणांगे सप्तम उच्छ्वासः।"

प्रो० आफ्रेट ने भी उक्त दोनों चम्पू काव्यों का निर्माता एक ही कवि को माना है। दोनों में साहित्य पारावार पारीण विशेषण के साथ पिता का नाम भी एक ही है। दोनों की भाषा शैली में भी पर्याप्त साम्य है। हेमचन्द्र की चम्पू-काव्य की परिभाषा के अनुसार दोनों ही सांक हैं। गंगावतरण सोच्छ्वास भी है। "चेतोविलास" वर्णनप्रधान है अतः उसमें "उल्लास" का प्रयोग हुआ है। गंगावतरण कथाप्रधान है।

---

१. सी० सी० १४७। अप्रकाशित।

२. इण्डिया आफिस कै० ७, ४०४१।११४ डी०। अप्रकाशित।

गंगावतरण चम्पू काव्य में सात उच्छ्वास हैं। इसमें—भागवत ८।९, पद्म-पुराण स्वर्ग खण्ड अ. १६, वायुपुराण अ. ४७, मार्कण्डेय अ. ५३, नारदीय १६ अ. तथा ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों एवं वाल्मीकि रामायण में वर्णित सुप्रसिद्ध गंगावतरण की कथा प्रस्तुत की गई है।

कवि ने गणेश की वन्दना लाक्षणिक शैली में साभिप्राय विशेषणों सहित की है—

गलद्दानकीलालकल्लोलिनीभिः परिप्लाव्य गण्डस्थलीं लोलमौलिः।
हसन् हासयन्नेव गङ्गाधरं यः समव्यादभव्याद् भवानीतनूजः॥ १/१॥

कवि ने इस चम्पू काव्य में पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों का भी स्मरण किया है—

वन्दे सुबन्धुबाणौ कविसम्राट्कालिदासभवभूती।
शेषाशेषमुखादिव येभ्यो वाणी सहस्रधा समभूत्॥ १/७॥
वल्मीकभूहरगिरिं वन्दे कविकाव्यकंदभुवम्।
यन्मुखकंदरनिर्गतनिर्झरवाग्जाह्नवी पुनाति जगत्॥ १/१५॥

अनुप्रासमयी समस्त पदावली का प्रयोग कवि ने गद्यकाव्यों की भांति ही किया है पर वे अतिशय बृहत् नहीं हैं—

"आसीदासीमक्ष्मावलयरक्षणदीक्षाविचक्षणक्षपितारातिततितमिस्रमुण्डपुण्ड-रीकताण्डवितयशःकासारः, कुटिलकौशिकगुणान्धीकरणमहौषधिरिपुग्रीष्मदिव-ससंतापभीष्मः, प्रचण्डदोर्दण्डाविर्भवत्प्रतापमार्तण्डः••• ।"

अन्त में कपिल मुनि के शाप से सगरपुत्रों की मुक्ति-वर्णन के साथ कथा की समाप्ति हुई है—

कपिलमुनिसुकोपप्रौढदावानलोद्यल्-
ललिततरशिखाभिप्लुष्टसर्वांगसाराः।
भसितलसितदेहाः सागरा वल्गुगंगा-
चरणशरणचित्ता मुक्तिभावं गतास्ते॥ ७/९५॥

कवि संभवतः कुछ समय तक बुंदेलखण्ड के राजा सभासिंह का दरबारी कवि रहा है। प्रद्युम्न विजय (सी० सी० १, ३५२) इनकी एक अन्य कृति भी है।

६५—रामचन्द्र चम्पू[1] :—

व्रजभाषा और संस्कृत के उच्चकोटि के कवि महाराज विश्वनाथ सिंह की यह रचना रामायण की कथा पर आश्रित है। रीवां का राजवंश परमवैष्णव रहा है। इस रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह का शासनकाल १७२१ से १७४० ई०

१. मित्रा कैट० वोल १, नं० ७३। अप्रकाशित।

तक रहा है। इनका "आनन्द रघुनन्दन" व्रजभाषा का एक उत्तम नाटकी काव्य, विशालकाय दस अंकों का है। इस चम्पू काव्य में आठ परिच्छेद हैं। इस पर स्वयं इन्होंने "रामचन्द्राह्निक" नाम्नी टीका भी लिखी है। आह्निक का प्रत्येक भाग "यम" शब्द से (याम) व्यवहृत हुआ है। उपसंहार में कवि ने "विश्वनाथानुभूतोदितं ध्यानं हन्ति भवबन्धजालं" कहा है।

आरम्भ में कवि ने सीता की स्तुति के साथ मंगलाचरण किया है जिससे ज्ञात होता है कि वह काव्यशास्त्र से पूर्णतः अभिज्ञ हैं—

शक्तिर्येषां न पुंसां भवति न कविता लोकशास्त्राद्यवेक्षा
नैपुण्यं चैव नैवाभ्यसनमपि तथा शिक्षया काव्यगानाम् ॥
काव्यं कुर्वन्ति तेऽपि प्रचुरगुणयुतं यत्कृपातो लभन्ते
प्रेमाणं चाप्यलभ्यं तदवनितनया पादपद्मं नमामि[1] ॥ १/१ ॥

६६—चित्र चम्पू[2] :—

इस चम्पू काव्य के निर्माता श्रीबाणेश्वर विद्यालंकार महाचार्य रामदेव तर्कवागीश्वर के पुत्र एवं विष्णुसिद्धान्त वागीश्वर के पौत्र थे। कवि ने इस चम्पूकाव्य की रचना अपने आश्रयदाता वर्धमान (वर्दवान) के महाराज चित्रसेन के आदेशानुसार शक १६६६ (सन् १७४४ ई०) में की—

ध्यात्वा श्रीरामचन्द्रं सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां प्रयत्ना-
दाज्ञामाज्ञाय राज्ञामपि मुकुटमणेश्चित्रसेनाह्वयस्य ।
शाके कालांगतर्कौषधिपतिगणिते कार्त्तिकेये दशांशे
पूर्णां श्रीचित्रचम्पूं व्यतनुत दिवसे श्रीलबाणेश्वराख्यः ॥ २९३ ॥

कवि ने पंचदेवोपासक की भांति आरम्भ में क्रमशः गणेश, शिव, शक्ति एवं राधामाधव की वन्दना की है। राधा-माधव की वन्दना इस प्रकार है—

यद्गोलोकविलासकेलिरसिकं भ्रूभंगभंगीनव-
क्रीडाविष्कृतसर्गसंस्थितिलयं सारं श्रुतीनामपि ।
वृन्दावलयलिकुंजपुंजभवनं तन्मे मनःपंजरे
राधामाधवसंज्ञितं विजयतामद्वन्द्वमाद्यं महः ॥ ५ ॥

कथा सर्वथा काल्पनिक एवं भक्ति भावना से ओतप्रोत है। वस्तुतः इस चम्पूकाव्य में यात्राप्रबन्ध एवं भक्तिपरक चम्पू-काव्यों की मूलभावनाओं का संगम दिखाई पड़ता है। कथा का आरम्भ आखेट वर्णन से होता है। राजा, कवि को

---

१. द्रष्टव्य—काव्यप्रकाश–१।३

२. इण्डिया आफिस कैट० ४०४४।९३९ ए (आई० ओ० कैट० ७, १५४३) कलकत्ता से प्रकाशित।

वन वर्णन की आज्ञा देता है। कवि, राजा के एक मनोरम स्वप्न का वर्णन आरंभ कर देता है—

राजा गोलोक में पहुँचता है (गोलोकभवनं पुरमतिमनोहरं प्रविवेश)। महादेवी राजा को पर्यंक पर बिठाकर फल और शीतल जल द्वारा सत्कार करती हैं और कहती हैं—"महाराज, मुक्तो सीदानीं दारुणेभ्यः संसारपाशेभ्यः"। देवी राजा को साथ लेकर—सत्संग सागर, मणिकर्णिका, मन्दाकिनी, यमुना और वृन्दावन घुमाती तथा दिखलाती है। राजा वृन्दावन में श्रीकृष्ण का दर्शन करता है, राधाकुण्ड एवं श्यामाकुंड में वह डुबकी भी लगाता है। राजा एक सुकुमार कुमार को अश्वविहीन रथ पर बैठा देखता है। पूछने पर देवी बतलाती है कि यही माया या अविद्या है। कवि ने यहीं वैष्णव सिद्धान्तों का वर्णन किया है। इसके बाद देवी राजा को मथुरा के पवित्र स्थलों का दर्शन कराती हैं। घर की ओर प्रत्यावर्तन के समय राजा, सरयू और अयोध्या का भी दर्शन करता है। इसी स्थल पर कवि ने ३९ श्लोकों में श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये और रघुनाथमीडे के रूप में राम की स्तुति की है। इसके पश्चात् देवी और राजा जनकपुर, शोणक्षेत्र, फल्गु, गया, मन्दार (यहां कृष्ण का पूजन राजा करता है) तथा वैद्यनाथ धाम के दर्शन के उपरान्त दोनों पंचकूट पहुँचते हैं। यहां राजा को राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान का दर्शन होता है। गुप्तपल्लीपुरी आकर देवी और राजा अलग-अलग हो जाते हैं। देवी कवि एवं माणिक्यचन्द्र नामक राजमन्त्री को भी राजा के साथ आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो जाती हैं। तत्काल ही राजा जाग जाता है। मन्त्रि-माणिक्य चन्द्र का वर्णन भी कवि ने किया है :—

"तस्य राज्ञो निखिलराज्यसंभारसंरक्षणावेक्षणविविधमंत्रतन्त्रसंचारचारुचातुर्यधुर्यचक्रचूडामणिरतुलषाड्गुण्यप्रमुखसाद्गुण्यपरस्पराभावितपुरुहूतपुरोहितप्रभावो निरवद्यगद्यपद्यमयविविधप्रबन्धचयनदिव्यातिदिव्यकाव्यमाधुरीभरचमत्कारसारचुम्बनचटुलचारुचंचरीकवरचातुरीभरमनोहरो—निजकुलकुमुदकाननविकासनामन्दचन्द्रः श्रीमाणिक्यचन्द्रो नाम ॥"

इस चम्पू-काव्य में २९४ पद्य एवं १३१ गद्य चूर्णक हैं। अठारहवीं शताब्दी के चम्पू-काव्यों में यह अत्यन्त रमणीय है।

६७—आनन्द रंग विजय चम्पू[1] :—

इस चम्पू-काव्य के रचयिता श्रीवत्सगोत्रोत्पन्न गंगाधर एवं पार्वती के पुत्र श्रीनिवास कवि हैं। यह चम्पू काव्य आठ स्तबकों में पूर्ण हुआ है। इसमें डूप्ले

---

१. डी० सी० मद्रास १२३८१-राघवन द्वारा सम्पादित एवं मद्रास से प्रकाशित (डी० सी० २१, ८३१३)

के प्रमुख सेवक पाण्डीचेरी के आनन्दरंग की महत्त्वपूर्ण जीवन घटनायें वर्णित हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आनन्दरंग पिल्लई की डायरी चार भागों में अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुकी है। इस चम्पू काव्य में भी अनेक राजाओं एवं पिल्लई के पूर्वजों का संक्षिप्त वर्णन सहित नामोल्लेख हुआ है। कवि ने अपना परिचय निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है—

श्रीकान्तदिव्यपदपद्ममिलिन्दचेतः
श्रीश्रीनिवासविबुधस्तु मुदे बुधानाम्।
सानन्दमुल्लसितसर्वरसानुबन्ध-
मानन्दरंगविजयं तनुते प्रबन्धम्॥
गंगाधराध्वरिसुधाब्धिसुधाकरेण
श्रीश्रीनिवासकविना विनयान्वितेन।
उत्सार्य मानसिकमत्सरतां महान्तः
प्रीताः कृतां कृतिमिमामवलोक्य सन्तु॥

गोविन्द के पुत्र विजयनन्दन का वर्णन देखिये—

"स च कदाचिदुन्मुक्तशैशवः सवयोभिः गोपकुमारैस्संक्रीडमानो विजयनन्दनो नन्दनन्दन इव गोविन्दनन्दनः प्रभूतयवसोदकं सकौतुकं कंचिदपि वनोद्देशमवगाह्य गाश्चालयन् अद्भुतशीलः परमखिलभूमंडलविश्रुतैरधिगतसर्वश्रुतैः व्याकृतसर्वश्रुतिभिः श्रुत्यन्तदेशिककवितार्किककेसरिसतीर्थ्यैः ... विद्यारण्यनामभिराचार्यवर्यैस्तूर्णमभ्यर्णमुपागतां ...।"

"भो भो गोविन्दसूनो निरुपमयशसः पंचपंचाभिरूपा
भूपाः पंचेषुभूतास्सकलनृपनुतास्संभविष्यन्ति वंशे।
कश्चिच्चेटीतनूजस्तदनु पदमिदं कृष्णरायाभिधानः
श्रेष्ठान् पंचाग्रजातान् प्रसभमुरुबलो निर्णुदन् प्राप्स्यतीड्यम्॥

अन्त में कवि ने उपसंहार तक सुन्दर रूप से अनेक व्यक्तियों एवं घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है।

वरकविकुलमौलिस्फारमाणिक्यकान्ति-
द्युमणिकिरणपुंजप्रोल्लसत्पादपद्मः।
निखिलनिगममूर्तिः स्फूर्तिरीशस्य साक्षा-
ज्जयति जगति तातो यस्य गंगाधरार्यः॥

इसमें विजयनगर एवं चन्द्रगिरि के राजवंशों का वर्णन हुआ है।

इस चम्पू काव्य का रचनाकाल अट्ठारहवीं शताब्दी है।

६८—चन्द्रशेखर चम्पू [1] :—

रघुनाथ देव के पुत्र रामनाथ कवि ने इस चम्पू काव्य की रचना की है। इसकी कथा काल्पनिक है जिसमें गृहस्थजीवन के विविध उल्लासों तथा चन्द्रशेखर महोदय के महोत्सव के समारोह का वर्णन है। इसके दो भाग हैं पूर्वार्द्ध में पांच उल्लास हैं जिनमें क्रमशः ब्रह्मावर्त के राजा पौष्य के घर में पुत्र प्राप्ति के उल्लास में होने वाली घटनाओं का वर्णन है। प्रथम उल्लास में प्रश्न, द्वितीय में मृगया, तृतीय में पुत्रजन्म एवं महोत्सव, चतुर्थ में विवाह तथा पंचम में राजा का पुत्रोत्सव वर्णित है। उत्तरार्ध की प्रति (न० ४३) अपूर्ण है।

सन् १९१५ में कोकोनाड में कवि की मृत्यु हुई थी। इसके पुत्र गंगाधर शास्त्री, सीटी प्रेस कोकोनाड के पास मूलप्रति सुरक्षित है।

आरम्भ में पार्वती और शिव की वन्दना है—

शय्याव्याप्तसमस्तविश्ववसतिर्बिभ्रत्प्रपंचानना
सर्वाशापरिपूरणे व्यसनिनी नित्या श्रुतिप्रेयसी।
स्वर्नद्या फणिनायकेन हरिणा चन्द्रेण पूर्वद्युतिः
पायात् पर्वतनन्दिनी प्रणयिनी कीर्तिश्च मूर्तिश्च या॥ १/१॥
मौलिं वीक्ष्य पुरद्विषः सुरधुनी कृच्छ्राद् गतां कृष्णतां
क्वापि प्रेयसि रागतः कमलजाकारं वहन्त्यः क्वचित्।
प्राप्ताः क्वापि न तत्प्रसादविशदीभावाच्छिवाकारतां
पार्वत्यास्त्रिगुणोद्भवा इव दृशां भासो भवन्तु श्रिये॥ १/२॥

६९—भागीरथी चम्पू [2] :—

इस चम्पू काव्य के निर्माता अच्युत शर्मा हैं। इनके पिता-माता का नाम नारायण एवं अन्नपूर्णा है। इन्होंने चम्पू काव्य के अन्त में नारायण देशिक मस्करीन्द्र और रघूत्तम नामक गुरुजनों के सहित माता-पिता के चरणों में इस काव्य को विनम्रता के साथ समर्पित किया है। [3] यह जनस्थान निवासी थे।

इस चम्पू काव्य का विभाजन सात मनोरथों में किया गया है। प्रथम मनोरथ में सूर्य, वैवस्वत मनु एवं अयोध्यानगरी का वर्णन किया गया है। द्वितीय मनोरथ में मनु, इक्ष्वाकु, सगर आदि से लेकर भगीरथ तक वंशवल्ली प्रस्तुत की गई

---

१. कलकत्ता संस्कृत कालेज कैट० नं० ४२, ४३ कलकत्ता और बनारस से प्रकाशित, पूर्वार्ध।

२. गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई से प्रकाशित।

३. द्रष्टव्य ७/७९–८०।

है। तृतीय में भगीरथ का यौवन, विरक्ति, त्रितल मुनि से ब्रह्मविद्या की ज्ञान प्राप्ति एवं चक्रवर्तित्व वर्णित है। चतुर्थ में हिमालय पुत्री कुटिला (गंगा) का ब्रह्मलोक-गमन वर्णित है। पंचम मनोरथ में गौरी का नख-शिख वर्णन बड़े विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। एक सौ बयालीस पद्यों एवं कई गद्य चूर्णकों में नख-शिख वर्णन के प्रायः सभी उपमान कवि ने एकत्र कर दिये हैं। अनुमान, उपमा एवं उत्प्रेक्षाओं की इसमें भरमार है। सम्भवतः संस्कृत साहित्य के किसी भी अन्य ग्रन्थ में इतना विस्तृत नख-शिख वर्णन नहीं है।[1] छठे मनोरथ में गौरी का तप एवं शिव से विवाह वर्णित है। सप्तम मनोरथ में कुमार कार्तिकेय का जन्म, गौतम के तप द्वारा गोदावरी की उत्पत्ति, गोदावरी रूप गंगा का पुनः ब्रह्मलोक प्रयाण वशिष्ठोपदिष्ट भगीरथ का ब्रह्मा, शिव से गंगा प्राप्ति, जह्नु के आश्रम में गंगा का विलुप्त एवं प्रत्यक्ष होना तथा कपिल के आश्रम में पहुँचकर भगीरथ के पितरों को मुक्ति देना आदि वर्णित है। इस मनोरथ में गौतम की शिव स्तुति का एकतीस श्लोकों का लघुस्तोत्र भी समाविष्ट है।[2]

इस चम्पू काव्य में गौरी परिणय एवं भगीरथ द्वारा गंगानयन इन दो पौराणिक कथाओं का समन्वय कर दिया गया है। गंगा की अनेक धाराओं (पृ० ११७) का वर्णन तो है ही गोदावरी की उत्पत्ति कथा द्वारा उसको भी गंगा की ज्येष्ठ भगिनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

गद्य भाग को समास-बहुल न बनाकर कवि ने कथा प्रवाह को शब्दावली में उलझने नहीं दिया है। अच्युत कवि अद्वैत मतानुयायी प्रतीत होते हैं। "ब्रह्माद्वैत रूप शिवैकाकारभरितपूर्व"[3] जैसे अनेक प्रयोग मिलते हैं। कवि की नैयायिक शैली कहीं-कहीं गद्यभाग में व्यक्त हो गई है—

"किं ब्रूषे भावत्वावच्छिन्नजन्यत्वावच्छेदेन, विनश्वरत्वनैयत्यविरुद्धं स्वप्नेप्यसंभाव्यम्"।[4]

भावानुकूल गद्य में प्रवाह भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है। गंगा का वर्णन देखिये—

"ततः सा क्वचिच्चञ्चला क्वचित्कुटिला क्वचिद् विस्तीर्णा क्वचिन्मन्थरा क्वचिदुद्धता क्वचित्सावर्ता क्वचित्फेनहासवती क्वचिदतिवेगवती क्वचिदगाधा

---

१. पृष्ठ ४९-७२ तक सम्पूर्ण पंचम मनोरथ।

२. द्रष्टव्य—पृष्ठ १२४-१२९, ७।२२-५२ तक।

३. द्रष्टव्य—पृष्ठ १२४ और श्लोक ४।३, ५।३४ आदि।

४. ,, ,,-४५।

क्वचिदुत्ताना क्वचिदनतिनम्रा क्वचिन्महोर्मिमालिनी महावाग्मिवाणीव तथानन्त-शिशुमारोरगवैसारिणकमठकुलप्रभृतिबहुविधजलचरशालिनी क्वचिदद्भिरूर्ध्वं व्युत्थायाधः पतन्ती पद्भिरश्विनीव शुशुभे।" पृ० १३९-१४० ॥

गद्य भाग की अपेक्षा पद्य भाग अधिक मनोहर एवं रमणीय है—

गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गरिङ्गणगणैराकाशरङ्गाङ्गणे
साङ्गोपाङ्गकुरङ्गसङ्गिरुचिरापाङ्गायमानाङ्कैः।
रिङ्गन्तीव सरङ्गमङ्गलमहासंभङ्गवाराङ्गना
भङ्गीभङ्गमृदङ्गभङ्गुररवैः सत्यं समाप्लावयत् ॥ ४/४१ ॥

नाभिस्तदीय इदमाहवनीयकुण्डं रत्या जुहोति सह तत्र किमग्निहोत्रम्।
कामी गृही सततमध्यमवेदिकास्थो धूमोत्र रोमलतिकापि हितौ कुचाग्नी ॥५/५८॥

चकोरनिचयोच्चलच्चटुलकोटिचञ्चूपुट-
च्यवन्नवमरीचिकारुचिरचारुचन्द्रोदयात्।
चचार चिरचापलं चतुरचंचरीकश्चिरं
चमत्कृतिरसोच्चयाच्चलति चाम्बु चन्द्रोपलात् ॥ ७/५७ ॥

येशाकुन्तलवेणिकाप्रविलसद्रत्नावली मालती
नागानन्दमनर्घ्यवीरचरितं प्राबोधचन्द्रोदयम्।
प्राप्तुं वांछसि पार्वतीपरिणयात्संकल्पसूर्योदय-
स्त्वामद्यापि तपःकृशामपि कथं लग्नोस्त्ययं पद्मिनीम् ॥ ६/७५ ॥

१००—रघुनाथ विजय चम्पू[1] :—

श्री शैल कुलतिलक वेंकटार्य के पौत्र एवं दुर्गपुर निवासी तातार्य के द्वितीय पुत्र कवि सार्वभौम कृष्णकृत यह चम्पू काव्य है। इस चम्पू काव्य की रचना शक संवत् १७८७, ई० सन् १८६५ में हुई है (५/२५)। कवि के कथनानुसार इसकी रचना एक ही दिन में हुई है—

कविसार्वभौमविरुदाकलितः श्रीवेंकटार्यसहजातः।
रघुनाथविजयमेनं व्यतनोद् दिनमेकमेव कृष्णाख्यः ॥ ५/२४ ॥

इस चम्पू काव्य में तिरुमलनृपति द्वारा सम्मान प्राप्त एवं पंचवटी के समीपस्थ विंचूरपुर के भूपति रघुनाथ का चरित वर्णित है। इसमें पांच विलास हैं। प्रथम में नगरी विंचूरपुर एवं रघुनाथ का वर्णन है। द्वितीय विलास में रघुनाथ भूपति का अपनी नगरी से ससैन्य प्रस्थान एवं नासिक नगरी में प्रवेश वर्णित है। तृतीय विलास में त्र्यम्बक, सिद्धेश्वर, मोहिनीरूप भगवान, भीमाशंकर

---

१. गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई से प्रकाशित।

आदि का दर्शन तथा नीरानरसिंहपुर में प्रवेश, निजकुल दैवतनृसिंह का दर्शन, उनकी स्तुति चतुर्थ विलास में रघुनाथ का पाण्डुरंग गमन, लक्ष्मी एवं अच्युत का दर्शन, स्तुति कोलापुरी गमन, भगवान् नारायण का दर्शन, जगज्जननी का अवलोकन, करुणपुर होते हुये दत्तात्रेय को प्रणाम करने के उपरान्त कनकाचल पहुँचना, तुंगभद्रा पारकर विरूपाक्ष क्षेत्र पहुँचकर महादेव और गिरिजा का दर्शन, चक्रक्षेत्र में रामदर्शन जो हसितकोणपुर के समीपस्थ है, वर्णन करते हुए कवि पंचम विलास में चिन्तामणीश्वर क्षेत्र नामक कपिलाश्रम प्रदेश में अनेक मन्दिरों का दर्शन कर किष्किन्धादि रम्य प्रदेशों में विचरण करते हुये रघुनाथ का वर्णन करता है। रघुनाथ ने यहां चार मास निवास किया। तुंगभद्रा स्नान और चन्द्रशेखर का दर्शन किया। चिन्तामणि आश्रम में दान और ब्रह्मभोज के उपरान्त नासिक के त्र्यम्बकेश्वर महारथोत्सव के उपरान्त रघुनाथ भूपति विंचूरपुर लौट आये।

यह चम्पू काव्य यात्राप्रबन्ध एवं चरितवर्णन का मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है। रघुनाथ भूपति गाजे-बाजे के साथ तीर्थ यात्रा को गये, खूब दान किया, देवी-देवताओं की स्तुति की और घर लौट आये। पद्मनाभ ने वीरभद्र की या मित्रमिश्र ने वीरसिंह देव की दानशीलता की जितनी प्रशंसा की है—उससे कुछ कम ही प्रशंसा कृष्णकवि ने रघुनाथ की की है—

श्रीविह्वलेन्द्रवरपुत्रभवन्महार्घदानाम्बुभिर्भवति सन्ततमुर्वरा भूः।
नो चेदनेन कटुगर्जितभीकरेण मेघेन हन्त विषदेन भुवः किमु स्यात् ॥५/२०॥

कहीं-कहीं अलंकृत शैली सुन्दर है—

"पद्मिनीदूषणं पद्मिकुलेष्वेव पार्थिवप्रतारणविचारो वत्सरेष्वेव निरलंकृतित्वं कुकविकृतिष्वेव······पृ० ८।

क्रिया के प्रयोगों की कुशलता स्थान स्थान पर दिखाई पड़ती है। शानच् प्रयोग देखिये—

"मुच्यमानतुरंगाणां बध्यमानपल्ययाणाणां न्यस्यमानखलीनानां भूष्यमाणमदावलानां······।" पृष्ठ ९॥

अथवा—

अताडयन्त दुन्दुभीनमर्दयन्त मर्दला-
ननादयन्त काहलानसज्जयन्त वारणान्।
अवलगयन्त घोटकानधारयन्त खेटका-
नहेषयन्त सैन्धवांस्तदा मुदा जना घनाः ॥ ४/२ ॥

कवि की प्रतिभा रघुनाथ भूपति के ब्रह्मभोज में रमने लगी है (पृ० ४२)। कहीं कहीं तो—

"कृतेषु करिष्यमाणेषु क्रियमाणेषु समस्तवस्तुपरिवेषणेषु इतोपि किंचिदधिकं परिवेष्यतां घृतं किं त्वयोपार्जितं नश्यति वा त्वत्पित्रार्जितं भ्रश्यति वा आनीयतां सूपो यथेष्टं वयमप्यौत्तराहा न दाक्षिणात्या……" पृ० ३८ ।

शब्दों एवं भाषा पर प्रगाढ़ अधिकार रखते हुये भी करद प्रतिभा कितनी कुंठित हो जाती है, इसका सुन्दर निदर्शन इस चम्पू काव्य में हुआ है ।

१०१—कवि मनोरंजक चम्पू[1] :—

इस चम्पू काव्य के रचयिता सीताराम सूरि तिरुनेलवेलि जिले के तिरुकुरुगिड ग्राम में सन् १८३६ में पैदा हुये थे । इनके पिता का नाम रामकृष्ण एवं पितामह का नाम रघुनाथ सूरि था । यह वेदों और शास्त्रों के प्रख्यात विद्वान थे । यह रामस्वामी शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध थे । श्रीमद्भागवत के यह उत्तम प्रवक्ता माने जाते थे । शृङ्गारमंजरी एवं श्रुतिगीता पर भाष्य इनकी अन्य कृतियां हैं । इस काव्य की रचना सन् १८७० ई० में हुई ।[2] इनका देहावसान १९०६ में हुआ था ।

इस चम्पू काव्य में चार उल्लासों में परम भागवत सीताराम नामक एक ब्राह्मण की तीर्थयात्रा का वर्णन है । नायक सीताराम कवि का गुरु भी है । कवि ने नायक का परिचय आरंभ में दिया है । उसके अनुसार श्रीवत्स गोत्र के शेषाद्रि नामक एक ब्राह्मण कांची के समीप वेदभृङ्ग नामक ग्राम में रहते थे । एक लम्बी तीर्थयात्रा के उपरान्त आकर वह पयःप्रणाली नगर (पल्लमडई) में बस गये । शेषादि के पुत्र वेंकटराम ने सीताराम की पुत्री सीता से विवाह किया । वेंकट और सीता से सीताराम उत्पन्न हुये, जो इस ग्रन्थ के नायक हैं ।[3]

प्रथम उल्लास के आरंभिक भाग में नायक का परिचय एवं उसकी शिक्षा-दीक्षा का विवरण है । उत्तरभाग एवं शेष तीन उल्लासों में नायक की तीर्थयात्रा वर्णित है । यात्रा में प्रमुख तीर्थस्थानों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है, शेष का संक्षेप में । वर्णित तीर्थस्थान निम्नलिखित हैं—

१—देवनायक स्थलम् (नंगुनेरि) पृष्ठ १८, कुरुंगम् (तिरुकुरुंगुडि) पृ० १८, दुर्गास्थलम् (कुमारी अन्तरीप) पृ० १९, स्यानन्दूरम् (त्रिवेन्द्रम) पृ० २० ।

---

१. दि यूनिवर्सिटी मैन्यूस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम् द्वारा प्रकाशित, नं० १८, १९५० ई० ।

२. द्रष्टव्य—पृ० ८९ ।

३. द्रष्टव्य—पृ० १४ ।

२—जनादर्नक्षेत्रम् (वर्कल) पृष्ठ २१, रजतपीठपुरम् (उडुपि) पृ० २२, मुखाम्बिकापुरम् (मुकाम्बि) पृ० २३, गोकर्ण पृ० २४, पूना पृ० २५, पण्ड्रा (पंढरपुर) पृ० २५, पंचवटी पृ० २७, समन्तपंचक पृ० २८, कुरुक्षेत्र पृ० २९, मथुरा पृ० ३०, हरिद्वार पृ० ३१, बद्रीनाथ पृ० ३२, केदारनाथ पृ० ३२, काम्पिल्यम् (नेपाल) पृ० ३३, मिथिला पृ० ३४, अयोध्या पृ० ३४ ।

३—शृंगिवेर-पृ० ४३, चित्रकूट-पृ० ४३, वाराणसी पृ० ४४, गया पृ० ४५, जगन्नाथ पृ० ४६, भद्राचल पृ० ४७, श्यामवारणधरणीधर (कालहस्ति) पृ० ४८, शेषाचल (तिरुपति) पृ० ४९-५९, कांचीपुर पृ० ५९ ।

४—श्रीरंग पृ० ६५, मथुरा पृ० ६७, सेतु पृ० ६८, रणनाथ पृ० ६९, कुरुकापुरी (अलवर्तिरुनगरी) पृ० ७०, शालिवाटिकापुरम् (तिरुनेवेलि) पृ० ७४, वनतीर्थ (श्रीविल्लीपुत्तुर) अभिनवधन्वीपुरम् पृ० ७५ ।

अन्त में नायक का श्रीवेर में वसना एवं उसके धार्मिक कार्यों का वर्णन किया गया है । कवि की प्रवृत्ति नगरों के वर्णन में अधिक रमी है । श्रीवेर त्रिवेन्द्रम् , पूना, वाराणसी, तिरुपति, कांची और श्रीरंग का विस्तृत वर्णन हुआ है । गंगा, वसन्त और ग्रीष्म का भी मनोहर वर्णन हुआ है । विविध देवताओं के इसमें स्तोत्र भी हैं । द्वितीय उल्लास में तो अयोध्या वर्णन के समय सम्पूर्ण रामकथा संक्षेप में प्रस्तुत कर दी गई है । शेषाचल और कांची का वर्णन अयोध्या के बाद अन्य तीर्थों से विस्तृत है ।

परम भागवत होते हुये भी कवि रामानुज मत के प्रति उन्मुख ज्ञात होते हैं । उपमाओं में—

"रामानुजाचार्यचित्तमिव यामुनतीर्थोल्लसमानं ।" पृ० २९
"रामानुजाचार्यवचांसीव यामुनतीर्थसंवर्धितानि ॥" पृ० ३०

इस प्रकार के प्रयोगों से कवि की रुचि स्पष्ट होती है ।

गद्य-पद्य दोनों ही भाग प्रौढ़ हैं । गद्य में उत्कलिकाप्राय का ही प्रयोग हुआ है । अलंकारों में अनुप्रास, श्लेष, यमक और विरोधाभास के दर्शन अधिक होते हैं ।

"तदनन्तरं कलानिधाविव कुवलयोल्लासके विन्ध्यमहीध्र इव राजहंससंसेव्यमाने नन्दनन्दन इव सुकरसन्धृतगोत्रे रत्नाकर इव वाहिनीशे त्रिदशेन्द्र इव सन्नन्दने···कुटिलता कुन्तलेषु दण्डः छत्रेषु अरियोगः स्यन्दनमकरन्दारविन्देषु अंगरहितता रतिकान्ते सरोगता सारसेषु विग्रहप्रयोगः काव्यपाठे अपार्थता धार्तराष्ट्रेषु शल्यभेदनं कुरुक्षेत्रे······पृ० ४२ ।

सप्त गोदावर जाने का वर्णन देखिये—

"तदनन्तरं कमलापतिकथया संसारकाननवदनायासादगणितमृगखगगणाकीर्णानि धरणीधरकटककाननानि केलिलालससारसकुलधवलच्छदनिलयायितकमलानि विमलानि अनिलचालितनीलोत्पलकुलानि कूलविलसितवनलालितघनपल्लवविपुलफलालसमालतीमुखलतासंवेष्टितनगमालोल्लसितान्यतिक्रम्य च तटिनीतटाकादीनि सानुगः समवलोकितमृगराजगिरिः समाजगाम सप्तगोदावरं स हि महानुभावः।" पृ० ४८।

वर्णन में यथार्थता अधिक है। वाराणसी के वर्णन में घरट्टरव को भी कवि ने सुना है—

पण्यवीथिषु घरट्टजं रवं सर्वतः प्रसृमरं मनोहरम्।
नीलकंठनिवहा निशम्यते लेभिरेऽभ्ररवशंकया मुदम्॥ ३/११॥

कथा का आरंभ करते हुए कवि ने कहा है—

वेदव्रातविरुद्धसूक्तितरुणीवेणीकृपाणीभव-
द्वाणीदुग्धतरंगिणीशशरणीभूतान्तरंगो गुरुः।
कारुण्यार्जववीचिकान्तरसदासंचारशीतीभव-
त्स्वान्तः स्वां मतिमातनोत्त्रिपथगायात्रामिषाद्दक्षणे॥१/८२॥

अन्तिम पद के अनुसार गोलीला पद एवं चिन्तक गद्य से समन्वित यह चम्पू काव्य है—

गोलीलोपेतैस्सत्पद्यैर्गद्यैः सचिन्तकार्थैश्च।
कविचित्तरंजकोऽयं राजत्वासोमभास्करं राजन्॥ ४/७६॥

यमक और श्लेष सम्पन्न ऐसे गद्य की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

"किमियं सुमनाः सुमना विभाति मीनकेतनलक्ष्यतामधिगतेव चिरम्।
सुरतया सुरतया सनययानया क्रीडयामो यामो वयमेवमस्या वसतिम्॥
सुतनुसुतनुराज्ञावशगोऽनंगोऽस्या यस्या यदीयोऽयं सदये दयां भवभूतिमती सुमतिर्मयि सततम्॥
ललनालतिलतिकाकाया यामिनीशलेपनप्रभयेयम्।
सा रमणी सारमणीयः संविमथ्नाति याति या मानसमपीयम्॥ पृ०८२

१०२—कुमारसम्भव चम्पू[1] :—

यह चम्पू काव्य तंजोर के शासक महाराज शरफोजी द्वितीय (शरभोजी) की रचना है। शरभोजी का शासनकाल सन् १८०० से १८३२ ई० तक था।

---

१. वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम् से १९३९ में प्रकाशित।

संस्कृत और मराठी के यह उत्कृष्ट कवि थे। इनकी राज्य सभा में विविध भाषाओं के अन्य कवि थे। तंजोर के सरस्वती महल पुस्तकालय को व्यवस्थित करने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। संस्कृत ग्रन्थों के संकलन और प्रतिलिपि कराने के लिए धन-व्यय के साथ ही इन्होंने प्रचुर श्रम भी किया। सरस्वती महल पुस्तकालय के साथ इनका नाम जुड़ा हुआ है। स्मृतिसारसमुच्चय, स्मृतिसंग्रह, मुद्राराक्षस छाया और कुमारसंभव चम्पू इनकी चार रचनायें उपलब्ध हैं।

"कुमारसंभव चम्पू" सरल प्रसाद-गुण-सम्पन्न एवं प्रवाहमयी भाषा में निर्मित है। भावों और विचारों में कालिदास के कुमारसंभव से पर्याप्त साम्य है। चम्पू शैली के सम्बन्ध में शरभोजी ने भोज के चम्पू रामायण का अनुसरण किया है। रचना में कुल चार आश्वास हैं जिनमें पार्वतीजन्म, कामदहन, पार्वती का तप, एवं विवाह वर्णित है।

वर्ण्य विषय में ही कालिदास का अनुसरण नहीं किया गया है अपितु शैली एवं शब्दावली में भी। जिस प्रकार भोज ने वाल्मीकि का अनुसरण किया है वैसे ही शरभोजी ने कालिदास का। कतिपय उद्धरण देखे जा सकते हैं।

अस्ति स्वस्तरुवृन्दसुन्दरतरच्छायोल्लसत्कन्दर–
क्रीडत्किंनरमानिनी जनमनः स्वाच्छन्द्यसाक्षात्कृती।
लोकालोककुलाचलादिकमहाशैलाग्रणीर्देवता–
रूपी नाम हिमाचलो महिमभू भूमोत्तरस्यां दिशि॥१/७॥कुं०सं०चम्पू॥

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ कु०सं०१/१॥

आलोक्यैनं गिरीशं हिमगिरितनया वेपमानांगयष्टिः
पादं सोत्क्षेप्तुकामा पथि गिरिरचितस्वोपरोधा नदीव।
नो तस्थौ नो ययौ वा तदनु भगवता सोदिता ते तपोभिः
क्रीतो दासोऽहमस्मीत्यथ नियममसावुत्ससर्जासकामा॥चम्पू ३/३१॥

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥ कु० सं० ५/८५॥

अद्य प्रभृत्यनवतांगि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरितिवादिनि चन्द्रमौलौ।

अह्वाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥ ५/८६ कु० सं० ॥

गद्यभाग में भी कुमारसंभव का प्रचुर अनुकरण दिखाई पड़ता है—

"कीचकरन्ध्रेषु दरीमुखोद्धतसमीरणपूरणमेव किंनरगणोपगानम्, कण्डूलवेतण्डकपोलकषणोद्भूतसरलगन्ध एव सानुसुरभीकरणपटुः, वनितासखवनेचराणां ज्योतिर्लता एव सुरतप्रदीपाः अतिघनजघन-पयोधराणामश्वमुखीनां तुहिनदुर्गमेऽपि मार्गे मन्दमेव गमनम्... ।"पृ० ४

ये पंक्तियाँ कालिदास के कुमारसंभव के क्रमशः प्रथम सर्ग के आठवें से ग्यारहवें श्लोक के गद्यीकरण मात्र हैं।

अन्य प्रकाशित एवं अप्रकाशित चम्पू काव्य

प्रकाशित अथवा अप्रकाशित उन चम्पू काव्यों का विवरण जो काव्यात्मक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं—

१०३—**भोजप्रबन्ध**—लेखक वल्लाल पंडित। प्रकाशित।

१०४—**राजशेखरचरित**—ले० कविकुंजर, डी० सी० मद्रास ८१६७। अप्रकाशित।

१०५—**मुक्तचरित्र**—ले० रघुनाथ दास। वृन्दावन से १९१७ में प्रकाशित।

१०६—**रामायणचम्पू**—ले० रामानुजदेशिक। डी० सी० २१, ८५०४। अप्रकाशित।

१०७—**त्रिपुरविजयचम्पू**—ले० नीलकण्ठ दीक्षित। तंजोर कैट० बरनल पृ० १५८। अप्रकाशित।

१०८—**शाहराजसभा सरोवर्णिनी**—ले० लक्ष्मण कवि। तंजोर कैट ४२३५। अप्रकाशित।

१०९—**रामायण युद्धकाण्ड**—ले० घनश्याम कवि। डी० सी० २१, ८६१५-१६। अप्रकाशित।

११०—**रामायण युद्धकाण्ड**—ले० मुक्तीश्वर दीक्षित। ए० एच० आर० ३, १६८१। अप्रकाशित।

१११—**वीरभद्रविजय**—ले० एकाम्रनाथ दीक्षित। ट्रियेनियल कैट० १, १, १९१०-१३। अप्रकाशित।

११२—**रुक्मिणीचम्पू**—ले० गोवर्धन। कलकत्ता कैट० १, ५२७। अप्रकाशित।

११३—**सुमतीन्द्रजयघोषणा**—ले० सुमतीन्द्र। तंजोर कैट० ४२३७। अप्रकाशित।

११४—**भद्राचलचम्पू**—ले० राघवाचार्य। कोंकण और वेजवाडा से प्रकाशित।

११५—**कर्णचम्पू**—ले० कक्का भट्ट। जी० आर० ए० एस, बम्बई, वो० १, १२४३। अप्रकाशित।

११६—**शिवचरित्रचम्पू**—ले० गंगाधर कवि। अप्रकाशित।

११७—**श्रीनिवासमुनियात्रा-विलास**—ले० श्रीनिवास रामानुज दास। डी० सी० ३, २८८२। अप्रकाशित।

११८—**श्रीनिवासमुनि-यात्राविलास**—ले० गोविन्ददास। टी० सी० ३, २८८५। अप्रकाशित।

११९—**श्रीनिवासविलासचम्पू**—ले० कृष्ण कवि। गवर्नमेन्ट प्रेस मद्रास से प्रकाशित।

१२०—**कृष्णविलासचम्पू**—ले० लक्ष्मण कवि। डी० सी० मद्रास १२२२८। अप्रकाशित।

१२१—**श्रुतकीर्तिविलासचम्पू**—ले० सूर्यनारायण। डी० सी० २१, ८५९३। अप्रकाशित।

१२२—**इन्दिराभ्युदयचम्पू**—ले० रघुनाथ। मैसूर कैट० २६४। अप्रकाशित।

१२३—**उषापरिणयचम्पू**—ले० अज्ञात। डी० सी० मद्रास १२३०२। अप्रकाशित।

१२४—**अनिरुद्धचम्पू**—ले० अज्ञात (देवराज)। सरस्वती भवन वाराणसी से प्रकाशित।

१२५—**दमयन्ती-परिणय**—ले० अज्ञात। टी० सी० ५, ६४१५। अप्रकाशित।

१२६—**पद्मावती-परिणय**—ले० श्रीशैल। संस्कृत सीरिज में कार्वेट नगर से प्रकाशित।

१२७—**कालिन्दी-मुकुन्दचम्पू**—ले० अज्ञात। डी० सी० मद्रास, १२२२६। अप्रकाशित।

१२८—**मीनाक्षी-परिणय**—ले० आदिनारायण। मैसूर कैट० २६७। अप्रकाशित।

१२९—**पद्मनाभचरितचम्पू**—ले० कवि० कृष्ण। ट्रावंकोर कैट० ८१। अप्रकाशित।

१३०—**यमुनावर्णनचम्पू**—ले० पंडितराज जगन्नाथ । उल्लेख : भारतीय साहित्यशास्त्र, बलदेव उपाध्याय पृ० १५० ।

१३१—**श्रीकृष्णचम्पू**—ले० कृष्ण कवि । डी० सी० २१, ८१८९ । अप्रकाशित ।

१३२—**सत्राजितीपरिणयचम्पू**—ले० कृष्णदास गांगेय । टी० सी० ३, २७३२ । अप्रकाशित ।

१३३—**आंजनेय-विजय**—ले० नृसिंह कवि । मैसूर २६१ । अप्रकाशित ।

१३४—**हनुमदापादान**—ले० नृसिंह कवि । तंजोर कैट० वो० ४, ४३९७ । अप्रकाशित ।

१३५—**पुरुषोत्तमचम्पू**—ले० नृसिंह आचार्य । मैसूर २७४ । अप्रकाशित ।

१३६—**वीरभद्र-विजय**—ले० मल्लिकार्जुन । आई० सी० ४, ६११३ । अप्रकाशित ।

१३७—**कलाकौमुदी**—ले० चक्रपाणि । सी० सी० १, ७७७ । अप्रकाशित ।

१३८—**सत्यसंधचरित**—ले० कल्पवल्ली कवि । मैसूर २७१ । अप्रकाशित ।

१३९—**चिन्तामणि-विजय**—ले० शेष कवि । मैसूर २६४ । अप्रकाशित ।

१४०—**यादवशेखरचम्पू**—ले० भाष्यकार । मैसूर २६९ । अप्रकाशित ।

१४१—**जैनाचार्यविजय**—ले० अज्ञात कवि । डी० सी० २६ । ९७४६ । अप्रकाशित ।

१४२—**सीताविजय**—ले० घंटावतार । मैसूर २७२ । अप्रकाशित ।

१४३—**वकवध**—ले० अज्ञात । नारायण भट्ट (?) तंजोर कैट० ३, ४०११ । अप्रकाशित ।

१४४—**कुमाराभ्युदय**—ले० अज्ञात । तंजोर कैट० ३, ३५२१ । अप्रकाशित ।

१४५—**पञ्चेन्द्रोपाख्यान**—ले० अज्ञात । टी० सी० ३, ३४२० । अप्रकाशित ।

१४६—**हयवदनविजय**—ले० वेंकटराघव । मैसूर कैट० २७२ । अप्रकाशित ।

१४७—**कुमार-विजय**—ले० वभास्कर । टी० सी० ४, ५८५१ । अप्रकाशित ।

१४८—**कल्याणचम्पू**—ले० पप्पयाराध्य । टी० सी० ५।६५७५ । अप्रकाशित ।

१४९—**भार्गवचम्पू**—ले० अज्ञात । गोपालनारायण कंपनी बम्बई से प्रकाशित ।

१५०—**संपत्कुमार-विलास**—ले० रंगनाथ । डी० सी० २१।८८५० । अप्रकाशित ।

१५१—**जप्येशोत्सव**—ले० ेंकटसुब्बा । मैसूर २६४ । अप्रकाशित ।

१५२—**कृष्ण-चम्पू**—ले० शेष सुधि। गोदावरी जिले के पी० वी० सुब्रह्मण्य शास्त्री राजोले के पास हस्तलिखित प्रति प्राप्य।
अप्रकाशित।

१५३—**गोपालचम्पू**—ले० विश्वनाथ सिंह। मित्रा कैट० बा० ल० १, ७३।
अप्रकाशित।

१५४—**वालभागवतम्**—ले० पद्मराज। राजमहेन्द्री से प्रकाशित।

१५५—**भागवतचम्पू**—ले० सोमशेखर। टी० सी० ३, ३१४५। अप्रकाशित।

१५६—**बालकृष्णचम्पू**—ले० जीवन शर्मा। मित्रा कैट० वौल्यूम १, ७१।
बम्बई से प्रकाशित।

१५७—**श्रीनिवासचम्पू**—ले० श्रीनिवास। तंजौर कैट० ७, ३१६८।
अप्रकाशित।

१५८—**रामकथासुधोदयम्**—ले० श्रीनिवास कवि। मैसूर कैट० २६९।
अप्रकाशित।

१५९—**मुकुन्द चरित**—ले० श्रीनिवास। मैसूर २६८। अप्रकाशित।

१६०—**बल्लीपरिणय**—ले० सुब्रह्मण्य यज्व। मद्रास से प्रकाशित।

१६१—**काव्यकलापचम्पू**—ले० महानन्द धीर। मित्रा कैट० वौल्यूम २,९३१।
अप्रकाशित।

१६२—**अश्वत्थक्षेत्रयागचम्पू**—ले० अज्ञात। त्रावंकोर कैट० ७९। अप्रकाशित।

१६३—**कृष्णचम्पू**—ले० परशुराम कवि। म, १०६। अप्रकाशित।

१६४—**आनन्ददामोदरचम्पू**—ले० भुवनेश्वर कवि। क० ए० सो० बं० २३।
अप्रकाशित।

१६५—**उत्तरचम्पू**—ब्रह्मपंडित-कृष्णमाचारी का इतिहास। उल्लेखमात्र।

१६६—**उत्तरचम्पू**—ले० राघवभट्ट। कृष्णमाचारी का इतिहास। उल्लेखमात्र।

१६७—**आनन्दवृन्दावन**—ले० माधवानन्द। अवध २१, ९२। अप्रकाशित।

१६८—**गोपालचम्पू**—ले० किशोरविलास। क० कं० ३, ३५। अप्रकाशित।

१६९—**कृष्णविजय**—ले० वीरेश्वर। टी० सी० २, २२६०। अप्रकाशित।

१७०—**कृष्णविजय**—ले० कवि कृष्णराज। राइस कैट० २४८। अप्रकाशित।

१७१—**वृन्दावन-विनोद**—ले० रुद्र न्यायवाचस्पति। अप्रकाशित।

१७२—**यदुगिरिभूषणचम्पू**—ले० अप्पलाचार्य। कु० वौल्यूम ४, ३००५।
अप्रकाशित।

१७३—**हरिश्चन्द्रचरित्रचम्पू**—ले० गुरुराम। कु० वौल्यूम ३, २०८३।
अप्रकाशित।

१७४—**गौरी-परिणयचम्पू**—ले० पिन्नावेंकट सूरि। टी० सी० ३, ३०८१। अप्रकाशित।

१७५—**रुक्मिणीवल्लभ-परिणय**—ले० नृसिंह ताता। मैसूर १७०। अप्रकाशित।

१७६—**वीरचम्पू**—ले० पद्मानन्द। त्रावंकोर कैट० १८२। अप्रकाशित।

१७७—**सुदर्शन-चम्पू**—कृष्णानन्द कवीन्द्र। काव्यमाला बम्बई से प्रकाशित।

१७८—**वज्रमुक्ति-विलास**—ले० योगानन्द। मैसूर २७०। अप्रकाशित।

१७९—**मृगया चम्पू**—कविराज। टी० सी० ४, ३२१८। अप्रकाशित।

१८०—**पार्वती-परिणयचम्पू**—ले० रामेश्वर। टी० सी० ३,४१३८ अप्र०।

१८१—**उत्तरचम्पू**—ले० हरिहरानन्द। एन० डब्लू २७०। अप्रकाशित।

१८२—**रामायणचम्पू-युद्धकाण्ड**—ले० गरलपुरीशास्त्रिन्। मैसूर से प्रकाशित।

१८३—**भागवतचम्पू**—ले० गोपाल शास्त्रिन्, कृष्णमाचारी का इतिहास-उल्लेख।

१८४—**भारत-चरित**—ले० भागवतकृष्ण शर्मा, मद्रास से प्रकाशित।

१८५—**कृष्णराजाभ्युदय**—ले० भागवतकृष्ण शर्मा। मद्रास से प्रकाशित।

१८६—**अभिनव भारतचम्पू**—ले० श्रीकण्ठ और चन्द्रशेखर। मैसूर, कैट० २६३। अप्रकाशित।

१८७—**जगद्गुरुविजय**—ले० श्रीकण्ठ शास्त्री। मैसूर से प्रकाशित।

१८८—**शम्बरासुरविजय**—ले० सोंठीभद्राद्रिरामशास्त्रिन्। मद्रास से प्रकाशित।

१८९—**रामायणचम्पू**—ले० सुन्दरवल्ली। मद्रास से प्रकाशित।

१९०—**रामचर्यामृत**—ले० कृष्णायंगर। मैसूर से प्रकाशित।

१९१—**रामाभ्युदय**—ले० अवांचिराम शास्त्री। टी० सी० २, १८१८। अप्रकाशित।

१९२—**सीताचम्पू**—ले० गुण्डूरामास्वामी। कृष्णमाचारी का इतिहास-उल्लेख।

१९३—**रामचम्पू**—ले० बन्दलामुडिरामस्वामी। मद्रास से प्रकाशित।

१९४—**वासुदेवानन्दिनी**—ले० गोपालकृष्ण। सी० सी० १, १६१। अप्रकाशित।

१९५—**महिसुराभिवृद्धि**—ले० वेंकटराम शास्त्री। अप्रकाशित।

१९६—**महीसुरदेशाभ्युदय**—ले० सीताराम कवि। अप्रकाशित।

१९७—**कृष्णप्रभावोदय**—ले० अनवत्ति श्रीनिवासाचार्य। अप्रकाशित।

१९८—**कृष्णराजकालोदय**—ले० यदुगिरि अनन्ताचार्य। अप्रकाशित।

१९९—**कृष्णराजेन्द्र-यशोविलास**—ले० एस० नरसिंहाचार्य। अप्रकाशित।

२००—**श्रीकृष्णराजाभ्युदय**—ले० गीताचार्य। मैसूर संस्कृत कालेज जरनल में प्रकाशित १-४।

२०१—**श्रीकृष्णनृपोदयप्रबन्ध**—ले० कुक्के सुब्रह्मण्य शास्त्री। अप्रकाशित। उपर्युक्त ६ रचनायें ऐतिहासिक हैं और मैसूर के राजा कृष्ण के अभ्युदय का वर्णन प्रस्तुत करती हैं। सबका रचनाकाल १९ वीं शताब्दी है।

२०२—**सारावतीजलपातवर्णनम्**—ले० कुक्के सुब्रह्ममण्यशास्त्री। अप्रकाशित।

२०३—**गंगाविलासचम्पू**—ले० गोपाल। सी० सी० २, ३२। अप्रकाशित।

२०४—**जगदम्बाचम्पू**—ले० गोपाल। सी० सी० २, ३७। अप्रकाशित।

२०५—**वाणायुधचम्पू**—ले० कोंकडी तम्बीरन्। अप्रकाशित

२०६—**गजेन्द्रचम्पू**—ले० पंतविट्ठल। पूना से प्रकाशित।

२०७—**विशाखातुलाप्रबन्ध**—ले० ए० आर० राजवर्मा। अप्रकाशित।

२०८—**विशाखासतुयात्रावर्णनम्**—गणपति शास्त्रिन्। अप्रकाशित।

२०९—**विशाखाकीर्तिविलास**—ले० रामास्वामी शास्त्री। अप्रकाशित।

ये तीनों चम्पू काव्य त्रावंकोर के महाराज विशाख के स्तुतिपरक चरितात्मक काव्य हैं।

२१०—**शंकर चम्पू**—ले० लक्ष्मीपति। मैसूर २१७। अप्रकाशित।

२११—**अभिनवरामायण**—ले० लक्ष्मण दान्ते। भण्डारकर लिस्ट १, (१८९३) नं ३९। अप्रकाशित।

२१२—**लक्ष्मीश्वरचम्पू**—ले० रमाबाई। कलकत्ता से प्रकाशित।

२१३—**स्यानन्दूरपूरवर्णनचम्पू**—ले० रामवर्म। अनन्तशयन से प्रकाशित।

२१४—**लक्ष्मीश्वरचम्पू**—ले० अनन्तसूर्य। बम्बई से प्रकाशित।

२१५—**राघवचम्पू**—ले० असूरि अनन्ताचार्य। बेजवाडा से प्रकाशित।

२१६—**गङ्गागुणादर्श**—ले० दत्तात्रय शास्त्री। बम्बई से प्रकाशित।

२१७—**रथशेखरचरित**—ले० दयावर्धनगणि। बम्बई से प्रकाशित।

२१८—**कुवलयाश्वविलासचम्पू**—त्रिविक्रम कवि। बम्बई से प्रकाशित।

२१९—**शंकरमन्दारसौरभ**—ले० नीलकण्ठ। बम्बई यूनिवर्सिटी, मैन्यूस्क्रिप्ट, वोल० २, २२९०। अप्रकाशित।

२२०—**मानभूपालचरित**—ले० वेदान्तरामानुज। मैन्यूस्क्रिप्ट त्रिवेन्द्रम्, नं० ३८८। अप्रकाशित।

२२१—**प्रदोषमाहात्म्यम्**—ले० प्रभाकर तालमण। त्रिचूर से प्रकाशित।

२२२—**शंकराचार्यचम्पूकाव्यम्**—ले० बालगोदावरी। बम्बई से प्रकाशित।

२२३—**वेहुलानरुखिन्दरम्**—ले० भगवच्चन्द्र । कलकत्ता से प्रकाशित ।
२२४—**पुरुदेवचम्पू**—ले० जिनदास शास्त्री । बम्बई से प्रकाशित ।
२२५—**गुणेश्वरचरितचम्पू**—ले० बद्रीनाथ झा । काशी से प्रकाशित ।
२२६—**प्रतापचम्पू**—ले० दिलीप कवि । प्रकाशित ।
२२७—**भारतचम्पू**—ले० मथुराप्रसाद । प्रकाशित ।

उक्त दोनों चम्पू काव्यों का उल्लेख डा० सूर्यकान्त ने नृसिंहचम्पू की भूमिका में किया है ।

राइस और गुस्ताव आफ्रेट के कैटलाग में निम्नलिखित चम्पू काव्यों का भी उल्लेख हुआ है—

२२८—**उक्लचम्पू**—ले० उक्ल । राइस २२८५ । अप्रकाशित ।
२२९—**यादवचम्पू**—ले० अज्ञात । आफ्रेट ५१४० अप्रकाशित ।
२३०—**अश्वमेधचम्पू**—ले० अज्ञात । आफ्रेट, वोल्यूम २, १८८५ ई० पृ० ६७१ । अप्रकाशित ।
२३१—**चूडामणिचम्पू**—ले० अज्ञात । आफ्रेट, वही, पृष्ठ ६७१ । अप्रकाशित ।
२३२—**दशारामचम्पू**— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२३३—**दिक्षाटनचम्पू**— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२३४—**लक्ष्मणचम्पू**— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२३५—**प्रणयीमाधवचम्पू**—ले० माधव कवि । पिटरसंस, थर्ड रिपोर्ट, ३१९ । (चिरंजीव भट्टाचार्य के प्रकाशित माधवचम्पू का विवरण दिया जा चुका है ।)
२३६—**अभिनव चम्पूरामायण**—ले० शाम्ब शास्त्री । अप्रकाशित ।
२३७—**उत्तरचम्पू**—ले० यतिराज । अप्रकाशित ।
२३८—**उत्तरचम्पू**—ले० शंकराचार्य । अप्रकाशित ।
२३९—**उत्तरचम्पू**—ले० वेंकटकृष्ण । अप्रकाशित ।
२४०—**किरातार्जुनीयचम्पू**—ले० देवराज । अप्रकाशित ।
२४१—**किशोरचरितचम्पू**—ले० अज्ञात । अप्रकाशित ।
२४२—**नृसिंहचम्पू**—ले० संकर्षण । अप्रकाशित ।
२४३—**रामचन्द्रचम्पू**—ले० रामचन्द्र दीक्षित । अप्रकाशित ।
२४४—**शालिवाहनकथा**—ले० शिवदास सूरि । प्रकाशित ।
२४५—**समरादित्य कथा**—ले० अज्ञात । अप्रकाशित ।

(२३६ से २४५ तक के चम्पू काव्यों का उल्लेख कृष्णमाचारी ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में किया है ।)

परिगणित चम्पूकाव्यों की सूची और उनका मूलस्रोत

क्रमसंख्या	चम्पूकाव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
१२४	अनिरुद्ध चम्पू	अज्ञात (देवराज)	भाग० १०।६२-६३
२३६	अभिनव चम्पू रामायण	शाम्बशास्त्री	रामायण
२११	अभिनव रामायण	लक्ष्मण दान्ते	,,
१८६	अभिनव भारत चम्पू	श्रीकंठ चन्द्रशेखर	महाभारत
१२	अमोघ राघव	दिवाकर	रामायण
१६२	अश्वत्थ क्षेत्र याग	अज्ञात	स्थानीय
२३०	अश्वमेध चम्पू	,,	महाभारत
१६	आचार्य दिग्विजय	वल्ली सहाय कवि	चरित शंकराचार्य
१३३	आंजनेय विजय	नृसिंह कवि	रामायण
३१	आनन्द कन्द	समरपुंगव दीक्षित	चरित शैवसन्त
५२	,, ,,	मित्र मिश्र	भागवत
१७	आनन्दवृन्दावन चम्पू	कविकर्णपूर	भागवत १० स्कन्ध
१६७	आनन्द वृन्दावन	माधवानन्द	वृन्दावन माहात्म्य
१६४	आनन्द दामोदर	भुवनेश्वर	भागवत
६७	आनन्द रंग विजय	श्रीनिवास कवि	चरित ऐतिहासिक
१२२	इन्दिराभ्युदय	रघुनाथ	स्थानीय
६	उदयसुन्दरी कथा	सोड्ढल	काल्पनिक
६२	उत्तर चम्पू रामायण	राघवाचार्य	रामायण
७८	,, ,,	भगवन्त	,,
२३७	उत्तर चम्पू	यतिराज	,,
२३८	,,	शंकराचार्य	,,
२३६	,,	वेंकट कृष्ण	,,
१६५	,,	ब्रह्मपंडित	,,
१६६	,,	राघवभट्ट	,,
१८१	,,	हरिहरानन्द	,,
५६	उत्तररामचरित	वेंकटाध्वरि	रामायण
२२८	उत्कल चम्पू	उत्कलकवि	अज्ञात
१२३	उषापरिणय चम्पू	अज्ञात	भागवत
११५	कर्ण चम्पू	कक्का भट्ट	महाभारत

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
२५	कल्याणवल्ली कल्याण	रामानुजदेशिक	लिंगपुराण गौरी कल्याण
१४८	कल्याण चम्पू	पप्पय्याराध्य	लिंग शिव
१३७	कला कौमुदी	चक्रपाणि	अज्ञात
१०१	कवि मनोरंजक चम्पू	सीताराम सूरि	यात्रा प्रबन्ध
२०	काकुत्स्थ विजय	वल्लीसहाय कवि	रामायण
९२	कार्तवीर्य प्रबन्ध	राम (युवराज)	रामायण
१२७	कालिन्दी मुकुन्द चम्पू	चक्रप	भागवत
१६१	काव्यकलाप चम्पू	महानन्द धीर	अज्ञात
४८	किरात चम्पू	नारायण भट्ट	महाभारत
२४०	किरातार्जुनीय	देवराज	,,
२४१	किशोर चरित	अज्ञात	चरित
७७	कुमार भार्गवीय	भानुदत्त	रुद्रसंहिता पार्वती खण्ड १–५५
१४४	कुमाराभ्युदय	अज्ञात	,,
१४७	कुमार विजय	भास्कर	रुद्रसंहिता कुमार खंड।
१०२	कुमारसंभव	शरभोजिराज	रु० सं० पा० खं०
२१८	कुवलयाश्वविलास चम्पू	त्रिविक्रम	महाभारत
१५२	कृष्ण चम्पू	शेषसुधी	भागवत
१६३	,,	परशुराम कवि	,,
१२०	कृष्णविलास चम्पू	लक्ष्मण कवि	स्थानीय
८०	,,	नृसिंह सूरि	,,
१६६	कृष्णविजय	वीरेश्वर	ऐतिहासिक
१७०	,,	कृष्णराज	,,
१६७	कृष्णप्रभावोदय	अनवत्ति श्रीनिवासाचार्य	ऐतिहासिक
१८५	कृष्णराजाभ्युदय	भागवतकृष्ण	,,
१६८	कृष्णराजकालोदय	यदुगिरिअनन्ताचार्य	,,
१६६	कृष्णराजेन्द्रयशोविलास	एस० नरसिंहाचार्य	,,
६०	केरलाभरणम्	रामचन्द्रदीक्षित	यात्राप्रबन्ध

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
४१	कोटिविरह	नारायण भट्ट	काल्पनिक
४६	कौन्तेयाष्टक	,,	महाभारत
२०६	गजेन्द्रचम्पू	पन्त विट्ठल	भागवत ८।३-४
२२५	गुणेश्वरचरित	बद्रीनाथ झा	चरित
१८	गोपालचम्पू	जीवराज	भागवत
१५३	,,	विश्वनाथ सिंह	भागवत
१६८	,,	किशोर विलास	,,
६४	गोदा परिणय	वेदाधिनायभट्टाचार्य	चरित
१७४	गौरीपरिणयचम्पू	पिन्नावेंकट सूरि	गौरी कल्याण
६५	गौरीमायूरमाहात्म्यम्	अप्पादीक्षित	स्थानीय
२१६	गंगागुणादर्श	दत्तात्रय शास्त्री	भागवत
६४	गंगावतरणचम्पू	शंकर दीक्षित	भागवत ८।९
२०३	गंगाविलास	गोपाल	,,
६८	चन्द्रशेखरचम्पू	रामनाथ	स्थानीय चरित
६६	चित्रचम्पू	वाणेश्वर विद्यालंकार	यात्रा प्रबन्ध
१३६	चिन्तामणि विजय	शेष कवि	देवी भागवत १२।१२
२३१	चूडामणिचम्पू	अज्ञात	रामायण (दुरन्त)
६०	चोलचम्पू	विरूपाक्ष	ऐतिहासिक चरित
१८७	जगद्गुरु विजय	श्रीकंठ शास्त्रिन्	चरित शंकराचार्य
२०४	जगदम्बाचम्पू	गोपाल	दे० भागवत
१५१	जप्येशोत्सवचम्पू	वेंकट सूब्बा	स्थानीय
४	जीवन्धरचम्पू	हरिचन्द्र	उत्तर पुराण
१४१	जैनाचार्यविजय	अज्ञात	चरित
१०७	त्रिपुर विजयचम्पू	नीलकण्ठ दीक्षित	रुद्र संहिता ५।११२
५८	,,	अतिरात्र छे यज्वन्	,,
५६	,,	नृसिंहामात्य	,,
६६	तत्त्वगुणादर्श	अण्णयार्य	दार्शनिक (शैव वैष्णव)
५०	दक्ष याग	नारायण भट्ट	रु० संहिता सती-खण्ड ।
७३	दत्तात्रेय	दत्तात्रेय	मार्कण्डेय पुराण

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
१२५	दमयन्ती परिणय	अज्ञात	महाभारत
२३२	दशाराम	अज्ञात	अज्ञात
८३	दिव्यचाप विजय	वेंकटाचार्य	स्थानीय
२३३	दीक्षाटन	अज्ञात	अज्ञात
४७	दूतवाक्य	नारायणभट्ट	महाभारत
७०	धर्मविजय चम्पू	नल्लादीक्षित	ऐतिहासिक
१	नलचम्पू	त्रिविक्रम भट्ट	महाभारत वनपर्व
४५	नलायणी चरितचम्पू	नारायण भट्ट	महाभारत
२३	नाथमुनि विजय	रामानुज	चरित-वेदान्ताचार्य
४६	निरनुनासिक चम्पू	नारायण भट्ट	अज्ञात
५७	नीलकण्ठ विजय	नीलकंठ दीक्षित	भागवत ८।६,७
४२	नृगमोक्ष	नारायग भट्ट	भाग० १०।६४
३२	नृसिंहचम्पू	दैवज्ञसूर्य	नृसिंह पुराण
५३	,,	केशव	,,
२४२	,,	संकर्षण	,,
२३५	प्रणयी माधव चम्पू	माधव	भागवत–काल्पनिक
२२६	प्रताप चम्पू	दिलीप कवि	ऐतिहासिक
२२१	प्रदोष माहात्म्यम्	प्रभाकर तालमणः	अज्ञात
२८	पंचकल्याण चम्पू	चिदम्बर	भागवत
१४५	पंचेन्द्रोपाख्यान	अज्ञात	महाभारत
१२८	पद्मनाभ चरित	कृष्णकवि	स्थानीय
१२६	पद्मावती परिणय चम्पू	श्रीशैल	स्थानीय
३९	पांचाली स्वयंवर	नारायण भट्ट	महाभारत आदिपर्व
४४	पार्वती स्वयंवर	नारायण भट्ट	रु० सं० पार्वतीखंड
१८०	पार्वतीपरिणय चम्पू	रामेश्वर	पा० खं० १–५५
२६	पारिजातहरण	शेषकृष्ण	हरिवंश, विष्णुपर्व ६४–७६
११	पुरुदेव चम्पू	अर्हदास	आदि पुरु ३५–३६ अ०
२२४	,,	जिनदास शास्त्री	उत्तरपुराण
१३५	पुरुषोत्तम चम्पू	नृसिंहाचार्य	ब्रह्मपुराण

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
१४३	वकवध	अज्ञात	महाभारत आदिपर्व
१०७	वल्लीपरिणय	यज्ञसुब्रह्मण्य	पार्वती खंड
२०५	वाणायुध चम्पू	कोंकणीतम्बीरन्	स्थानीय
१५४	बालभागवतम्	पद्मराज	भागवत
१५६	बालकृष्ण चम्पू	जीवनशर्मा	भागवत दशम स्कन्ध
८२	विबुधानन्दप्रबन्ध चम्पू	वेंकटकवि	तीर्थयात्रा
२२३	वेहुलानिखिन्दरम्	भगवचन्द्र	अज्ञात
११४	भद्राचल चम्पू	राघवाचार्य	स्थानीय
१०	भरतेश्वराभ्युदय	आशाधर	आदिपुराण २६-३७ अ०
७	भागवत चम्पू	कालिदास (अभिनव)	भागवत
२६	,,	राजनाथ रामभद्र	,,
२७	,,	चिदम्बर	,,
१५५	,,	सोमशेखर	,,
१८३	,,	गोपालशास्त्रिन्	,,
६६	भागीरथी चम्पू	अच्युत शर्मा	,, गंगावतरण
१४६	भार्गव चम्पू	अज्ञात (रामकृष्ण)	ब्रह्माण्ड पुराण भार्गव चरित
८७	भारत चम्पू	कालिदास (अभिनव)	महाभारत
६	,,	अनन्त भट्ट	,,
७५	भारत चम्पू तिलक	लक्ष्मण सूरि	,,
१८४	भारत चरितचम्पू	भागवतकृष्ण शर्मा	महाभारत
२२७	भारत चम्पू	मथुरा प्रसाद	ऐतिहासिक
८७	भिल्लकन्या परिणय चम्पू	अज्ञात	स्थानीय
६७	भैष्मीपरिणय चम्पू	श्रीनिवास	भागवत १०।५३-५४
१०३	भोजप्रबन्ध	वल्लभपंडित	ऐतिहासिक चरित
७१	भोसल वंशावली	वेंकटेश	ऐतिहासिक
२	मदालसा चम्पू	त्रिविक्रम भट्ट	मार्कण्डेय पुराण १८-२२
३७	मत्स्यावतार प्रबन्ध	नारायण भट्ट	महाभारत
७४	मद्रकन्यापरिणय	गंगाधर कवि	भागवत १०।५८

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
३३	मन्दारमरन्द चम्पू	कृष्णकवि	भागवत, लक्षण ग्रंथ
१६६	महिसुरदेशाभ्युदय	सीतारामकवि	ऐतिहासिक
१६५	महिसुराभिवृद्धि	के० वेंकटराम शास्त्री	,,
३५	माधवचम्पू	चिरंजीव भट्टाचार्य	भागवत, काल्पनिक
८४	मार्गसहायचम्पू	नवनीत	स्थानीय
२२०	भानभूपालचरित	वेदान्त रामानुज	ऐतिहासिक
८५	मारुतिविजय	रघुनाथ भट्ट	रामायण
८६	मीनाक्षी कल्याणचम्पू	नागनाथ (कन्दुकुरी)	हालास माहात्म्य
१२८	मीनाक्षीपरिणय चम्पू	आदिनारायण	,,
१०५	मुक्तचरित्र	रघुनाथ दास	भागवत, काल्पनिक
१५६	मुकुन्दचरितचम्पू	श्रीनिवास	भागवत
१७६	मृगयाचम्पू	कविराज	ऐतिहासिक चरित
१३	यतिराज विजय	अहोबलसूरि	चरित (रामानुज)
१७२	यदुगिरिभूषणचम्पू	अप्पलाचार्य	स्थानीय
१३०	यमुनावर्णनचम्पू	जगन्नाथ पंडित	काल्पनिक
३	यशस्तिलकचम्पू	सोमदेवसूरि	उत्तर पुराण
३०	यात्राप्रबन्धचम्पू	समरपुंगवदीक्षित	यात्रा वर्णन
२२६	यादवचम्पू	अज्ञात	हरिवंश पुराण
१४०	यादवशेखरचम्पू	भाष्यकार	भागवत
१००	रघुनाथ विजय चम्पू	कृष्णकवि	ऐतिहासिक
२१७	रथशेखर चरित	दयावर्धनगणी	चरित
१०४	राजशेखर चरित	कविकुंजर	ऐतिहासिक चरित
३८	राजसूय प्रबन्ध	नारायण भट्ट	महाभारत
२४३	रामचन्द्र चम्पू	रामचन्द्र दीक्षित	रामायण
६५	रामचन्द्र ,,	विश्वनाथ सिंह	,,
१५८	रामकथा सुधोदय	श्री श्रीनिवास	,,
१६०	रामचर्यामृत	कृष्णांयगर	,,
२४	रामानुज चम्पू	रामानुज	चरित
५	रामायण चम्पू	भोजराज	रामायण
१०६	रामायण ,,	रामानुज देशिक	,,
१८६	,, ,,	सुन्दरवल्ली	,,
१०६	रामायण युद्धकाण्ड	घनश्याम	,,

क्रमसंख्य	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
८८	रामायण युद्धकाण्ड	राजचूडामणि दीक्षित	रामायण
११०	,, ,,	एकाम्रनाथ	,,
१८२	,, ,,	गरलपुरीशास्त्रिन्	,,
७६	,, ,,	लक्ष्मण सूरि	,,
२१५	राघव चम्पू	असूरि अनन्ताचार्य	,,
१६१	रामाभ्युदय चम्पू	अवंचिराम शास्त्री	,,
१६३	राम चम्पू	वन्दला मुडिरामस्वामी	,,
११२	रुक्मिणी चम्पू	गोवर्धन	भागवत १०।५३-५४
१५	,, परिणय चम्पू	अम्मल	,, ,,
१७५	रुक्मिणी वल्लभ परिणय	नृसिंह ताता	,, ,,
२३४	लक्ष्मण चम्पू	अज्ञात	स्थानीय
२१२	लक्ष्मीश्वर चम्पू	रमाबाई	स्कन्दपुराण ब्राह्म खंड १७२।
२१४	,,	अनन्तसूरि	,,
५१	व्याघ्रालयेशाष्टमीमहोत्सव	नारायण भट्ट	स्थानीय
१७८	वज्रमुक्ति विलास	योगानन्द	स्थानीय
२१	वरदाम्बिका परिणय	तिरुमलाम्बा	ऐतिहासिक, कल्पना
५५	वरदाभ्युदय चम्पू	वेंकटाध्वरि	स्थानीय
२२	वसुचरित्र चम्पू	कालहस्ति	महाभारत
६८	बाणासुर विजय	वेंकटकवि	हरिवंश
१६४	वासुदेवानन्दिनी	गोपालकृष्ण	भागवत
७६	विक्रमसेन चम्पू	नारायणराय	काल्पनिक
३४	विद्वन्मोदतरंगिणी	चिरंजीव भट्टाचार्य	दार्शनिक
१४	विरूपाक्ष महोत्सव	अहोबल सूरि	स्थानीय
५४	विश्वगुणादर्श	वेंकटाध्वरि	तीर्थयात्रा
२०६	विशाखाकीर्तिविलास	रामास्वामी शास्त्री	ऐतिहासिक चरित
२०७	विशाखातुलाप्रबन्ध	ए० आर० राजवर्मा	,,
२०८	विशाखासेतुयात्रा वर्णन	गणपतिशास्त्रिन्	,,
१७६	वीर चम्पू	पद्मानन्द	,,
३६	वीरभद्र देव चम्पू	पद्मनाथ मिश्र	,,
१११	वीरभद्र विजय	एकाम्रनाथ	रुद्र संहिता
१३६	वीरभद्र विजय	मल्लिकार्जुन	,,

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
१७१	वृन्दावन विनोद	रुद्रन्यायवाचस्पति	वृन्दावन माहात्म्य
१६	वेदान्ताचार्य विजय	वेदान्ताचार्य	चरित, (वेदान्त देशि)
६६	वेंकटेश चम्पू	धर्मराज	स्थानीय
६१	वैकुण्ठविजय	राघवाचार्य	तीर्थ यात्रा
१३१	श्रीकृष्ण चम्पू	कृष्णकवि	चरित (व्यापारी)
२००	श्रीकृष्णराजाभ्युदय	गीताचार्य	ऐतिहासिक चरित
२०१	श्रीकृष्णनृपोदय प्रबन्ध	कुक्केसुब्रह्मण्य शास्त्री	ऐतिहासिक चरित
७२	श्रीनिवास चम्पू	वेंकटेश	स्थानीय
१५७	,, ,,	श्रीनिवास	,,
११७	श्रीनिवासमुनि यात्रा विलास	रामानुज दास	यात्रा प्रबन्ध
११८	,,	गोविन्ददास	,,
११६	श्रीनिवास विलास चम्पू	कृष्णकवि	स्थानीय
१२१	श्रुतकीर्ति विलास ,,	अज्ञात (सूर्यनारायण)	यात्रा प्रबन्ध
२१०	शंकर चम्पू	लक्ष्मीपति	चरित
२२२	शंकराचार्य चम्पू	बालगोदावरी	चरित
६३	शंकरचेतो विलास	शंकर दीक्षित	ऐतिहासिक (नगरवर्णन)
८१	शंकरानन्द चम्पू	स्वयंभू नाथ	महाभारत (किरात)
२१६	शंकरमन्दार सौरभ	नीलकंठ	चरित (शंकराचार्य)
१८८	शम्बरासुर विजय	भद्राद्रिराम शास्त्री	हरिवंश, भागवत
२४४	शालिवाहन कथा	शिवदास सूरि	ऐतिहासिक चरित
१०८	शाहराजसभासरोवर्णिनी	लक्ष्मण कवि	,,
६१	शिवविलास चम्पू	विरूपाक्ष	महाभारत
११६	शिवचरित चम्पू	गंगाधर	मार्कण्डेय पुराण
८६	,,	वादिशेखर	मार्कण्डेय ,,
२१३	स्यानन्दूरपूरवर्णन	रामवर्म (युवराज)	स्थानीय
४०	स्वाहासुधार चम्पू	नारायण भट्ट	वायु, ब्रह्मपुराण
१३२	सत्राजिति परिणय	कृष्णदास गांगेय	भागवत
१३८	सत्यसंधचरित	कल्पबल्ली कवि	महाभारत
२४५	समरादित्य कथा	अज्ञात	जैनपुराण
१५०	संपत्कुमार विलास	रंगनाथ	स्थानीय

क्रमसंख्या	चम्पू काव्य का नाम	कवि का नाम	स्रोत
२०२	सारावती जलपातवर्णनम्	कुक्केसुब्रह्मण्य शास्त्री	प्रकृतिवर्णन
१६२	सीताचम्पू	गुण्डूरामास्वामी	रामायण
१४२	सीताविजय चम्पू	घण्टावतार	रामायण
१७७	सुदर्शन चम्पू	कृष्णानन्दकवीन्द्र	अज्ञात
४३	सुभद्राहरण चम्पू	नारायण भट्ट	महाभारत
११३	सुमतिन्द्रजयघोषणा	सुमतिन्द्र	ऐतिहासिक
१३४	हनुमदापादान	नृसिंहकवि	रामायण
१४६	हयवदनविजय	वेंकटराघव	हयग्रीवतन्त्र
१७३	हरिश्चन्द्र चरित्र चम्पू	गुरुराम	भागवत, महाभारत

वर्ण्यवस्तु एवं मूलस्रोत के आधार पर चम्पू काव्यों का वर्गीकरण

संस्कृत-साहित्य के विशाल भण्डार में, चम्पू-काव्य-रत्नों की संख्या सीमित है। प्रकाशित एवं अप्रकाशित जिन चम्पू काव्यों का परिचय दिया गया है, उनमें से अधिकांश के मूलस्रोत वे ही रामायण, महाभारत तथा पुराण ग्रन्थ रहे हैं, जो सामान्यतः अन्य संस्कृत काव्य ग्रन्थों के। चम्पू काव्यों का वर्णन-क्षेत्र विस्तृत भी हुआ है-इनमें यात्रा-प्रबन्धों, ऐतिहासिक चरित्रों तथा स्थानीय देवताओं और उनके महोत्सवों के वर्णन-सम्बन्धी काव्य भी उपलब्ध होते हैं। वर्गीकरण के आधार पर उनकी संख्या का ज्ञान तो होता ही है, लोकप्रिय स्रोतों का भी परिचय मिल जाता है :—

१-रामायण को आधार बना कर लिखे गये चम्पू काव्य :—

इस स्रोत को अपनाने वाले छत्तीस चम्पू-काव्य उपलब्ध होते हैं। ये चम्पू काव्य तीन प्रकार के हैं—[क] जिनमें सम्पूर्ण रामकथा संक्षिप्त रूप में वर्णित है। (ख) जिनमें किसी काण्ड विशेष की कथा को आधार बनाया गया है और (ग) जिनमें राम के अतिरिक्त रामायण के अन्य प्रमुख पात्रों का चरित प्रस्तुत किया गया है।

(क) प्रथम प्रकार के चम्पू काव्य निम्नलिखित हैं—

५ रामायण चम्पू, १२ अमोघराघव, २० काकुत्स्थ विजय, ९५ रामचन्द्र चम्पू, १०६ रामायण चम्पू, १०९ रामायण चम्पू, १५८ रामकथा सुधोदय, १९० रामचर्यामृत, १९१ रामाभ्युदय, १९३ राम चम्पू, २११ अभिनव रामायण चम्पू, २१५ राघव चम्पू, २३६ अभिनव चम्पू रामायण, २४३ रामचन्द्र चम्पू।

(ख) द्वितीय प्रकार के चम्पू काव्य हैं—

१–युद्ध काण्ड पर आश्रित-७६, ८८, १०९ और १८२ संख्याश्रित रामायण युद्ध काण्ड चम्पू। युद्धकाण्डाश्रित चम्पू काव्य, भोज के रामायण चम्पू की पूर्ति करने वाले लक्ष्मण कवि के युद्ध काण्ड के उपरान्त लिखे गये हैं।

२–उत्तरकाण्ड पर आश्रित-५६, ६२, ७८, १६५, १६६, १८१, २३७, २३८ एवं २३९ संख्यक "उत्तर चम्पू" हैं। इनके अतिरिक्त १४२ सीताविजय और १९२ सीता चम्पू भी उत्तरकाण्ड के आधार पर ही हैं।

(ग) तृतीय प्रकार के चम्पू काव्य—

(१) हनुमान के चरित को आधार बनाकर चार चम्पू काव्य प्रस्तुत किये गए हैं-८५ मारुति-विजय, १३३ आंजनेय विजय, १३४ हनुमदापादान, २३१ चूडामणि चम्पू[1]।

यद्यपि हनुमच्चरित्र का विजय-पूर्ण-भाग रामायण के सुन्दर काण्ड एवं युद्धकाण्ड में उपलब्ध होता है, परन्तु हनुमान के जन्म, बाल्यकाल आदि की कथा, अन्य पुराणों में भी वर्णित है। उदाहरणार्थ शिवपुराण, शतरुद्र संहिता का बीसवां अध्याय, हनुमान के जन्म की कथा प्रस्तुत करता हैं। नारदीय पुराण अध्याय ७९. ब्रह्मपुराण अध्याय २१३ में भी हनुमच्चरित्र प्रस्तुत किया गया है। उक्तचम्पू-काव्य पुराणाश्रित कथा सहित रामायण को आधार बनाकर लिखे गये हैं।

(२) रामायण के चरित को मुख्यता देने वाले दो चम्पू काव्य हैं-

५६ वेंकटाध्वरि का उत्तररामचरित चम्पू और ९२ रामवर्मा का कार्तवीर्य प्रबन्ध।

प्रथम चम्पू काव्य में रावण के जन्म, शैशव, शिवाराधन, शापग्रस्तता एवं उनके महान् दिग्विजय का वर्णन है। इसके ठीक विपरीत कार्तवीर्य प्रबन्ध में कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) द्वारा रावण की पराजय, बन्धन एवं उसके छुटकारे का वर्णन है। रामायण को आधार बनाते हुए भी दोनों कवियों ने, रावण और कार्तवीर्य के वर्णन में, अपनी प्रतिभा का उपयोग कर, अपनी उदार दृष्टि का ही परिचय दिया है।

उक्त वर्गीकरण से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि समग्रराम-कथा के उपरान्त उत्तरकाण्ड अधिक लोकप्रिय रहा है। भवभूति ने अपने उत्तररामचरित

---

१. दुरन्त रामायण में 'चूडामणि कथा' विस्तृत रूप से वर्णित है।

में करुण-विरह की जो अजस्र धारा प्रवाहित की है, परवर्ती कवियों ने उसे अपनी संवेदनशील प्रवृत्ति के कारण बल दिया है। वर्णन के लिये एक खण्डकाव्य की प्रचुर सामग्री भी उत्तरकाण्ड में उपलब्ध हो जाती है। यद्यपि रामकथा कई अन्य पुराणों में भी प्राप्त होती है, पर वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं।[1] भोज ने कथावस्तु के लिये वाल्मीकि का पूर्ण अनुकरण किया है। अन्य कवियों ने कथावस्तु के लिये तो वाल्मीकि का, और शैली के लिये भोज का प्रायः अनुसरण किया है—

२-महाभारत को आधार बनाकर लिखे गये चम्पू काव्य—

महाभारत भी रामायण की भांति ही परवर्ती कवियों के लिये वस्तुपुष्प-चयनार्थ एक मनोरम-उद्यान रहा है। महाभारत पर आश्रित सत्ताइस चम्पू काव्य परिगणित हैं। ये चम्पू काव्य भी तीन प्रकार के हैं–

(क) समग्र कथा का स्पर्श करने वाले-

८, ९ भारत चम्पू, ७५ भारत चम्पू तिलक, १८४ भारत चरित चम्पू, १८६ अभिनव भारत चम्पू।

(ख) महाभारत की कथा के किसी विशेष अंश को प्रस्तुत करने वाले-

३८ राजसूय प्रबन्ध, ३९ पांचाली स्वयंवर, ४३ सुभद्राहरण, ४५ नलायणी चरित, ४६ कौन्तेयाष्टक, ४७ दूतवाक्य, ४८ किरात चम्पू, ६३ द्रौपदी परिणय, ८१ शंकरानन्द चम्पू, ११५ कर्ण चम्पू, १४३ बकवध, १४५ पंचेन्द्रोपाख्यान, २३० अश्वमेध चम्पू, २४० किरातार्जुनीय चम्पू।

(ग) महाभारत के उपाख्यानों पर आश्रित

१ नल चम्पू, २२ वसुचरित्र चम्पू, ३७ मत्स्यावतार प्रबन्ध, ९१ शिव विलास चम्पू, १२५ दमयन्ती परिणय, १३८ सत्यसंधचरित, १७३ हरिश्चन्द्र चरित्र चम्पू, २१८ कुवलयाश्व विलास।

महाभारत की संपूर्ण कथा को संक्षेप में प्रस्तुत करते समय कतिपय उपाख्यानों का संकेत मात्र कर दिया गया है, परन्तु प्रायः सभी उपाख्यान छोड़ दिये गये हैं। अनन्त भट्ट का भारत चम्पू इनमें सर्वोत्तम कृति है। नलोपाख्यान पर आश्रित प्रथम चम्पू काव्य नल चम्पू है। द्रौपदी परिणय, आंशिक कथा को प्रस्तुत करने वाला कलात्मक चम्पू काव्य है। किसी भी कवि ने कथावस्तु में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है। सभी की कथावस्तु, महाभारत की कथा के अनुकूल ही है।

---

१. द्रष्टव्य-अग्निपुराण ५-११, पद्मपुराण पाताल खंड १-६१ अ० भागवत ३.७ तथा महाभारत ४२ रामोपाख्यान आदि।

३–भागवत पुराण पर आश्रित चम्पू काव्य–

७ भागवत चम्पू, १५ रुक्मिणी परिणय, १७ आनन्द वृन्दावन, १८ गोपाल चम्पू २६, २७ भागवत चम्पू, २८ पंच कल्याण चम्पू, ३३ मन्दार मरन्द, ३५ माधव चम्पू, ४२ नृगमोक्ष, ५२ आनन्दकन्द चम्पू, ६१ भैष्मी परिणय, ७४ मद्रकन्या परिणय, ७५ रुक्मिणी परिणय, १०५ मुक्तचरित्र, ११२ रुक्मिणी परिणय, १२७ कालिन्दी मुकुन्द चम्पू, १३२ सत्राजिती परिणय १४० यादवशेखर चम्पू, १५२ कृष्ण चम्पू, १५३ गोपाल चम्पू, १५४ बालभागवतम्, १५५ भागवत चम्पू, १५६ बालकृष्ण चम्पू, १५९ मुकुन्द चरित, १६३ कृष्ण चम्पू, १६४ आनन्द दामोदर, १६७ आनन्द वृन्दावन १६८ गोपाल चम्पू, १७१ वृन्दावन विनोद, १८३ भागवत चम्पू, १९४ वासुदेवानन्दिनी, २०६ गजेन्द्र चम्पू, २३५ प्रणयी माधव चम्पू।

निम्नलिखित चम्पू काव्यों की कथा भागवत में होते हुए भी इनके वर्णन का मुख्य आधार हरिवंश पुराण है–

२९ पारिजात हरण चम्पू, ६८ वाणासुर विजय, १२३ उषापरिणय, १२४ अनिरुद्ध चम्पू, १७७ सुदर्शन चम्पू, १८८ शंबरासुर विजय, २२९ यादव चम्पू।

निम्नलिखित चम्पू काव्यों की कथा रामायण सहित कई पुराणों में वर्णित है। श्रीमद्भागवत (१।८।९) में भी गंगावतरण की कथा दी गई है—

९४ गंगावतरण, ९९ भागीरथी चम्पू, २०३ गंगा विलास, २१६ गंगा-गुणादर्श।

भागवत चम्पू नाम से लिखे गये चम्पू काव्य तो संक्षेप में भागवत की संपूर्ण कथा प्रस्तुत करते हैं, परन्तु इनमें भी वृन्दावन में कृष्ण का विहार एवं विलास–रास वर्णन मुख्य हैं। अन्य भागवत सम्बन्धी चम्पू काव्यों में दशम स्कन्ध की कथा को ही वर्णन का आधार बनाया गया है और कृष्ण के बाल्य एवं कैशोर लीलाओं का अंकन किया गया है। वृन्दावन के कृष्णविहार को प्रमुखता देने वाले चम्पू काव्यों में प्रकृति चित्रण का रूढ़िगत रूप ही दिखाई पड़ता है। परिणय सम्बन्धी चम्पू काव्यों में कृष्ण का कालिन्दी एवं रुक्मिणी से ही विवाह वर्णित है। पंचकल्याण चम्पू अवश्य ऐसा है जिसमें कृष्ण का कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा एवं लक्ष्मणा से विवाह वर्णित है।[1] पारिजात हरण में सपत्नी भावना की ईर्ष्या का अच्छा प्रदर्शन हुआ है।

१, द्रष्टव्य–भागवत १०।५८।

अन्य चम्पू काव्यों में माधव चम्पू एवं मुक्त चरित्र कृष्ण को नायक बनाकर कल्पित कथा प्रस्तुत करते हैं। ऊषा और अनिरुद्ध के परिणय की कथा के अतिरिक्त शंबरासुर विजय केवल अकेला चम्पू काव्य है, जिसमें प्रद्युम्न और रति का विवाह वर्णित हैं। नृगमोक्ष और गजेन्द्र चम्पू भागवत के तत्सम्बन्धी उपाख्यानों पर आश्रित हैं। सुदर्शन चम्पू भागवत एवं हरिवंश पुराण की विशिष्ट घटना का वर्णन करते हैं।

भक्ति भावना का अन्वेषण करना तो इन चम्पू काव्यों में साधारण कार्य नहीं हैं, पर शृङ्गार एवं विलास वर्णन की प्रचुर सामग्री इनमें उपलब्ध होती है। परिणय सम्बन्धी प्रायः सभी काव्यों में युद्ध का समावेश किया गया है, अतः नायक की वीरता एवं विलासिता का संगम इनमें दिखाई पड़ता है। पूर्वराग, रति, विरह, दूतप्रेषण, परिणय, युद्ध एवं उन्मुक्त विलास के साथ मान, कवि-गोष्ठी जैसा वाग्चातुर्य इन पारिजात हरण सहित परिणय काव्यों में पूर्ण रूप से दिखाई पड़ता है।

मन्दार मरन्द मुख्यतः लक्षण ग्रन्थ है, पर उदाहरण स्वरूप राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद ही दिये गये हैं।

४–शिवपुराण की रुद्रसंहिता एवं लिंगपुराण पर आधारित चम्पू काव्य–

शैव चम्पू काव्यों में से कई चम्पू काव्य ऐसे हैं, जिनकी कथावस्तु अन्य पुराणों में भी उपलब्ध हो जाती है। ऐसे चम्पू काव्यों में–नीलकण्ठ विजय, गंगावतरण, भागीरथी चम्पू, शिवचरित्र चम्पू आदि हैं। निम्नलिलित चम्पू काव्य रुद्रसंहिता पर आश्रित हैं—

२५ कल्याणवल्ली कल्याण, १४८ कल्याण चम्पू, ७७ कुमार भार्गवीय, १४४ कुमाराभ्युदय, १४७ कुमारविजय, १०२ कुमारसंभव, ५८, ५९, १०७ त्रिपुर विजय, ५० दक्षयाग, १८० पार्वती परिणय, १०७ वल्ली परिणय, ११, १३६ वीरभद्र विजय, १७४ गौरी परिणय चम्पू, ४४ पार्वती स्वयंवर।

इनमें पार्वती के विवाह से सम्बद्ध चम्पू काव्य लिंग पुराण के गौरी कल्याण से अनुप्राणित हैं। पार्वती परिणयका वर्णन लोमश रामायण में भी विस्तृत रूप से हुआ है।

१२८ मीनाक्षी परिणय चम्पू एवं ८६ मीनाक्षी कल्याण चम्पू, हालास माहात्म्य से प्रभावित हैं।

रुद्रसंहिता में से भी पार्वती-खंड, कुमारखंड एवं युद्धखंड की कथायें ही विशेष रूप से गृहीत हुई हैं।

५-अन्य पुराणों पर आश्रित चम्पू काव्य—

अज्ञात—२२८ उक्लचम्पू, १३७ कलाकौमुदी, १६१ काव्यकलाप चम्पू, २३२ दशाराम, २३३ दीक्षाटन, ४९ निरनुनासिक चम्पू, २२१ प्रदोषमाहात्म्य, २२३ वेहुलानिखिन्दरम्।

देवी भागवत—१३९ चिन्तामणि विजय, २०४ जगदम्बा चम्पू।

नृसिंह पुराण—३२, ५३, २४२ नृसिंह चम्पू।

ब्रह्मपुराण—१३५ पुरुषोत्तम चम्पू, ४० स्वाहा सुधाकर चम्पू (वायु-पुराण में भी)।

ब्रह्माण्ड पुराण—१४९ भार्गव चम्पू।

मार्कण्डेय पुराण—२ मदालसा चम्पू, ८९, ११६ शिवचरित चम्पू, ७३ दत्तात्रेय चम्पू।

स्कन्दपुराण—२१२, २१४ लक्ष्मीश्वर चम्पू।

हयग्रीवतन्त्र—१४६ हयवदन विजय।

इनमें से कुछ चम्पू काव्यों की कथा तो अनेक पुराणों में मिलती है, जैसे नृसिंह चम्पू काव्यों की, कुछ की एक ही पुराण में, जैसे मदालसा चम्पू की कथा मार्कण्डेय पुराण (अ० १८-२२) मात्र में ही है। हयवदन विजय तन्त्राश्रित है।

६—जैन पुराणाश्रित चम्पू काव्य—

४ जीवन्धर चम्पू ११, २२४ पुरुदेव चम्पू, १० भरतेश्वराभ्युदय।

३ यशस्तिलक चम्पू, २४५ समरादित्य कथा।

ये चम्पू काव्य आदि एवं उत्तर पुराण पर आश्रित हैं तथा भरत, पुरुदेव, जीवनधर एवं यशोधर का चरित प्रस्तुत करते हैं। ये सभी चरित प्रायः जैन पुराणों में वर्णित हैं, अतः इन्हें भी पौराणिक-पात्र ही माना जाता है।

बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में अनेक जैन काव्यों की रचना हुई है। शतार्थ-काव्य (सोमप्रभाचार्य १२ श०) जिनेन्द्र चरित (अमरचन्द्र १३ शत०) चन्द्रप्रभचरित (वरिनन्दिन् १३ श०) पार्श्वनाथ एवं शान्तिनाथ चरित (माणिक्य चन्द्र १३ श०) दशश्रावक चरित, सौभद्र चरित, कृतपुण्य चरित, अतिमुक्त चरित (पूर्ण भद्र १३) निर्वाण लीलावती (जिनरत्न १३ श०) कुन्थुनाथ चरित, मुनीश्वर चरित (पद्मप्रभ १३ श०) आदि जैन कृतियों की परम्परा दसवीं शताब्दी से १४ वीं शताब्दी तक जैनाचार्यों द्वारा निर्मित तो है ही इस काल के अनेक जैन शिलालेख भी साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के हैं।[1]

---

१. द्रष्टव्य जैन शिलालेख संग्रह।

जैन चम्पू काव्य इसी परम्परा की विविध कड़ियाँ हैं। वस्तुतः चम्पू काव्यों के उत्थान में जैनाचार्यों की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

७-चरित चम्पू काव्य—

(क) शंकराचार्य के चरित पर—शंकराचार्य अद्वैतवेदान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य थे। इनका समय लगभग आठवीं शताब्दी माना जाता है।[1] इनके दिग्विजय को आधार बनाकर कई काव्य लिखे गये हैं। निम्नलिखित चम्पू काव्य भी इन्हीं के दिग्विजय वृत्त को जीवनी सहित प्रस्तुत करते हैं।

१९ आचार्य दिग्विजय, १८७ जगद्गुरु विजय, २१० शंकर चम्पू, २२२ शंकराचार्य चम्पू, २१९ शंकरमन्दार सौरभ।

(ख) वेदान्ताचार्यों का चरित—विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक आचार्य रामानुज के चरित को मुख्य आधार बनाकर, कई चम्पू काव्य लिखे गये हैं। आचार्य रामानुज का समय ई० सन् १०१७ से ११३७ तक माना जाता है।[2] इन वैष्णव वेदान्ताचार्यों की परंपरा क्रमशः श्रीनारायण-श्रीमहालक्ष्मी-श्रीविष्वक् सेन-श्रीशठकोप स्वामी-श्रीनाथमुनि-पुण्डरीकाक्ष स्वामी-श्रीराममिश्र-श्रीयामुनाचार्य-श्रीरामानुजाचार्य के रूप में मानी जाती है। इन्हीं की परंपरा में चौदहवीं शताब्दी में वेंकटनाथ वेदान्ताचार्य हुये। यह विजयनगर राज्य के संस्थापक अद्वैतचार्य विद्यारण्य स्वामी के सहपाठी एवं मित्र थे। मुसलमानों के आक्रमण के समय मलिक काफूर द्वारा जब श्रीरंगम्पर चढ़ाई कर मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया गया तो वेदान्ताचार्य श्रीरंगम् की मूर्ति को विविध स्थानों में सुरक्षित रखते रहे। वह मूर्ति तिरुपति में रही। गोप्पनाचार्य उसे गिंगी लाये, वहां से वेदान्ताचार्य की उपस्थिति में विजय नगर राज्य की स्थापना के बाद, श्रीरंगम् में पुनः उसकी प्रतिष्ठा हुई। मूर्तिमान् वैराग्य एवं भक्ति स्वरूप यही वेदान्ताचार्य वैष्णव परम्परा में वेदान्तदेशिक के रूप में प्रसिद्ध हैं।[3] रामानुज के चरित को प्रस्तुत करने वाले चम्पू काव्यों में भी शठकोप स्वामी और वेदान्त देशिक की विशेष रूप में वन्दना की गई है। वेदान्ताचार्यों के चरित को प्रस्तुत करने वाले निम्नलिखित चम्पू काव्य हैं—

२३ नाथमुनि विजय, २४ रामानुज चम्पू, १६ वेदान्ताचार्य विजय, १३ यतिराजविजय।

---

१. हिन्दुत्व पृष्ठ ६०३।

२. वही पृष्ठ ६४८-५१।

३. हिन्दुत्व पृष्ठ ६५८-६०।

(ग) शैव सन्तों का चरित—३१ आनन्दकन्द ।

इसमें शैवों की साधना और भक्ति के शुभ परिणामों का वर्णन है ।

(घ) वैष्णव सन्तों के चरित—६४ गोदा परिणय ।

यह तमिलकी सुप्रसिद्ध कवयित्री एवं वैष्णव स्त्री संत गोदा (अण्डाल) का चरित्र है ।

(ङ) जैनाचार्यों का चरित—१४१ जैनाचार्य विजय ।

इसमें ऋषभ से लेकर मल्लिषेण तक अनेक जैनाचार्यों की विद्वत्ता एवं उनकी वाद-प्रियता के साथ उनकी अन्य सम्प्रदायों पर प्राप्त विजयों का वर्णन है । इस विषय में कतिपय जैन शिलालेख द्रष्टव्य हैं ।[1]

(च) ऐतिहासिक व्यक्तियों का चरित—९७ आनन्दरंग विजय, १६९, १७० कृष्ण विजय, १८५ कृष्णराजाभ्युदय, १९७ कृष्णप्रभावोदय, १९८ कृष्णराजकालोदय, १९९ कृष्णराजेन्द्रयशोविलास, २२५ गुणेश्वर चरित, ९० चोल चम्पू, १२६ प्रताप चम्पू, २२७ भारत चम्पू, १०३ भोजप्रबन्ध, ७१ भोसल वंशावली, १९५ महीसुराभिवृद्धि, १९६ महीसुरदेशाभ्युदय, २२० मानभूपाल चरित, १७९ मृगया चम्पू, १०० रघुनाथ विजय, १०४ राजशेखर चरित, २१ वरदाम्बिका परिणय, २०९ विशाखाकीर्ति विलास, २०७ विशाखातुलाप्रबन्ध, २०८ विशाखासेतु यात्रा वर्णन, १७६ वीर चम्पू, ३६ वीरभद्र देवचम्पू, २०० श्रीकृष्ण-राजाभ्युदय, २०१ 'श्रीकृष्ण नृपोदय प्रबन्ध, ९३ शंकर चेतोविलास, २४४ शालिवाहन कथा, १०८ शाह-राजसभासरोर्वाणिनी, ७० धर्मविजय, ११३ सुमतीन्द्रजयघोषणा ।

इनमें आनन्दरंगविजय चम्पू डुप्ले के एक सेवक का चरित प्रस्तुत करता है जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है । १६७, १७०, १८५, १९७, १९८, १९९, १९५ और १९६, २००, २०१ संख्यक चम्पू काव्य मैसूर और उसके राजा कृष्णराज से सम्बन्धित हैं । चोलचम्पू चोलवंश की स्थापना का पौराणिक आख्यान प्रस्तुत करता है । ७१, १०८, ७० और ११३ मराठा दरबार से सम्बन्धित चम्पू हैं । वरदाम्बिका परिणय, विजय नगर से तथा गुणेश्वर चरित मिथिला दरबार से सम्बन्धित हैं । २०७, २०८, २०९ त्रावंकोर के राजा विशाख से सम्बन्धित हैं । ३६, १७६ रीवां नरेश वीरभद्र देव से सम्बद्ध हैं । भोजप्रबन्ध और राजशेखर चरित, केवल प्रशस्ति परक प्रबन्ध हैं । शंकरचेतो विलास में काशी नगरी का उत्तम वर्णन प्रस्तुत किया गया है । मानभूपाल

१. द्रष्टव्य-जैनशिलालेख संग्रह ५४, वर्धमान जिन एवं भद्रबाहु से लेकर मल्लिषेण तक चालीस से ऊपर जैनाचार्यों की प्रशस्ति ।

चरित, मृगया चम्पू, रघुनाथ विजय तथा शालिवाहन कथा, इन इन नामों के राजाओं का वर्णन करते हैं। प्रताप और भारत चम्पू आधुनिक काल के चम्पू हैं। ये चम्पू काव्य अपने आश्रयदाताओं की यशः प्रशस्ति अधिक और ऐतिहासिक घटघाओं का वर्णन कम करते हैं।

(छ) अप्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित—२४१ किशोर चरित, ९८ चन्द्रशेखर चरित, २१७ रथशेखर चरित, १३१ श्रीकृष्ण चम्पू (व्यापारी)

ये चम्पू काव्य कवियों की अपने आश्रयदाताओं के प्रति आस्था प्रकट करते हैं।

(८) यात्रा प्रबन्धात्मक चम्पू—१०१ कविमनोरंजक चम्पू, ६० केरलाभरणम्, ९६ चित्र चम्पू, ८२ विबुधानन्द प्रबन्ध चम्पू, ३० यात्रा प्रबन्ध चम्पू, ५४ विश्वगुणादर्श चम्पू, ६१ वैकुण्ठ विजय, ११७, ११८ श्रीनिवास मुनि यात्राविलास, १२१ श्रुतकीर्तिविलास चम्पू।

इन चम्पू काव्यों के अतिरिक्त ऐतिहासिक चम्पू काव्यों में परिगणित मानविक्रम भूपाल चरित, कालीकट के राजा मानविक्रम की तीर्थ यात्रा का वर्णन करता है। विशाखासेतु यात्रा वर्णन, राजा विशाख की और रघुनाथ विजय, रघुनाथ भूपति की तीर्थ यात्रा का वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

तीर्थयात्रा का वर्णन करने वाले उक्त चम्पू काव्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से यात्रा प्रबन्ध, कवि मनोरंजक आदि कुछ चम्पू काव्य तो भारत के सम्पूर्ण व्यापक भूभाग में व्याप्त अनेकों तीर्थों का वर्णन करते हैं, कुछ अन्य चम्पू काव्य केवल दक्षिण भारत के तीर्थो का—जैसे मानविक्रम भूपाल चरित और विशाखासेतु यात्रा वर्णन और चित्र चम्पू केवल उत्तरी भारत के तीर्थों का। इन यात्रा प्रबन्धों के नायक ब्राह्मण-जैसे श्रुतकीर्ति विलास में कवि या उनके सम्बन्धी-जैसे यात्रा प्रबन्ध और कवि मनोरंजक चम्पू में-राजा-जैसे विशाखासेतु यात्रा वर्णन एवं चित्र चम्पू में—तथा काल्पनिक पात्र-जैसे केरलाभरणम्, विबुधानन्द प्रबन्ध आदि में—रखे गये हैं।

इन चम्पू काव्यों में एक ओर तो भूगोल की प्रचुर सूचनायें प्राप्त होती हैं, तो दूसरी ओर विविध स्थानों की प्राकृतिक सुषमा की भी अपूर्व झांकी प्राप्त होती है। विश्वगुणादर्श और वैकुण्ठ विजय में विविध सम्प्रदायों के आधार, विचार एवं कवि की व्यक्तिगत सम्मति के अनुसार, उनके गुण दोषों का भी, पर्याप्त वर्णन हुआ है।

कुछ यात्रा प्रबन्धों में कथावस्तु को आकर्षक एवं मनोरम बनाने के लिये प्रणय-विलास एवं परिणय का भी समावेश कर दिया गया है। यात्रा प्रबन्ध में

तो इस प्रसंग में उत्तान शृङ्गार का प्रचुर वर्णन हुआ है। युगप्रवृत्ति के अनुसार विलास वर्णन की कवि-मनोवृत्ति ने, यात्रा-प्रबन्धों को परिणय काव्य के साथ संश्लिष्ट कर दिया है।

तीर्थ यात्रा प्रबन्धों की एक और विशेषता दिखाई पड़ती है, वह है—स्तोत्रों का समावेश। तीर्थों के अधिष्ठातृ देवता-परक लघुस्तोत्र स्वतः समाविष्ट हो गये हैं। कुछ चम्पू काव्यों में तो पचास पचास श्लोक ऐसी स्तुतियों में एक साथ प्रस्तुत किये गये हैं। यद्यपि स्तुति का समावेश अन्य पौराणिक चम्पू काव्यों में भी हुआ है, परन्तु उनके श्लोकों की संख्या एक साथ चार या पांच से अधिक नहीं है।

कवि के व्यक्तिगत साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की अभिव्यंजना होते हुए भी, नदियों, पर्वतों एवं स्थानों के मनोरम दृश्यों के वर्णन में उनकी रुचि अधिक रमी है। प्रकृति के बिम्ब ग्रहण कराने में कवि अधिक सफल हुए हैं। "केरलाभरणम्" में तो केरल के प्राकृतिक सौन्दर्य को अधिकाधिक भव्य-रूप में प्रस्तुत किया गया है। चम्पू काव्यों की यह विधा साहित्यिक परंपरा में सर्वथा नवीन है।

६–स्थानीय देवताओं और महोत्सवों का वर्णन करने वाले चम्पू काव्य- १६२ अश्वत्थक्षेत्रयाग, १२२ इन्दिराभ्युदय, ८०, १२० कृष्ण विलास चम्पू, ६५ गोरीमायूरमाहात्म्य, १५१ जप्येशोत्सव चम्पू, ८३ दिव्यचाप विजय, १२९ पद्मनाभ चरित, १२६ पद्मावती परिणय चम्पू, २०५ बाणायुध चम्पू, ११४ भद्राचल चम्पू, ८७ भिल्लकन्या परिणय चम्पू, ८४ मार्ग सहाय चम्पू, १७२ यदुगिरिभूषण चम्पू, २३४ लक्ष्मण चम्पू, ५१ व्याघ्रालयेशाष्टमी महोत्सव, १७८ वज्रमुक्ति विलास, ५५ वरदाभ्युदय चम्पू, १४ विरूपाक्षमहोत्सव चम्पू, ६६ वेंकटेश चम्पू, ७२, १५७ श्रीनिवास चम्पू, ११९ श्रीनिवास विलास, २१३ स्यानन्दूरपूरवर्णन, १५० संपत्कुमार विलास।

ये चम्पू काव्य, क्रमशः विद्यानगर के विरूपाक्ष महादेव के समीप स्थित अश्वत्थ क्षेत्र पर, श्री वेंकटेश पर, चेंजी के विलास कृष्ण देवता पर, तंजोर जिले के मायावरम् की पौराणिक महत्ता पर, स्थानीय देवता—तिरूवैयारू के देवता पर, तिरुपुल्लाणि के दर्भशयनम् की पौराणिक महत्ता पर, त्रिवेन्द्रम के पद्मनाभ मन्दिर पर, श्रीनिवास वेंकटेश और पद्मावती के परिणय पर, दर्भशयनम् पर, भद्राचल से सम्बद्ध रामदास की कथा पर, स्थानीय किसी नृसिंह देवता पर, विरिंचिपुरम् के मार्ग सहाय देवता पर, यदुगिरि के स्थानीय देवता पर, एक स्थानीय मन्दिर पर, ट्रावनकोर के वाइकम के देवता पर, वज्रमुक्ति देवता पर, कांची के देवराज के धार्मिक गौरव पर, विद्यानगर के

विरूपाक्ष महादेव पर, तिरुपति के देवता वेंकटेश की महत्ता पर, ७२,१५७ और ११९ तिरुपति के अधिपति वेंकटेश राजा श्रीनिवास के रूप में किये गये वर्णन पर, त्रिवेन्द्रम के अधिष्ठातृ देवता पर, तथा मेलकोट के महोत्सव पर प्रस्तुत किये गये हैं।

ये चम्पू काव्य दो प्रकार के हैं शैव एवं वैष्णव। शैव मन्दिरों एवं उनके अधिष्ठातृ देवता के महत्त्व को अंकित करने वाले विरूपाक्ष वसन्तोत्सव, गौरी मायूर माहात्म्य और मार्गसहाय चम्पू ही मुख्य हैं, नृसिंह देवता पर भिल्ल कन्या परिणय ही है। अधिकांश चम्पू काव्य वैष्णव मन्दिरों से ही सम्बद्ध हैं। श्रीनिवास विलास चम्पू मुख्य रूप से तो राजा श्रीनिवास का वर्णन करता है, पर श्लेष के माध्यम से उन्हें वेंकटेश के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। एक ओर जहां वह परिणय चम्पू काव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं को व्यक्त करता है, वहां दूसरी ओर नारद श्रीनिवास से कहते हैं—

"भगवद्दर्शनकाङ्क्षया वैकुण्ठलोकमगमम् ।"

दक्षिण के सभी स्थानीय तीर्थों एवं देवताओं का वर्णन, स्कन्द पुराणान्तर्गत माना जाता है[1]। ये स्थानीय चम्पू काव्य दक्षिण भारत की लोक संस्कृति पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। धार्मिक स्थानों का महत्त्व वर्णन तो पौराणिक माहात्म्य ग्रन्थों पर आश्रित है, पर उत्सवों का प्रत्यक्षदर्शी की भाँति वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। किस प्रकार उत्सव मनाया जाता है, किस प्रकार मन्दिरों को सजाया जाता है, जनता उसमें किस प्रकार भाग लेती है, दान-दक्षिणा का क्रम कैसे चलता है, लोभी ब्राह्मण क्या करते हैं आदि वितृत रूप में इनमें वर्णित है। कई चम्पू काव्य पुरस्कार के लोभ में सहयात्रियों के आदेशानुसार लिखे गये हैं। देवताओं के साथ किस प्रकार धूमधाम से या एकान्त शांति के साथ कन्याओं का विवाह हो जाता था, यह देवताओं की परिणय कथाओं से ज्ञात होता है। कुछ में देवों के विलास वर्णन के अतिरिक्त भक्ति-भावना का भी समावेश है।

१०-काल्पनिक कथा पर आश्रित—

६ उदयसुन्दरी कथा, ४१ कोटि विरह, १३० यमुना वर्णन चम्पू, ७९ विक्रमसेन चम्पू, २०२ सारावतीजलपातवर्णनम्।

ये चम्पू काव्य या तो किंवदन्ती पर आश्रित हैं अथवा कोरे प्रकृति चित्रण पर।

---

१. दक्षिण के तीर्थों के माहात्म्य ग्रन्थों की सूची के लिये द्रष्टव्य—हिन्दुत्व पृ० ३४८।

११-दार्शनिक चम्पू काव्य—

६९ तत्त्वगुणादर्श, ३४ विद्वन्मोदतरंगिणी।

इन्हें चम्पू काव्य नहीं माना जा सकता। न तो इनमें प्रबन्ध का संगठन है न कवित्वप्रदर्शन इनका उद्देश्य। इन चम्पू नामधारी रचनाओं का उद्देश्य विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। इन्हें चम्पू या मिश्र-शैली की रचनायें माना जा सकता है। दूसरे के विचारों एवं सिद्धान्तों पर व्यक्त व्यङ्ग्य का तीखापन इनमें अवश्य विद्यमान है और उनमें थोड़ी बहुत मनोरंजकता भी है, पर उद्देश्य की भिन्नता के कारण इन्हें पृथक् रखना ही उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार की कतिपय अन्य कृतियां भी हैं जो शैली विशेष के कारण चम्पू काव्यों की परम्परा में सम्मिलित कर ली जाती है, उदाहरणार्थ—

१-तत्त्वार्थ दर्पण-अप्पयदीक्षित (प्रकाशित), २-अद्वैतानन्द सागर, रघूत्तमतीर्थ, ३-विदग्ध मुखमंडन-धर्मदास (प्रकाशित), ४-निम्बादित्यदशश्लोकी हरिव्यासदेव। मिश्र शैली की उल्लेखनीय अन्य रचनायें—

मिश्र शैली में कतिपय विरुदावलियां भी प्रस्तुत की गई हैं। इनमें साहित्यिक लावण्य भी है, और गद्य-पद्य दोनों भाग अलंकृत भी हैं। कथा प्रबन्ध के अभाव में ये चम्पू-काव्य तो नहीं कही जा सकतीं, परन्तु मिश्र शैली में लिखे गये दार्शनिक ग्रन्थों की अपेक्षा, ये चम्पू काव्य के अधिक समीप हैं और इन्हें आंशिक रूप में चम्पू काव्य का सौष्ठव प्रदर्शित करने का श्रेय प्राप्त हैं। इनमें निम्नलिखित विरुदावलियों की चर्चा स्थान-स्थान पर की गई है—

१—रघुदेव रचित विरुदावली, मिथिला के राजा की प्रशस्ति में प्रस्तुत की गई है। द्रष्टव्य-कलकत्ता संस्कृत कालेज कैटलाग नं० १३९

२—कल्याण कृत विरुदावली-किसी अज्ञात कवि की प्रशस्ति में (कं० सं० का० कै० नं० १४२)

३—किसी अज्ञात कवि की विरुदावली-किसी राजा (जहांगीर ?) या किसी देवी देवता की प्रशस्ति में (कं० सं० का० कै० नं० १३८) देवी की स्तुति में प्रस्तुत निम्नलिखित श्लोक में अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है—

शवशंखशवासनचक्रचकासनचारुचतुष्टया बहुमती।
मधुरध्वनिकंठी कृतकलकंठी कंठीरवगमना भारती॥
जयलोचन संकेतितजठादके पङ्केरुहमुखि सुखितभरे।
नवकज्जलरेखे धृतशशिलेखे महिषमहागजसिंहिशिरे॥ १॥

इस प्रकार परिगणित सभी चम्पू काव्यों में पौराणिक चम्पू काव्यों की संख्या सर्वाधिक है, उसके बाद चरितकाव्यों की। तृतीय स्थान संख्या की

दृष्टि से स्थानीय चम्पू काव्यों का है, और चतुर्थ स्थान यात्रा प्रबन्धों का। केवल चम्पू काव्यों में से ही अधिकांश का नहीं, अपितु संस्कृत साहित्य की अन्य विधाओं के भी मूलस्रोत रामायण, महाभारत एवं अन्य पुराण ही मुख्य रूप से रहे हैं। संस्कृत साहित्य की अन्य धाराओं में यात्रा प्रबन्धों एवं स्थानीय महोत्सवों या स्थानीय देवताओं पर लिखे गये काव्य उपलब्ध नहीं हैं।

वर्गीकरण की संख्यातालिका

१—रामायण	३६	२—महाभारत	२७	३—भागवत	४५
४—शिवपुराण	१८	५—अन्यपुराण	२३	६—जैनपुराण	६
७—चरित	४८	८—यात्रा प्रबन्ध	१०	९—स्थानीय	२५
१०—काल्पनिक	५	११—दार्शनिक	२	१२—मिश्रशैली की अन्य	३

चम्पू काव्यों का रचनाकाल—

शिलालेखों के माध्यम से चम्पू काव्यशैली का विकास हुआ। गद्य काव्यों ने उसे प्रेरणा दी और ९१५ ई० में नल चम्पू तथा ९५९ ई० में यशस्तिलक चम्पू काव्य का निर्माण हुआ। इस प्रकार चम्पू काव्य का श्रीगणेश दसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में ही होगया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक गिनती के ही चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं। इस काल के उपलब्ध चम्पू काव्यों में त्रिविक्रम कृत नलचम्पू, अभिनव कालिदास और कविकुञ्जरकृत पृथक्-पृथक् दो भारत चम्पू, अनन्त भट्ट कृत भारत चम्पू का मूलस्रोत महाभारत है। त्रिविक्रमकृत मदालसा चम्पू का मार्कण्डेय पुराण, भोजकृत रामायण चम्पू एवं दिवाकर कृत अमोघ राघव का मूलस्रोत रामायण, दो भागवत चम्पू, सोमदेवकृत यशस्तिलक, हरिचन्द कृत जीवन्धर, आशाधर कृत भरतेश्वराभ्युदय एवं अहोबलकृत पुरुदेव चम्पू जैनपुराणाश्रित हैं। इस काल की मिश्र शैली में रचित भोजप्रबन्ध, राजशेखर चरित, उदयसुन्दरी कथा एवं शालिवाहन कथा, ऐतिहासिक पात्रों को आधार बनाये कल्पना-प्रधान कृतियां हैं। यतिराज विजय एवं आचार्य विजय चम्पू, क्रमशः रामानुज और शंकराचार्य का चरित प्रस्तुत करते हैं। अहोबल का विरूपाक्ष वसन्तोत्सव चम्पू स्थानीय विरूपाक्ष मन्दिर के महोत्सव का वर्णन करता है।

इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक चम्पू काव्य की सम्पूर्ण विशिष्ट प्रवृत्तियों एवं रचना प्रवाह की दिशा का संकेत प्राप्त हो जाता है। रामायण, महाभारत अन्य पुराण, ऐतिहासिक एवं

आचार्यों के चरित, स्थानीय देवताओं के उत्सव तथा मुख्य रूप से भागवताश्रित कथायें चम्पू काव्यों की रचना के प्रेरणा स्रोत के रूप में प्रकट होती हैं।

बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में अनेक जैन काव्यों की रचना हुई। जैन चम्पूकाव्य इसी परम्परा की विविध कड़ियाँ हैं। वस्तुतः चम्पू काव्यों के उत्थान में जैनाचार्यों की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[1]

विजयनगर राज्य की स्थापना के उपरान्त चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल से ही वेदान्ताचार्यों का महत्त्व बढ़ने लगा। विजयनगर राज्य की स्थापना में सुप्रसिद्ध वेदान्ताचार्य विद्यारण्य स्वामी का महत्त्वपूर्ण हाथ था। उन्होंने स्वयं शंकराचार्य के दिग्विजय पर अनेक श्लोकों की रचना की। विजयनगर की स्थापना के उपरान्त ही वेदान्तदेशिक पुनः श्रीरंग वापस लौटे। इनके तप और त्याग से रामानुज सम्प्रदाय की प्रचुर श्रीवृद्धि हुई। चम्पू काव्यों के निर्माण में वैष्णव वेदानतचार्यों की संख्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनन्ताचार्य, रामानुजदास, श्रीनिवासदास एवं वेंकटनामधारी अनेक कवियों ने चम्पू काव्य की श्रीवृद्धि में योग दिया है, जो सभी इसी रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान अप्पय दीक्षित के परिवार से सम्बन्धित नीलकंठ दीक्षित प्रभृति अनेक व्यक्तियों ने चम्पू काव्य का सृजन किया। अन्य विद्वानों एवं कवियों के सहयोग ने संस्कृत साहित्य के इस ह्रासकाल में भी, चम्पू काव्यों के द्वारा उसकी समृद्धि में योगदान किया।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से चम्पू काव्यों की रचना लगभग ढाई सौ वर्षों तक निरन्तर होती रही। उपलब्ध एवं परिगणित चम्पू काव्यों में से, अधिकांश इसी काल में निर्मित हुए हैं। चम्पू काव्यों का इसे स्वर्ण-युग माना जा सकता है। दो सौ से ऊपर चम्पू काव्य इसी काल में लिखे गये, जिनमें केवल परम्परा का पालन मात्र ही नहीं हुआ है, अपितु उनमें नवीनता भी है और नवीन दृष्टिकोण भी। यात्रा प्रबन्धों एवं स्थानीय देवताओं के वर्णन द्वारा चम्पू काव्यों में नवीन विषयों का साहित्य में समावेश कर उसे जनजीवन के समीप लाने का प्रयास भी किया है।

चम्पू काव्यकार और उनके आश्रय स्थल—

चम्पू काव्य के निर्माण में योगदान करने वाले कवि दो प्रकार के हैं— राज्याश्रित एवं स्वतन्त्र। दक्षिण के जिन राज्यों में कवियों को मुख्य रूप से आश्रय प्राप्त हुआ, वे हैं—१ विजयनगर २ तंजोर एवं ३ ट्रावनकोर। इन राज्यों

---

१. द्रष्टव्य-जैन पुराणाश्रित चम्पू काव्य-इसी परिच्छेद में पृ० २८८।

के अतिरिक्त उत्तर भारत के ओरछा राज्य एवं वर्दवान राज्य के नाम भी कतिपय चम्पू काव्यों के साथ संश्लिष्ट हैं। परवर्ती काल में मैसूर राज्य एवं उसके राजा से संबन्धित चम्पू काव्य लिखे गये।

विजय नगर के संस्थापक, विद्यारण्य स्वामी, अद्वैत वेदान्त के अनुयायी थे, फलस्वरूप वेदों पर भाष्य तथा विविध दर्शन ग्रन्थों की उन्होंने रचना स्वयं की और शंकर दिग्विजय के द्वारा आचार्यों के चरित प्रस्तुत करने के लिये पथ-निर्देश किया।

तेलुगु साहित्य के अभ्युत्थान में विजयनगर के सुप्रसिद्ध राजा कृष्णदेव का शासनकाल[1] अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके दरबार में अष्टदिग्गज महाकवि थे।[2] वल्लभाचार्य स्वयं कृष्णदेव के दरबार में उपस्थित हुए थे और चार शैव आचार्यों को परास्त कर उत्तर भारत की ओर गये।[3] उन आठ कवियों के अतिरिक्त स्वयं कृष्णदेव ने, मदालसा-चरित्र, सत्यावधू-प्रीणनम्, जाम्बवती-परिणय, आमुक्त-माल्यदा आदि संस्कृत एवं तेलुगु काव्यों की रचना की और अन्य कवियों को प्रोत्साहन दिया।[4]

अच्युतराय (१५३०-१५४२ ई०) ने इस परम्परा को सुरक्षित रखा। वरदाम्बिका-परिणय चम्पू की रचना, अच्युत राय की पत्नी तिरुमलाम्बा ने की है। सन् १५६५ ई० में तालीकोट के युद्ध के परिणामस्वरूप विजयनगर का पूर्ण विनाश हो गया। कृष्णदेव के द्वारा आरम्भ किया गया, विठ्ठल मन्दिर अपूर्ण रह गया। कलामर्मज्ञों का आश्रम-स्थल एवं हिन्दुत्व की सुरक्षा का गढ़ विजयनगर समाप्त हो गया, अतः कवियों और कलाकारों ने अन्य स्थानों की शरण ली। विजयनगर के ध्वस्त साम्राज्य को संभालने का प्रयत्न प्रथम वेंकट (१५८६ ई०) ने किया और उसके दरबार में भी कुछ कवियों को आश्रय प्राप्त हुआ। इसके उत्तराधिकारियों की अयोग्यता के कारण राज्य के साथ-साथ कला और साहित्य की सुरक्षा भी संभव न हो सकी।

विजयनगर साम्राज्य की समाप्ति के उपरान्त, कवियों का आश्रयस्थल तंजोर का मराठा दरबार बना। तंजोर और सतारा के प्रमुख केन्द्र होते हुए भी तंजोर दरबार ने कवियों को अधिक प्रश्रय दिया। कविकुलिश, शिवाजी के पुत्र शम्भूजी का मन्त्री था। शंभूजी के पुत्र शाहूजी (१७०७-१७४९) के दरबार में

---

१. सन् १५०९ से १५३० तक।

२. मध्ययुग का इतिहास-पृ० ४२५।

३. मध्ययुग का इतिहास-पृ० ५५५।

४. तेलुगु और उसका साहित्य पृ० ४६–४७।

अनेक कवि थे। तंजोर के शासकों में शाहजी आधुनिक भोज कहलाते थे—लक्ष्मण कवि, सुमतीन्द्र, नल्ला दीक्षित, घनश्याम आदि अनेक चम्पू काव्यनिर्माताओं का सम्बन्ध मराठा दरबारों से रहा है। १७९९ में तंजोर पर अंग्रेजों का पूर्णाधिकार हो जाने पर भी, वह संस्कृत कवियों का आश्रयस्थल बना रहा। शरभोजी द्वितीय ने स्वयं कुमारसंभव चम्पू की रचना की और संस्कृत ग्रन्थों के संकलन में वह सदा प्रयत्नशील रहे।

दक्षिण भारत के संस्कृत कवियों का तीसरा आश्रयस्थल त्रिवेन्द्रम रहा। नारायण ने संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक चम्पू काव्य लिखे हैं। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही केरली में चम्पू काव्यों की रचनाओं की बाढ़ सी आ गयी थी। राज्यदरबार में सम्मान प्राप्त अनेक कवियों ने चम्पू काव्यों की रचना की। कार्तवीर्य प्रबन्ध, स्यानन्दूरपूर चम्पू आदि राजकीय व्यक्तियों की रचनायें हैं, और अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक त्रिवेन्द्रम का यह क्रम चलता रहा है।

इन तीन प्रमुख केन्द्रों के अतिरिक्त, मैसूर दरबार भी इस दिशा में सजग रहा है। सन् १८८१ में लार्ड रिपन ने जब मैसूर को हिन्दू राजा को सौंपा, तब से वह भी संस्कृत के परवर्ती विद्वानों का आश्रयस्थल बना। मैसूर राज्य एवं राजा के अभ्युदय सम्बन्धी जो ऐतिहासिक चम्पू काव्य उपलब्ध हैं, वे इसी काल के बाद के हैं। दक्षिण भारत के अन्य हिन्दू राजवंशों ने भी साहित्य के सृजन तथा सांस्कृतिक विकास को बहुत प्रोत्साहन दिया। चम्पू चरित काव्यों एवं यात्रा प्रबन्धों में इस प्रकार के आश्रयदाताओं का उल्लेख किया जा चुका है।

उत्तरी भारत के कतिपय राज्यों का निर्देश भी आवश्यकतानुसार चम्पू काव्यकारों ने किया है। पद्मनाभ मिश्र का सम्बन्ध रीवां नरेश वीरभद्र देव से था। रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह ने स्वयं दो चम्पू काव्यों की रचना की है। आनन्दकन्द चम्पू निर्माता मित्र मिश्र का सम्बन्ध ओरछा नरेश वीर सिंह देव से था। शंकर दीक्षित का काशीराज चेतसिंह से तथा वाणेश्वर विद्यालंकार का सम्बन्ध बर्दवान के राजा से था। उत्तर भारत में सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही, व्रजभाषा और अवधी ने काव्यभाषा के रूप में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। सत्रहवीं-अट्ठारहवीं शताब्दी में उत्तर के शेष हिन्दू राजाओं ने भाषा कवियों को अधिक प्रोत्साहित किया। रीतिकालीन दरबारी कविता का बहुत बड़ा भाग व्रजभाषा में ही है। उत्तरी भारत के संस्कृत कवियों एवं विद्वानों ने चम्पू काव्य निर्माण की ओर कम ध्यान दिया।

स्वतंत्र चम्पू काव्यकारों के मुख्य स्थल—

स्वतन्त्र चम्पू कवियों का एक बहुत बड़ा वर्ग, विविध मठों एवं मन्दिरों से संबन्धित है। कांची, श्रीरंग, वेंकटेश, मीनाक्षी, स्यानन्दूर, होय्यसलेश्वर, राजराजे-

श्वर (बृहदीश्वर), एलोरा का कैलाश मन्दिर आदि न केवल चम्पू काव्य, के वर्ण्य विषय बने हैं, अपितु इन मठों से सम्बन्धित कवियों ने भी अनेक चम्पू काव्यों की रचना की है। अहोबल ने विरूपाक्ष महादेव के वर्णन से इस ओर पथ निर्देश किया। इन मन्दिरों पर जो पौराणिक गाथायें उत्कीर्ण हैं, पुराणों से वे ही कथायें, चम्पू काव्यों के लिये अधिक गृहीत हुई हैं। उदाहरण के लिये "राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वारा निर्मित एलोरा के कैलाश मन्दिर में बयालिस पौराणिक गाथायें उत्कीर्ण हैं, इनमें नृसिंहावतार, शिव पार्वती का विवाह आदि की कथायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं"[1] इन पर[2] कई चम्पू काव्य लिखे गये हैं।

सोलहवीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों ने कई चम्पू काव्यों की रचना की। इनमें रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी, कविकर्णपूर, रघुनाथ दास आदि का उल्लेख किया जा चुका है। चम्पू काव्यों की परम्परा में दो बातें उल्लेखनीय हैं। गुरु शिष्य परम्परा ने एक ओर चम्पू काव्यों को समृद्ध किया है, तो दूसरी ओर वंशपरम्परा में उत्तरोत्तर चम्पू काव्यों की रचना होती गई है। प्रथम में उदाहरण के लिए श्रीनिवास रामानुज या घनश्याम और वेंकटेश को लिया जा सकता है, तो दूसरे के उदाहरण के लिये दीक्षित परिवार को। समरपुंगव दीक्षित, नीलकंठ दीक्षित, रामचन्द्र दीक्षित, अप्पा दीक्षित, नल्ला दीक्षित आदि एक दूसरे से निकट या दूर के सम्बन्धों से जुड़े हुए हैं। गुरु शिष्य परम्परा में रामानुजानुयायियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

उत्थान एवं ह्रासकाल—

(१) कालक्रम की दृष्टि से दसवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक सीमित चम्पू काव्यों की रचना हुई, परन्तु काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से ये चम्पू अधिक उत्कृष्ट हैं।

(२) चम्पू काव्यों का द्वितीय उत्थान काल सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व चरण तक माना जा सकता है।

(३) चम्पू काव्यों का तृतीय उत्थान सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक हुआ।

(४) इसके बाद का काल चम्पू काव्यों के ह्रास का काल है। द्वितीय उत्थानकाल का प्रेरणास्रोत विजयनगर का राज्य दरबार एवं श्रीरंग का मठ

---

१. द्रष्टव्य–भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास–पृ० ३९०, सत्यकेतु विद्यालंकार, सरस्वतीसदन, मसूरी।

२. उदाहरणार्थ–नृसिंहावतार, शिव-पार्वती-विवाह आदि।

रहा है। तृतीय का मराठा दरबार एवं ह्रासकाल में मैसूर एवं त्रिवेन्द्रम चम्पू काव्यों के निर्माण के केन्द्र रहे हैं।

चम्पू काव्यों का लोकप्रिय मूल स्रोत—

चम्पू काव्यों के मूलस्रोत विविध पुराण रहे हैं। दो सौ पैंतालीस चम्पू काव्यों में रामायण पर लगभग ३६, महाभारत पर २७, भागवत पर ४५, शिवपुराण पर १८, जैन पुराणों पर ६, आचार्यों एवं अन्य ऐतिहासिक पुरुषों तथा कवि के सामान्य आश्रयदाताओं के चरित पर ४८, यात्रा विवरणों पर १०, तथा स्थानीय मन्दिरों देवताओं एवं उनके महोत्सवों पर ३५ चम्पू काव्य निर्मित हैं। शेष चम्पूकाव्यों में कुछ दार्शनिक हैं और कुछ अन्य पुराणों पर आश्रित। शिव पुराण या अन्य पुराणों को आश्रय बनाकर जो चम्पू काव्य लिखे गये हैं, उनकी कथाओं में से भी अधिकांश कथायें भागवत में संक्षिप्त रूप में वर्णित हैं। अतः संख्या एवं वस्तुग्रहण–इन दोनों ही दृष्टियों से भागवत सर्वाधिक लोकप्रिय मूलस्रोत सिद्ध होता है। "दक्षिण भारत के स्थानीय देवताओं की पौराणिक महत्ता का वर्णन स्कन्दपुराणान्तर्गत माना जाता है।" स्कन्दपुराण, नारदादि पुराणों के अनुसार विशेष रूप से शैव पुराण है। परन्तु जान पड़ता है कि अन्यान्य सम्प्रदायवालों का भी इसमें विशेष हाथ लगा है। इस महापुराण में भारतवर्ष के असंख्य तीर्थों का वर्णन पाया जाता है। एक प्रकार से इसमें तीर्थों के व्याज से सारे प्राचीन भारतवर्ष का बहुत उत्तम भौगोलिक वर्णन है।"[1]

रामायण और महाभारत तो अपने रचनाकाल के बाद से ही, संस्कृत काव्यों के प्रेरणास्रोत रहे हैं, परन्तु भागवत एवं शिवपुराण के काव्याश्रय बनने के मूल में भक्ति आन्दोलनों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इन दोनों के बाद विशिष्ट व्यक्तियों के चरितों को चम्पू काव्यों में प्रश्रय मिला है। ये चरित या तो राजाओं के हैं, या धनाढ्य व्यक्तियों के। चरितकाव्यों में से भी कुछ तीर्थ-स्थानों की यात्रा का वर्णन करते हैं, जिनमें भक्ति-भावना का भी प्रचुर समावेश हुआ है। स्पष्टतः चम्पू काव्य के निर्माण एवं विकास की मूलप्रेरक शक्तियां दो थीं—१. भक्ति आन्दोलन और २. दरबारी प्रभाव एवं वातावरण।

भक्ति आन्दोलन और चम्पू काव्य—

भारतीय जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला दर्शन, वेदान्त दर्शन है। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने जिस ढंग से वेदान्त सूत्रों की व्याख्या की थी,

१. हिन्दुत्व–पृष्ठ ३४८, तीर्थों की विस्तृत सूची उसी पृष्ठ पर द्रष्टव्य।

परवर्ती अनेक दार्शनिकों ने उसे पसन्द नहीं किया। ब्रह्म के अतिरिक्त जीव की सत्ता को न मानने से ईश्वर भक्ति का कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। इस लिये वैष्णव आचार्यों ने वेदान्त सूत्रों की इस प्रकार व्याख्या की, जिससे ब्रह्म और जीव की पृथक् सत्ता सिद्ध हो सके।"

भगवान शंकराचार्यके पीछे वैष्णव धर्म के चार प्रधान सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय, माध्वसम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय और सनक सम्प्रदाय। इन चारों सम्प्रदायों का आधार श्रुति है, और दर्शन वेदान्त है। अवतारों और विष्णु वा नारायण के चरित वर्णन में प्रत्येक पुराण की अपनी अपनी विशेषता है। इनमें, वैष्णव पुराणों में विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवंश पुराण और श्रीमद्भागवत में विष्णु, नारायण, यादवकृष्ण और गोपालकृष्ण के चरितों का कई पहलुओं से वर्णन है। श्रीमद्भागवत ही सब पुराणों में भागवत सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ समझा जाना चाहिए। भागवत धर्म की यही विशेषता है।"[1] उक्त चारों सम्प्रदायों का मुख्य पुराण ग्रन्थ भागवत ही है।

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। विक्रम की पांचवीं शताब्दी में आचार्य श्रीकण्ठ ने ब्रह्मसूत्र की शिवपरक व्याख्या करके, विशिष्टाद्वैतवाद का विशेष रूप से प्रचार किया था। परन्तु ब्रह्मसूत्र की विष्णुपरक व्याख्या नये ढंग से विक्रम की दसवीं शताब्दी से ही शुरू हुई। यामुनाचार्य ने अपने अलौकिक पाण्डित्य के बल पर विशिष्टाद्वैत को नया आलोक प्रदान किया और उसके बाद बारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने तो विशिष्टाद्वैत मत का मानों सारे देश में समुद्र ही बहा दिया; परन्तु यामुनाचार्य और श्रीरामानुजाचार्य ने जिस भाव का प्रचार किया, उसकी शिक्षा उन्हें गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा ही प्राप्त हुई थी।[2] अत्यन्त प्राचीनकाल से दक्षिणभारत में हरिभक्ति का प्रचार था। श्री वैष्णव सम्प्रदाय के लोगों के कथनानुसार, कलियुग के आरम्भ में ही परमभक्त आलवार लोग विद्यमान थे। पोंइहे, पूदत्त और पे नामक सुप्रसिद्ध भक्त आचार्य उसी समय हुए थे। इसी भक्त परम्परा में शठकोप उनके शिष्य, मधुरकवि, केरल के कुलशेखर आदि हुए।"[3]

"तमिल साहित्य का भक्तिकाल चौथी से दसवीं शताब्दी तक माना जाता है। इसमें शैव और वैष्णव, दोनों प्रकार के भक्तों की परम्परा सम्मिलित है। शैव कवियों में कारेकाल अम्मैगार (नारी कवि), मणिक्कवाचक (४थी श०)

---

१. हिन्दुत्व-पृष्ठ ६४०-४१।

२. वही पृष्ठ ६४१-४२।

३. वही पृष्ठ ६४३।

अप्पर (५७५-६५० ई०), सम्बन्दर, सुन्दरर् ,शेक्किलार, तिरुमूलर् प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में शिव-भक्ति की मधुर धारा प्रवाहित की है।"[1]

"जिन तीन भक्त आचार्यों का श्रीरामदास गौड़ ने उल्लेख किया है तमिल साहित्य में-पोयगे आल्वार २ पूदत्तालवार और ३ पेयालवार के तीन शतक विख्यात हैं ये "तिरुवन्दादि" कहलाते हैं। बेण्वा छन्द में रचित ये तीनों शतक भाषा-सौष्ठव एवं अर्थ-गाम्भीर्य की दृष्टि से उच्च कोटि के काव्य हैं। पूदत्तालवार की कविता का एक भाव इस प्रकार है—

"प्रेम के दिये में अभिलाषा का घी डाल, स्निन्ध हृदय की बाती लगा, स्नेह द्रवित आत्मा के साथ मैंने रामायण के सम्मुख ज्ञान दीप जलाया।"[2]

भक्ति काव्य द्वारा, स्निग्ध वात्सल्य रस प्रवाहित करने वाले वैष्णव पेरियालवार सन्त कवि ने कृष्ण के बालरूप का मनोरम वर्णन किया हैं। उनकी पोषिता कन्या गोदा (चाण्डाल) ने अपने काव्य में शृङ्गार की मधुसरिंता प्रवाहित की है। इनके भावों का संकेत देखिये—

"नीले कालीन की भांति आकाश में बिछे हुए हे मेघो, मुक्तानिधि के बरसाने वाले हे दानियों, तुम्हीं बताओ, सुन्दर सांवरे की बात क्या रही ?

(त० सा० पृष्ठ ६४ गोदा)

"इकलौती बिटिया मेरी। श्रीसम पाला था उसे मैंने। पर मदभरे अरुणिम नैनों वाला माधव उसे हर ले गया।" पेरियालवार ॥ (त० सा० पृ० ६५)

"विशिष्टाद्वैतवादी प्राचीन दार्शनिकों एवं भक्ति की गतिमती गंगा प्रवाहित करने वाले आलवार संत कवियों की चली आती हुई परम्परा को ही, दसवीं शताब्दी में अपनी प्रतिभा से श्रीयामुनाचार्य ने पुनः स्थापित किया और रामानुजाचार्य ने इसका सर्वत्र प्रचार किया।[3]

यामुनाचार्य ने सिद्धित्रय में चित् (जीव), अचित् (जगत) और पुरुषोत्तम (ब्रह्म) का निर्णय किया और इन्हीं तीनों की पृथक् सत्ता का स्पर्ष्टीकरण कर रामानुज ने अपने मत का विस्तार किया। भक्तिवाद और शरणागतिवाद की अपूर्व झांकी यामुनाचार्य के स्तोत्ररत्न में दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ—

"न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥"[4]

---

१. तमिल और उसका साहित्य पृष्ठ ४८-५८।

२. तमिल और उसका साहित्य, पृ० ५९।

३. हिन्दुत्व पृ० ६४३।

४. हिन्दुत्व पृ० ४७।

"रामानुजाचार्य ने ब्रह्म को सगुण और सविशेष माना। दसों अवतारों को स्वीकार किया। ब्रह्म और जीव दोनों को नित्य माना। ज्ञान को मुक्ति का साधन न मानकर भक्ति ध्यान-उपासना-प्रपत्ति (शरणागति) को ही मुक्ति का साधन स्वीकार किया। "अनन्य-शरणं त्वत्पदारविन्दयुगलम् शरणमहं प्रपद्ये" पर बल दिया।"[1] रामानुजाचार्य के इस भक्ति आन्दोलन ने एक ओर तो वैष्णवाचार्यों के चरित प्रस्तुत करने के लिये चम्पू काव्यकारों को प्रेरणा दी और दूसरी ओर उन्हें विष्णु के अवतारों एवं कृष्ण सम्बन्धी कथानकों को आधार बनाकर चम्पू काव्य लिखने की ओर प्रेरित किया। वेंकटनाथ वेदान्ताचार्य (वेदान्तदेशिक) ने चौदहवीं शताब्दी में रामानुज की भक्ति-परम्परा को गतिशीलता प्रदान की। रामानुज मतानुयायी चम्पू निर्माताओं ने रामानुज के साथ-साथ वेदान्तदेशिक की भी वन्दना की है।"

"भक्ति आन्दोलन को बल देने वाले अन्य आचार्यों में मध्वाचार्य (१२३८ ई०) ने द्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। रामानुज ने तो ब्रह्म और जीव में सजातीय या विजातीय भेद नहीं माना, पर मध्वाचार्य ने दोनों की नित्य और पृथक् सत्ता स्वीकार की। ज्ञेय और ज्ञाता के रूप में दोनों को अलग कर दिया। जगत् को नित्य मानकर मध्व ने जीव और जगत् दोनों को ब्रह्म के आधीन माना। ब्रह्मा, शिव आदि से विष्णु श्रेष्ठ हैं वही मुक्ति देते हैं। वैकुण्ठ-प्राप्ति ही मुक्ति है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। दशविधभजन, भक्ति के कार्य हैं।"[2]

"मध्वाचार्य ने उदीपि में श्रीकृष्ण की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। शालग्राम की सुब्रह्मण्य, उदीपि और मध्यतल में प्रतिष्ठा के अतिरिक्त श्रीराम-सीता, लक्ष्मण-सीता द्विभुज-कालिय-दमन, चतुर्भुज-कालियदमन और विट्ठल नामक कुल आठ मन्दिरों एवं मूर्तियों की प्रतिष्ठा कर इन्हें भक्तों के तीर्थ बना दिये।"[3]

द्वैताद्वैतवाद के व्याख्याता निम्बार्क (१२५० ई०) का सम्प्रदाय ही सनकादि सम्प्रदाय कहलाता है। इनकी दृष्टि में जीव और जगत्, ब्रह्म से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी हैं। भक्ति ही मुक्ति का उपाय है। मुक्तावस्था में भी जीव, जीव ही है। इन्होंने जिज्ञासा का विषय भी–"सर्वभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मेव जिज्ञासाविषयः" वासुदेव को ही माना है। श्रीनिवास, केशव आदि इस सम्प्रदाय के परम भक्त हुए हैं।"[4] इस सम्प्रदाय का केन्द्र वृन्दावन रहा।

---

१. हिन्दुत्व पृ० ६५३-६५४।
२. द्रष्टव्य–हिन्दुत्व ६६५–६८।
३. वही–हिन्दुत्व ६६५–६८।
४. वही–हिन्दुत्व ६७०–६७४।

रुद्र सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग के प्रचारक आचार्य वल्लभ (१५०० ई०) ने अणु-भाष्य लिखकर अपने मत की पुष्टि की। इनकी दृष्टि में ब्रह्म शुद्ध है। वह जगत् का, निमित्त तथा उपादान, दोनों कारण है। जीव, ब्रह्म का अंश है तथा गोलोकस्थ श्रीकृष्ण की सायुज्य प्राप्ति ही मुक्ति है। शुद्ध जीव समस्त जगत को कृष्णमय देखकर, कृष्ण के प्रेम में, उनकी सेवा स्वामी रूप में करके, परमानन्द रस में चैतन्मय रहता है। जो जीव पुरुषोत्तम के साथ युक्त है, वह सब कुछ उपयोग करता है। भगवान् की कृपा के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। भगवत्प्रसाद से शुद्ध पुष्टिमार्गीय भक्ति का उदय होता है। भगवान् का अनुग्रह ही पुष्टि है। पुष्टि ही चारों प्रकार के पुरुषार्थ की सिद्ध करती है। "भागवत लीला रहस्य" में इन्होंने लीला का दार्शनिक विवेचन भी प्रस्तुत किया है।

इन्होंने उज्जैन में सिप्रा तट पर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे निवास किया था। मथुरा वृन्दावन को केन्द्र बनाकर आचार्य वल्लभ ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत में भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित की।

बंगाल में भक्ति को महत्त्व दिलाने वाले महाप्रभु चैतन्य (सं० १५४२-१५९० वि०) का सम्प्रदायगत सिद्धान्त, अचिन्त्य भेदाभेदवाद कहलाता है। इन्होंने स्वयं कुछ नहीं लिखा, पर इनके दो शिष्यों—रूप और सनातन गोस्वामी तथा इनके बाद जीव गोस्वामी ने इस मत का दार्शनिक पक्ष स्पष्ट किया। श्री जीव गोस्वामी ने वृन्दावन में राधा-दामोदर के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। श्री चैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्र का भाष्य है। श्री वल्लभ का पुष्टि-मार्ग-साधन और गौडीय मत के मधुर भाव का साधन, प्रायः एक ही चीज हैं।

ये चारों वर्णित सम्प्रदाय भक्ति को महत्त्व देते हैं। रामानुज और मध्वाचार्य के प्रयत्नों के फलस्वरूप दक्षिण भारत में परवर्ती काल में भक्ति सम्प्रदाय की नींव सुदृढ़ हुई और निम्बार्क, वल्लभाचार्य तथा चैतन्य के द्वारा उत्तर भारत में इसका प्रसार हुआ। कृष्ण सम्बन्धी, उत्तरी भारत में लिखे गये जीव गोस्वामी मित्र मिश्र आदि के चम्पू काव्य इस भक्ति भावना से सम्पन्न हैं। इनमें लीला वर्णन करते हुए कवियों ने शृंगार का मर्यादित रूप ही रखा है। आनन्द वृन्दावन, गोपाल चम्पू, आनन्दकन्द चम्पू आदि में भी राधा और कृष्ण की प्रणय-लीला, गोपियों के साथ रास आदि शृंगार वर्णन के स्थल विद्यमान हैं। कवि की मनोवृत्ति का स्पष्ट रूप इन वर्णनों से सामने आता है। उक्त चम्पू काव्यों में भागवत का पूर्ण अनुसरण दिखाई पड़ता है। वंशी और रास-नृत्य के वर्णन में कवि कर्णपूर ने जिस कलामर्मज्ञता का परिचय दिया है, वह दक्षिण के किसी भी कवि

के भागवत चम्पू काव्य में नहीं दिखाई पड़ता। कृष्ण चरित को आश्रित कर लिखे गये चम्पू काव्यों में से उल्लिखित चम्पू काव्यों को छोड़कर, शेष में कवि का न तो कहीं व्यक्तित्व ही भक्त रूप में दिखाई पड़ता है, न वर्णन के मूल में भक्ति की मनोवृत्ति ही। इन चम्पू काव्यों की अपेक्षा यात्रा-प्रबन्धों में प्रसंगागत स्तोत्रों में कहीं अधिक भक्ति-भावना टपकती है। वस्तुतः प्रत्येक प्रकार के चम्पू काव्यों में जहाँ कहीं भी कवि को अवसर मिला है—श्रृङ्गार का श्रृङ्गार करने के लिये वह तत्पर हो उठा है।

भक्ति में श्रृंगार और दरबारी वातावरण का मिश्रण

रति मानव मन की अन्यतम वृत्ति है। मनोनुकूल वस्तु में सुखप्राप्त होने का ज्ञान, अथवा प्रिय वस्तु के प्रति मन के उन्मुख होने का भाव, किंवा नायक और नायिका का पारस्परिक अनुराग का नाम रति है—"रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्"। इसकी स्थिति के लिये आलम्बन विभाव में, नायक तथा नायिका को आलम्बन और आश्रय माना गया है। आलम्बन सौन्दर्य का पात्र है, आश्रय प्रेम का, सौन्दर्य भाव वस्तु है, प्रेम भाव है। रति की परिपक्वावस्था ही श्रृङ्गार रस में परिवर्तित होती है। उपनिषदों तक में श्रृङ्गार भावना का दर्शन होता है—

"तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद, नान्तरम्, एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद, नान्तरम् जायया संपरिष्वक्तो न बाह्यं वेद नान्तरम्। निदर्शनं श्रुतिः प्राह मूर्खस्तन्मन्यते विधिम्।" बृहदारण्यक उप० ४।३।२१।"

संस्कृत साहित्य में तो श्रृङ्गार को रसराज स्वीकार कर, इसकी उन्मुक्त धारा प्रवाहित की गई। अपवादस्वरूप ही संस्कृत का कोई काव्य उपलब्ध हो सकता है, जिसमें श्रृङ्गार की सरिता न बही हो। श्रृङ्गार के पूर्वानुराग, संभोग और वियोग पक्ष सभी का समावेश हुआ है। लक्षण ग्रन्थकारों ने श्रृङ्गार के लिये जिन आवश्यक अंगों को अनिवार्य माना है, उनके समावेश के बिना, श्रृङ्गार रस प्रधान काव्य खरा न उतरता, परिणामस्वरूप उत्तान श्रृङ्गार के वर्णन में भी कवियों को संकोच क्यों होता? काव्यप्रकाशकार ने कहा है—

"तत्र श्रृङ्गारस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगौ विप्रलम्भश्च। तत्राद्यः परस्परावलोकनालिंगनाधरपानपरिचुम्बनाद्यनन्तत्वाद् परिच्छेद्य एव गण्यते।" चतुर्थ उल्लास।

रति प्रक्रिया के अनन्त भेद ने कवियों की विलासवृत्ति को प्रचुर प्रश्रय दिया। उनकी उर्वर कल्पना ने सीमा में रहना स्वीकार नहीं किया। वात्स्यायन

का कामसूत्र साहित्य को उसी प्रकार प्रभावित करने लगा, जिस प्रकार आधुनिक साहित्य को फ्रायड का सिद्धान्त।

संस्कृत साहित्य का नायक समृद्ध नागरिक तो होता ही है, वह विलासी जीवन भी व्यतीत करता है। उसका निवास स्थान सरोवरों और उपवनों से सुसज्जित एक विशाल प्रासाद होता है। उसका अन्तःपुर विलासिता की विविध सामग्रियों से सम्पन्न होता है। नागरिक के निवास स्थान की झलक मेघदूत के यक्ष के निवास स्थान में, माघ के द्वारिका वर्णन (तृतीय सर्ग में) तथा मृच्छकटिक के चारुदत्त और वसन्तसेना के घरों के वर्णन में देखी जा सकती है। चम्पू काव्यों के अधिकांश नायक भी समृद्ध हैं। उनकी नगरी, उनका निवास स्थान अनुपम है। वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रथम अध्याय चतुर्थ "नागरिक वृत्त प्रकरण" निवास और दिनचर्या का आदर्श बन गया था। कुछ पंक्तियां उद्धृत करना पर्याप्त होगा—

"तत्र भवनयासन्नोदकं वृक्षवाटिकावद्विभक्तकर्मकक्षं द्विवासगृहं कारयेत्।
वासे च वासगृहे सुश्लक्ष्णमुभयोपधानं मध्ये विनतं शुक्लोत्तरच्छदं॥"
कामसूत्र १।४।४।

शयनीयं स्यात् प्रति शयिका च।१।४।५। प्रथम अधिकरण, चतुर्थ अध्याय, पंचमसूत्र॥ **नागदन्तावसक्ता वीणा चित्रफलकं वर्तिका समुद्गमो यः कश्चित्पुस्तकः कुरण्टकमाला च।१।४।१०॥**

तत्र बहिः क्रीडाशकुनि पिंजराणि।१।४।१३॥

समृद्ध जीवन के विलासी चित्रों को कालिदास ने ही सामने रखना आरम्भ कर दिया था। मेघदूत में नीच पर्वत पर, पण्य स्त्रियों के रतिपरिमल[1] स्त्रियों की रतिग्लानि हरते सिप्रा वात[2] आदि का तो उन्होंने वर्णन किया ही है, कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में शिव-पार्वती के संभोग वर्णन में भी वह पर्याप्त आगे बढ़ गये हैं। कुमारसंभव के प्रथम, तृतीय तथा सप्तम सर्ग का पार्वती का रूप वर्णन, यक्षिणी का नखशिख वर्णन, उद्दीपन रूप में विविध प्रकृति-चित्रों का अंकन शृङ्गार के ही अन्तर्गत हैं। भारवि के किरातार्जुनीय के आठवें, नवें और दसवें सर्ग में शृङ्गार के कई स्थल हैं। अप्सराओं का वन-विहार, पुष्पावचय, जलक्रीडा, आदि ऐन्द्रिय शृङ्गार के ही रूप हैं।[3] महाकवि माघ के शिशुपालवध का नवम एवं दशम

---

१. मेघदूत पूर्व, २५।

२. वही ३१।

३. विहस्यपाणौ विधृते घृताम्भसि प्रियेणवध्वामदनार्द्र चेतसः।
सखीव कांची पयसा घनीकृता बभारवीतोच्चयबन्धमंशुकम्॥
८।५१॥ किराता०॥

सर्ग विलास चित्रों से भरा है। अन्य सर्गों में भी (७ । ४९, ११ । १३) आलिंगनादि के वर्णन उपलब्ध हो जायेंगे। श्रीहर्ष के नैषधीयचरित में अट्ठारहवें से बाइसवें सर्ग तक का वर्णन चम्पू काव्यों के राजकीय चरित वर्णनों का प्रेरक प्रतीत होता है। इनमें नल दमयन्ती के प्रथम समागम से लेकर दैनिक चर्या तक का वर्णन है। चाटूक्तियों का भी इसमें समावेश है, जो श्रीनिवास विलास चम्पू आदि में दिखाई पड़ता है। एकादशसर्ग का पदलालित्य (११।५,६) भी परवर्ती कवियों के लिये अनुकरणीय रहा।

इन प्रमुख काव्यों के अतिरिक्त भास के मृच्छकटिक, कालिदास के तीनों नाटकों, हर्ष की रत्नावली, भवभूति के मालतीमाधव, उत्तररामचरित आदि अनेक नाटकों, दशकुमारचरित एवं कादम्बरी आदि गद्यकाव्यों, गाथा और आर्या सप्तशतियों, गीतगोविन्द और भामिनीविलास आदि गीति काव्यों में सर्वत्र शृङ्गाररस की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है।

शृङ्गार अपनी उच्चतम अनुभूति में आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक बन जाता है और अपनी निम्न कोटि में वासना के दर्शन से मिलकर कुछ मलिन सा प्रतीत होने लगता है। प्रेम और श्रद्धा के योग का नाम भक्ति है। श्रद्धा-समन्वित-रागात्मक-आध्यात्मिक अनुभूति ही भक्ति का रूप ग्रहण करती है। श्रद्धा की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति ही अलौकिक एवं लौकिक शृङ्गार को अन्तरित करने वाली विभाजक रेखा है। अमरुकशतक (९ वीं श०) में तत्कालीन विलासीदाम्पत्य-जीवन तथा प्रणयव्यापार के जो मुक्त चित्र अंकित हुए हैं, उन्हें आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर अंकित चित्र नहीं माना जा सकता। नवोढासुग्धा, खंडिता प्रौढा, ताने सहते धृष्ट नायक, प्रवत्स्यत्पतिका के अश्रुप्रवाह, अभिसारिकाओं के नूपुरों की रुनझुन के वर्णन में कवि का उद्देश्य स्पष्ट है। एक पद देखिये—

> गाढालिंगनवामनीकृतकुचप्रोद्भिन्नरोमोद्गमा।
> सान्द्रस्नेहरसातिरेकविगलच्छ्रीमन्नितम्बाम्बरा।
> मा मा मानद मातिमामलमितिक्षामाक्षरोल्लापिनी
> सुप्ता किन्नु मृता नु किं मनसि मे लीना विलीना नु किम्।

अमरुकशतक।

आध्यात्मिक और लौकिक शृंगार के वर्णन को स्पष्टरूप से पृथक्-पृथक् समझने के लिये—आर्यासप्तशती और दुर्गासप्तशती तथा अमरुकशतक एवं चण्डीशतक का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। दुर्गा और चण्डी के रूप का चित्रण होते हुए भी उसकी ध्वनि भिन्न है।

भक्ति और शृंगार का समन्वित रूप भागवतपुराण ने प्रस्तुत किया है जिसको पृष्ठभूमि पर अनेक भागवत चम्पू काव्यों का निर्माण हुआ है। भागवत का दशम स्कन्ध शृंगारिक भक्त कवियों का आकर्षण स्थल बन गया था, और परवर्ती कवियों, मुख्यतः दरबारी कवियों के लिये भी, चाहे वे हिन्दी के हों चाहे संस्कृत के, शृंगार वर्णन का आश्रय केन्द्र हो गया। भागवत में कृष्ण के उन्मुक्त-विहार एवं गोपियों के साथ रास[1] और रति क्रीड़ा[2] का प्रचुर वर्णन होते हुए भी, रास के समय काम के आक्रमण एवं उसकी पराजय के रूप में कृष्ण की मर्यादा को सुरक्षित करने का प्रयत्न किया गया है। गोपियों की कृष्ण के प्रति श्रद्धा को भी पूर्ण महत्त्व दिया गया है। राधा भागवत में नहीं है।

"उपासना पद्धति एवं साहित्य में राधाकृष्ण के आविर्भाव का अपना अलग इतिहास है। इतिहासकारों का कहना है कि कृष्ण तथा राधा आभीरों के देवता थे। महाभारत में राजनीति वाले कृष्ण का रूप हमें प्राप्त होता है, वह इन आभीरों के बाललीला वाले कृष्ण से भिन्न है। धीरे-धीरे महाभारत के कृष्ण का चरित्र आभीरों के कृष्ण से घुलमिल गया है, जो पशुचारण करने वाली जातियों के वनदेवता थे। राधा भी इन्हीं की वनदेवी थी। राधा का समावेश भी कृष्ण के साथ ही साथ, भागवत सम्प्रदाय में हो गया था। साहित्य में राधा का नामोल्लेख सर्वप्रथम हाल की सतसई की एक गाथा में हुआ है इसके बाद लोक साहित्य से राधा संस्कृत साहित्य में भी अवतीर्ण हुई और वेणीसंहार के एक मंगलाचरण (जिसे प्रायः प्रक्षिप्त माना जाता है) में तथा ध्वन्यालोक में उद्धृत एक पद्य में राधा का नाम मिलता है। ध्वन्यालोक का वह पद्य यों है—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहः साक्षिणां,
क्षेमं भद्रकलिन्दशैलतनया तीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः॥"

यद्यपि साहित्य में राधा की प्रतिष्ठापना के बीज छठी-सातवीं सदी के आसपास ही माने जाते हैं, तथापि राधा के चरित्र को पूर्णतः पल्लवित करने में जयदेव के गीतगोविन्द (१२ वीं श०) का खास हाथ है।"[3]

---

१. द्रष्टव्य—भागवत १०।२९—३३ अ०।

२. बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनाऽलभननर्मनखाग्रपातैः।
दवेल्यावलोकहसितै व्रजसुन्दरीणामुत्तंभयन् रतिपती रमयांचकार॥
१०।२९।४६॥

३. संस्कृत कविदर्शन पृ० ५६१—५६२।

"ईसा की बारहवीं सदी में बंगाल में राधा तथा कृष्ण की शृङ्गारी उपासना का उदय हो रहा था। यद्यपि इस काल में कृष्णपरक साहित्य को पूर्णतः भक्तिमय नहीं माना जा सकता, तथापि इस साहित्य में आगे आने वाले कृष्ण सम्बन्धी शृङ्गारी एवं भक्तिमय साहित्य के बीज विद्यमान हैं।"[1]

गीतगोविन्दकार ने राधा का, कृष्ण-सौन्दर्य श्रवणकर पूर्वराग, दूती की प्रेरणा से निकुंज में अभिसार, कृष्ण के न मिलने पर विप्रलब्धा का रूप, धृष्टनायक कृष्ण का परांगनोपभोग के चिह्नों से विभूषित होकर आना, खंडिता एवं कलहान्तरिता, मान, मनाना, दूती की चेष्टा आदि वर्णित कर उसे विशुद्ध शृङ्गारिक काव्य बना दिया है। कृष्ण के इस रूप में चित्रण के पीछे भागवत के कतिपय श्लोकों का समर्थन है :—

का स्त्र्यंग ते कलपदायतवेणुगीतसंमोहिताऽर्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥
१०।२९।४०

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥ भाग १०।३३।३०॥

कृष्ण और गोपियों या कृष्ण और राधा का, चाहे कितना भी शृङ्गार का वर्णन किया जाय, उसमें कोई दोष नहीं है। रस भंग या अनौचित्य का प्रश्न भी उपस्थित नहीं होता। प्रत्येक राजा अष्टमूर्तियों का धरा पर प्रतीक है, वह अनेक तेजों का संवलित रूप है, फिर उसके शृङ्गार वर्णन में विलासिता या अनौचित्य का दोष कैसे आ सकता है। बंगाल के लक्ष्मणसेन हों या विजयनगर के अच्युतराय या राजा सहित श्रीनिवास देवता, सभी तेजःरूप हैं।

भक्ति आन्दोलन का गौडीयरूप तो माधुर्य से पूर्ण था ही—दक्षिण से भक्ति के प्रवर्तक आचार्य निम्बार्क और वल्लभ इससे कुछ भिन्न न दे सके। प्रायः सभी वैष्णवाचार्य सामन्तवादी राजाओं के दरबारों का चक्कर लगा चुके थे। वहाँ के विलासितापूर्ण वातावरण की विषैली भूमि में भक्ति का शृङ्गारिक पौधा ही पनप सकता था। दक्षिण भारत को तो प्राचीन धार्मिक आन्दोलनों से भी शृंगार की विरासत प्राप्त हुई थी। जीवकचिन्तामणि और यशस्तिलक के मुक्त शृङ्गार का उद्देश्य सांसारिक-विलासिता के दुष्परिणामों का प्रदर्शन है। आलवारों की मधुर भक्ति का रूप भी, गौडीय सम्प्रदाय से भिन्न तो था ही नहीं, वह प्राचीन भी था। यही स्थिति तमिल साहित्य के शिव भक्त कवियों को भी प्राप्त थी। चम्पू

१. संस्कृत कविदर्शन पृ० ५६१-५६२।

काव्यों को तमिल साहित्य, भागवत और जैन तथा शैव परम्परा का शृङ्गारिक रूप सामने मिला ही था। दरबारी वातावरण में यह भावना, स्वेच्छानुसार आचरण करती रही। चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक, माधुर्य भावोपासना के सभी उपदेशक आचार्यों का प्रचुर प्रचार हो चुका था। वल्लभ सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भंडारकर के निम्नलिखित विचार द्रष्टव्य हैं—

"इस सम्प्रदाय का प्राण विलासमय सुखोपभोग जान पड़ता है और इससे यही आशा की जा सकती है कि अपने अनुयायियों के साधारण आचार विचारों को इसने अवश्य प्रभावित किया होगा। सांसारिक भोगों के प्रति उदासीन बनाने वाली चारित्रिक शुद्धता, इस सम्प्रदाय का लक्षण नहीं प्रतीत होता। इस सम्प्रदाय के दुराचारों की प्रतिक्रिया, उन्नीसवीं शताब्दी ने स्वामी नारायण द्वारा प्रारम्भ किये गये आन्दोलन के रूप में हुई।" —वैष्णविज्म पृ० ८२।

रामानुज से लेकर वल्लभ सम्प्रदाय तक के सभी मठ और मन्दिर विलास-वैभव से सम्पन्न थे। वहां के वातावरण और सम्प्रदाय के व्यापक आचरण की झांकी अनेक कृतियों में दिखाई पड जाती है। विश्वगुणादर्श ने जो कुछ रामानुज सम्प्रदाय के विषय में व्यक्त किया है, वह द्रष्टव्य है। मीनाक्षी-परिणयचम्पू, मीनाक्षी के शिवमन्दिर में जाने की कथा है, और भिल्लकन्यापरिणयचम्पू में एक भिल्ल कन्या के नृसिंह मन्दिर में। परिणय काव्यों की रचना के मूल में, विलासी जीवन के चित्रण की प्रवृत्ति तो थी ही, भागवत से गृहीत कथानकों को लेकर लिखे गये चम्पू काव्यों में से भी एक बड़ी संख्या परिणय काव्यों की ही है। मठों के देवताओं के साथ हो या शिव, कृष्ण और प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के साथ, सभी परिणय काव्यों में शृङ्गार का विलासी रूप व्यक्त हुआ है। पारिजातहरण का कथानक भागवत से गृहीत है, पर सपत्नी-ईर्ष्या, मान आदि का जो रूप उसमें प्रस्तुत किया गया है वह जयदेव के गीतगोविन्द की भावना से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार—

सा हास-हंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनाऽभ्युन्नतपद्मकोषा।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन स्त्री पद्मिनी नन्ददिवाकरेण॥

सौन्दरनन्द ४।४

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रमेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः॥

रघुवंश ७।९

विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेण बध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव कांची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम्॥

किराता० ८।५१

बलयार्पितासितमहोपलप्रभा बहुलीकृतप्रतनुरोमराजिना ।
हरिवीक्षणा क्षणिकचक्षुषान्यया करपल्लवेन गलदम्बरं दधे ॥

— माघ १३।१४ ॥

बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तंभयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥

भाग० १०।२९।४६

स्वयं कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
घंटय जघने कांचीमंत्रस्रजा कबरीभरम् ।
कलयवलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरुनूपुरावि्ति
निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥

—गीतगोविन्द १२।१२ ।

पुरामुना कंचुककेन मुग्धे किं नाम भद्रं विहितं न जाने ।
भजत्यसौ यत्तपसाप्यलभ्यमनारतं त्वत्कुचकुम्भसंगमे ॥

कालिदास भागवत चम्पू ३।६२

किंचित्कुंचितलोचनं विरचितद्भ्रूभंगमभ्युन्नम-
न्मध्यं वेल्लितबाहुवल्लिसरसव्याकोशवक्त्राम्बुजम् ।
प्रोदंचत्कुचमानमत्तनु गलद्वेणीमिलद्भूतलं
सज्या कामधनुर्लतेव हरति व्याजृंभमाणा मनः ॥

पारिजातहरण २।१५

नो नीता रतिमन्दिरं मणिमयं नो मंचमारोपिता
नो दष्टोऽधरपल्लवः कुचतटी स्पृष्टा न वा पाणिना ।
न क्रोडेऽपि कृता न वा मृदुगिरा संभाषितं केवलं
दृष्टा चूतवने करोति विवशं चेतः कथं कुर्महे ॥

श्रीनिवास चम्पू पृ० ७३ ॥

इन श्लोकों में अभिव्यक्त श्रृङ्गार के रूप से, भक्ति भावना का अन्वेषण केवल बाल की खाल निकालना मात्र होगा। ये सभी एक ही परम्परा की विविध कड़ियाँ मात्र हैं।

प्रथम भागवत-चम्पू कवि अभिनव कालिदास ने अपने काव्य में समाविष्ट करने के लिए उसे एक नया ही रूप दे दिया। सम्भव है उनके समय (११-१२वीं शती) तक राधा का रूप सारे भारत में एक सदृश न स्वीकार किया जाता हो। कालिदास ने राधा को सिंहल नरेश विजयवर्मा की कन्या मानकर उसका विवाह कृष्ण से करा दिया और राधा के स्वकीया हो जाने पर उन्मुक्त

राधाकृष्ण विलास-वर्णन के लिए स्वयं मुक्त हो गये। उन्होंने जिस नग्न रति का वर्णन किया है उसे उद्धृत करने में भी संकोच होता है।[1] वस्तुतः विलासी दरबारों की छाया चम्पू काव्यों में से अधिकांश पर पड़ी है, ठीक उसी प्रकार, जैसे हिन्दी की रीतिकालीन कविता पर। चम्पू काव्य के निर्माण का समय भी प्रायः वही है।

सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के तेलुगु साहित्य के विषय में कहा गया है—

"तञ्जोर और मदुरा आदि प्रान्तों में उस समय उत्तान शृंगारी काव्य की परम्परा चल पड़ी थी। ये काव्य तीन प्रकार के थे (१) सान्त्वनमु (२) विलासमु (३) परिणयमु। इनमें प्रेम के सम्यक् विकास के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि का अभाव था। काव्य की दूसरी प्रकृति यह थी कि कुछ कवि अपने हार्दिक पक्ष के अभाव की क्षति-पूर्ति बुद्धि पक्ष का प्रदर्शन करके करना चाहते थे। फलतः व्यर्थकाव्य आदि निकले। इनमें यादवराघव-पाण्डवीयम् मुख्य हैं। ऐसे काव्यों से पाठकों में कौतूहलवृत्ति भले ही जागृत हो गई हो उन्हें आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकी।"[2]

"केरली में पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से, चम्पू काव्यों की रचना होने लगी थी। इसी समय कोड़िकोड़ (कालीकट) के राजा की सभा में अट्ठारह संस्कृत के कवि थे। इसी समय पूनम् नम्पूपतिरि ने केरली में चम्पू काव्य "रामायण चम्पू" की रचना की, तब से उत्तरोत्तर इस काव्यधारा का केरली में विकास होता गया। मङ्मंगलम् का नैषध चम्पू शृङ्गार रस का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करता है। केरली में लिखे गये पौराणिक चम्पू काव्यों में कथावस्तु को तो परिवर्तित किया ही नहीं गया है, उसे शृङ्गार से लादने का भी प्रयास नहीं किया गया है। स्तोत्रपरक केरली गीतों में भक्ति भावना भी है। नारायण भट्ट एवं पूनतानम् (लीला शुक ?) की रचनायें शृङ्गार के उस रूप को प्रस्तुत नहीं करतीं जिन्हें भक्ति भावना से सर्वथा रिक्त मान लिया जाय। फिर भी अश्लील एवं उत्तान शृङ्गार का रूप भी गीतों एवं परिणय काव्यों में मिल जाता है।"[3]

"कथकलि साहित्य के एक दूसरे स्रष्टा तिरुविंताकुर राज्य के राजा श्रीरामवर्मा हैं। ये सन् १७५८ में सिंहासनारूढ़ हुये थे। इनका शासनकाल कलाकारों और कवियों के लिये एक स्वर्णयुग था। "सुभद्राहरणं", राजसूयं,

१. द्रष्टव्य भागवत चम्पू ११४–१२१।
२. तेलुगु और उसका साहित्य पृ० ७६।
३. केरली साहित्य दर्शन, पृ० ४६–६३, ८३।

बकवधं, गन्धर्वविजयं, पांचालीस्वयंवरं, कल्याणसौगन्धिकं आदि कथाओं के कर्ता यही हैं।"[१]

केरली या मलयालम में जो चम्पू काव्य लिखे गये उनके दो उद्देश्य थे। प्रथम तो मन्दिरों में महोत्सवों के समय उन्हें सुनाना या नृत्याभिनय द्वारा प्रस्तुत करना, ऐसे सभी चम्पू काव्य पुराणाश्रित हैं। द्वितीय, राजाओं की रुचि को सन्तुष्ट करना या कवित्व प्रदर्शन, ऐसी कृतियों में कोटि विरह, परिणय या चम्पू विलास काव्यों की गणना की जा सकती है।

संस्कृत के चम्पू काव्यों की भी यही स्थिति है। जो चम्पू काव्य दरबारी वातावरण के प्रभाव से मुक्त हैं, उनमें श्रृङ्गार वर्णन का मर्यादित रूप है। उदाहरण के लिये आनन्दवृन्दावन, गोपाल चम्पू आदि, किन्तु जो कवि राज्याश्रित हैं उनकी रचना पुराणाश्रित होते हुये भी उत्तान श्रृंगार का वर्णन करती हैं। भागवत चम्पू, माधव चम्पू आदि इसके उदाहरण हैं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध, मुख्यतः अकबर के शासनकाल से लेकर अंग्रेजों के पूर्णतः भारत में जम जाने तक का काल सारे भारत की भाषाओं के साहित्य के लिये एक ही प्रकार का था। चाहे व्रज हो, चाहे अवधी, चाहे बंगला हो, चाहे तमिल, तेलुगु और मलयालम् अथवा संस्कृत हो, सबकी श्रृङ्गारवर्णन की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ एक सदृश दिखाई पड़ती हैं। कहीं वह वर्णन भक्ति से आवृत्त है कहीं अनावृत। इस प्रवृत्ति के मूल में जो परिस्थितियाँ कार्य कर रही थीं, वह विलासी दरबारों से ही उद्भूत थीं।

"दरबारों में अन्य विषयों की अपेक्षा श्रृङ्गारिक विषयों को अधिक समादर मिलता था, जिससे दरबारों में सम्मान पाने वाली कविताओं का भी प्रतिपाद्य विषय श्रृङ्गारिक ही था। देशी दरबारों अथवा सभाओं में हिन्दी के कवियों को अपना चमत्कार दिखाने में, संस्कृत के पण्डितों से जोड़ तोड़ भिड़ाना पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमाने में फारसी या उर्दू के शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृत वाले श्रृङ्गार की मुक्तक रचना लाये थे, जिसमें वे नायक नायिकाओं की, ऋतुवर्णन की, या नखशिख आदि की छटा दिखाते थे। हिन्दी वालों को भी वही करना पड़ता था। नरेश ही नहीं छोटे छोटे तालुकेदार और जमींदार तक ऐसी रचना के शौकीन हो गये थे। कविकर्म करनेवालों के ये ही तो आश्रयदाता थे।"[२]

---

१. वही पृष्ठ ९८।

२. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक-पृष्ठ ५९, त्रिभुवनसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

चम्पू काव्य, प्रबन्ध काव्य है, अतः स्वाभाविक था कि पुराणों से उन्हीं घटनाओं को आधार बनाया जाता, जिनमें शृङ्गार वर्णन के लिये उन्मुक्त अवसर प्राप्त होता। पचास से ऊपर चम्पू काव्य ऐसे हैं, जिनके वर्ण्यविषय विविध प्रणय एवं परिणय हैं।

वंशीनाद एवं गोपियों के साथ रास-क्रीडा को आधार बनाकर, जिस गोपीकृष्ण का विलास वर्णन किया गया है 'उसपर आत्मा और ब्रह्म के प्रतीक का आवरण तो है ही कुछ धार्मिकता और भक्ति भावना को भी प्रश्रय मिला है। बारहवीं शताब्दी से ही जयदेव और अभिनव कालिदास द्वारा राधा, जिस रूप में साहित्य में प्रविष्ट कराई गई उसमें अलौकिकता का आवरण हटा दिया गया और लौकिकता को खुलकर खेलने का अवसर दिया गया। गोपियों—राधा एवं कृष्ण को लौकिक धरातल पर अवतीर्ण कराने का श्रेय दरबारी वातावरण एवं विलासी राजाओं को ही दिया जा सकता है।

जयदेव के आश्रयदाता लक्ष्मणसेन, विद्यापति के शिवसिंह, तिरुमलाम्बा के अच्युत राय, अभिनव कालिदास के राजशेखर, आदि एक ही समान थे। तञ्जोर, मदुरा, तिरुवितांकुर, कालीकट आदि दरबारों का वातावरण भी वाग्विलास के शृङ्गारी रूप को ही प्रश्रय देता रहा। राधा तत्त्व का सम्बन्ध धार्मिक भावनाओं से उतनाही रह गया था जितना सामान्य ग्राम परिवार में पले कवियों का दरबार में सम्मान प्राप्त कर लेने के उपरान्त गांव से रह जाता है। दरबारों में जो काव्य सुनाये जाते थे, उनमें शास्त्रीथ विधान, कलाकारिता, शृङ्गार के संभोग पक्ष की प्रचुरता एवं अलंकरण की रुचि का स्वाभाविक रूप से समावेश हो गया। संस्कृत साहित्य के ह्रासकाल में चम्पू काव्यों ने जिस रूढ़िगत अलंकारों के भार से लदी हुई काव्यभाषा का प्रयोग किया: उसके कारण ही वह जनजीवन से दूर पड़ने लगा। यात्राप्रबन्धों और महोत्सवों के वर्णन द्वारा जो काव्य, जनजीवन में अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सकता था, उसे भी शैली की दुरूहता ने अवरुद्ध कर दिया। यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बकाचार्य आदि का वैष्णव-भक्ति आन्दोलन दरबारी एवं सम्पन्न मठों के विलासी वातावरण से मिश्रित होकर, उत्तान शृंगारी साहित्य का आश्रयस्थल बन गया किन्तु शिव-भक्ति को प्रमुखता देकर जो सीमित चम्पू काव्य लिखे गये हैं, उनमें इस प्रवृत्ति का दर्शन नहीं होता।

शिवोपासक पाशुपत मत महाभारत से भी अधिक प्राचीन है। महाभारत में शिवलिंग धारण करने वालों का भी उल्लेख मिलता है।[1] पतंजलि के समय में

१. असंख्याता भविष्यन्ति भिक्षवो लिंगिनस्तथा।

उपासक के लिये 'शिव-भागवत' शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] कालिदास, सुबन्धु, बाण, श्रीहर्ष, भट्टनारायण, भवभूति आदि ने ग्रन्थारम्भ में शिव की वन्दना की है। इनमें से सुबन्धु, बाण और भट्ट नारायण ने भगवान् हरि की भी बन्दना की है, इससे स्पष्ट है कि भगवान शंकर की उपासना केवल शैव सम्प्रदाय वाले ही नहीं करते थे। भारत में आज भी पंचदेवोपासकों की संख्या अधिक है। 'शैवों' में भगवान शिव की अनन्य और प्रगाढ़ भक्ति करने वाले वीर माहेश्वर या वीर शैव हैं, जिन्हें लिंगायत भी कहते हैं। शैवों के चार भेद ही मुख्य हैं। सामान्य शैव भस्म-धारण करते हैं और शिव की अष्टविध भक्ति करते हैं। मिश्र शैव या स्मार्त शैव, शिव के साथ विष्णु, उमा, षण्मुख, विघ्नेश्वर और सूर्य की पूजा भी करते हैं। शुद्ध शैव, शैव ऋषियों के गोत्रज हैं और वीर शैव वीर नन्दी, भृंगी, वृषभ और स्कन्द इन पाँच गणाधीश्वरों से अपने को उत्पन्न मानते हैं।[2] शिव सम्बन्धी जो काव्य (चम्पू) उपलब्ध होते हैं, वे स्मार्त शैवों के द्वारा ही निर्मित हैं तथा उनमें से कई शंकराचार्य के मतानुयायी हैं। विक्रम की पांचवीं शताब्दी में श्रीकण्ठाचार्य ने ब्रह्मसूत्र की शिवपरक व्याख्या की। यह भाष्य ही शैव भाष्य कहलाता है। अप्पय दीक्षित ने श्रीकण्ठ की प्रशंसा 'शिवार्क मणि दीपिका' में की है। श्रीकण्ठ के मत से शिव ही परम-ब्रह्म हैं। शिव की उपासना करने से ही मुक्ति मिलती है।[3] श्रीकण्ठ के मत के वेदानुमत होने के कारण ही स्मार्त शैवों ने उसको प्रमुखता दी। नीलकण्ठ विजय चम्पू के रचयिता नीलकंठ दीक्षित भी इसी परम्परा के थे। उन्होंने अप्पय दीक्षित की वन्दना करते हुये कहा है—

लीलालीढपुराणसूक्तिशकलावष्टम्भसंभावना-
पर्यस्तश्रुतिसेतुभिः कतिपयैर्नीते कलौ सान्द्रताम्।
श्रीकण्ठोऽवततार यस्य वपुषा कलकयात्मनेवाच्युतः
श्रीमानप्पयदीक्षितः स जयति श्रीकण्ठविद्यागुरुः ॥ १।३ ॥

नीलकंठ दीक्षित के एक और श्लोक को देखा जा सकता है—

वन्दामहे कमलनाभमनन्तमाद्यं वन्दामहे भुवनमोहनशक्तिमैशीम्।
वन्दामहे तदुभयाद्वयवादमूलमानीलकण्ठमवतंसितचन्द्ररेखम् ॥ ५।५४ ॥

नीलकण्ठविजय।

आश्रमाणां विकल्पाश्च वृत्तेऽस्मिन् वै कृते युगे। शान्ति प० ६४।२५ ॥

१. महाभाष्य में ५।२।७६। का भाष्य।

२. द्रष्टव्य हिन्दुत्व ६९३–९४।

३. वही पृ० ७००–७०१।

शिवभक्ति का महत्त्व अंकन करने वाले शिव चम्पू, त्रिपुर चम्पू तथा शिव परिवार से सम्बन्ध रखने वाले कुमार भार्गवीय, कुमार संभव, वीरभद्र विजय, गंगावतरण, भागीरथी चम्पू आदि किसी में भी उत्तानशृंगार का वह रूप नहीं दिखाई पड़ता, जो कृष्ण और उनके परिवार से सम्बन्धित चम्पू काव्यों में प्राप्त होता है। परिणय चम्पू काव्यों में पार्वती स्वयंवर, गौरी कल्याण आदि आते हैं पर यहां भी शृंगार का मर्यादित रूप है। शिवचरित्र, शिवविलास चम्पू तो केवल शिवभक्ति की महिमा ही प्रतिष्ठित करते हैं। मार्कण्डेय को काल से छुटकारा केवल शिव-भक्ति द्वारा ही मिलता है।

भक्ति-भावना का एक रूप यात्राप्रबन्धों में प्रस्तुत विविध देवी देवताओं के स्तोत्रों में उपलब्ध होता है। प्रायः सभी यात्राप्रबन्धकारों ने, समान रूप से तीर्थाधिष्ठातृ देवी-देवताओं की स्तुति की है। परम भागवत सीताराम सूरि ने भी शिव की स्तुति का संकेत कर दिया है—

"प्रागुत्तरनाथमानजनमनोरथपरिपालनदक्षं दक्षाध्वरविध्वंसिनं सह निजपरिषदैः समीरयन्तं राम रामेति निरन्तरं तं भगवन्तं सदाशिवं शिवं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य समस्तावीत्।" कविमनोरंजक चम्पू पृ० ४४॥

राम और कृष्ण की स्तुति में जहां कवि ने अनेक पद्य लिखे हैं, वहां शिव की स्तुति में एक श्लोक भी नहीं। ऐसी कट्टरता किसी भी अन्य चम्पू काव्य में नहीं दिखाई पड़ती। इसे अपवाद ही समझा जा सकता है।

भक्ति आन्दोलन और राज्याश्रय ने चम्पू काव्यों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। दक्षिण भारत के राज्यों ने संस्कृत कवियों को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। यही कारण है कि परिगणित २४५ चम्पू काव्यों में से १९९ चम्पू काव्य दक्षिण भारत में लिखे गये। उत्तर भारत में केवल ४६ चम्पू काव्यों का निर्माण हुआ। इनमें कुछ तो राज्याश्रित कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गये और कुछ भक्ति आन्दोलन से सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा। चम्पू काव्यों की संख्या पर ही नहीं, वर्ण्य विषय पर भी, इन दोनों प्रकार के वातावरण का प्रचुर प्रभाव पड़ा। देव-भक्ति के अतिरिक्त आचार्यों के चरित प्रस्तुत करने वाले चम्पू काव्यों में गुरुभक्ति का भी महत्स्वरूप व्यक्त होता है। शृंगार की प्रचुरता दरबारी वातावरण की देन है। अतः अन्तः और बाह्य दोनों दृष्टियों से, चम्पू काव्य भक्ति आन्दोलन और दरबारी वातावरण से प्रभावित है। संस्कृत साहित्य के ह्रास-काल में भी चम्पू काव्यों के प्रचुर निर्माण का श्रेय इन्हें ही दिया जा सकता है।

संख्या तालिका

उत्तर भारत में निर्मित चम्पू काव्य—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १७, १८, २९, ३४, ३५, ३६, ५२, ९३, ९४, ९५, ९६, १०३, १०५, ११२, १२४, १३०, १३७, १४१, १५३, १५६, १६१, १६३, १६४, १६७, १६८, १७१, १९४, २०३, २०४, २२५, २२६, २२७, २३५, २४०, २४५। कुल ४६।

दक्षिण भारत में निर्मित चम्पू काव्य—

परिगणित चम्पू काव्यों में शेष सभी। कुल १९९।

यशस्तिलक चम्पू का विशिष्ट अध्ययन

यशस्तिलक चम्पू

कवि परिचय :—

अन्तः और बहिःसाक्ष्य के आधार पर इस चम्पू काव्य के रचयिता श्री सोमदेव का निम्नलिखित परिचय उपलब्ध है :—

सोमदेव देवसंघ की शिष्य-परम्परा में नेमिदेव के शिष्य थे :—

श्रीमानस्ति स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः
शिष्यस्तस्य बभूव सद्गुणनिधिः श्रीनेमिदेवाह्वयः ।
तस्याश्चर्यतपः स्थितेस्त्रिनवतेर्जेतुर्महावादिनां
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैष काव्यक्रमः ॥

(यश० भा० २ पृष्ठ ४१८)

स्याद्वादाचल सिंह तार्किक चक्रवर्तिन् वादीभपंचानन वाक्कल्लोलपयोनिधि कविकुलराज आदि सोमदेव की प्रशस्ति-परक उपाधियाँ थीं। षण्णवति प्रकरण, महेन्द्रमातलिसंजल्प तथा युक्तिचिन्तामणिस्तव इनकी अन्य कृतियाँ कही जाती हैं।[1]

सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना शक ८८१ (९५९ ई०) में की थी। इस काव्य की समाप्ति सिद्धार्थ संवत्सर की चैत्र मास की मदन त्रयोदशी को हुई थी जब राष्ट्रकूट के राजा श्री कृष्णराजदेव मेलपाटी (उत्तरी आर्काट जिले का एक स्थान) में थे—

शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां मेलपाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति…॥ उपसंहार ॥

पाण्ड्य, सिंहल, चोल, चेरम प्रभृति राज्यों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त राजा कृष्ण तृतीय राजव्यवस्था के लिये मेलपाटी में रुके हुये थे। वहाँ उन्होंने एक शैव सन्त को करहाट नामक ग्राम दान में दिया था। दानपत्र उपलब्ध है और उसमें निर्दिष्ट तिथि काल संवत्सर फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी बुधवार है जो शक ८८० में पड़ी थी[2]। सोमदेव के समकालिक पुष्पदन्त ने भी मेलपाटी की चर्चा उसी रूप में की है जिस रूप में सोमदेव ने[3]। अतः यशस्तिलक की रचना के काल के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है।

---

१. द्रष्टव्य-डिस्क्रिप्टिव कैट० जैन भण्डार पाटन, वा० १ पृष्ठ ३१

२. ,, -एपिग्राफिया इण्डिका वा० ४ पार्ट ६-७. (१. ५६)

३. ,, -पुष्पदन्त का महापुराण १. ३। —महिपरिममंतु मेपाडिणयरु—

सोमदेव यद्यपि कृष्ण तृतीय के समकालिक एवं उनके आश्रित कवि थे फिर भी यशस्तिलक की रचना राष्ट्रकूट की राजधानी मान्यखेट में न होकर कृष्णराज के सामन्त चालुक्यवंशी अरिकेसरिन् के पुत्र वाग्राज की राजधानी में हुई थी :–

—श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविनः ···चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वाग्राजप्रवर्धमानवसुधारायां गङ्गधारायां विनिर्वापितमिदं काव्यं···, ॥ यश० भा० २ पृष्ठ ४१९ ॥

बद्दिग चालुक्य अरिकेसरि तृतीय का पुत्र था जो सोमदेव का संरक्षक था। बद्दिग या बाद्यग के पुत्र अरिकेसरि चतुर्थ ने शक ८८८ (९६६ ई०) में सोमदेव को एक ग्राम दान में दिया था जिससे वह बाद्यग निर्मित शुभधाम जिनालय की मरम्मत करा सकें। दानपत्र का रूप इस प्रकार है :—

—(लें) बुलपाटकनामधेयनिजराजधान्यां निजपितुः श्रीमद्बाद्यगस्य शुभधामजिनालयाख्यसतेः खण्डस्फुटितनवसुधाकर्मबलिनिवेद्यार्थं शकाब्देष्वष्टाशीत्यधिकेष्वष्टशतेषु गतेषु··· तेन श्रीमदरिकेसरिणा···श्रीमत्सोमदेवसूरये···वनिकटुपुलुनामा ग्रामः दत्तः।

यशस्तिलक की रचना के उपरान्त भी सोमदेव की काव्यसाधना चलती रही स्याद्वादोपनिषद् भी उन्हीं की रचना मानी जाती है। सोमदेव अपने समय के महामान्य विद्वानों एवं कवियों में से एक थे। अनेक सामन्त उन्हें सिर झुकाते थे:—

अखिलमहासामन्तसीमन्तप्रान्तपर्यस्तोत्तंसस्रक्सुरभिचरणः सकलविद्वज्जनकर्णावतंसीभवद्यशः पुण्डरीकः सूर्य इव सकलावनिभृतां शिरःश्रेणिपु शिखण्डमण्डनायमानपादपद्मोऽभूत्।

सोमदेव जैन आचार्य एवं सन्त थे किन्तु उनका सम्बन्ध राष्ट्रकूट दरबार से अवश्य था। तृतीय उच्छ्वास में वर्णित राजदरबार का दृश्य इसका साक्षी है। सन्त होने के कारण ही उन्होंने अपने नीतिवाक्यामृत में—अथ धर्मार्थकामफलाय राज्याय नमः—कहा और राजा की अपेक्षा राज्य को अधिक महत्त्व दिया।

कृष्णराज तृतीय के मन्त्री भरत के आश्रित कवि पुष्पदन्त ने भी सोमदेव के समय में ही अपभ्रंश काव्य 'जसहर चरिउ' की रचना की थी जो यशोधर के चरित पर ही अवलम्बित है। यशस्तिलक और जसहर चरिउ की कथावस्तु में पर्याप्त साम्य है।

यशस्तिलक के टीकाकार श्रुतसागर सूरि के कथनानुसार जैन कवि वादिराज और वादीभ सिंह दोनों सोमदेव के शिष्य थे :—

—स वादिराजोऽपि श्रीसोमदेवाचार्यस्य शिष्यः। वदीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः श्रीवादिराजोऽपि मदीयशिष्यः—इत्युक्तत्वाच्च ॥ यश० टीका २।१२६ ॥

किन्तु वादिराज ने अपने पार्श्वनाथचरित काव्य के अन्तिम श्लोक में अपने गुरु का नाम मतिसागर एवं वादीभसिंह ने अपने गद्यचिन्तामणि (१।६) में अपने गुरु का नाम पुष्पसेन लिखा है। पार्श्वनाथचरित की रचना शक ९४७ (१०२५ ई०) में हुई। वादीभ सिंह का समय भी राजराज चोल का शासनकाल (९८५–१०१४ ई०) है अतः सम्भव है कि ये दोनों बाल्यकाल में सोमदेव के शिष्य रहे हों।

सोमदेव सूरि की अन्य रचना 'नीतिवाक्यामृत' है। यशस्तिलक में मुख्य रूप से जैन सिद्धान्तों की प्रमुखता दी गई है परन्तु राजनीति का भी उसमें प्रचुर वर्णन हुआ है। नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के राजनीति सम्बन्धी अंशों का पूरक है।

यशस्तिलक काव्यग्रन्थ होते हुये भी जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों से ओत-प्रोत है। स्वयं सोमदेव ने कहा है :—

आजन्मसमभ्यस्तात् शुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्याः।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः॥ १।१७॥

वास्तव में शुष्क सैद्धान्तिक तत्त्वों को सरस काव्य में परिणत करने का श्रेय सोमदेव को प्राप्त हुआ है। उन्हें अपनी प्रतिभा पर अभिमान था। काव्य प्रतिभा का तर्क शक्ति के साथ मंजुल समन्वय जिस व्यक्ति में हुआ हो वह यदि निम्न-लिखित पंक्तियाँ लिखे तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता :—

दर्पान्धबोधबुधसिन्धुरसिंहनादे वादिद्विपोद्दलनदुर्धरवाग्विवादे।
श्रीसोमदेवमुनिपे वचनारसाले वागीश्वरोऽपि पुरतोऽस्ति न वादकाले॥
नीति० अ० श्लोक॥

सोमदेव अपने बाल्यकाल में तर्क और दर्शन का अध्ययन करते रहे और सम्भवतः जीवन के उत्तरकाल में उन्होंने काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। सोमदेव के अतिरिक्त तर्क और काव्य का सुन्दर समन्वय एकमात्र अन्य प्रसिद्ध कवि श्री-हर्ष में दिखाई पड़ता है जिन्होंने नैषधीय चरित और खण्डनखण्डखाद्य की रचना की।

यशस्तिलक की रचना सोमदेव की प्रौढावस्था में हुई जब मनुष्य में अनुकरण की अपेक्षा स्वतन्त्र पथ-निर्माण की क्षमता आ जाती है। काव्य-रचना के सम्बन्ध में सोमदेव के व्यक्त विचार उनकी प्रौढता की ओर ही संकेत करते हैं :—

असहायमनादर्शं रत्नं रत्नाकरादिव।
मत्तः काव्यमिदं जातं सतां हृदयमण्डनम्॥ यश० १।१४॥

काव्य-चोर को सोमदेव पातकी समझते हैं पर यदि दो कवि-हृदयों में बिना एक दूसरे के काव्य का निरीक्षण किये समान भाव उद्भूत होते हैं तो उसे वह चौर-कार्य नहीं समझते :—

कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यादरं ताः पुनरीक्षमाणः।
तथैव जल्पेदथ योऽन्यथा वा स काव्यचोरोऽस्तु स पातकी च ॥

यश० १।१३ ॥

कृतीः परेषामविलोकमानोस्तदुक्तिवक्तापि कविर्न हीनः ॥

यश० १।१२ ॥

सोमदेव की गर्वोक्तियाँ जिस प्रकार तर्क-क्षेत्र के सम्बन्ध में उपलब्ध होती हैं वैसी ही काव्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में भीः—

मया : वागर्थसंभारे भुक्ते सारस्वते रसे।
कवयोऽन्ये भविष्यन्ति नूनमुच्छिष्टभोजनाः ॥

चतुर्थ आश्वास अ० श्लो०

अथवा :—लोकवित्वे कवित्वे वा यदि चातुर्यचञ्चवः।
सोमदेवकवेः सूक्तिः समभ्यस्यन्तु साधवः ॥

यश० ३।५१३ ॥

यशस्तिलक पर श्रुतिसागर सूरि की एकमात्र टीका उपलब्ध है। इस काव्य में कुल आठ आश्वास हैं जिनमें महाराज यशोधर का चरित वर्णित है। यशस्तिलक चम्पू का प्रथम प्रकाशन सन् १९०१ ई० में निर्णय सागर प्रेस बम्बई से दो खण्डों में हुआ। पूर्व खण्ड १९०१ में तथा उत्तर खण्ड दो वर्ष बाद १९०३ ई० में निकला। पूर्व खण्ड में तीन आश्वास और उत्तर खण्ड में पाँच आश्वास हैं। पूर्व खण्ड के सम्पूर्ण अंश पर श्रुतसागर सूरि की टीका है पर उत्तर खण्ड में केवल दो सौ चवालीसवें पृष्ठ के काव्यांश तक पर। पूर्व खण्ड का द्वितीय संस्करण वहीं से १९१६ ई० में प्रकाशित हुआ है।

नीतिवाक्यामृतम् की रचना यशस्तिलक के बाद हुई। इसमें ३२ परिच्छेद हैं। इस पर किसी एक जैनेतर अज्ञात व्यक्ति की टीका है। इसका प्रकाशन भी माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला बम्बई (संख्या २२) से सन् १९२२ ई० में हो चुका है।

जैन कवियों में यशोधर-चरित की लोकप्रियता :—

जैन धर्म के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में यशोधर का चरित अत्यन्त लोकप्रिय है। इसकी कथा को आधार बनाकर अनेक जैन कवियों ने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है। हरिभद्र ने सर्वप्रथम यशोधर-चरित

काव्य लिखा। इसके बाद प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती, तमिल, कन्नड और हिन्दी आदि में यशोधर के चरित को आधार बनाकर अनेक रचनायें प्रस्तुत की गई हैं। पच्चीस से ऊपर कवियों ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार इस कथा पर प्रदर्शित किया है :—

१. सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना (९५९ ई०) संस्कृत में की।

२. बासवसेन ने आठ सर्गों में यशोधर चरित नामक संस्कृत काव्य लिखा जो अनुष्टुप छन्दों में है। जिन्होंने प्रभंजन और हरिषेण नामक दो कवियों का उल्लेख किया है जिन्होंने इस चरित पर लिखा है :—

सर्वशास्त्रविदां मान्यैः सर्वशास्त्रार्थपारगैः।
प्रभंजनादिभिः पूर्वैः हरिषेण समन्वितैः॥ १।३॥
यदुक्तं तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुम्।
तथापि तत्क्रमाम्भोजप्रणामार्जितपुण्यतः॥ १।४॥
प्रोच्यमानं समासेन संसारासारशातनम्।
पठतां शृण्वतां यत्तत्सन्तस्तच्छृणुतादरात्॥ १।५॥

इस काव्य के द्वितीयसर्ग में यशोधर का विवाह वर्णित है जिसके आधार पर गन्धर्व ने यशोधर का विवाह लिख कर पुष्पदन्त के 'जसहर-चरिउ' में जोड़ा है।

३. सकलकीर्ति ने संस्कृत काव्य यशोधर चरित (१४५० ई०) आठ सर्गों अनुष्टुप् छन्द में लिखा है।

४. कनकसेन वादिराज (दसवीं शता०) ने चार सर्गों में यशोधर चरित लिखा।

५. सोमकीर्ति ने आठ सर्गों में यशोधर चरित (१४७९ ई०) लिखा।

६. माणिक्यदेव सूरि (तेरहवीं शता०) ने इसी नाम से १४ सर्गों का काव्य लिखा।

७. पद्मनाभ ने ९ सर्गों में यशोधर चरित लिखा।

८. पूर्णदेव ने ३११ श्लोकों में यशोधर चरित लिखा।

९. क्षमाकल्याण ने संस्कृत गद्य में यशोधर चरित लिखा है। इसमें आठ परिच्छेद हैं। काव्यारम्भ में इन्होंने हरिभद्र के प्राकृत यशोधर चरित का उल्लेख किया है :—

श्रीहरिभद्रमुनीन्द्रैर्विहितं प्राकृतमयं तथान्यकृतम्।
संस्कृतपद्यमयं तत्सममस्ति यद्यपि चरित्रमिह॥ १।८॥

तदपि तयोर्विषमत्वादर्थावगमो हि तादृशो न भवेत् ।
तदहं गद्यमयं तत्कुर्वे सर्वावबोधकृते ॥ ११९ ॥

इसकी रचना १७८२ ई० में हुई है ।

१०. किसी अज्ञात लेखक की यशोधर चरित नामक चार सर्गों की एक और कृति प्राप्त है ।[१]

रायबहादुर हीरालाल के कैटलाग में भी कई यशोधर चरितों का उल्लेख हैं :[२]—

११. मल्लीभूषण कृत यशोधर चरित (सं० ७७८८)
१२. ब्रह्मनेमिदत्त कृत ,, (सं० ७८००)
१३. श्रुतसागर कृत ,, (सं० ७८०४)
१४. पद्मनाथ कृत ,, (सं० ७८०५)

जैन ग्रन्थावली से एक और नाम का पता चलता है :—

१५. हेमकुञ्जर :—इनका यशोधर चरित ३७० श्लोकों में है ।

कुछ ऐसे कवियों का उल्लेख अन्य ग्रन्थकारों के द्वारा किया गया है जिनका यशोधर-चरित उपलब्ध नहीं है :—

१६. प्रभंजन :—वासवसेन द्वारा—(१।३)
१७. हरिषेण :— ,, (,,)
१८. वत्सराज :—गन्धर्व द्वारा—जसहर चरिउ—यशोधर विवाहमें ।

उल्लिखित संस्कृत काव्यों के अतिरिक्त प्राकृत में हरिभद्र ने यशोधर चरित प्रस्तुत किया है । अपभ्रंश में पुष्पदन्त ने जसहर चरिउ लिखा है । इसमें कथा का स्वरूप ठीक वही है जो सोमदेव ने यशस्तिलक में ग्रहण किया है ।

जन्न (११७३-१२२० ई०) ने कन्नड में यशोधर चरित लिखा हैं । यह चम्पूशैली में लिखित एवं चार अवतारों में विभाजित है । एक यशोधर चरित तमिल भाषा में भी उपलब्ध है जो सम्भवतः वादिराज (दशवीं शता०) की कृति है ।

प्राचीन गुजराती में जिनचन्द्र सूरि (सोलहवीं शता०) ने यशोधर चरित तथा देवेन्द्र ने यशोधर रास लिखा है । लावण्यदास (१५१६ ई०) मनोहरदास (१६१९ ई०), ब्रह्मजिनदास (१४६३ ई०) तथा ज्ञानदास ने भी यशोधर चरित लिखे हैं ।

---

१. भण्डारकर इन्स्टिट्यूट मैन्युस्क्रिप्ट्स-१८९२-९५. नं० ८०४ ।

२. श्री पी. एल. वैद्य लिखित जसहर चरिउ की भूमिका के आधार पर सूची प्रस्तुत जैन ग्रथ० बम्बई से प्रकाशित ।

पद्मनाभ की कृति के आधार पर लखमीदास ने हिन्दी में यशोधर चरित लिखा है। इसका रचना काल १७२४ ई० है। (भण्डारकर ई० मै० १८९५–९८ नं० ६८)

इस सूची से स्पष्ट है कि हरिभद्र के समय से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक अनेक कवियों ने यशोधर चरित को आधार बना कर अपनी-अपनी कृतियां प्रस्तुत की हैं। यशोधर को नायक बना कर लिखे गये अनेक ग्रन्थों में—सोमदेव का यशस्तिलक चम्पू, वादिराज का यशोधर चरित एवं पुष्पदन्तका जसहरचरिउ ही अभी तक प्रकाश में आ सके हैं।

यशस्तिलक चम्पू की कथावस्तु :—

प्रथम आश्वास का सारांश :—

यौधेय देश में विविध मन्दिरों एवं वैभव-सम्पन्न महलों से सुसज्जित उसकी राजधानी राजपुर नामक थी। चण्डमहासेन का महान शक्तिशाली पुत्र मारिदत्त वहां राज्य करता था। बाल्यकाल में ही उसे राज्य प्राप्त हो गया था। विद्या-वृद्ध तथा गुरुजनों को शिक्षा से वंचित होने के कारण नृशंसतापूर्ण एवं साहसिक कार्यों में उसे बहुत ही आनन्द मिलता था। समवयस्क मन्त्रि-पुत्रों के साथ आखेट के लिये वह वन-प्रदेशों में घूमता तथा हिंसापूर्ण कार्यों में संलग्न रहता था। उधर से अवकाश मिलने पर विविध देशों की रमणियों से विहार करता था। वन में आखेट, प्रमदवन में विहार एवं राज्यसभा में उपस्थिति के अतिरिक्त वह सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त था। अपने आपको वह दैवशक्ति-सम्पन्न भी समझता था।

एकदिन मारिदत्त ने वीरभैरव नामक कुलाचार्य से सुना कि यदि स्थानीय चण्डमारि देवता को सभी प्राणियों के जोडे की पुरुष-मिथुन सहित बलि दी जाय तो विद्याधर-लोक-विजयी करवाल की सिद्धि होती है। पुरुष-मिथुन सकल शुभ लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिये। मारिदत्त ने चण्डमारि देवता के मन्दिर में महानवमी महोत्सव के आरम्भ होने की असामयिक घोषणा कर दी। रक्षकों को आदेश दे दिया गया कि वे उपयुक्त मानव-मिथुन को ढूंढ कर प्रस्तुत करें।

चण्डमारि देवता का मन्दिर महाभयानक स्थल था। उसमें एक भयावनी मूर्ति प्रतिष्ठित थी। आस-पास का दृश्य भी भयोत्पादक था। कहीं साधक अपने सिर पर गुग्गुल जलाये हुये थे, कहीं शिव की प्रसन्नता के लिये कुछ साधक स्वयं अपना रक्त पी रहे थे, कहीं कापालिक अपने ही शरीर का मांस काट

कर बेच रहे थे। कहीं तो साधक एवं उपासक अपने ही मांस का हवन कर रहे थे। उस स्थान को देख कर मृत्यु स्वयं भयभीत हो जाती थी।

इसी अवसर पर जैन मुनि सुदत्त अपने अनेक शिष्यों सहित राजपुर पधारे। विश्राम के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में एक उपवन और श्मशान को देखते हुये नगर के समीप स्थित एक पहाड़ी पर पहुँचे। विश्राम की समुचित व्यवस्था के उपरान्त उन्होंने अपने शिष्यों—जैन साधुओं को समीपस्थ गाँव में भिक्षा के लिये भेजा।

मुनि सुदत्त के शिष्यों में दो युवा बालक-बालिका अभयरुचि एवं अभयमति नाम के भी थे जिन्हें दूसरे साधुओं से भिन्न राजपुर नगर में भिक्षा के लिये जाने का आदेश मिला। ये दोनों मारिदत्त की बहन कुसुमावली के जोड़वां बच्चे थे। कुसुमावली महाराज यशोधर के पुत्र यशोमति की पटरानी थी। इन दोनों भाई बहनों ने बाल्यकाल में ही संन्यास ले लिया था और जैन सन्त सुदत्त के साथ रहते थे। भिक्षा के लिये ये दोनों जैसे ही नगर में पहुँचे मारिदत्त के रक्षकों ने उन्हें पकड़ लिया तथा पकड़ने का कारण न बतला कर सीधे चण्डमारि के मन्दिर में ले गये।

अभयरुचि तथा अभयमति ने देखा कि मेष, महिष, उष्ट्र, गज, अश्व, मगर, मत्स्य आदि अनेक प्राणिवर्ग के भयभीत जोडे बलि होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वहां नंगी तलवारें लिये रक्षक रुद्र के गण प्रतीत हो रहे थे। बलि-स्थल पर चक्रवत् करवाल लगी हुई थी और पशु-पक्षियों को पकड़े हुये लोग उनको उस चक्र के पास ले जाने के लिये प्रस्तुत थे। दोनों बाल-मुनियों ने मारिदत्त को भी देखा जो असि-फण खोले क्रुद्ध नाग की भाँति दिखाई पड़ता था। देवी की मूर्ति भी मृत्यु की प्रत्यक्ष प्रतिमा प्रतीत हो रही थी। जब वे दोनों मारिदत्त के सम्मुख पहुँचाये गये तब भी भयभीत नहीं हुये और मृत्यु को अन्तिम तथ्य मान कर एक दूसरे को ढाढस वँधाते रहे। मारिदत्त ने सुकुमार बालक अभयरुचि और कोमल बालिका अभयमति को देखा। उसका हृदय इनकी उपस्थिति मात्र से कोमलता की ओर उन्मुख होने लगा। राजा के परिवर्तित भाव को लक्ष्य कर एक स्तुति-गायक ने उससे असि को नीचे रख देने की प्रार्थना की। राजा ने उसकी प्रार्थना मान ली और हाथ उठा कर वहां उपस्थित भीड़ के कोलाहल को शान्त किया। उसने अभयरुचि और अभयमति को बैठने के लिये आसन भी दिया जो निरन्तर राजा की यशःप्रशस्ति का गान कर रहे थे।

अभयरुचि का उद्देश्य राजा मारिदत्त को जैन-धर्म में दीक्षित करना था किन्तु वह जानता था कि रजोगुण या तमोगुण प्रधान व्यक्ति को प्रारम्भ में ही

धर्मोपदेश करना सिर दुखाना मात्र है अतः उसने सावधानी से राजा का मनोवैज्ञानिक उपचार आरम्भ किया। वह काव्य एवं संगीत की सहायता से उसके हृदय को द्रवित करने में सफल हुआ। उसकी बहन अभयमति ने इस कार्य में उसका साथ दिया। अन्त में राजा ने दोनों से उनका परिचय पूछा। अभयरुचि ने राजा को आश्वासन दिया कि वह उसकी जिज्ञासा को अवश्य शान्त करेगा।

द्वितीय आश्वास का सारांश :—

अभयरुचि ने मारिदत्त को सम्बोधित करते हुये अपने पूर्व-जन्मों की कथा आरम्भ की :—

अत्यधिक फल-फूलों एवं सरसिज सम्पन्न सरोवरों से समृद्ध अवन्ती नाम का देश है। उसी में उज्जयिनी नामक एक वैभवशाली नगर था जहां यशोर्घ नामक राजा राज्य करता था। वह मन्दराचल की भाँति सुदृढ़, समुद्र की भांति गम्भीर, काम सदृश सुन्दर, बृहस्पति के समान नीतिज्ञ, कल्पवृक्ष की भांति दानी, पृथ्वी की भांति सहिष्णु एवं आकाश के समान गौरवान्वित था। उसे सरस्वती, लक्ष्मी, चिन्तामणि, यम, वरुण, कुबेर आदि देवताओं के समस्त गुण प्राप्त थे। चन्द्रमति उसकी पत्नी थी (जो इस जन्म में मेरी बहन अभयमति है)। यशोर्घ और चन्द्रमति से यशोधर (जो इस जन्म में मैं अभयरुचि हूँ) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यशोर्घ ने अपने पलित केशों को देख कर द्वादशानुप्रेक्षा का स्मरण करते हुये संन्यास ग्रहण का निश्चय किया। उसने अपने पुत्र यशोधर का विवाह कर दिया और स्वयं संयमधर नामक सन्त से दीक्षा ले ली। प्रतापवर्धन नामक सेनापति ने शिप्रा नदी के किनारे मंगल महोत्सव के लिये एक अत्यन्त सुन्दर नगर का निर्माण कराया। अनेक राजकुमार उस महोत्सव को देखने के लिये उपस्थित हुये। सेनापति के आदेशानुसार गज एवं तुरग विद्या विशारदों ने नये राजा के लिये कलिंगराज द्वारा भेजे गये गजों में से मंगल-गज उदयगिरि का तथा कम्बोज प्रदेश से आये हुये अश्वों में से मंगल-तुरग का चयन किया। करिकलभ एवं बाजि-विनोद-मकरन्द नामक चारणों ने उस मंगलगज एवं मंगल-तुरग की अनेक श्लोकों में प्रशंसा की।

मौहूर्तिकों ने विवाह एवं सिंहासनारोहण का शुभ मुहूर्त एक साथ निश्चित किया। दोनों कार्यों के लिये राजसी व्यवस्था की गई। स्त्रियों के मंगलगीत तथा विविध वाद्यों की मनोहर ध्वनि के साथ अनेक तीर्थों, नदियों एवं समुद्र के जल से यशोधर का अभिषेक हुआ। इस अवसर पर जलकेलि विलास नामक चारण ने अनेक छन्दों का पाठ किया। राज्याभिषेक के उपरान्त विवाह विधि सम्पन्न हुई। यशोधर एवं अमृतमति के विवाह के अवसर पर मनोज कुंजर नामक कवि

ने गद्य-पद्य में प्रशस्ति-पाठ किया। सिंहासनारोहण, राजछत्र धारण, राजकीय वेष तथा असि ग्रहण आदि कार्य यशोधर द्वारा सम्पन्न हुये। इसके बाद यशोधर ने अपनी पत्नी अमृतमति के साथ उदयगिरि गज पर चढ़ कर शोभायात्रा के रूप में शिप्रा के किनारे से राजधानी की ओर प्रस्थान किया। शस्त्र-सज्जित सैनिक राजा के साथ चल रहे थे। सेवक और सैनिक राजपथ को भीड़ से मुक्त रख रहे थे, वृद्ध आशीर्वाद दे रहे थे, स्त्रियाँ मंगलगीत गा रही थीं। अश्वों की हिनहिनाहट एवं गजों की गरज नगाड़ों की ध्वनि से मिश्रित हो रही थी।

नये राजा-रानी के स्वागतार्थ राजमार्ग सजा हुआ था। गवाक्ष स्त्रियों के मुखचन्द्र से आभायुक्त हो रहे थे। अन्तःपुर की परिचारिकायें-बसन्तिका, लवंगी, मदना, कुरंगी, मालती, कलहंसी, मधुकरी आदि स्वागत, साज सजाने में मग्न थीं। इसी प्रकार अन्तःपुर के सेवक किरात, कुब्जे आदि भी कार्यव्यस्त थे। राजा-रानी के महल में आगमन पर कीर्तिसार नामक कवि ने उनके स्वागतार्थ प्रशस्ति-पाठ किया।

तृतीय आश्वास का सारांश :—

इस आश्वास में अभयरुचि ने महाराज यशोधर के वैभव एवं विलासपूर्ण जीवन का वर्णन किया है :—

यशोधर चारणों के प्रभात गान को सुन कर जागते थे। तैयार होकर न्याय करने सभा में जाते थे। इस कार्य में निष्पक्ष न्यायाधीशों की सहायता लेते थे। मन्त्रणा-गृह में मन्त्रियों के साथ राजनीति पर विचार-विमर्श करते थे। प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के सन्देश को तिरस्कृत करते थे। चरों से देश-विदेश के समाचार सुनते थे। यहां शंखनक नामक चर को लाकर कवि ने देश की स्थिति और राजनीति के कुछ मर्मों को उद्घाटित किया है।

शंखनक देश के गरीबों और अमीरों की स्थिति का वर्णन करता है—राजा के पूछने पर कहता है कि वह कलिंजक नामक एक कंजूस के यहां भोजन करके आ रहा है जहां पेट ही नहीं भरा। यशोधर ने अपने एक मन्त्री पामरोदार के विषय में पूछा जो सच्चरित्रता और उदारता के लिये प्रसिद्ध था। शंखनक नीति की अनेक बातें प्रस्तुत करता है और पामरोदार के दुर्गुणों को सामने रखता है। यशोधर जब विश्वास नहीं करता है तब वह कहता है कि चर पर अविश्वास करना राज्य को दुर्दशा में डालना है। पामरोदार नीच कुलोद्भव है उसका पिता तेली है। उसकी पत्नी ने पाँच पति किये हैं। ऐसे लोग उच्च-पद पर अधिष्ठित होकर अभिमानी बन जाते हैं और राज्य में संकट उत्पन्न होने लगता है। वह किसी समय आपको धोखा देकर किसी अन्य राजा की सेवा में जा

सकता है। पामरोदार मन्दिरों की बहुमूल्य मूर्तियों को बेचता है—गलाता है और कम मूल्य की मूर्तियों से उन्हें बदल देता है। ठगों को नियुक्त कर जनता को ठगता है। वह जाति-प्रथा का उल्लंघन करता है। सेवकों की हत्या करता है—अनेक विद्वानों एवं कवियों—जैसे, त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद, केकटि आदि—का अनादर करता है, उनकी जीविका छीनता है और कभी-कभी देशनिकाला भी दे देता है।

यशोधर सन्ध्या के समय सेनापति से अपनी सेना का विवरण सुनता था। सान्धि-विग्रहिक द्वारा अनेक देशों से राजदूतों के आने की सूचना राजा को दी जाती थी। सभा-संलाप में यशोधर अर्थशास्त्र पर विवाद करता था। नृत्य, संगीत, दर्शन आदि पर भी विचार होता था। गज-संचालन और शस्त्र-प्रतियोगिता में भी वह सम्मिलित होता था।

वह ग्रीष्म का मध्याह्न मदन-मद-विनोद-वाटिका में अथवा अपनी पत्नी सहित धारा-यन्त्र-गृह में व्यतीत करता था। प्रत्येक ऋतु के अनुकूल साधन और कृत्रिम गृह उसके पास विद्यमान थे। यहाँ कवि ने विस्तृत ऋतु वर्णन प्रस्तुत किया है। पांचालराज अचल के साथ युद्ध होने एवं अपने सेनापति विजयवर्धन द्वारा उसके पराजित किये जाने की सूचना भी राजा यशोधर को दी जाती है।

बसन्तागमन पर उत्सव की तैयारियाँ होती हैं। मदन महोत्सव मनाया जाता है। उसके बाद महानवमी पर अपराजिता की पूजा होती है, दीपमालिका का उत्सव होता है, एक कवि द्वारा बाण-लक्ष्य-संधान की प्रशंसा की जाती है। इस आश्वास के अन्तिम भाग में मनोहर चन्द्रोदय-वर्णन है।

चतुर्थ आश्वास का सारांश :—

इस आश्वास में यशोधर के गृहस्थ जीवन की समस्याओं को सामने लाया गया है जो यशस्तिलक की कथावस्तु के मुख्य आधार को प्रस्तुत करती हैं :—

एक दिन यशोधर अपनी रानी अमृतमति के पास रात्रि व्यतीत करने के लिये उसके महल में गया। मध्यरात्रि के समय यशोधर अभी अर्धनिद्रितावस्था में ही था कि अमृतमति धीरे से उसके पास से उठी और अपने अलंकारों को उतार कर दासी का वस्त्र पहन वहाँ से बाहर निकल गई। यशोधर ने उत्सुकता वश उसका पीछा किया और देखा कि वह एक अत्यन्त कुरूप हस्तिपाल अष्टवंक की झोपडी में प्रविष्ट हो गई है। अष्टवंक रस्सियों को सिर के नीचे रख कर एक जीर्ण-शीर्ण शय्या पर सो रहा था। अमृतमति ने उसके हाथों को अपने हाथ में लेते हुये उसकी शय्या पर बैठने का प्रयत्न किया। परन्तु वह उसके देर से आने के कारण बहुत क्रुद्ध था, अतः उसने अमृतमति को धक्का मार कर नीचे

गिरा दिया और बायें हाथ से उसकी चोटी पकड़ कर दाहिने हाथ से पीटना आरम्भ कर दिया। रानी ने कात्यायनी की शपथ खाकर अपने प्रेम की दुहाई दी तथा क्षमा माँगने लगी। उसने यह भी कहा कि यशोधर के पास रहते हुये भी वह उसी का चिन्तन करती है। इसके बाद का दृश्य न देख सकने के कारण राजा ने उन अपराधियों को मारने के लिये तलवार खींच ली। इस घटना के परिणाम से माता चन्द्रमति को दुःख होगा ऐसा विचार कर राजा ने उन्हें छोड़ दिया और बिना उनसे कुछ कहे वह अपने शयन-कक्ष में लौट आया। अमृतमति बाद में आकर चुपके से उसके पास लेट गई।

खेद और चिन्ता से राजा यशोधर उस रात न सो सका। उसे सम्पूर्ण स्त्री-जाति से घृणा हो गई। उसे ध्यान आया कि वह कुरूप लंगडा हस्तिपाल उत्तम श्रेणी का गायक है और संगीत किसी भी स्त्री को कुरूप संगीतज्ञ के प्रति भी आकृष्ट कर सकता है। राजा को सम्पूर्ण सांसारिक वैभव से विरक्ति हो गई। उसने निश्चय कर लिया कि वह राज्य-भार अपने पुत्र यशोमति को सौंप कर संन्यास ग्रहण कर लेगा।

प्रातःकाल राज्य-सभा में वह अपनी माता चन्द्रमति से मिला। एक स्तुति-गायक ने संकेत किया कि हे राजन् तुम ऐश्वर्य के अन्धकार में अस्त-बुद्धि हो गये हो और यम का दण्ड अचानक ही पडेगा। उसने दूसरे पद्य में यह भी कहा कि स्त्रियों को नियन्त्रण में रखना चाहिये। राजा को ऐसा अनुभव हुआ कि स्तुति-गायक रात्रि को घटना से परिचित है। चन्द्रमति ने अपने पुत्र राजा यशोधर के परवर्तित भाव को लक्ष्य किया। उसे आभास हुआ कि कहीं कुछ दाल में काला है। उसने अपने पुत्र से उसकी विकलता का कारण पूछा पर यशोधर ने रात्रि में एक बुरे स्वप्न देखने का बहाना बनाकर उसे टाल दिया। चन्द्रमति ने कई उदाहरण देकर स्वप्नों की असत्यता स्पष्ट की और उसने यह भी सम्मति दी कि सभी प्रकार के पशुओं की बलि देवी को देकर स्वप्न की बुराई शान्त कर दी जाय।

पशुमांस से देवी की पूजा करने के विरुद्ध यशोधर का हृदय विद्रोह कर उठा। माता-पुत्र में चिरकाल तक विवाद होता रहा। यशोधर और चन्द्रमति क्रमशः जैन-सिद्धान्तों तथा कर्मकाण्ड का आश्रय लेकर परस्पर विवाद करते रहे। तर्क में चन्द्रमति पराजित हुई और संधि के लिये प्रस्तुत हो गई। यह निश्चय हुआ कि आटे के कुक्कुट की बलि देवी को दी जाय। उसे ही मांस-प्रतिमा मान लिया जाय। मन्दिर को सजाने एवं ऐसे कुक्कुट के निर्माण का आदेश दे दिया गया। अमृतमति को जब सारी सूचना मिली तो वह समझ गई कि रात्रि में उसका पीछा

किया गया था और स्वप्न की बात एक बहाना मात्र है। पोल खुलने के पूर्व ही उसने मन्त्री गविष्ठिर के पास कहला दिया कि देवी को वह स्वयं अपनी बलि देकर राजा पर पड़ने वाले स्वप्न के बुरे प्रभाव को दूर करेगी अथवा राजा के वन में जाने पर वह स्वयं सीता की भांति वन में जायगी। रानी ने राजा और उसकी माता चन्द्रमति को बलि-कार्य की समाप्ति के उपरान्त महल में आने के लिए निमन्त्रित किया जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया।

यशोधर और चन्द्रमति समारम्भ के साथ मन्दिर में गये और उस कृत्रिम कुक्कुट की बलि दी गई। पुरोहित ने प्रार्थना की कि इस बलि का वही फल हो जो चण्डिका देवी को सजीव कुक्कुट की बलि देने पर प्राप्त होता। बलि के उपरान्त उस कुक्कुट को पकाने के लिये भोजनालय में भेज दिया गया। यशोधर अपनी माता के साथ अमृतमति के यहाँ भोजन करने गया। वहाँ उन्हें विष दे दिया गया और दोनों की मृत्यु हो गई। अमृतमति ने रुदन और शोक का कृत्रिम प्रदर्शन किया।

पंचम आश्वास का सारांश :—

बालक-मुनि अभयरुचि ने यशोधर और उसकी माता चन्द्रमति की करुण-मृत्यु के उपरान्त की (पुनर्जन्मों की) कथा आरम्भ की :—

(१) यशोधर सुवेल पर्वत की हरी-भरी उत्तरी-पूर्वी उपत्यका में मयूर-योनि में पैदा हुआ। एक बहेलिये ने उसे पकड़ कर यशोधर के पुत्र राजा यशोमति को भेंट कर दिया। उज्जयिनी में प्रवेश करते ही उसने अपने राजमहल को पहचान लिया क्योंकि उसे अपने पूर्वजन्म की स्मृति थी :—

सैवेयं नगरी तदेव भवनं ता एव केलीधराः
सैवैषा वनभूः स एव सरसी सारे विलासाचलः।
सैवासौ वनिता स एव तनयस्ते चैव मे बान्धवाः
चित्रं केवलमेक एव हि कथं जातोहमन्याकृतिः॥

चन्द्रमति ने विन्ध्य के दक्षिण करहाट देश में श्वान के रूप में जन्म लिया। वह भी अपने स्वामी के द्वारा राजा को भेंट कर दिया गया। एक दिन अमृतमति अपने प्रणयी के साथ खड़ी थी। क्रोध के वशीभूत उस मयूर ने उन दोनों पर आक्रमण कर दिया। उस श्वान और दास-दासियों ने मिल कर मयूर को मार डाला। राजा ने कुत्ते को मयूर पर आक्रमण करते देख कर कुत्ते को भी मार डाला।

(२) इसके बाद यशोधर मृग-योनि में और चन्द्रमति सर्प-योनि में पैदा हुई। कुछ समय के बाद मृग ने सर्प को तथा एक भेड़िये ने मृग को मार दिया।

(३) बाद के जन्म में यशोधर एक बृहत् मत्स्य के रूप में तथा चन्द्रमति मकर के रूप में शिप्रा नदी में पैदा हुये। स्त्रियों की जलक्रीडा के समय मकर ने अन्तःपुर की किसी दासी को पकड़ लिया। फलस्वरूप क्रुद्ध राजा यशोमति ने सभी हिंस्र-जलचरों सहित उस मत्स्य को भी मरवा दिया। वह मकर भाले से मरा तथा वह मत्स्य जाल में फँस कर। दोनों के मांस से कई दिन तक महल में भोज होता रहा।

(४) इसके बाद यशोधर और चन्द्रमति एक बकरे और बकरी के जोड़े के रूप में उज्जयिनी के समीप कंकाही गाँव में पैदा हुये। जब वे परस्पर संभोग में लग्न थे तब बकरा उसी झुण्ड के नेता द्वारा मारा गया। उसकी आत्मा बकरी के गर्भ में प्रविष्ट हो गई। एक दिन राजा यशोमति अपने अनेक सहयोगियों के साथ आखेट में कुछ न मिलने के कारण खिन्न-चित्त उस वन्य-मार्ग से लौट रहा था। वह झुण्ड जब उधर से निकला तब उसने उस गर्भिणी बकरी को मार दिया। उसके गर्भ से बकरी का बच्चा निकला। राजा ने उस बकरी के बच्चे को पालने के लिये अपने प्रमुख रसोइये को दे दिया। वह बच्चा कई मास तक वहाँ रहा। उसने देखा कि अमृतमति कुष्ठ रोग से पीडित है तथा सभी परिजन उसका उपहास करते थे कि किस प्रकार उसने अपने पति यशोधर को विष देकर मार डाला था।

बकरी मृत्यु के बाद कलिंग देश में महिष के रूप में पैदा हुई और एक सार्थवाह द्वारा खरीद कर उज्जयिनी लाई गई। एक दिन शिप्रा नदी में तैरते समय वह राजा के अश्व से लड़ गई। राजा ने उसे मार डालने की आज्ञा दी। बकरा भी एक दिन अमृतमति का भोज्य बन गया।

(५) इसके बाद यशोधर और चन्द्रमति मुर्गे-मुर्गी के रूप में पैदा हुये। इसी समय वे उज्जयिनी के एक चाण्डाल चण्डकर्मन् के हाथ लगे। वह चाण्डाल अपने पूर्व-जन्म में कन्दलविलास नामक विद्याधर था। उसने विजयार्ध पर्वत पर तप करते हुये एक सन्त मन्मथमथन को अभिमानवश दुःख देने का प्रयत्न किया। इसी समय विद्याधरों का राजा रत्नशिखण्डिन् उस सन्त की पूजा करने आया। कन्दलविलास के दुर्व्यवहार से क्रुद्ध उसके राजा ने उसे चाण्डाल हो जाने का शाप दिया। क्षमा की प्रार्थना करने पर राजा ने उससे कहा कि जब वह महान् सन्त सुदत्त से मिलेगा तब शाप मुक्त हो जायेगा। राजा ने उसे धर्माचरण का उपदेश भी दिया।

विद्याधरों के राजा ने मुनि सुदत्त का परिचय देते हुये बताया कि वह मुनि किसी समय कलिंग का शक्तिशाली महाराज था। एक दिन एक चोर अपराधी के रूप में उसके सामने प्रस्तुत किया गया, जिस पर एक नापित की सुप्तावस्था में

हत्या करने तथा उसकी सम्पत्ति के अपहरण का दोष लगाया गया था। उसे ऐसी घोर यातना देने का निर्णय किया गया जिसकी वेदना से वह दस-बारह दिनों में मर सके। राजा सुदत्त को इस बात से बड़ा दुःख हुआ कि ऐसी कठोर यन्त्रणा देना एक प्रकार का पाप है पर यदि ऐसा न किया जाय तो समाज में अव्यवस्था फैलेगी। दयापूर्ण न्याय न कर सकने के कारण राजा सुदत्त को अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और वह राज्यपद का परित्याग कर जैन साधु बन गया। समय आने पर वह विद्याधर उज्जयिनी में वधिक के रूप में उत्पन्न हुआ और यशोधर तथा चन्द्रमति कुक्कुट (मुर्गे-मुर्गी) रूप में उसी के पड़ोस में पुनः जन्मे। एक दिन उस चाण्डाल चण्डकर्मन् ने इन कुक्कुटों को एक चाण्डाल-बालक के हाथ में देखा और उससे लेकर उनको राजा यशोमति के पास पहुँचा दिया। यशोमति उस समय अपने अन्तःपुर की महिलाओं सहित अनेक व्यक्तियों को साथ लेकर सहस्र-शिखर-सम्पन्न-मन्दिर-युक्त उपवन की ओर प्रस्थान कर रहा था, जिससे वहाँ पहुँच कर मकरध्वज की पूजा कर सके। यशोमति ने चण्ड-कर्मन् को आदेश दिया कि वह इन पक्षियों को लेकर उपवन चले, जिससे उत्सव के समय कुक्कुट-युद्ध का प्रदर्शन हो सके।

उपवन में अनेकों वितान तने थे। एक विशाल उत्सव-शाला की भी रचना की गई थी। चण्डकर्मन् एक पिंजड़े में उन कुक्कुटों को लेकर वहाँ पहुँचा। उसके साथ भविष्यवक्ता आसुरि भी थे। अन्य व्यक्तियों में एक भागवत, ज्योतिर्विद् धूमध्वज, एक ब्राह्मण, एक शैव हरप्रबोध तथा एक बौद्ध सुगतकीर्ति भी साथ थे। सबने वहाँ एक अशोक वृक्ष के नीचे मुनि सुदत्त को आसनस्थ देखा और सभी वहाँ पहुँचे। मुनि सुदत्त ने सभी धार्मिक सिद्धान्तों का खण्डन करते हुये अहिंसा को परम धर्म सिद्ध किया, जिससे इहलोक और परलोक को सुखद बनाया जा सकता है। उन्होंने अहिंसा धर्म का उल्लंघन करने वाले उन दो कुक्कुटों के पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त उदाहरण के लिये सुनाया और संक्षेप में बतलाया कि किस प्रकार यशोधर एवं चन्द्रमति की मृत्यु हुई थी। चण्डकर्मन् तथा उसके साथ के अन्य व्यक्ति सुदत्त के उपदेशों से पवित्र हो गये। वे सभी जैन धर्म में दीक्षित हो गये। शाप-मुक्त होने के कारण चण्डकर्मन् पुनः विद्याधर पद पर प्रतिष्ठित हो अपने लोक को चला गया। कुक्कुट-युगल वहीं रह गये।

यशोमति अपनी रानी कुसुमावली के साथ एक वितान मण्डप में आनन्द-मग्न था। उसने कुसुमावली को अपना शब्दवेधी बाण-कौशल प्रदर्शित करने के निमित्त एक तीर छोड़ा। जो कुक्कुटयुगल वहाँ रह गये थे उनकी ध्वनि ही तीर का लक्ष्य बन गई फलस्वरूप दोनों कुक्कुट मर गये। कुसुमावली उसी समय

गर्भवती बनी अतः दोनों कुक्कुटों की आत्माओं ने पुनर्जन्म के लिये उसके गर्भाशय में प्रवेश किया। रानी कुसुमावली की प्रार्थना पर राजा यशोमति ने गर्भकाल तक के लिये अपने राज्य में मद्य-मांस-भक्षण तथा प्राणिवध का सर्वथा निषेध कर दिया। रानी ने भूत-दया तथा आत्म-संयम पर भी बल दिया। राजा को यह विश्वास हो गया कि जैन धर्मानुसार आचरण करने के कारण वह शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करने वाला है। उसने रानी के दोहद की यथाशक्ति पूर्ति की। समय आने पर रानी कुसुमावली ने युग्म-शिशु को जन्म दिया। पुत्र का नाम यशस्तिलक एवं पुत्री का नाम मदनमति रक्खा गया। वे दोनों ही इस मुनि रूप में अब अभयरुचि एवं अभयमति थे। दोनों शिशु बड़े हुये और यह निश्चित समझा जाने लगा कि यशस्तिलक का युवराज-पद पर अभिषेक होगा तथा मदनमति का विवाह अहिच्छत्र के राजा से हो जायेगा।

एक दिन राजा यशोमति आखेट के लिये जा रहा था कि उसी सहस्र-शिखर-मन्दिर वाले उपवन में उसे मुनि सुदत्त का दर्शन हो गया। राजा के कृपापात्र एक अनुचर अजमार ने जैन मुनि सुदत्त के दर्शन को आखेट के लिये अशकुन बतलाया। इस पर राजा मुनि सुदत्त से बहुत ही खिन्न हुआ। इसी समय कल्याणामृत नामक एक व्यापारी मुनि सुदत्त के पास श्रद्धा भक्ति-प्रदर्शन के लिये आया। उसने राजा को मुनि सुदत्त के प्रति किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार करने से मना किया और बताया कि यह मुनि किसी समय कलिंग देश के महाराज थे तथा कठोर धर्माचरण के लिये इन्होंने अपने राज-सिंहासन का त्याग किया है। व्यापारी तथा राजा दोनों ही सुदत्त के समीप गये और आदर सहित उनको प्रणाम किया। मुनि सुदत्त ने राजा को आशीर्वाद दिया और निम्नलिखित श्लोक से उनकी प्रशंसा की :—

त्वं वीरवैरिवनितानयनेन्दुकान्तनिष्यन्दसंपदिमतोसि नरेश राजा।
आदित्य एव च भवान् अहितांगनांगनिस्तोकशोकतपनोपलदीपनेषु ॥ पृष्ठ २६२ ॥

मुनि सुदत्त के मधुर भाषण ने राजा के अन्तःकरण को स्पर्श किया। ऐसे साधु पुरुष के प्रति बुरी भावना रखने के कारण उसे बहुत पश्चाताप हुआ। उसने मन ही मन सोचा कि अपना सिर काट कर प्रायश्चित्त स्वरूप इस महापुरुष के चरणों में डाल दे। मुनि ने राजा के मनोभाव को शीघ्र ही समझ लिया और ऐसा करने से मना किया। मुनि की इस शक्ति से राजा आश्चर्य-चकित हो गया। उसने अपने माता-पिता एवं पितामह-पितामही के विषय में प्रश्न किया। मुनि सुदत्त ने राजा यशोमति को बतलाया कि उसके पितामह यशोर्घ कठोर तपश्चर्या

एवं जैन धर्मानुचरण के कारण मृत्यु के उपरान्त देव-सन्त बन गये हैं। उसकी माता अमृतमति अपने पापों के कारण मृत्यु के उपरान्त घोर पंचम-नरक में पड़ी है। जहाँ तक उसके पिता यशोधर और पितामही चन्द्रमति का प्रश्न है वे दोनों आटे के एक कुक्कुट की बलि देने के कारण अनेक योनियों में जन्म लेने तथा अनेक कष्ट उठाने के उपरान्त अब उसी के पुत्र-पुत्री के रूप में उत्पन्न हुये हैं।

यह सुनकर यशोमति को स्वयं अपने घोर पापों का स्मरण हो आया कि किस प्रकार उसने अनेक पशु-पक्षियों का वध किया है और उनका मांस-भक्षण भी किया है। जीवन से निराश राजा यशोमति ने जैन धर्म का आश्रय ग्रहण करने का निश्चय किया। राज्य-त्याग के पूर्व उसने अपनी दोनों सन्तानों को भी उनके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुना दिया, जैसा उसने मुनि सुदत्त से सुना था।

बालक मुनि अभयरुचि ने मारिदत्त से कहा :—अपने पिता से उस वृतान्त को सुनते ही मुझे और मेरी इस बहन अभयमति को अपने पूर्वजन्मों की पूर्ण स्मृति हो आई। हम दोनों ने भी संसार-त्याग का निश्चय कर लिया यद्यपि उस समय हम लोगों की आयु केवल आठ वर्ष की थी। इस समय हम दोनों मुनि सुदत्त के आश्रम में हैं, जो अपने अनेक शिष्यों के साथ यात्रा करते हुये इस उज्जयिनी के बाहर ठहरे हुये हैं। नगर की ओर भिक्षार्थ आते समय हम दोनों आपके सैनिकों द्वारा पकड़ लिए गये और यहाँ आपके सामने लाए गये हैं॥

बालक मुनि अभयरुचि द्वारा वर्णित सम्पूर्ण कथा सुन लेने पर मारिदत्त का हृदय करुणा ने विगलित हो गया। उसने अनुभव किया कि संसार और उसका सम्पूर्ण वैभव स्वप्न-सदृश है। उसने धर्माभ्यासी बनने का निश्चय किया। अभयरुचि ने राजा मारिदत्त को अपने गुरु मुनि सुदत्त से मिलने की सम्मति दी। राजा उस महान् धर्मगुरु से मिलने के लिये तत्पर हो गया।

षष्ठ आश्वास का सारांश :—

महामुनि सुदत्त ने अपनी आत्म-शक्ति से यह जान लिया कि राजा मारिदत्त उनसे मिलने आ रहा है अतः वह स्वयं ही राज्यदरबार में पहुँच गये। वहाँ उनका महान सत्कार हुआ। अभयरुचि ने मारिदत्त का परिचय देते हुए सुदत्त को बतलाया कि :—राजा मारिदत्त यदुवंश-कुल-भूषण महाराज चण्ड महासेन के पुत्र तथा हम दोनों की माता कुसुमावली के अनुज हैं। अब इनकी इच्छा भी धार्मिक जीवन व्यतीत करने की है।

राजा मारिदत्त ने मुनि सुदत्त से—धर्म के स्वरूप, पुनर्जन्म के कारण, मुक्ति के मार्ग तथा गृहस्थों एवं संन्यासियों के कर्तव्यों आदि से सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूछे।

महामुनि सुदत्त ने जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए संक्षेप में अन्य धार्मिक सिद्धान्तों को निरस्त किया तथा जैन धर्म के मूल तत्व सम्यक्त्व का निरूपण भी किया। इसके चार-चार बाधक तथा साधकों का भी उल्लेख किया। इनके प्रतिपादन के समय उन्होंने उद्धरण और उदाहरण भी प्रस्तुत किये। उन्होंने सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्व्यवहार का भी विवरण प्रस्तुत किया जो सम्यक्त्व से सम्बद्ध होकर जैन धर्म के मूल तत्वों का प्रकाशन करते हैं।

सप्तम आश्वास का सारांश :—

मुनि सुदत्त ने अपना उपदेश जारी रखते हुए जैन धर्मानुकूल आचरणों पर भी प्रकाश डाला—मद्य-मांस के परित्याग पर बल देते हुए उनकी बुराइयों एवं त्याग-जन्य लाभों का उदाहरण सहित संकेत किया तथा अनेक उदाहरणों द्वारा चोरी, विश्वासघात, छल, लोभ, मोह आदि दुष्कर्मों के कटु परिणामों को भी चित्रित किया और इनसे वचने की प्रतिज्ञा ही अणुव्रत है—इसका भी निर्देश किया।

अष्टम आश्वास का सारांश :—

मुनि सुदत्त ने उपासना के लिए आवश्यक जप, ध्यान आदि रीतियों का भी वर्णन किया। इस प्रकार के विस्तृत और प्रभावशाली उपदेश ने राजा मारिदत्त सहित सभी उपस्थित श्रोताओं को मुग्ध कर लिया। राजा सहित उसके सभी सभासद् तथा उपस्थित श्रोतृ-वृन्द जैनधर्म में दीक्षित हो गए। अभयरुचि, अभयमति, मारिदत्त तथा यशोमति-जो जैनधर्म अंगीकार कर संन्यस्त हो गये थे—अपनी-अपनी मृत्यु के उपरान्त देवत्व को प्राप्त हुए। महामुनि सुदत्त भी अपनी मृत्सु के बाद उत्तम देवत्व को प्राप्त हुए।

यशस्तिलक चम्पू के अन्त में सोमदेव ने जैन धर्म के गौरव का वर्णन करते हुये कविता-देवी की स्तुती की हैं :—

> **जयतु जगदानन्दस्पदीजिनोक्ति सुधारसः**
> **तदनु जयतात् कामारामः सतां फलसंगमैः ॥**
> **जयतु कवितादेवी शश्वत्ततश्च यदाश्रयात्**
> **कृतिमतिरियं सूते सूक्तिं जगत्त्रयभूषणम् ॥**

द्वि० मा० पृष्ठ ४१८ ॥

यशस्तिलक चम्पू की कथावस्तु का मूल स्रोत :—

यशोधर की कथा कितनी प्राचीन है इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह दसवीं शताब्दी

से पूर्व जैनधर्म की एक पौराणिक कथा के रूप में अवश्य प्रचलित थी। यह कहा जाता है कि उद्योतन सूरि (७७७ ई०) की कुवलयमाला नामक प्राकृत ग्रन्थ में प्रभंजन रचित किसी यशोधर चरित का उल्लेख हुआ है[1]। उद्योतन के गुरु हरिभद्र की प्राकृत रचना समराइच्च कथा—में भी यशोधर का चरित वर्णित है[2]। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि सोमदेव सूरि ने जिस यशोधर चरित को कथा का आधार बनाया वह उनसे दो सौ वर्ष पूर्व साहित्यिक रचना का माध्यम बन चुकी थी। हरिभद्र द्वारा वर्णित कथा का सार निम्नलिखित है :—

सुरेन्द्रदत्त विशाला के राजा अमरदत्त का पुत्र था। उसकी माता का नाम यशोधरा और पत्नी का नाम नयनावली था। पिता के उत्तराधिकारी के रूप में उसने राजसिंहासन प्राप्त किया। कुछ समय के उपरान्त अपने सिर में उसने एक पलित केश देखा। उसे धर्मदूत का आगमन समझकर उसने संसार-त्याग का निश्चय किया। संन्यास-ग्रहण के पूर्व की रात्रि उसने नयनावली के साथ व्यतीत की। रात्रि को नयनावली धीरे से उसकी शय्या का परित्याग कर एक प्रासाद-रक्षक के पास-जो कुब्जा था—आलिंगन बद्ध होने चली गई। राजा ने छिप कर उसका पीछा किया—सारा दृश्य देखा—तथा रानी और प्रासाद-रक्षक को मारने के लिए उद्यत होकर भी, आत्म-नियन्त्रण कर वह अपने महल में वापस आ गया। नयनावली भी कुछ समय बाद वापस आई और उसकी शय्या पर धीरे से लेट गई।

दूसरी रात्रि को राजा ने एक भयानक स्वप्न देखा कि—वह महल के ऊपर सिंहासन पर बैठा हुआ है। उसकी माता यशोधरा ने उसे नीचे फेंक दिया। वह सातवीं मंजिल से नीचे की ओर गिरने लगा। उसकी माता भी वहाँ से लुढ़कते हुए उसका अनुसरण कर रही है। किसी प्रकार संभल कर वह मंदराचल पर जा चढ़ा। स्वप्न का आरम्भ कष्टपूर्ण किन्तु उसका अन्त सुखद था।

दूसरे दिन प्रातःकाल सुरेन्द्रदत्त राजदरबार में उपस्थित हुआ और अपनी माता से मिला। यद्यपि स्वप्न का विवरण सुनने पर उसकी माता ने अनुकूल अर्थ लगाया परन्तु सुरेन्द्रदत्त को उससे सन्तोष नहीं हुआ। उसने अपने पुत्र गुणभद्र को राज्य सौंप कर संन्यस्त हो जाने का निश्चय किया।

---

१. द्रष्टव्य जैन साहित्य और इतिहास (श्री नाथूराम प्रेमी), पृष्ठ ५३९।

२. जैकोबी : बिब्लिओथिका इण्डिका नं० १६९ कलकत्ता, १९२६ : चतुर्थ भव (परिच्छेद)।

उसकी माता ने स्वप्न के बुरे प्रभाव की शान्ति के लिए देवी को बलि देकर पूजन करने की सम्मति दी। राजा ने अहिंसा को परमधर्म मानते हुए इस विचार का विरोध किया। वह स्वयं अपनी बलि देकर देवी को सन्तुष्ट करने के लिए तत्पर हो गया। उसकी माता भयभीत हो गई। विवाद के पश्चात् निर्णय हुआ कि आटे के कुक्कुट की बलि देकर देवी दुर्गा की पूजा की जाय और ऐसा ही किया गया। सबने उस कुक्कुट को प्रसाद समझ कर पकाया-खाया भी।

दूसरे दिन गुणभद्र का सिंहासनारोहण हुआ और राजा की बिदाई की व्यवस्था की जाने लगी। रानी नयनावली ने सोचा कि यदि वह संन्यस्त जीवन में राजा का साथ न दे सकी तो महान् अपवाद फैलेग। अतः उसने राजा को विष द्वारा मार डालने का निश्चय किया जिससे वह अपने पुत्र गुणभद्र की शैशवावस्था तक स्वयं राज्य-शासन कर सके। रानी ने भोजनोपरान्त अपने पति को पाचन गुटिका में विष मिला कर खिला दिया। जब राजा मरने लगा तब वह उसके ऊपर गिर कर निरश्रु-रुदन करती रही। यशोधरा की मृत्यु भी उसी दिन हो गई।

राजा सुरेन्द्रदत्त और उसकी माता यशोधरा ने कई योनियों में जन्म लेने के पश्चात् अन्त में अभयरुचि तथा अभयमति के रूप में क्रमशः मानव-शरीर धारण किया। अपने सत्कर्मों के कारण वे दोनों पुनः सहस्रार-स्वर्ग में देव-योनि में उत्पन्न हुए। स्वर्गच्युत होने पर अभयरुचि ने अयोध्या के राजा विनयंधर के पुत्र तथा अभयमति ने पाटलिपुत्र के राजा ईशानसेन की कन्या के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण किया। दोनों का नाम क्रमशः यशोधर एवं विनयमति था। युवावस्था आने पर विनयमति एक स्वयंवरा कन्या की भाँति राजकीय साज-सज्जा से सुसज्जित, अयोध्या लाई गई और यशोधर के साथ उसके विवाह की तैयारी आरम्भ हो गई।

विवाह के लिए निश्चित दिवस पर श्वेत-गज पर चढ़ा हुआ यशोधर जब बारात के साथ विवाह-मण्डप की ओर जा रहा था, तब उसने एक संन्यासी को एक व्यापारी के द्वार पर भिक्षा माँगते हुए देखा। उसे अपने पूर्वजन्मों की स्मृति हो आई। वह मूर्च्छित हो गया। प्रचुर उपचार के बाद चेतना आने पर उसकी आंख खुली। उसे संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई। अपने पिता से आग्रह कर महारानी सहित सभी प्रमुख व्यक्तियों को उसने बुलवाया। सबके एकत्रित होने पर उसने अपने पूर्वजन्मों की कथा—जो उज्जयिनी के राजा सुरेन्द्रदत्त से आरम्भ होकर इस जन्म तक की थी—कह

सुनाई। उसने विवाह के प्रति अनिच्छा तो व्यक्त की ही संसार से वैराग्य ग्रहण कर लेने की तीव्र इच्छा भी प्रकट की। एक पुरोहित को भावी वधू के पास भेजा गया, जिसने यशोधर से सुनी हुई सारी कथा भी उसे सुना दी और उसकी इच्छा भी उसे सूचित कर दी। सुरेन्द्रदत्त, यशोधरा और नयनावली का नाम सुनते ही विनयमति को भी अपने पूर्वजन्मों की स्मृति हो आई। वह भी मूर्च्छित हो गई। चेतना आने पर उसने बतलाया कि वह स्वयं ही यशोधरा है। उसने स्वयं भी वैराग्य ग्रहण की इच्छा व्यक्त की।

यशोधर के पिता का हृदय इन घटनाओं से विचलित हो उठा। उसे जीवन की अनित्यता का बोध हो गया। रानी को भी यह सारा संसार अभिनय-स्थल प्रतीत होने लगा। यशोधर के अनुज यशोवर्धन को राजसिंहासन पर बैठाया गया तथा यशोधर, उसके माता-पिता, विनयमति एवं सभी प्रमुख व्यक्तियों ने महामुनि इन्द्रभूति से दीक्षा लेकर संन्यास ग्रहण कर लिया। इस सम्पूर्ण कथा को संन्यासी यशोधर ने धन नामक व्यापारी को सुनाया था।

मूल कथा में परिवर्तन :—

हरिभद्र द्वारा प्रस्तुत की गई उस मूल कथा में सोमदेव सूरि ने अनेक परिवर्तन किया है। दोनों की तुलना करने पर निम्नलिखित अन्तर दिखाई पड़ता है :—

(१) हरिभद्र की कथा में पात्रों के नाम भिन्न-भिन्न हैं :—

- (क) यशोधर के स्थान पर कथा का नायक राजा सुरेन्द्रदत्त है। वह अमरदत्त तथा यशोधरा का पुत्र है। यशस्तिलक का नायक यशोधर राजा यशोर्घ और चन्द्रमति का पुत्र है।
- (ख) सुरेन्द्रदत्त की पत्नी का नाम नयनावली है, जब कि यशोधर की पत्नी का नाम अमृतमति है।
- (ग) सुरेन्द्रदत्त के पुत्र का नाम गुणभद्र है और यशोधर के पुत्र का नाम यशोमति।
- (घ) यशस्तिलक में राजधर्म के वर्णन के लिये शंखनक तथा राजसी-वैभव के वर्णन के लिये अनेक विरुद-गायक-कवि-पात्रों का समावेश किया गया है, हरिभद्र की कथा में नहीं।

(२) दोनों की प्रमुख घटनाओं में साम्य अधिक है। सोमदेव ने अपने विशिष्ट-दृष्टिकोण के कारण तथा ब्राह्मण-परम्परा का खण्डन करने के लिये घटनाओं में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है :—

(क) सुरेन्द्रदत्त विशाला नगरी का राजा था और यशोधर उज्जयिनी का। सोमदेव के समय (१०वीं शताब्दी) तक उज्जयिनी ने कथा साहित्य के भीतर महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था[1]। लोककथाओं में भी अवन्ती और उज्जयिनी का प्रचुर वर्णन मिलता है। नायिकाओं का अवन्ति-सुन्दरी नाम तो सामान्य बन गया था[2]। अतः सोमदेव ने उज्जयिनी को आधार बना कर कथा साहित्य में उसकी लोकप्रियता की ओर ही संकेत किया है।

(ख) अमृतमति का प्रेम एक हस्तिपाल से हुआ था और नयनावली का अन्तःपुर-रक्षक एक कुब्जे से।

(ग) हरिभद्र ने राजा सुरेन्द्र दत्त की हत्या का कारण रानी नयनावली की संन्यास-ग्रहण की अनिच्छा एवं अपने पुत्र गुणभद्र की शैशवावस्था में शासन करने का लोभ माना है। सोमदेव ने मुख्य कारण अपराधिनी अमृतमति की आत्मरक्षा एवं निन्दापवाद का भय माना है।

(घ) सोमदेव ने अमृतमति के वर्णन पर उतना ध्यान नहीं दिया है, जितना हरिभद्र ने। सोमदेव ने अमृतमति की कुष्ठावस्था एवं पंचम नरक में पड़ने की बात कह कर संक्षिप्त वर्णन द्वारा ही छुट्टी पा ली है, पर हरिभद्र ने नयनावली के पूर्व-सौन्दर्य एवं कुष्ठावस्था के घृणित रूप का विस्तृत वर्णन कर दुराचार के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने की चेष्टा की है[3]।

(ङ) बलि देने के सम्बन्ध में हुए यशोधर एवं उसकी माता चन्द्रमति के विवाद को सोमदेव ने ब्राह्मण और जैन-परम्परा के विचार-भेद को स्पष्ट करने के लिये साम्प्रदायिक रूप दे दिया है। हरिभद्र ने माता और पुत्र को दो पक्षों में नहीं खड़ा किया है। केवल अहिंसा की महत्ता पर प्रकाश डाला है। जीव-दया पर ही मुख्य जोर रहा है।

(च) हरिभद्र ने अभयरुचि और अभयमति के मानव जन्म के उपरान्त उनकी मृत्यु-सहस्रार-स्वर्ग में निवास तथा वहां से च्युत होने के उपरान्त यशोधर एवं विनयमति के रूप में जन्म लेने का भी वर्णन किया है, सोमदेव ने नहीं।

(छ) हरिभद्र की कथा में न तो राजा मारिदत्त का ही समावेश है और न अभयरुचि तथा अभयमति बलि दिये जाने के लिए ही ले जाये जाते हैं।

(ज) अभयरुचि एवं अभयमति को पूर्वजन्म की स्मृति मुनि सुदत्त द्वारा सुनाई गई कथा के कारण होती है। यशोधर को यह स्मृति एक संन्यासी-भिक्षु

---

१. द्रष्टव्यः—कादम्बरी—पृष्ठ १५१ उज्जयिनी वर्णन।

२. ,, दशकुमार चरितम्—अवन्तिसुन्दरीपरिणयो नाम पंचम उच्छ्वासः।

३. ,, समराइच्च कथा—पृष्ठ २६२।

को देख कर होती है तथा विनयमति को यशोधर द्वारा भेजे गये एक पुरोहित से अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन कर।

(झ) पूर्वजन्म की कथा अभयरुचि, चण्डमारि देवता के समक्ष मारिदत्त एवं उपस्थित जनसमूह को सुनाता है, जबकि हरिभद्र द्वारा प्रस्तुत कथा में यशोधर बारात में सम्मिलित जनसमूह को।

(ञ) कथा-श्रवण के फलस्वरूप राजा मारिदत्त और उपस्थित व्यक्ति मुनि सुदत्त से जैनधर्म की दीक्षा लेते हैं तथा हरिभद्र वाली कथा में सभी इन्द्रभूति से दीक्षा लेकर संन्यस्त होते हैं।

हरिभद्र एवं सोमदेव दोनों द्वारा निर्मित कथाओं का लक्ष्य समान है :— जैनधर्म का प्रचार एवं जन-जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा। किन्तु दोनों की पद्धति तथा दृष्टिकोण में महान् अन्तर है। हरिभद्र की कथा में हिंसा का एक ही अवसर प्रस्तुत किया गया है जब राजा सुरेन्द्रदत्त के बुरे स्वप्न के प्रभाव को दूर करने के लिये बलि देने का प्रश्न उपस्थित होता है। सोमदेव ने चण्डमारि देवता के समक्ष बलि-क्रिया का एक भयानक एवं बीभत्स नूतन दृश्य प्रस्तुत किया है। अनेक प्राणि-युगल को बलि देने के लिये तत्पर राजा मारिदत्त की मनोवृत्ति को परिवर्तित कर उसे अहिंसक बनाने की क्षमता क्षुल्लक मुनि अभयरुचि में दिखाई गई है। हिंसा के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने का एक महत् अवसर सोमदेव ने यहाँ सृष्ट किया है।

हरिभद्र खंडन-मंडन के चक्कर में नहीं पड़े हैं। सोमदेव ने दोनों अवसरों पर (स्वप्न-प्रभाव को दूर करने तथा मारिदत्त द्वारा विद्याधर-विजयी-असि की सिद्धि के लिये किये जाने वाले बलि-प्रकरण) अपनी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति की तीव्रता के कारण कर्मकाण्ड एवं यज्ञ में पशु-बलि की व्यवस्था पर प्रखर प्रहार किया है। उन्होंने अहिंसा का प्रतिपादनमात्र ही नहीं किया है अपि तु इन अवसरों पर अन्य अहिंसा-विरोधी मतों को प्रस्तुत कर उनका खण्डन भी किया है। अपने इस विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण ही सोमदेव ने अनुकूलता-सृजन के लिये मूल कथावस्तु में आवश्यक परिवर्तन कर लिया है।

सोमदेव की कथावस्तु का मूलस्रोत क्या था? इस सम्बन्ध में अन्य ऐतिहासिक तो मौन हैं, परन्तु श्री दासगुप्ता ने यशस्तिलक की कथावस्तु को गुणभद्र के उत्तरपुराण पर आश्रित माना है[1]।

---

१. द्रष्टव्य—ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर : एस. एन. दासगुप्ता।

गुणभद्र के उत्तरपुराण का रचना-काल शक संवत् ८२० (सन् ८९८ ई०) है[1]। कालक्रम से उत्तरपुराण के साठ वर्ष पश्चात् यशस्तिलक की रचना हुई है। सम्भव है, सोमदेव ने उत्तरपुराण के यशोधरचरित को पढ़ा हो परन्तु उत्तर-पुराण की कथा हरिभद्र वाली कथा से मिलती जुलती है। उससे भी यशस्तिलक की कथा का उतना ही अन्तर है जितना हरिभद्र वाली कथा से। यशस्तिलक के बहुत बाद रचित कृष्णदास (संवत् १६८१) के मुनि सुव्रत पुराण (१३वां अध्याय) में भी मथुराधिप यशोधर का चरित वर्णित है। वह पुराणानुकूल है, यशस्तिलक की कथा के अनुरूप नहीं। अतः यशोधर की पौराणिक कथा अपने मूलरूप में आगे भी चलती रही है। सोमदेव के समकालिक पुष्पदन्त ने अपने 'जसहर चरिउ' में यशोधर की जो कथा ग्रहण की है वह यशस्तिलक की कथा से पूर्णतः मिलती है। अतः दो सम्भावनायें सामने आती हैं :—

(१) सोमदेव और पुष्पदन्त ने किसी समान सूत्र से अपने काव्यों के लिये कथावस्तु ग्रहण की हो।

(२) सोमदेव को कथावस्तु को आधार बनाकर पुष्पदन्त ने अपना काव्य 'जसहर चरिउ' प्रस्तुत किया हो।

यदि दोनों की कथावस्तु का कोई अन्य सूत्र है तो वह अज्ञात एवं अनुपलब्ध है। अधिक सम्भावना यही है कि यशस्तिलककार सोमदेवसूरि ने कथावस्तु का आधार तो पौराणिक ही रखा परन्तु उसको अपने काव्य के अनुकूल बनाने के लिये अपनी कल्पना-शक्ति तथा स्वतन्त्र बुद्धि का प्रचुर प्रयोग किया है। पौराणिक कथाओं में इच्छानुकूल परिवर्तन प्रायः अनेक महाकवियों ने किया है। सोमदेव के लिये ऐसा करना किसी परम्परा का उल्लंघन नहीं था।

यशस्तिलक चम्पू के पात्र :—

इस काव्य में दो कथायें परस्पर संश्लिष्ट हैं। प्रथम कथा के मुख्य-पात्र हैं— मारिदत्त, अभयरुचि, अभयमति एवं मुनि सुदत्त। इस कथा का मुख्य उद्देश्य है—मारिदत्त का क्रूरकर्म छोड़कर अभयरुचि एवं अभयमति की प्रेरणा से मुनि सुदत्त को गुरु बनाकर जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण करना। दूसरी कथा यशोधर का चरित प्रस्तुत करती है। इसके प्रमुख पात्र हैं—यशोधर, चन्द्रमति, अमृतमति, यशोमति, कुसुमावली, शंखनक, चण्डकर्मन्, अनेक सभासद् तथा अनेक कवि आदि। यशोधर और चन्द्रमति ही अपने अगले मानव-जन्म में अभयरुचि और अभयमति बनते हैं। मुनि सुदत्त सहित इन्हीं के माध्यम से कवि ने दोनों कथाओं को परस्पर संश्लिष्ट कर दिया है।

---

१. द्रष्टव्य :-हिन्दुत्व-श्री रामदास गौड़-पृष्ठ-४३६।

मारिदत्त :—

यह यौधेय देश के राजपुर नगर का राजा है। इसके चरित्र की विशेषताओं को अभिव्यक्ति देने में सोमदेव अधिक सजग प्रतीत होते हैं। मारिदत्त एक समृद्ध देश एवं नगरी का राजा है। वह एक प्रतापी राजा चण्डमहासेन का पुत्र तो है ही स्वयं भी नल, नहुष, भगीरथ, भरत आदि के सदृश तेजस्वी है :—

तत्र (चास्ति) समस्तमहीमहिलाशिखंडमण्डनकरे पुरे सुकृतिनो हरिवंशजन्मनः प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीमण्डनमंडलाग्रखण्डितारातिप्रकाण्डस्य चण्डमहासेनस्य नृपतेः सूनुः पराक्रमापहसितनृगनलनहुषभरतभगीरथभगदत्तो मारिदत्तो नाम राजा।

—प्रथम आश्वास॥

अपने नायक के प्रशस्ति-गान में तो संस्कृत के प्रायः सभी कवि अतिशयोक्ति की चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं, फलस्वरूप चरित्र की निजी विशेषतायें अन्तर्हित हो जातीं हैं। परन्तु सोमदेव ने अपने पात्रों के गुण-अवगुण दोनों को स्पष्ट किया है। मारिदत्त बाल्यकाल में ही राजा बन जाता है। अतः उसकी शिक्षा-दीक्षा अपूर्ण रह जाती है, लक्ष्मी-जन्य सम्पूर्ण उच्छृंखलतायें उसमें समाविष्ट हो जाती हैं। विद्या, वृद्ध-जन और गुरुकुल तीनों से असम्पृक्त उसका चरित्र अत्यन्त क्रूर एवं निष्ठुर व्यक्ति का सा बन जाता है। सोमदेव ने विविध विशेषणों-नर्मसचिवपुत्रैः परिवृतः निरंकुशतां नीयमानः, सकलजगत्शून्यतामानेतुं प्रवृत्तिसहजैः सामजैः सह चिक्रीड, पितृबनावनिः संचचार, मधुमासवासरेषु कामाश्रमधर्मचरितामाप्रपेदे, कामिनिभिः परिवृतो जलक्रीडासुखमन्वभूत्— तथा मारिदत्त के क्रिया-कलापों द्वारा उसे एक उग्र और विलासी राजा के रूप में चित्रित किया है। जहाँ एक ओर वह हस्ति-युद्ध, आखेट, अश्वारोहण, शस्त्र-संचालन एवं युद्ध के माध्यम से अपने पराक्रम का प्रदर्शन करता है वहाँ दूसरी ओर मधु-मदिरा सहित कामिनियों के आस्वादन से अपनी विलासिता का।

क्रूरकर्मा होने के साथ-साथ वह महत्त्वाकांक्षी भी है। कुलाचार्य भैरव के कहने पर गन्धर्व-विजयिनी-असि की सिद्धि के लिये चण्डमारि देवता के सम्मुख सभी प्राणियों के जोड़े सहित नरबलि के लिये प्रस्तुत होना उसकी क्रूरता का चरम रूप सामने लाता है। रुधिर-प्रवाह से उसे तृप्ति मिलती है। बलि-कार्य का आरम्भ करने के लिये खड्ग-धारण किये हुये वह स्वयं महाकाल-सा प्रतीत होता है।

मारिदत्त एक परिवर्तनशील पात्र है। चण्डकर्मा होते हुये भी मानव-सुलभ-सहृदयता का उसमें सर्वथा अभाव नहीं है। बलि के लिये लाये गये मानव-मिथुन, अभयरुचि एवं अभयमति के अनिन्द्य-सौन्दर्य एवं सुकुमारता को देख कर

उसकी चिरकाल से प्रसुप्त कोमल भावनायें अंगडाइयाँ लेने लगती हैं। उन दोनों द्वारा प्रस्तुत मधुर संगीतमय-प्रशस्ति से तो वह करुणा-विगलित हो जाता है— उसका उठा हुआ खड्ग झुक जाता है। अवसरविलास नामक वैतालिक के निम्नलिखित संकेत पर तो वह असि को रख भी देता है :—

नासन्नारिपवो न चापि भवतः कश्चिन्निदेशावशः
श्रीरेषा तव या प्रणयिनी तस्यै न कोपीर्ष्यति ।
गाढं मुष्टिनिर्पीडनश्रममरप्रोद्भ्रान्तधाराजलम्
मुञ्चत्वाहवकेलिदोः सहचरीं तत्खड्गयष्टिं भवान् ॥

यश० ११४८ ॥

दयार्द्रचित्तैर्मुनिभिः समागमान्निसर्गहिंस्रोऽपि जनः प्रशाम्यति ।
आहार्थ हिंसामतयः शमोदयं भजन्ति यद्देव तदद्भुतं कुतः ॥

यश० ११४९ ॥

मारिदत्त के चरित्र में यहीं से परिवर्तन आरम्भ होता है। करुणा का जो उत्स उसके हृदय से निस्सृत हुआ वही उसे अहिंसा के उदधि तक पहुँचाने में समर्थ हो गया। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को सोमदेव ने एक उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक की भाँति प्रस्तुत किया है। सौन्दर्य और संगीत के सुख्यात प्रभाव को तो उन्होंने माध्यम बनाया ही है, मानव-सुलभ उस दुर्बलता की ओर भी संकेत किया है जो अपनी यशःप्रशस्ति सुनने पर उसमें उत्पन्न होती है।

मारिदत्त के हृदय-परिवर्तन के इसी क्रम को बल देने के लिये कवि ने यशोधर का चरित प्रस्तुत किया है। हिंसा-वृत्ति किसी के लिये भी जन्म-जन्मान्तर तक कष्ट और दुर्दशा का कारण बन सकती है, इस तथ्य के उद्घाटित होते ही मारिदत्त पूर्ण अहिंसक बन जाता है। उसकी हिंसा से विरति परिस्थितियों से उद्भूत क्रूरता की भारी पराजय सूचित करती है।

मानव मूलतः अहिंसक प्राणी है, इस तथ्य का पूर्ण उद्घाटन मारिदत्त के चरित्र से होता है। मुनि सुदत्त का वह अपने दरबार में भव्य स्वागत करता है और उनसे पूछता है :—

—किं पुनर्भगवन् मुक्तेः कारणम्, किं च संसारस्य, को वा गृहाश्रमिणां धर्म्मः, कश्च संयमिलोकस्य···॥ षष्ठ आश्वास ॥

इस जिज्ञासावृत्ति एवं गृहस्थ तथा संन्यास-धर्म के विषय में किये गये प्रश्न से स्पष्ट है कि मारिदत्त की हिंसावृत्ति परिस्थिति एवं अज्ञानजन्य है, स्वाभाविक नहीं। मुनि सुदत्त द्वारा उचित पथप्रदर्शन प्राप्त होते ही वह जैन-धर्म स्वीकार

कर लेता है। आरम्भ का क्रूर, हिंसक तथा विलासी मारिदत्त अन्त में कोमल, अहिंसक, करुणापूर्ण एवं विरक्त बन जाता है।

सोमदेव के काव्य लक्ष्य की पूर्ति मारिदत्त के चरित्र से ही होती है, फिर भी कवि ने कहीं भी अपने कठोर नियन्त्रण द्वारा उसमें अस्वाभाविकता नहीं आने दी है। एक कुशल मनोवैज्ञानिक की भांति उसने मारिदत्त के चरित्र में परिवर्तन की गति को शनैः शनैः आगे बढ़ा कर लक्ष्य तक पहुँचाया है।

अभयरुचि :—

यह मारिदत्त वाली कथा का एक महत्वपूर्ण पात्र है। मुनि सुदत्त से अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनने के उपरान्त यह जैन-क्षुल्लक बना है। यशोमति एवं कुसुमावली के संन्यस्त हो जाने पर यह भी अपनी बहन अभयमति के साथ मुनि सुदत्त से दीक्षित हुआ है। यह राजकुमार है, शरीर से अत्यन्त सुकुमार, गौर-वर्ण, भव्यरूप किन्तु तपःसंलग्न। मुनि सुदत्त चाहते थे कि मारिदत्त के जीवन में उदारता का समावेश हो, इस महत्कार्य के साधन का भार उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से अभयरुचि के कन्धों पर डाल दिया। अभयरुचि इसके लिये उपयुक्त पात्र सिद्ध होता है। मारिदत्त के सैनिकों द्वारा पकड़े जाने, अपनी बहन के साथ वहां ले जाये जाने, बलि होने के लिए भयानक चण्डमारि देवता के सामने अपने नेत्रों में शोक और करुणा भरे सहस्रों प्राणि-युगलों के दर्शन करने पर भी वह तनिक भी विचलित नहीं होता। वह अपनी बहन अभयमति से कहता है :—हे मातः ऐसे स्थलों पर सम्यक् ज्ञान ही रक्षक है। मृत्यु तो महोत्सव है, वह अनिवार्य भी है। देवता भी इस मानव-जन्म की आकांक्षा करते हैं जिससे वे सर्व-कर्म क्षय-लक्षणयुक्त परम निर्वाण प्राप्त कर सकें। जो मानव होकर भी प्राणि-दया नहीं करते वे इस अनित्य-कर्मभूमि में अनेक जन्म धारण करते हैं॥ आ० १ पृ० १४०–१४३॥

पूर्वजन्म-ज्ञान-सम्पन्न, अहिंसा के मर्म को समझने वाला अभयरुचि, राजा मारिदत्तके के प्रति एक कुशल मनोवैज्ञानिक की भांति अत्यन्त उदारभाव अपनाता है :—

अज्ञानभावादशुभाशयाद्वा कुर्वीत चेत्को पि जनः खलत्वम्।
तथापि सद्भिः प्रियमेव चिन्त्यं न मथ्यमानेप्यमृते विषं हि॥ यश० १।१५१॥

अभयरुचि ने राजा को आशीर्वाद देते हुये इस ओर संकेत किया कि राजा का कार्य सबकी रक्षा करना होता है :—

वर्णाश्रमाणां प्रतिपालयित्रे जगत्त्रयत्रायिपराक्रमाय ।
ददातु देवः स जिनः सदा ते राजन्नशेषाणि मनीषितानि ॥१।१५४॥

इस कथन का राजा के मन पर उपयुक्त प्रभाव न देख कर अभयरुचि ने यह समझ लिया कि रजस्तमोगुणबहुल व्यक्ति को पहले ही धर्मोपदेश करना सिर दर्द मोल लेना है। अतः उसने संगीत के माध्यम से कार्य-सिद्धि का प्रयत्न किया। इससे सफलता भी मिलती है—चण्डमारि देवता के आसपास के सम्पूर्ण रुधिर-वसाप्लावित वातावरण में संगीत की स्वर-निर्झरिणी प्रवाहित होने लगती है। पवित्रता का आभास होने लगता है—सबकी भावनाओं में एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। मारिदत्त के हृदय में भी कोमल भावनायें जागने लगती हैं।

राजा का हृदय द्रवित होता है। यशोधर के जन्म-जन्मान्तरों के कष्टों को सुन कर हिंसा के प्रति विरति का होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। अभयरुचि ने राजा के द्रवित-हृदय पर यह हथौड़े की चोट की है। अनुकूल क्षेत्र तैयार हो जाता है, अहिंसा के बीज-वपन का कार्य मुनि सुदत्त करते हैं।

अभयरुचि यशोधर चरित का वक्ता है और राजा मारिदत्त श्रोता। यशोधर के व्यक्तित्व की अपेक्षा अभयरुचि का व्यक्तित्व अधिक निखरा हुआ है यद्यपि दोनों केवल जन्मान्तर के कारण भिन्न हैं।

अभयमति :—

सोमदेव ने इसका चरित्र एक कुलीन बालिका के रूप में चित्रित किया है। यशोमति और कुसुमावली की यह कन्या भी मुनि सुदत्त की शिष्या उसी समय बन गई है जब अभयरुचि। अभयरुचि की कार्य-सिद्धि में यह सहायता देने वाली पात्री है। इसमें स्त्री-सुलभ कोमलतायें और दुर्बलतायें भी हैं। चण्डमारि देवता के समीप के भयानक वातावरण से यह घबरा उठती है। संगीत द्वारा राजा मारिदत्त के हृदय को द्रवित करने में अभयरुचि को यह समान सहयोग देती है। यशोधर चरित के श्रवण के समय चन्द्रमति के रूप में अनेक जन्मों के कष्टों को सुनते ही यह सुकुमार-हृदया बेसुध हो जाती है। इसके अपने चरित्र के विकास के लिये पर्याप्त अवसर नहीं मिला है।

मुनि सुदत्त :—

सोमदेव ने मुनि सुदत्त को यशोधर की मूल कथा की प्रेरक-शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। इनका प्रथम प्रवेश काव्य के प्रथम आश्वास में अभयरुचि और अभयमति के गुरु के रूप में हुआ है। महाराज यशोधर के पुत्र यशोमति ने आखेट के लिये जाते समय इन्हें एक वृक्ष के नीचे बैठे देख कर तथा मुनि-दर्शन

को मृगया के लिये अपशकुन मान कर इनका अपमान करना चाहा है। उसी समय कल्याणामृत नामक एक व्यापारी ने यशोमति को इनका परिचय दिया है कि यह किसी समय कलिंग देश के एक शक्तिशाली राजा थे। विवश होकर एक चोर को कठोरतम दण्ड देने के कारण करुणा-विगलित हो इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया है।

मुनि सुदत्त का व्यक्तित्व अत्यन्त शक्तिशाली एवं प्रभावोत्पादक है। इन्हें अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हैं। यह मधुरभाषी तो हैं ही, दूसरों के मनोभावों को समझ लेने की अद्भुत क्षमता भी इनमें है। यह प्रत्येक व्यक्ति की जन्म-जन्मान्तर की घटनाओं से परिचित हैं। पश्चात्ताप-संतप्त यशोमति को आत्महत्या करने से रोकते हैं। उसके पिता, माता एवं पितामही की मरणोत्तर स्थिति का वर्णन करते हैं। मुनि सुदत्त ही यशोमति, कुसुमावली, अभयरुचि तथा अभयमति के वैराग्य के कारण हैं।

यशस्तिलक के पञ्चम आश्वास के उपरान्त, अन्त तक मुनि सुदत्त के गौरव, उनकी सिद्धियों, धार्मिक-तत्वों के ज्ञान तथा मधुर उपदेशों का ही वर्णन है। राजा मारिदत्त के समीप जाने तथा उपदेश देने के पूर्व कवि ने सुदत्त के प्रभाव का जो वर्णन किया है उससे उनके चरित्र पर व्यापक प्रकाश पड़ता है :—

तदनु राजा-सबहुमानं धर्मद्रुमप्रथमोत्पन्नपल्लवायमानेन, सकलसंसार-व्यसनवनदावानलप्रभापटलकान्तिना नखमयूखप्रसरोत्सर्पितश्रवणसमीपसरस्वती-प्रवाहेण, सीमन्तप्रान्तसरःसंजातजलजकुड्मलविडम्बिना,करयुगलेनोत्तंसितशिख-ण्डः प्रणम्यानाकुलमनाः प्रत्याक्षिप्तव्याक्षेपैनाः परलोकोपायपरामर्शपवित्रप्रकृतिः शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशपेशलमतिः सुदत्तभगवन्त-मभयरुचिरचितावसरोदन्तमेवं किलाभाषत। उपासकाध्ययन-प्रथम कल्प॥

मारिदत्त की विनम्रता के मूल में मुनि सुदत्त के अद्भुत प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है। जैनधर्म के व्यापक एवं सूक्ष्म, गूढ़ एवं व्यक्त तत्त्वों की जैसी व्याख्या इन्होंने की है उसके आधार पर यह एक सिद्ध-जैनाचार्य सिद्ध होते हैं। सिद्धियों के कारण इनका चरित्र एक अतिलौकिक परम योगी व्यक्ति के सदृश बन गया है।

मुनि सुदत्त के माध्यम से सोमदेव के धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने इन्हीं के द्वारा दोनों कथाओं को जोड़ा है, इस दृष्टि से भी यह यशस्तिलक चम्पू के एक महत्वपूर्ण पात्र हैं॥

यशोधर :—

मूल कथा यशोधर चरित का नायक यशोधर ही है। अभयरुचि ने मारिदत्त को स्वयं ही यह चरित सुनाया है। काव्य के आरम्भ से अन्त तक इसकी कथा भी

नहीं चलती है। द्वितीय आश्वास से लेकर पंचम आश्वास तक यशोधर के गुणों-अवगुणों तथा विविधजन्मों की क्रिया-प्रतिक्रिया को अभिव्यक्ति दी गई है। अपने यौवनकाल में वह अपने पिता महाराज यशोर्घ का मन्त्री, पुत्र, सहायक आदि सब कुछ है :—

को मन्त्री नृपतेर्यशोधर इति ख्यातः सुतः को रणे,
हन्ता वैरिबलं यशोधर इति ख्यातः सुतः कः सखा।
कार्यारम्भविधौ यशोधर इति ख्यातः सुतो यस्य मे,
लोकोऽप्येवमवाप तातविषये प्रश्नोत्तरत्वं स्थितिः ॥ २१९५ ॥

यशोधर और अमृतमति के विवाह के उपरान्त ही यशोर्घ के संन्यास ले लेने पर यह राजा बन जाता है। मध्यकालीन राजाओं की विलासी प्रवृत्ति का पूर्ण चित्रण सोमदेव ने इसके चरित्र में किया है। इन वर्णन-प्रधान स्थलों में यशोधर का चरित्र पारम्परिक बन गया है। वस्तुतः यशोधर की राज्य-शासन की क्षमता का परिचय तब मिलता है जब उसका चर शंखनक राज्य के एक मन्त्री पामरोदार की भ्रष्टता का विवरण उसके सामने रखता है। सब कुछ जान कर भी यह शंखनक के कथन की उपेक्षा करता है। प्रतिद्वन्दी राजा अचल के पत्र का उत्तर भी इसके मन्त्री-गण ही देते हैं।

अपनी पत्नी अमृतमति को एक हस्तिपाल के आलिंगनपाश में बँधी हुई देख कर भी इसकी सहिष्णुता सराहनीय अवश्य है परन्तु एक नीतिपूर्ण राजा के चरित्र की दृष्टि से उस कुकृत्य की उपेक्षा चरित्र-भ्रष्टता को प्रश्रय देने वाली सिद्ध होती है। अपराधियों को दण्ड न देकर स्वयं वैराग्य-ग्रहण का निश्चय परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सकने की इसकी अक्षमता का ही प्रतीक है। यशोधर नृत्य, संगीत, दर्शन तथा अर्थशास्त्र में रुचि लेता है। शस्त्र-संचालन में भी यह दक्ष है पर एक सबल शासक के रूप में न केवल वह असफल है अपितु मध्य युग के विलासी राजाओं की स्थिति से यह तनिक भी ऊँचा नहीं उठ सका है।

यशोधर में चारित्रिक दृढता की भी कमी है। यह अपने अहिंसा के सिद्धान्त पर दृढ नहीं रहता। इसी कारण आटे के कुक्कुट की बलि देने के लिये स्वीकृति दे देता है।

बलि की स्वीकृति देने में यशोधर का अपनी माता के प्रति आदर-भाव व्यक्त होता है। यहां उसकी मातृभक्ति का उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया जा सकता था पर कवि ने उसे प्रश्रय नहीं दिया है। अपनी पत्नी को कुलटा एवं अविश्वसनीय

समझते हुये भी उसके द्वारा दिये गये भोज में सम्मिलित हो कर अपनी मृत्यु बुला लेना यशोधर की नीतिज्ञता का दिवालियापन ही सूचित करता है।

यशोधर की मनुष्य-जीवन की विविध दुर्बलतायें उसके अन्य जन्मों में भी सक्रिय रहती हैं। उसकी विलासिता-उच्छृङ्खलता-अपनी पत्नी के प्रति क्रोध तथा ईर्ष्या की भावनायें प्रत्येक जन्म में व्यक्त हुई हैं। मयूर योनि में जन्म लेने पर जब वह उज्जयिनी लाया जाता है तो अपने ही महल को देख कर आसक्ति से भर जाता है। अपने प्रत्येक जन्म में अपनो दुर्बलताओं से वह विचलित होता रहा है। चारण के निम्नलिखित कथन पर वह पर्याप्त भयभीत हो जाता है :—

एवं मन्दिरद्रविणदारतनूद्भवाद्यैस्तृष्णातमोभिरनुबन्धिभिरस्तबुद्धिः।
क्लिश्नास्यहर्निशमिमं न तु चित्त वेत्सि दण्डं यमस्य निपतन्तमकाण्ड एव॥
आ० ४।८४ पृ०॥

यशोधर का चरित्र एक महाकाव्य के महान नायक की भाँति उत्तम गुणों से सम्पन्न नहीं चित्रित हुआ है। वह कवि के हाथ की कठपुतली एवं उसके उद्देश्य-पूर्ति का साधन मात्र बन कर रह गया है। वह मानवोचित अनेक दुर्बलताओं का आगार बन गया है। अपने अन्तिम-जन्म में अभयरुचि के रूप में साधना-पथ पर अग्रसर हुआ है। यहीं यशोधर के उज्ज्वल पक्ष का आरम्भ होता है। (द्रष्टव्य अभयरुचि का चरित्र)

चन्द्रमति :—

इसका दर्शन सर्वप्रथम यशोधर के साथ उसकी राज्य-सभा में होता है। यह अपने पुत्र यशोधर के बुरे स्वप्न के प्रभाव को दूर करने के लिये पशुबलि देने का आग्रह करती है। कवि ने इससे वैदिक परम्परा का प्रतिनिधित्व कराया है। यह कहती है :—

—तथा वेदे प्यात्मश्रेयोर्थमशेषविघ्नोपशमनार्थम् च राजसूयपुण्डरीकाश्वमेधगोसववाजपेयादिषु वर्षिकामेष्टिकारीरीत्यादिष्टा च यज्ञेषु प्रवृत्तोऽयं प्राणिबधः स च बधो न भवति॥ च० आ०॥

पुत्र के हठ के कारण यह प्राणि-हिंसा से विरत तो होती है परन्तु अपने दृढ विश्वास एवं पुत्र के मंगलार्थ आटे के कुक्कुट की बलि अवश्य चढ़ाती है। यह आरम्भ से अन्त तक पुत्र-स्नेह से संपृक्त दिखाई गई है। पुत्र के प्रति स्नेहासक्ति उसे विविध जन्मों में उसके साथ ही रखती है। स्नेह की आसक्ति भी दो जीवात्माओं को विविध जन्मों में साथ रख सकती है, यह इसके चरित्र से सिद्ध होता है। छाग जन्म में यह अपने पुत्र के साथ संभोग-

संलग्न भी प्रदर्शित की गई है। अपने अन्तिम मानव-जन्म में अभयमति के रूप में भी उसके चरित्र को अधिक गौरवमय रूप नहीं प्राप्त हो सका है।

अमृतमति :—

सोमदेव ने अमृतमति का चरित्र दुष्कर्मों के परिणाम प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया है। अमृतमति और यशोधर के विवाह तक और उसके उपरान्त विलास-वर्णन तक कवि ने कोई भी ऐसा सूत्र नहीं आने दिया है जिससे यह सिद्ध हो सके कि दोनों के पारिवारिक जीवन में अणु मात्र भी कटुता आ सकती है। दोनों ही सुन्दर एवं एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हैं:—

एषा हिमांशुमणिनिर्मितदेहयष्टि-
स्त्वं चन्द्रचूर्णरचितावयवश्च साक्षात्।
एवं न चेत् कथमियं तव संगमेन
प्रत्यंगनिर्गतजला सुतनुश्चकास्ति ॥ २।२१६ ॥

रानी अमृतमति का एक विद्रूप हस्तिपाल के प्रति आकृष्ट होना अस्वाभाविक न लगे, अतः कवि ने संगीत के आकर्षण को कारण रूप में प्रस्तुत किया है:—

गृणन्ति च कलासु गीतस्यैव परं महिमानमुपाध्यायाः सुप्रयुक्तं हि गीतं स्वभावदुर्भगमपि नरं करोति युवतीनां नयनमनोविश्रामस्थानम्। भवति कुरूपोऽपि गायनः कामदेवादपि कामिनीनां प्रियदर्शनः। गानेन हि दुर्दर्शा अपि योषितः पाशेनाकृष्टा इव सुतरां संगच्छन्ते। कुशलैः कृतप्रयोगं हि गेयमपनीयमानग्रहमपरमेव कंचिदनन्यजनसाध्यमाधिमुत्पादयति मनस्विनीनाम् ॥ आ० ४। पृ० ५५ ॥

यशोधर के स्नेह से अतृप्त अमृतमति की मानसिक स्थिति का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्र सोमदेव ने प्रस्तुत किया है, जिससे उसके अन्तःचरित्र की सूक्ष्म झांकी भी मिल जाती है। प्रणय के सम्बन्ध में अमृतमति के तर्क उसके स्वैरिणीपन को ही प्रकट करते हैं:—

कुलवधूनां ह्ययमन्यश्च देवद्विजाग्निसमक्षं मातापितृविक्रीतस्य कायस्यैव भवतीश्वरः न मनसः। तस्य पुनः स एव स्वामी यत्रायमसाधारणः प्रवर्तते परं विश्रम्भविश्रमाश्रयः प्रणयः। आ० ४। पृ० १४१ ॥

अपने चरित्र की दुर्बलता को छिपाने एवं उचित सिद्ध करने के लिये यह अनेक दृष्टान्त ढूंढ निकालती है। वह कहती है कि गंगा ने शिव को, राधा ने कृष्ण को, तारा ने चन्द्रमा को और सुग्रीव-पत्नी तारा ने बालि को स्नेह-दान किया ही था। एक पक्षीय स्नेह दो हृदयों को उसी प्रकार नहीं मिला सकता जिस प्रकार दो तप्त-अतप्त अयःखण्ड आपस में नहीं मिल सकते:—

महासत्त्वेषु हि जगति न किंचिद्दुष्करमस्ति, अन्यत्र विरक्ते चेतसि रागप्रत्यानयनात् । को हि नामायःपिण्ड इव तप्तातप्ते मनसी संधातुमर्हति ॥ आ० ४ । पृ० १४२ ॥

अमृतमति ने यशोधर को संकेत भी कर दिया है कि केवल बुद्धिमान पुरुष ही ईर्ष्यामुक्त होकर स्त्री के साथ प्रसन्न रह सकता है अन्यथा कृत्या के उपासक की भांति वह अपने जीवन को खतरे में ही डालेगा ।

किं च परमकुहन एव पुरंध्रीषु बुद्धिमानवाप्नोति श्वःश्रेयसम् । अन्यथा कृत्याराधक इव ध्रुवं पंचजनः पंचतामं चेत् । भवेद् वावश्यमञ्जिगतः ॥ आ०४।पृ० १४२ ॥

अमृतमति के द्वारा दी गई मुक्त-प्रेम की दुहाई उसके चरित्र एवं मानसिक स्तर की निम्नता ही सूचित करती है । एक युवराज की माता होकर भी इस प्रकार का चिन्तन उसके मातृत्व तथा पत्नीत्व दोनों के लिये कलंक है । अपने वैवाहिक एवं गृहस्थ जीवन की विफलता का मुख्य दोष मानो वह स्वयं स्वीकार कर लेती है ।

अमृतमति अपने कपटपूर्ण आचरण के प्रति ही नहीं सजग है अपितु वह इसके लौकिक परिणामों को समाप्त कर देने के लिए भी प्रयत्नशील है । वह शीघ्र ही समझ लेती है कि यशोधर का स्वप्न-वैराग्य तथा राज्य-त्याग का निश्चय एक छलमात्र है और यशोधर केवल इस प्रकार से उसे दण्ड देना चाहता है :—

न खलु मे यामिनीसमाचरितसाहसादस्य वसुमतीपतेरपरमेवंविधकूटकपटानुष्ठानमस्ति । तदेष यावन्न मयि रोषविषं वर्षति तावदहमेवास्य तद्वर्षामि ॥ आ० ४ पृ० १४२ ॥

ऐसे निर्णय के पीछे यशोधर के प्रति उसका घोर अविश्वास छिपा हुआ है । अमृतमति ने छल का जो आवरण अपने नेत्रों पर चढ़ा रखा था उसी के कारण यशोधर उसे धूर्त और मायावी प्रतीत हो रहा था । उसका निर्णय अपने पति के प्रति क्रूरतम है । अपने ही भय के भूत से पीड़ित वह मूर्ख नहीं बनना चाहती :—

धूर्तेषु मायाविषु दुर्जनेषु स्वार्थैकनिष्ठेषु विमानितेषु वर्तेत यः साधुतया स लोके प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन ॥ आ० ४ । पृ० १४५ ॥

यशोधर की निरीह उदार प्रवृत्ति को देखते हुये आत्मरक्षा के लिए प्रस्तुत अमृतमति के तर्क निस्सार प्रतीत होते हैं । वे तर्क नैतिक दृष्टि से भी हीन हैं । अपराधिनी स्त्रियों के प्रति पाठकों की सहानुभूति अर्जित करने में वह पूर्णतः असफल रही है ।

सोमदेव ने अमृतमति के पापों का परिणाम दो प्रकार से दिखलाया है। इस लोक में वह कुष्ठ रोग से पीड़ित हो जाती है तथा मृत्यु के उपरान्त वह पंचम नरक में पड़ कर यातना सहती है। ये दोनों अंश सूच्य प्रतीत होते हैं क्योंकि यशोधर की मृत्यु के उपरान्त अमृतमति के वर्णन को कवि ने बहुत कम स्थान दिया है। हरिभद्र की तरह सोमदेव ने अमृतमति के अपूर्व-सौन्दर्य तथा विकृत रूप की तुलना नहीं की है। कुष्ठ रोगोपरान्त भी वह मांस-भक्षण करती है, जैन धर्म के विपरीत आचरण वाली बनी रहती है। पाप का फल बुरा होता है, इसके चित्रण के लिए ही सोमदेव ने अमृतमति को एक पतिता रानी, हीन माता तथा विश्वासघातिनी पत्नी के रंग में रंग दिया है।

यशोमति :—

यशोधर का पुत्र यशोमति अभयरुचि और अभयमति का पिता है। एक मध्ययुगीन राजा की भांति इसके भी वैभव, विलास और आखेट आदि का वर्णन किया गया है। मुनि सुदत्त के प्रति उसकी क्रूर भावनायें उसकी निष्ठुरता की प्रतीक हैं। आखेट-प्रिय होने के कारण अनेक प्राणियों सहित उसने जन्मान्तर-प्राप्त अपने माता-पिता की भी हत्या की है। मुनि सुदत्त से अपने माता-पिता की जन्मान्तर-कथा को सुनकर उसे संसार से विरक्ति होती है। वस्तुतः मारिदत्त एवं यशोमति के चरित्र में बहुत कुछ साम्य है, यदि अन्तर है तो केवल मात्रा का। दोनों राजाओं का जीवनक्रम एक सा है :—दोनों हिंसक हैं—एक सी ही कथा दोनों को वैराग्य की ओर उन्मुख करती है तथा दोनों के ही पथ-प्रदर्शन और दीक्षागुरु मुनि सुदत्त हैं॥

अन्य पात्र :—

वैसे तो यशोधर चरित में (यशस्तिलक में) दर्जनों कवि, वैतालिक, सेवक, सहचर आदि पात्र रूप में सन्निविष्ट हैं परन्तु दो ऐसे पात्र हैं जिनके माध्यम से कवि ने कतिपय उद्देश्यों की सिद्धि की है। सोमदेव राष्ट्रकूट दरबार से सम्बन्धित थे अत; अपने राजनीतिक ज्ञान की अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने शंखनक नामक चर को माध्यम बनाया है। शंखनक के सभी कथन नीतिज्ञता से सम्पन्न हैं :—

चारो यस्य विचारश्च राज्ञो नास्तीक्षणद्वयम्।
तस्यान्धदुग्धवद्राज्यं मन्त्रिमार्जारगोचरम् ॥ आ० ३।१७३ ॥

केवलं प्रभुशक्तिपेशलत्वं महत्त्वमेव महीपतेः सत्पुरुषसंपदः कारणम्, यतः अधनस्यापि महीशो महीयशो भवति भृत्य-सम्पत्तिः।

शुष्कस्यापि हि सरसः पालितले पादपविभूतिः ॥ आ० ३।१९८ ॥

दुर्योधनः समर्थोऽपि दुर्मन्त्री प्रलयं गतः।
राज्यमेकशरोऽप्याप सन्मन्त्री चन्द्रगुप्तकः॥ आ० ३।२४२॥

दूसरा पात्र चाण्डाल चण्डकर्मन् है। इसके माध्यम से कवि ने जैन मुनियों के प्रति आदरभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। वह पूर्वजन्म में गन्धर्व था। एक मुनि मन्मथमथन का अपमान करने के कारण वह चाण्डालत्व को प्राप्त हुआ है। मुनि सुदत्त के दर्शन से वह पुनः गन्धर्व-पद प्राप्त करता है। मुनियों का आदर और निरादर करने से उत्पन्न परिणामों की ओर ध्यान आकृष्ट करना ही यशस्तिलक में चण्डकर्मन् की उपस्थिति का उद्देश्य है।

यशोमति की पत्नी कुसुमावली का चरित्र सामने नहीं आया है। कवि और वैतालिक, सेनापति और मन्त्री आदि राजा की प्रसन्नता तथा कार्यसिद्धि के साधन-रूप में सामने आये हैं। इनका निजी व्यक्तित्व नहीं निखर सका है।

नायक-विमर्श :—

सोमदेव ने यशस्तिलक के प्रत्येक आश्वास के उपसंहार वाक्य में इस काव्य के दो नाम दिये हैं : यशोधर महाराज चरित तथा यशस्तिलक महाकाव्य :-(श्री सोमदेव सूरिणा विरचिते यशोधर महाराज चरिते यशस्तिलकापरनाम्नि महाकाव्ये कथावतारो नाम प्रथम आश्वासः)। अतः कवि की दृष्टि में इस काव्य की मुख्य कथा यशोधर चरित है। प्रथम आश्वास में मारिदत्त की कथा आरम्भ होती है। द्वितीय से पञ्चम आश्वास तक यशोधर का चरित वर्णित है। छठे से आठवें आश्वास तक मारिदत्त द्वारा मुनि सुदत्त से उपदेश-ग्रहण तथा दीक्षा लेना वर्णित है। अतः चार आश्वासों में मारिदत्त का तथा चार आश्वासों में यशोधर का चरित प्रस्तुत किया गया है। प्रथम आश्वास को सोमदेव ने कथावतार कह कर मारिदत्त की कथा को भूमिका या पूर्वपीठिका का रूप दे दिया है। यशोधर चरित का वक्ता अभयरुचि तथा श्रोता मारिदत्त बन जाता है। मारिदत्त का जैनधर्म में दीक्षित होना कथा-श्रवण का फ़ल बन गया है। उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सोमदेव ने एक पौराणिक कथा को पौराणिक रीति से ही प्रस्तुत किया है। **द्वितीय से पञ्चम आश्वास तक वर्णित यशोधर का चरित ही कवि की दृष्टि में मुख्य कथावस्तु है तथा इस कथा का नायक स्पष्ट रूप में यशोधर है।** यशोधर के निजी जीवन की किसी भी घटना से मारिदत्त का सम्बन्ध नहीं है। वह कथा का श्रोता मात्र है तथा यशोधर के अन्तिम मानव-जन्म में उसका मामा है।

यशोधर कुलीन है, राजा है, वीर है, विलासी है, पर नायक के उच्चतम गुणों और आदर्शों से सम्पन्न है। विविध जन्मों में उसकी जैसी दुर्दशा कराई गई है

उससे भी उसके नायकत्व को ठेस पहुँची है। अभयरुचि के रूप में जो चारित्रिक श्रेष्ठता उसमें आई है उससे उसकी कुछ प्रतिष्ठा-रक्षा हो गई है पर मारिदत्त की कथा को भूमिका मान लेने पर अभयरुचि का कार्य मुख्य कथा से असम्बद्ध हो जाता है। यशोधर और मारिदत्त की दो भिन्न भिन्न कथाओं के समन्वय के कारण इन दोनों के चरित्र परस्पर प्रतिस्पर्धी बन जाते हैं। यशोधर की अपेक्षा मारिदत्त का चरित्र अधिक उत्कृष्ट बन गया है। मारिदत्त का व्यक्तित्व उभरा है किन्तु यशोधर का चरित्र सोमदेव की लेखनी का खिलौना बन गया है। मारिदत्त आरम्भ में भी सबल है और अन्त में भी। यशोधर आरम्भ से ही दुर्बल है और अभयरुचि क्षुल्लक के रूप में भी वह मारिदत्त के परिवर्तित जीवन से आगे बढ़ा हुआ नहीं दिखाई पड़ता।

कवि ने यद्यपि मारिदत्त की कथा को पूर्वपीठिका के रूप में प्रस्तुत किया है फिर भी वह अपने आप में एक पूर्ण कथा है। जिस प्रकार मारिदत्त की कथा मुख्य यशोधर-कथा की पोषक है उसी प्रकार मुख्य-कथा मारिदत्त-कथा की पोषक है। मारिदत्त की मनःस्थिति के परिवर्तन में वह साधक बन जाती है। हिंसा से मारिदत्त की विरति इस कथा को सुन लेने पर ही होती है। मारिदत्त अपनी इस कथा का स्वयं सबल नायक है। उसकी कथा और उसका चरित्र दोनों ही यशोधर की कथा और उसके चरित्र से सबल हैं। यशोधर कई जन्मों में जिस कल्याण-पथ को नहीं प्राप्त कर पाता उसे मारिदत्त एक ही जन्म में प्राप्त कर लेता है यद्यपि वह यशोधर से अधिक क्रूर तथा हिंसक है।

यशोधर की कथा को मुख्यता देने पर वह एक पौराणिक कथा का रूप ग्रहण कर लेती है, जिसका वक्ता अभयरुचि, श्रोता मारिदत्त एवं उपस्थित व्यक्ति हैं। कथाश्रवण का फल है, मारिदत्त की हिंसा से विरति तथा सभासदों सहित जैनधर्म ग्रहण। मारिदत्त की कथा को मुख्यता देने पर वह एक अत्यन्त क्रूर तथा हिंसक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति की मनःस्थिति के परिवर्तन को चित्रित करने वाली मनोवैज्ञानिक कथा बन जाती है। सोमदेव की कुशलता इन दोनों कथाओं को एक ही उद्देश्य-सूत्र में सफलतापूर्वक गूँथ देने में दिखाई पड़ती है।

यशस्तिलक चम्पू का काव्य-सौन्दर्य

सोमदेव ने जब यशस्तिलक चम्पू काव्य की रचना की उस समय उनके सामने संस्कृत और प्राकृत का विशाल साहित्य-भण्डार खुला पड़ा था। एक से एक उत्तम जगमगाते रत्न उन्हें दिखाई पड़े, अतः स्वाभाविक ही था कि काव्य-रचना के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के उपरान्त ही अपना काव्य-रत्न वह उस विशाल भण्डार में सम्मिलित करते। काव्य के आरम्भ में ही उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है।

कवि का दृष्टिकोण :—

सोमदेव ने पूर्ववर्ती कवियों के महत्व को बड़ी विनम्रता के साथ स्वीकार किया है, किन्तु साथ ही वह मानते हैं कि बौद्धिक-प्रतिभा किसी व्यक्ति-विशेष की वस्तु नहीं है। अनेकों काव्यों के विद्यमान रहते हुये भी किसी भी युग में उत्तम और श्रेष्ठ काव्य की रचना हो सकती है :—

सर्वज्ञकल्पैः कविभिः पुरातनैरवीक्षितं वस्तु किमस्ति सम्प्रति ।
ऐदंयुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि प्रवक्ति यत्तत्सदृशं स विस्मयः ॥१।११॥

किसी भी दो कवि की कल्पना की उड़ान एवं भावाभिव्यक्ति में सादृश्य हो सकता है। यदि परवर्ती कवि पूर्ववर्ती कवि की रचना को देखे बिना तत्सदृश भावोक्ति प्रस्तुत करता है तो उसे हीन नहीं माना जा सकता परन्तु यदि वह काव्य-ग्रन्थ सामने रख कर उसके सदृश या उससे भिन्न भाव अभिव्यक्त करे तो वह न केवल भावापहर्ता चोर है अपितु पातकी भी है :—

कृतीः परेषामविलोकमानस्तदुक्तिवक्तापि कविर्न हीनः ।
कृतेक्षणो राजपथेन सम्यक् प्रयानिव प्रत्युत विस्मयाय ॥ १।१२ ॥
कृत्वा कृतीन् पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यादरं ताः पुनरीक्षमाणः ।
तथैव जल्पेदथ योऽन्यथा वा स काव्यचोरोस्तु च पातकी च ॥१।१३॥

यशस्तिलक चम्पू काव्य है अतः इसमें गद्य-पद्य-मिश्रित-शैली का उपयोग हुआ है। सोमदेव की दृष्टि में गद्य और पद्य तो अभिव्यक्ति की शैलियां मात्र हैं, काव्य के मुख्य तत्व तो वे अनुभूतियां हैं जो स्वसंवेद्य होती हैं और जिन्हें अभिव्यक्ति दी जाती है।

न गद्यं पद्यमिति वा सतां कुर्वीत गौरवम् ।
किं तु किंचित्स्वसंवेद्यमन्यत्सुखमिव स्त्रियाः ॥ १।२४ ॥

सुन्दर और मार्मिक अनुभूतियां जब कवि की वाणी से निस्सृत होती हैं तो उनमें अपूर्वता आ ही जाती है :—

त एव कवयो लोके येषां वचनगोचरः ।
सपूर्वो पूर्वतामर्थो यात्यपूर्वः सपूर्वताम् ॥ १।२५ ॥

वाणी और उसमें निहित अर्थ तो सभी कवियों के लिए समान आश्रय हैं, किन्तु प्रत्येक कवि की निजी क्षमता ही उसे अन्य कवियों से पृथक् कर देती है (१।१९)। काव्य के उपकरण छन्द, अलंकारादि तीर्थ-मार्ग के सदृश सबके लिए समान रूप से मुक्त हैं (१।२०), किन्तु वाणी का वैशिष्ट्य ही कवि की अतिशयता का साधन है :—

वाच एव विशिष्टानामनन्यसमवृत्तयः ।
स्वस्यातिशयिनं हेतुमाहुः कान्ता-लता इव ॥ १।१८ ॥

एक सुकवि की वाणी सभी प्राणियों को आनन्द से रोमांचित कर देने की क्षमता रखती है (१।२६)। सोमदेव ने काव्य का सच्चा परीक्षक पाठकों को ही माना है :—

अवक्तापि स्वयं लोकः कामं काव्य-परीक्षकः ।
रसपाकानभिज्ञोपि भोक्ता वेत्ति न किं रसम् ॥ १।२९ ॥

पाठक वह है जो ईर्ष्या-भाव से मुक्त हो कर काव्य के रसास्वादन को महत्व दें :—

गुणेषु ये दोषमनीषयान्धा दोषान्गुणीकर्तुमथेशते वा ।
श्रोतुं कवीनां वचनं न तेऽर्हाः सरस्वतीद्रोहिषु को धिकारः ॥१।३८॥

प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु केवल मनोरंजन की दृष्टि से नहीं ग्रहण की जानी चाहिए, उसमें दोषों के प्रक्षालन की क्षमता भी होनी चाहिये :—

काव्यकथासु त एव हि कर्तव्याः साक्षिणः समुद्रसमाः ।
गुणगणमन्तर्निदधति दोषमलं ये बहिश्च कुर्वन्ति ॥ १।३६ ॥

काव्य के सम्बन्ध में अपने सामान्य दृष्टिकोण को स्पष्ट करते समय कवि सोमदेव ने बीच बीच में अपने इस यशस्तिलक काव्य के सम्बन्ध में भी निम्न-लिखित पंक्तियां दी हैं :—

असहायमनादर्शं रत्नं रत्नाकरादिव ।
मत्तः काव्यमिदं जातं सतां हृदयमण्डनम् ॥ १।१४ ॥
उक्तयः कविताकान्ताः सूक्तयोऽवसरोचिताः ।
युक्तयः सर्वशास्त्रान्तास्तस्य यस्यात्र कौतुकम् ॥ १।१५ ॥
दुर्जनानां विनोदाय बुधानां मतिजन्मने ।
मध्यस्थानां न मौनाय मन्ये काव्यमिदं भवेत् ॥ १।२२ ॥
आजन्मसमभ्यस्ताच्छुष्कात्तर्कात्तृणादिव ममास्याः ।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यैः ॥ १।१७ ॥

वर्णन-सौन्दर्य और पूर्ववर्ती गद्य-काव्यों का प्रभाव :—

सोमदेव अपने पूर्ववर्ती कवियों से सर्वथा अप्रभावित हैं। यह उनके काव्य से सिद्ध नहीं होता। सोमदेव के पूर्व-वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी आदि प्रमुख गद्य-काव्यों का निर्माण हो चुका था। वह इन प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचनाओं से अपरिचित रहे हों, यह उन जैसे विद्वान् के लिये असम्भव प्रतीत होता है। किसी

कवि पर पूर्ववर्ती रचनाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इन रचनाओं की उपस्थिति कवि-प्रतिभा के लिये एक चुनौती भी होती है, जिसे स्वीकार कर एक उच्चकोटि का कवि और भी उत्तम काव्य के सृजन में प्रवृत्त होता है। सोमदेव भावापहर्ता को स्वयं चोर और पातकी समझते हैं (१।१२-१३), फिर वह इसी कार्य में क्यों प्रवृत्त होंगे। अनुकरण की रुचि न रखते हुये भी प्रायः सभी संस्कृत-काव्य-निर्माताओं को एक बंधी हुई परम्परा का पालन करना पड़ा है, अपने काव्य को प्रतिष्ठा दिलाने के लिये यह आवश्यक था कि वह लक्षण-ग्रन्थों में निर्दिष्ट काव्य-रीति का पालन करे, फलतः न केवल वर्णन-क्रम अपितु वर्ण्य-विषय में भी साम्य उपलब्ध हो जाता है। यशस्तिलक चम्पू इसका अपवाद नहीं है।

कथावस्तु का संगठन :—

सोमदेव ने कथावस्तु को प्रस्तुत करने का जो क्रम रखा है वह क्रम भी कादम्बरी के क्रम से प्रभावित है। कादम्बरी में शूद्रक और शुक की कथा पूर्व-पीठिका के रूप में ही प्रस्तुत की गई है, सोमदेव ने मारिदत्त की कथा को पूर्वपीठिका के रूप में रखा है। कादम्बरी की भांति ही अन्तर्कथाओं का समावेश किया गया है। कादम्बरी भी जन्मान्तर कथाओं से संश्लिष्ट है, यह चम्पू काव्य भी। कथा की समाप्ति पर जिस प्रकार कादम्बरी के पात्र जन्मान्तर-ज्ञान के उपरान्त अन्य जन्मों के पात्र से अपने को सम्बद्ध कर लेते हैं उसी प्रकार यशस्तिलक के पात्र।

वस्तु-वर्णन का क्रम भी प्रायः एक सा है। यशस्तिलक में सोमदेव का वर्णन-क्रम है :—यौधेय जनपद, उसके ग्राम, राजपुर नगर, राजा मारिदत्त, उसकी दैनिक-चर्या विलास-क्रीडा (प्रमदवन में रमण-जलक्रीडा आदि), प्रातः-मध्याह्न-सायं के कार्य, कथारम्भ, चण्डमारि देवता के समीप यात्रा, वहाँ का दृश्य तथा मुनि कुमार का आगमन। प्रथम आश्वास के इस वर्णनक्रम के बाद द्वितीय आश्वास में मूलकथा आरम्भ होती है। थोड़े से परिवर्तन के साथ यशोर्घ और यशोधर के वर्णन में इसी क्रम की पुनरावृत्ति हुई है। शूद्रक के वर्णन के बाद तारापीड और चन्द्रापीड के वर्णन में भी यही स्थिति है।

वर्णन-सादृश्य होते हुये भी यशस्तिलक की कथावस्तु कादम्बरी और वासवदत्ता से सर्वथा भिन्न है। उनकी तरह यह प्रणय-कथा मात्र नहीं है, इसमें धार्मिक विचारों को प्रमुखता दी गई है। प्रणय-वासना जन्मान्तर में भी चलती है इसका निदर्शन कादम्बरी की कथा करती है। यशस्तिलक में जन्मान्तर तक चलने वाली अनेक दुर्बलताओं तथा मानसिक-विकृतियों के संस्कारों की महत्ता प्रदर्शित की गई है।

बाण ने कादम्बरी की कथावस्तु को अतिलौकिक बना दिया है। गद्यचिन्तामणि (१०वीं श०) तक अनेक गद्यकाव्यों की कथावस्तु में यह दोष विद्यमान है। वस्तु और चरित्र, दोनों को कौतूहलपूर्ण तथा अद्‌भुत बनाने के फेर में उन्हें अतिलौकिक एवं अतिमानवीय कर दिया गया है। इसके सर्वथा विपरीत यशस्तिलक की रचना गृहस्थ-जीवन की यथार्थ पृष्ठभूमि पर हुई है। कुछ दृष्टान्तार्थ प्रस्तुत लघुकथाओं (आ० ६-७) एवं मुनि सुदत्त के चरित्र को छोड़ कर प्रायः सारी कथा तथा पात्र मानवी हैं। मानव की मूर्खताओं तथा उसके द्वारा की जाने वाली हत्याओं का याथातथ्य वर्णन इसमें प्रस्तुत किया गया है। अनेक गद्यकाव्यों तथा चम्पूकाव्यों में यशस्तिलक चम्पू ही एक ऐसा काव्य-ग्रन्थ है जो अत्यन्त मार्मिक एवं करुण-कथा को आधार बना कर लिखा गया है।

वर्णन-साम्य-वैषम्य :—

सोमदेव निश्चित रूप से बाण एवं उनकी कादम्बरी से परिचित थे। उन्होंने चतुर्थ आश्वास में—**आहारः साधुजननिन्दितो मधुमांसादिरिति कथं चेदं मृगयोपयोगानन्दं शबरवृन्दं निन्दितमादिबाणेन**—कह कर यह सूचित कर दिया है कि वह कादम्बरी और उसके शबर सैन्य वर्णन से परिचित हैं। इसी प्रकार सोमदेव ने पंचम आश्वास में जो वन-वर्णन प्रस्तुत किया है वह वासवदत्ता के (पृ० २२८-२३८) वनवर्णन से बहुत साम्य रखता है। काव्य के लिये निर्धारित—ऋतु, सन्ध्या, प्रभात, वन, पर्वत, राजा, देश आदि—रूढिगत वर्ण्य-विषय तो यशस्तिलक में भी हैं किन्तु सोमदेव ने इस बात की चेष्टा की है कि इनमें भी नवीनता बनी रहे। उदाहरण के लिये मधुमास के वर्णन में बकुल एवं कोकिल का समावेश आवश्यक है। निम्नलिखित उद्धरण वर्णन के अन्तर को स्पष्ट करते हैं :—

—मधुमदमुदितकामिनीमुखकमलगण्डूषशीधुसेकपुलकितबकुलः····—वासवदत्ता, पृष्ठ ११२

—कामिनीमुखमदिरोन्मादितबकुलकाननेषु···—यशस्तिलक, आ० १, मारि० वि०

—उन्मदकोकिलकुलकलालापकोलाहलिभिः···—कादम्बरी, पू० मा० पृ० ११४

—कान्तारकुहरविहरत्कोकिलकुलकोलाहलोत्थापितानंगव्यालव्याकुलितकामुकेषु···—यश० वहीं।

वर्णन-साम्य एवं वर्णन-वैषम्य के लिये निम्नलिखित स्थल तुलनीय बन सकते हैं :—

१. राजा मारिदत्त, यशोर्घ एवं यशोधर का वर्णन—क्रमशः कादम्बरी के

शूद्रक, तारापीड, एवं चन्द्रापीड के वर्णनों से। ये सभी वर्णन समान रूप से अतिशयोक्तिपूर्ण हैं !

२. मुनि सुदत्त का वर्णन—जाबालि के वर्णन से

३. प्रमदवन का वर्णन—महाश्वेता के शिव-मन्दिरोद्यान वर्णन से

४. सुवेल पर्वत के महावृक्ष का वर्णन—कादम्बरी के शाल्मलि-वर्णन से

५. वन-वर्णन—वासवदत्ता के जलनिधितीरस्थ वनवर्णन से

६. यशोर्घ एवं शंखनक द्वारा यशोधर को दिये गये उपदेशों की तुलना शुकनासोपदेश से की जा सकती है।

७, यशस्तिलक में वर्णित चतुर्दश सम्प्रदायोत्पत्ति का—कादम्बरी के इसी प्रकार के वर्णन से।

८. कादम्बरी, हर्षचरित एवं वासवदत्ता में जिस प्रकार के चित्रमय नाम मिलते हैं उसी प्रकार के नाम यशस्तिलक में भी :—

—कुरंगिके कल्पय कुरंगशावकेभ्यः शष्पांकुरम्, किशोरिके कारय किशोरप्रत्यवेक्षाम्, तरलिके तरलय कृष्णागुरुधूमपटलम्। कर्पूरिके पाण्डुरय कर्पूरधूलिभिः पयोधरभारम्। मातंगिके मानय मातंगशिशुयाचनाम्। शशिलेखे विलिख ललाटपट्टे शशिलेखाम्। केतकिके संकेतय केतकीमंडपे दोहदम्...

वासवदत्ता–पृष्ठ २०३–२०६

—हले व्यलीकविलासव्यसनिनि वासन्तिके कृतं किं तव किंवदन्तीभिः अविलम्बं यतस्व बकुलमुकुलावलिविरचनेषु, अंगे निरर्गलगते लवंगि मा गाः सखिभिः सह संगम्। अकालक्षेपं दक्षस्व रंगवल्लिप्रदानेषु। अयि प्रमादिनि मदने किमद्यापि निद्रायसि, द्रुतमाद्रियस्वारतीयप्रगुणतायाम्। अयि कुरंगि किमकाण्डमितस्ततो हिण्डसे। अचिराय त्वरस्व देवस्यांगरागसम्पादनेषु...।

यशस्तिलक आ० २ पृष्ठ ३४९-३५२ ॥

उक्त नामों के अतिरिक्त वासवदत्ता में जो और सम्बोधन के लिये नाम हैं वे हैं :—मदनमालिनि, शकुनिके, मदनमंजरि, शृंगारमंजरि, संजीवनिके, पल्लविके, सहकारमंजरि, मदनलेखे, मकरिके, विलासवति, तमालिके, कांचनिके, प्रवालिके आदि।

इसी प्रकार यशस्तिलक में मालति, कलहंसि आदि और अनेक नाम हैं। सोमदेव ने आरम्भ में नामों के पूर्व विशेषणों का प्रयोग किया है किन्तु गतिशीलता और त्वरा लाने के लिए वर्णन के मध्य में ही विशेषणों का प्रयोग छोड़ दिया गया है:—

—कुब्ज न्युब्ज शुभाशय विशिष्टासु चेष्टासु। वामन आमन सरभसरसक्रीडाः क्रीडाः।

पूर्ववर्ती गद्यकाव्यों से यशस्तिलक के वर्णन में वैशिष्ट्य लाने के लिये उन्होंने पशु-पक्षियों को भी स्वागतकार्य्य में सम्मिलित कर लिया है :—

शुक ! पाकलसोत्कण्ठमुत्कण्ठस्व भोगावलीपाठेषु । सारिके ! प्रमोदाधिकं कीर्तय मंगलानि । हंसि ! कुतो न हंसि रसितुं न हंसि निराबाधावकाशम् ।··· विजय-कुंजर ! उदाहरशुभोचितानि इंगितानि । जय हय । सुघोषं हेषस्व ।

यश० पृष्ठ ३५१-३५२ ॥

बाण ने भी कादम्बरी में (पृ० २५४-२५८) भी चन्द्रापीड़ के दर्शनों के लिए उत्सुक स्त्रियों के—त्वरितगमने-मूढ़े-मदनान्धे-अहृदये-यौवनोन्मत्त-अलीकमुग्धे आदि—चित्रमय नाम प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार के चित्रमय सम्बोधन हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास में राज्यश्री के विलाप के अवसर (पृ० ४३२-४३५) पर देखे जा सकते हैं।

रूप चित्रण :—

कादम्बरी और वासवदत्ता सहित अन्य गद्यकाव्यों में पुरुषों के रूपचित्रण के साथ साथ स्त्रियों का नखशिख और रूपचित्रण भी उपलब्ध होता है परन्तु सोमदेव ने पुरुषों का रूपचित्रण तो किया है परन्तु चेलिनी की वधुओं एवं पुष्पदन्त की स्त्री के साधारण रूपचित्रण को छोड़ कर अन्य स्त्री-पात्रों का रूप-चित्रण नहीं किया है। अवसर आने पर दो चार विशेषणों के द्वारा ही उन्हें चलता कर दिया है। जैन सन्त होने के कारण–स्त्रियः खलेषु रज्यन्ते दासहस्तिपकादिषु (यश० ४।७७)–को मान्यता देते हुए उन्होंने ऐसे वर्णनों की उपेक्षा की है। मारिदत्त (प्र० आ०), यशोर्घ (द्वि० आ०) एवं मुनि सुदत्त (पं०आ०) के रूपचित्रण में भी परम्परा का पालन मात्र हुआ है। सोमदेव ने जहां रूपचित्रण पर ध्यान दिया है, वे स्थल अत्यन्त उत्कृष्ट बन गए हैं।

(१) महाभैरव मन्दिर की बलिग्राहिणी चण्डमारि देवी का रूपचित्रण कवि की सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति का सबल प्रतीक है :—

यस्याः कपालमालाः शिखण्डमण्डनानि, शवशिशवः श्रवणावतंसाः, प्रमितप्रकोष्ठाः कर्णकुण्डलानि, परेतकीकसमणयः कण्ठभूषणानि, परासुनलरसाः शरीरवर्णकानि, गतजीवितकरंकाः करक्रीडाकमलानि, सीधुसिन्धवः सन्ध्याचमनकुलयाः, पितृवनानि विहारभूमयः, चिताभसितानि चन्द्रकवलाः··· जलकेलयः शोणितदीर्घिकाभिः··· महान्ति दोहदानि च सर्वसत्त्वोपहारेण ।

यश० प्र० आ० पृ० १५० ॥

(२) चण्डमारि के अतिरिक्त महायोगिनियों का भी रोमांचकारी रूपचित्रण हुआ है :—

गतिवेगविगलज्जटाजालाक्षिप्यमाणमहाग्रहग्राहव्योमरुषितगगनगामिलोकाभिः, परस्परसंघट्टस्फुटत्खट्वांगकोटिघटितघंटाटंकृताकर्णनावतीर्णनटन्नादजनितवैलक्ष्याभिः, कंदर्पनिर्दयसंमर्दनिर्मोदालगर्दगलगुहास्फुरत्फूत्कारस्फारितललाटलोचनानलज्वालाम्लपितादितिसुतनिकेतनपताकाभोगाभिः, शिखण्डमण्डनोड्डमरनरशिरःश्रेणिपर्यन्तभ्रान्तप्रवृद्धगृद्धनिरुद्धव्रध्नदीधितिप्रबन्धाभिः श्रवणभूषणभुजंगजिह्वालिह्यमानकपोलतललिखितरक्तपत्त्राभिः ... सकलस्य जगतः क्षयक्षपाभिरिवातिदारुणदीर्घदेहाभिः महायोगिनिभिः आपूर्यमाणपरिसरम् ॥

यश० प्र० आ० पृ० १५३ ॥

(३) उज्जयिनी के राजपथ पर विचरण करते हुये यशोधर के एक चर का चित्रण भी अत्यन्त विचित्र हुआ है—

कृतकार्धचन्द्रचुम्बितचन्द्रकापीडविडम्बितमुण्डमण्डलः, तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृतिजातुषोत्कर्षितकर्णकुण्डलः, कार्मणानेकजटाजातिजटितकण्ठिकावगुण्ठनजठरकण्ठनालः चिरचेलचीरीचर्चितविचित्राप्रपदीनप्रालम्बजातः ... ॥

यश० तृ० आ० पृ० ३९७ ॥

किरातार्जुनीय के किरातवेशधारी शिव के रूपचित्रण के साथ इसकी तुलना की जा सकती है ।

(४) दीनता और कुरूपता का एकत्र दर्शन हस्तिपाल के रूपचित्रण में प्राप्त होता है :—

कटंकरकुटीरके करिकवलावशिष्टयवप्रस्तरिणि, अवगुंठितरज्जुपुंजपरिकल्पितशिरस्पदे निद्रायन्तम्, इभाभ्यंगकर्पटपिहितलज्जास्थानम्, अतिकठिनकचकण्टकोड्डमरमुण्डमण्डलम् ... असमस्थापितवराटकविकटदन्तम् , अजश्मश्रुदुर्दर्शचिबुकमध्यम्, अनिलभृतभस्त्राध्मातजठरम् ... अघसंघातमिव दुर्निरीक्ष्यम्, अमंगलस्थानमिव नितरामुद्वेजनीयम्, अखिलवैरूप्यमवचित्य वेधसा निष्पादितम् ॥

यश० च० आ० पृ० ४२ ॥

(५) सोमदेव ने केवल व्यक्तियों का ही रूपचित्रण किया हो, ऐसा नहीं है, उन्होंने पशु-पक्षियों के वर्णन में भी चित्रात्मकता प्रस्तुत की है । पंचम आश्वास में इस प्रकार के कई वर्णन हैं (द्रष्टव्य-करहाट की पशुशाला पृ० १८४ तथा वनवर्णन के समय पशुओंका वर्णन पृ० १९८)

प्रकृति-चित्रण तथा वातावरण का चित्रण :—

सोमदेव ने प्रकृति के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं परन्तु इन चित्रों में कोई नवीनता नहीं है । सन्ध्या सूर्योदयादि का वर्णन पारम्परिक ही है । प्रमदवन के

वर्णन में सोमदेव भी कोई नवीन आकर्षण नहीं उत्पन्न कर सके हैं। वन-वर्णन के समय पशुओं का वर्णन, सिप्रा-सौन्दर्य का वर्णन (आ० ५ पृ० २०८) आदि कुछ मनोरम स्थल अवश्य हैं। ऋतु-वर्णन भी रूढिग्रस्त है।

अनुकूल वातावरण के सृजन में सोमदेव की कुशलता अवश्य आगे बढ़ी हुई है। चण्डमारि देवतायतन के वातावरण का प्रस्तुतीकरण उदाहरण के लिये देखा जा सकता है :—

—क्वचित्प्रनृत्यदुत्तरलतालवेतालकुलविडम्ब्यमानडाकिनीताण्डवाम्बरम्, क्वचित्करोड्डमरडमरुकरवलयखेलत्कपालिनी त्रिशूलवल्गननिर्भिन्नद्रवदुत्तंसचन्द्रामृतपानपरचकोरकामिनीकर्बुरीक्रियमाणककुभाभोगम्, क्वचिच्छार्दूलदानववदनविदूयमानचिरच्छिन्नच्छगलगलजालजटिलतोरणमालम्, क्वचित्पुरुदंशोनिशाखरनखरशिखोल्लिख्यमानाश्यानशोणितदत्तभित्तिपंचाङ्गुलम्, क्वचिदखर्वगर्वोद्गूर्णगोमायुनैकषेयजुष्यमाणपानपात्रासवनिपकर्परम्, क्वचित्साधकलोकनिजशिरोदह्यमानगुग्गुलरसम्, क्वचिन्नरव्यालप्रबोधितरवीयशिरावलिप्रदीपम्, क्वचिन्महासाहसिकात्मरुधिरधारापानप्रसाद्यमानरुद्रम्...समस्तसत्त्वसंहारायतनं देवतायतनम् ॥ प्र० आ० ॥

रौद्ररूप, वन्य-जीवन तथा कापालिक-साधना आदि का ऐसा यथार्थ-चित्र अन्यत्र दुर्लभ है।

सैन्य-वर्णन :—

यशस्तिलक चम्पू का उत्कृष्टतम एवं संस्कृत साहित्य का अत्यन्त उच्च श्रेणी का वर्णन—यशोधर की सेना का वर्णन है। इसमें सोमदेव ने केवल परम्परामात्र का ही पालन नहीं किया है, अपितु सैनिकों के रूप-चित्रण, उनके प्रमुख आयुध तथा गौरव-वर्णन के साथ साथ विविध देशों के सैनिकों की कतिपय परम्पराओं का भी उल्लेख किया है :—

(१) किर्मीरमणिविनिर्मितत्रिशरकण्ठिकं · महामण्डलावगुण्ठितगलनालमान्यमीशानसैन्यमिव...आनाभिदेशोत्तम्भितासिधेनुकम्...ऊर्ध्वनखरेखालिखितदेहप्रासादं देव इदं विविधायुधवर्तनौचित्यम् दाक्षिणात्यं बलम् ॥

(२) इतश्च पर्यन्तखर्वितकुन्तलतयार्धमुष्टिमितमस्तकमध्यकेशम्...समुत्कर्षितसृक्कचिबुकजंघाग्रभागरोमलोमशम्... सन्ध्याभ्रगर्भविश्रान्ताप्रियसंदर्भनिर्भरं नभ इव देव इदमनेकदोलिकाविलं द्रामिलं बलम् ॥

(३) इतश्चोत्तप्तकांचनकान्तकायपरिकरम्, करोत्तंभितकर्तरीकणयकृपाणप्रासतुरगवेगवर्णनोदीर्णम्, यथायथकथमौत्तरपथं बलम् ॥ आश्वास २, सैन्यवर्णनम् ॥

इसी प्रकार जलयुद्ध-क्रिया-विशेषासक्त गौड-बल दोनों स्कन्धों पर तूणीर धारण करने से-त्रिशिरोनिशाचरानीक-के सदृश गौर्जर-बल का भी वर्णन हुआ है।

अन्य-वर्णन :—

यशस्तिलक में अन्य कई वर्णन भी द्रष्टव्य हैं। उदाहरणार्थ :-स्त्री-चरित्र की दुरूहता (४।६१) मानव-प्रकृति एवं उसकी क्रूरता (३।१७४-१७५) शिष्ट-हास्य (३। पृ० ४०४), व्यापारी सागरदत्त की कंजूसी (आ० ७ कल्प ३२), यशोधर का अन्तर्द्वन्द्व (४। पृ० ४८) आदि स्थलों पर सोमदेव ने अपनी वर्णन-कुशलता का परिचय दिया है।

जिन तुलनीय वर्णन-स्थलों का पहले संकेत किया गया है प्रायः उन सभी पर मुख्य रूप से कादम्बरी का तथा गौण रूप से वासवदत्ता का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन वर्णन-स्थलों में भी सोमदेव ने कोरा अनुकरण-मात्र नहीं किया है, वर्णन का आधार भर लिया है तथा यथाशक्ति अपने वर्णन को अन्तरयुक्त अथवा वैशिष्ट्य-युक्त रखने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिये महाश्वेता चन्द्रापीड को अपना परिचय देते हुये अप्सराओं के चतुर्दश कुलोत्पत्ति का वर्णन करती है (द्र० काद० पूर्वभाग पृष्ठ ४०९), अतः सोमदेव को भी ऐसा वर्णन प्रस्तुत करना था। फलतः खलों के चार प्रकारों का संकेत करके भी उनके चतुर्दश कुलोत्पत्ति का वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है :)—

—देव अप्सरसामिवामरेषु नरेष्वपि किल खलानां चतुर्दशकुलानि पुरा प्रादुर्बभूवुः। तत्र तावत्प्रथमं प्रमथनाथकण्ठालंकारनिकटात् कालकूटात् प्रादुरासीत्। द्वितीयं द्विजिह्वेभ्यः, तृतीयं तृत्तात्मजतुण्डचण्डतायाः॥ आ० ३। पृ० ४४१॥

वैशिष्ट्य-प्रदर्शन की इस प्रवृत्ति के कारण सोमदेव ने रूढिबद्ध वर्णनों को भी कई स्थलों पर अतिशयिता से भर कर उन्हें खिलवाड़ बना दिया है। उदाहरणार्थ इनका विरह-वर्णन लिया जा सकता है :—

शुष्कं कुन्तलकुड्मलैर्मुकुलितं कर्णावतंसोत्पलैः,
कीर्णं केलिजलेरुहैर्विगलितं गण्डस्थलीचन्दनैः।
तत्तत्पल्लवपेशलैश्च शयनैराम्लानमामूलत-
स्तन्व्यास्त्वद्विरहेण साम्प्रतमियं भ्रातर्दशा वर्तते॥
कण्ठे मौक्तिकदामभिः प्रदलितं दीनं करे कन्दलै-
र्वक्षोजे क्वथितं मृणालवलयैः क्लिष्टं कपोले दलैः।
अन्यत्किं कथयामि यत्परिजनैर्याश्चन्दनानां छटाः
कीर्यन्ते स्वरयैव ताः प्रदधते शोषं तदंगोष्मणा। ३।४९०-९१

इसी प्रकार—श्वासोष्मणा बाष्पपयःप्रवाहः प्राप्नोति नैवाधरचुम्बनानि (३।४९२)
तथा—बिम्बाधरे धृतमपैति मृणालनालं हस्ते च शुष्यति कृतं नलिनीप्रवालम् ॥
(३ । ४९४) ॥

विरह-ताप से बिम्बाधर पर मृणाल-नाल और हाथ पर नलिनी-प्रवाल यदि रखते रखते सूख जांय तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जब नायिका की यह स्थिति हो:—

क्वेदं कार्श्यं क्व च मनसिजस्फारबाणप्रहारः
क्कायं तापः क्व च निरवधिर्बाष्पपूरप्रचारः ।
क्वैषा मूर्च्छा क्व च कुचपटप्रेङ्खणश्वासकल्पः
क्वासौ लज्जा क्व च मृगदृशश्चित्रमेष प्रजल्पः ॥ आ० ३।५०२ ॥

विरोधाभास का चमत्कार अवश्य दर्शनीय है।

गद्य-काव्यों पर आश्रित एवं रूढिगत वर्णनों के अतिरिक्त भी कुछ स्थल ऐसे हैं जो संस्कृतेतर कथा-ग्रन्थों पर आश्रित होने का संकेत करते हैं। सोमदेव ने ऐसे स्थलों पर नवीन उद्भावनाओं के साथ वर्णन का विस्तार कर दिया है। मखादेव जातक[1] के साथ निम्नलिखित वर्णन की तुलना की जा सकती है:—

तस्य यशोर्घमहाराजस्य पलितांकुरदर्शनमभूत्। तं च हस्तेनावलम्ब्याव-लोक्य च स मे तातः किलैवमचिन्तयत्:—

मतिविभवविनाशोत्पातकेतुप्रतानः सुरतसुखसरोजोच्छेदनीहारसारः ।
मदनमदविनोदानन्दकन्दावमर्द-प्रपतदशनिदण्डाडम्बरः केश एषः ॥२।९८॥
मुक्तिश्रियः प्रणयवीक्षणजालमार्गाः पुंसा चतुर्थपुरुषार्थतरुप्ररोहाः ।
निःश्रेयसामृतरसागमनाग्रदूताः शुक्लाः कचा ननु तपश्चरणोपदेशाः ॥२।१०४॥

मध्य के ५ श्लोक भी शुक्ल-कच से ही सम्बद्ध हैं।

यशस्तिलक की गद्य-शैली:—

सोमदेव ने इस काव्य के गद्य-भाग में मुख्यरूप से समास-बहुला गौडी रीति का ही प्रयोग किया है। गद्य के चतुर्विध रूपों में उत्कलिकाप्राय की ही बहुलता है। अन्य गद्य-कवियों की भांति सोमदेव ने भी वर्ण्य-विषय और अपनी रुचि के अनुसार समास-बहुला, अल्पसमास-युक्ता तथा समास-रहिता पदावली का प्रयोग किया है। उत्कलिकाप्राय के उदाहरण ग्रन्थ के प्रत्येक आश्वास में अधिक मिल जाते हैं। शेष तीन गद्य-रूपों को निम्नलिखित स्थानों पर देखा जा सकता है:—

---

१. मखादेव जातक, संख्या:-९।

वृत्तगन्धोज्झिता—यशोर्घ और शंखनक द्वारा दिये गये यशोधर के लिये उपदेश में मिलता है :—

(१) यौवनाविर्भावः पुनः चात्रपुत्राणां भूतावतार इव हेतुरात्म-विडम्बनस्य···

(यशोर्घ-आ० २ पृ० २८१)

(२) देव स्वभावजा हि दुस्त्यजा खलु प्रकृतिः···

(शंखनक-आ० ३ पृ० ४२९)

चूर्णक का प्रयोग कवि ने अलंकारों की माला पिरोने अथवा विकट-समास-बन्धों को प्रस्तुत करने के पूर्व कहीं कहीं किया है :—

—अस्ति खलु इहैव सकलाश्चर्यैकपात्रे भरतक्षेत्रे चतुर्वर्गमार्गणोपकरणप्रसूतः समस्तप्रशस्तमहीवलयालंकरणभूतः सुरलोकमनोरथाविधेयो यौधेयो नाम धामसंपदो जनपदः···।

(आ० १। पृ० १२)

इसके बाद ही यौधेय जनपद के ग्रामों का अलंकृत वर्णन प्रारम्भ हो गया है ।

(द्र० पृ० १३–१५)

वृत्तगन्धि :—

गद्य का यह रूप भी यशस्तिलक चम्पू में उपलब्ध होता है :—

विकचकर्णोत्पलस्पर्धितरलेक्षणाः ।
केलितालक्वणत्कनकमयकंकणाः ॥
सरसनखराजिविच्छुरितभुजमण्डलाः ।
कांचिकोल्लासवशदर्शितोरुस्थलाः ॥ १ ॥
स्वैरसंजल्पनस्मेरबिम्बाधराः ।
कर्णकण्डूमिषोद्वलितकक्षान्तराः ॥
पृथुनितम्बस्खलल्लटहगतिविक्रमाः ।
सहजश्रृङ्गाररसभरितमुखविभ्रमाः ॥ २ ॥
पीनकुचकुम्भदर्पत्रुटत्कंचुकाः ।
शालिवप्रेषु यान्त्यः क्षणं गोपिकाः ।
पान्थसार्थेषु नयनोत्सवं कुरुते ॥
यत्र तापं पुनश्चिरमुपाचिन्वते ॥ ३ ॥

यशस्तिलक चम्पू में यह अंश गद्य-खण्ड के रूप में ही छपा है, परन्तु डा० ए० वेंकट सुब्बिया ने ऊपर लिखित क्रम के अनुसार चरण-विभाजन कर इन्हें तेलुगु और कन्नड में प्रयुक्त होने वाला 'ललित रगड' नामक छन्द माना है। १६।२०। और २४ मात्राओं की रगड जाति का छन्द क्रमशः मन्दानिल,

ललित एवं उत्साह कहलाता है (कन्नड-परम्परा)। तेलुगु छन्दशास्त्री इसके ९ भेद मानते हैं।[1]

संवादों का उपयोग :—

सोमदेव ने यशस्तिलक में कई स्थलों में संवादों का प्रयोग किया है। यह संवाद दो प्रकार से प्रयोग में लाये गये हैं :—

(१) बिना पात्रों का नाम दिये हुये संवाद। यहाँ प्रसंग से ही कहने वाले पात्र का नाम पाठक को ज्ञात हो जाता है :—

(यशोधर) वर्षर्तुश्रियं यावदहं अनुभवन्सप्रमोदमासांचक्रे।

तावत्सन्धिविग्रही :—देव पंचालमण्डलपतेरचलस्य दुकूलनामा दूतः समागतः तिष्ठति च प्रतीहारभूमौ (इति विज्ञाप्य प्रावेशयत्)।

(उपावेशयच्च यथानिबन्धमाचरितोपचारं तदुचिते देशे) दूत प्रदर्श्यतामस्मै प्रभवे ते प्रभुप्रहितं प्राभृतम्। शासनहर समर्प्यतां शासनम्।

(उभौ तथा कुरुतः)

इसी प्रकार का संवाद कुक्कुट-बलि देने के समय यशोधर और उसकी माता का है। आ० ४।

(२) द्वितीय प्रकार के संवाद पूर्णरूप से नाटकीय हैं और रंगमंच पर अभिनेय भी हैं। सप्तम आश्वास भाग ३१ में वर्णित पद्मा की कथा द्रष्टव्य है :—

एकदा मुदा···तां पुण्यकान्तामुद्दिश्य श्लोकमुदाहार्षीत्। स्त्रीषु धन्यात्र गंगैव परभोगोपगापि या। मणिमालेव सोल्लासं ध्रियते मूर्ध्नि शंभुना।

भट्टिनी—(स्वगतम्) इत्वरीजनाचरणहर्म्यनिर्माणाय प्रथमसूत्रपात इवायं वाक्योपोद्घातः (प्रकाशम्) आर्ये किमस्य सुभाषितस्य ऐदंपर्यम् ?

धात्री—परमसौभाग्यभागिनि भट्टिनि, जानासि एवास्य सुभाषितस्य कैंपर्यम्, यदि न वज्रघटितहृदयासि।

भट्टिनी—(स्वगतम्) सत्यं वज्रघटितहृदयाहम्, यदि भवत्प्रयुक्तोपघातघुणजर्जरितकाया न भविष्यामि। (प्रकाशम्) आर्ये हृदयेऽभिनिविष्टमर्थं श्रोतुमिच्छामि।

धात्री—वत्से कथयामि। किं तु

---

१. द्रष्टव्य :–जर्नल आव ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, वा० ९ (१९३५ ई०) पृष्ठ ४६ पर डा० ए० वेंकट सुब्बिया का लेख :-संस्कृत में अल्पप्राप्य कुछ छन्द।

चित्तं द्वयोः पुरत एव निवेदनीयं ज्ञानाभिमानधनधन्यधिया नरेण ।
यः प्रार्थितं न रहयत्यभियुज्यमानो यो वा भवेन्ननु जनो मनसोनुकूलः ॥

भट्टिनी—(स्वगतम्) अहो नभः प्रकृतिमपीयं पंकैरुपलेप्तुमिच्छति । (प्रकाशम्) आर्ये उभयत्रापि समर्थाहं न चैतन्मदुपज्ञं भवदुपक्रमं वा ।

धात्री—(स्वगतम्) अनुगुणेयं खलु कार्यपरिणतिः··· (प्रकाशम्) अत एव भद्रे वदन्ति पुराणविदः—

विधुर्गुरोः कलत्रेण गोतमस्यामरेश्वरः ।
संतनोश्चापि दुश्चर्मा समगंस्त पुरा किल ॥

भट्टिनी—आर्ये एवमेव । यतः

स्त्रीणां वपुर्बन्धुभिरग्निसाक्षिकं परत्र विक्रीतमिदं न मानसम् ।
स एव तस्याधिपतिर्मतः कृती विश्रम्भगर्भा ननु यत्र निर्वृतिः ॥

पद्य-शैली :—

यशस्तिलक चम्पू का पद्य-भाग भी गद्य की भांति ही विविध वर्णनों से संयुक्त है। यशोधर और मारिदत्त दोनों की ही कथायें राजकुल से सम्बद्ध हैं अतः पद्यबद्ध सारा वर्णन भी दरबारी कविता की तरह ही है। राजाओं की जीवन-चर्या का ही दर्शन होता है। यह सारा वर्णन भी परम्परा-ग्रस्त है। सोमदेव ने इस पारम्परिक वर्णन में यथासम्भव सौन्दर्य उत्पन्न करने का प्रयास किया है। मुख्य कथा को ही ले लिया जाय :—इसमें यशोधर के जन्म के समय नगर-महोत्सव तथा उल्लास का वर्णन—आ० २।६८-७९, राज्याभिषेक-वर्णन—आ० २।२०२-२१३, तूर्यनाद का (२।२१४), यशोधर और अमृतमति की अनुरूपता का (२। २१५-२२०), राजछत्र, सिंहासन, पट्टबन्ध तथा खड्ग का (२।२२२-२६), गुरुजनाशीर्वाद का (२।२२९-३५), यशोधर के नगर-दर्शन का (२।२३६-३९), प्रासाद में स्वागत का (२।२४२-४३) वर्णन आदि पर्याप्त विस्तृत है। बीस पद्यों में तो प्रातःकाल राजा को जगाने के लिये प्रबोध-मंगलगान है (३।३-२२)। राज-सभा में मन्त्री परस्पर विवाद करते हैं। दैव और पुरुषार्थ पर विवाद (३।३७-६४), उपाय सर्वज्ञ नामक मन्त्री द्वारा उपाय नीति का समर्थन (आ० ३।७३-१०३), अन्य राजाओं को चुनौती (३।११२-१३), दुर्मन्त्रियों पर कवियों द्वारा आक्षेप (३।१२५-१६९), पामरोदार मन्त्री की निन्दा (३।२०६-२२५) आदि राजनीति-सम्बन्धी वर्णन भी प्रचुर मात्रा में है। इसी प्रकार मारिदत्त और यशोधर के विलास का भी विस्तृत वर्णन है।

इन वर्णनों में प्रयुक्त पद्य कथावस्तु को आगे नहीं बढाते अपितु स्वतन्त्र मुक्तकों का सा आनन्द प्रदान करते हैं। यशस्तिलक से बाहर भी इनका मूल्य

कम नहीं है। स्वतन्त्र मुक्तकों की संख्या के आधार पर मुक्तक, युग्मक, विशेषक, कलापक और कुलक पाँच भेद होते हैं। यशस्तिलक में कवि ने आरम्भ में ही कुलक का प्रयोग किया है (आ० १।४-८) युग्मकों के अतिरिक्त अन्यों का प्रयोग नहीं हुआ है। युग्मक का उदाहरण है—तृतीय आश्वास का ४०९-४१० पद्य-द्वय।

यशस्तिलकमें प्रयुक्त पद्य दो प्रकार के हैं-काव्यात्मक और सूक्ति काव्यात्मक पद्य कहीं तो परम्परानुगत वर्णन प्रस्तुत करते हैं :—

सौधाग्रभागेषु पुरांगनानां नीलोत्पलस्पर्धिभिरीक्षणैर्मे।
आनन्दभावादियमम्बरश्रीः पुष्पोपहाराय कृतादरेव ॥ आ० २।२३७॥

कहीं चित्रात्मकता उपस्थित करते हैं—

हस्ते स्पृष्टा नखान्तैः कुचकलशतटे चूचुकप्रक्रमेण,
वक्त्रे नेत्रान्तराभ्यां शिरसि कुवलयेनावतंसार्पितेन।
श्रोण्यां कांचीगुणाग्रैस्त्रिवलिषु च पुनर्नाभिरन्ध्रेण धीरा,
यन्त्रस्त्री यत्र चित्रं विकिरति शिशिराश्चन्दनस्यन्दधाराः ॥३।३७५॥

कहीं ऊहात्मकता व्यक्त करते हैं :—

जलधिजलैः सह पीता ज्वाला इव वाडवस्य घनजठरात्।
निर्गच्छन्त्यः प्राप्ताः परिणतिमेतास्तडिल्लेखाः ॥३।३९८॥

कहीं उपयुक्त शब्दावली से ध्वन्यात्मकता का सृजन करते हैं :—

मेघोद्गीर्णपलत्कठोरकरकासारत्रसत् सिन्धुरे,
पूरप्लावितकूलपादपकुलक्षुभ्यत्सरित्पाथसि।
अम्भश्चण्डसमीरणाश्रयशिवाफेत्कारताम्यन्मृगे,
काले सूचिमुखाग्रभेद्यतिमिरप्रायःक्षपासंगिनि ॥ १।६५ ॥
भूयः पयःप्लवनिपातितशैलशृंगे पर्जन्यगर्जितवितर्जितसिंहपोते।
सौदामनीद्युतिकरालितसर्वदिक्के कं देशमाश्रयतु डिम्भवती कुरंगी ॥१।६६॥

कहीं अनेक कविप्रसिद्धियों को एकत्रित कर दिया गया है :—

हंसो यत्र मृणालिनीकिसलयैर्गण्डूषतोयैर्गजः,
कोकश्चुम्बनचेष्टितैः परिपतन् पारावतः कूजितैः।
एणः शृङ्गविघर्षणैर्मृगपतिर्गाढं पुनः श्लेषणैः,
शृङ्गारप्रसरप्रसादिहृदयः स्वां स्वां प्रियां सेवते ॥ ३।४४२ ॥

कहीं समस्या-पूर्ति के रूप में लिखे गये हैं :—

अर्धकाव्यकविः—अरुणकिरणमध्ये विद्रुमस्तम्बविम्बः
क्षितिप किमिव शोभां भानुरुद्यन् बिभर्ति।

राजा—बुध युधि मम शत्रोः शोणितापूरितायां
प्रतरदुपरि कोपात् पाटलं यद्वदास्यम् ॥ (३।१९)

कहीं अष्टपदा और द्वादशपदा नान्दी का चमत्कार दिखाया गया है (३।१२२-१२४)। पद्यों में समस्त और असमस्त दोनों प्रकार की पदावली व्यवहृत हुई है। ऊपर उद्धृत १।६५ समस्त पदावली का तथा ३।३९८ असमस्त या अल्प-समस्त पदावली के उदाहरण हैं।

(२) सूक्तियां :—

सोमदेव द्वारा प्रस्तुत सूक्तियां तीन प्रकार की हैं :—

(क) नैतिकता से पूर्ण :—

संसर्गेण गुणा अपि भवन्ति दोषास्तदद्भुतं नैव।
स्थितमधरे रमणीनाममृतं चेतांसि कलुषयति ॥ १।७९ ॥
सौजन्यमैत्रीकरुणामणीनां व्ययं न चेद् भृत्यजनः करोति।
फलं महीशादपि नैव तस्य यतोऽर्थमेवार्थनिमित्तमाहुः ॥ १।१३१ ॥

(ख) धार्मिक या धर्म-व्यवस्था-सम्बन्धिनी :—

स्वामिद्रोहः स्त्रीवधो बालहिंसा विश्वस्तानां घातनं लिंगभेदः।
प्रायेणैतत्पञ्चकं पातकानां कुर्यात् सद्यः प्राणिनः प्राप्तदुःखान् ॥५आ०॥
यस्तु पश्यति रात्र्यन्ते राजानं कुंजरं हयम्।
सुवर्णं वृषभं गां च कुटुम्बं तस्य वर्धते ॥ ५ ॥ प्र० क० ॥
आनन्दो ज्ञानमैश्वर्यं वीर्यं परमसूक्ष्मता।
एतदात्यन्तिकं यत्र स मोक्षः परिकीर्तितः ॥ ५। प्र० क० ॥

(ग) राजनीति-सम्बन्धिनी :—

असहायः समर्थोऽपि न जातु हितसिद्धये।
वह्निर्वातविहीनो हि बुसस्यापि न दीपकः ॥ (३।२२८)
हतं ज्ञानं क्रियाशून्यं हताज्ञा ज्ञानिनः क्रिया।
धावन्नप्यन्धको नष्टः पश्यन्नपि च पंगुकः ॥ ५। प्र० क० ॥

ये सभी सूक्तियां उपदेश-पूर्ण हैं। इनमें जीवन को कर्तव्य-निष्ठ बनाने एवं धार्मिक वृत्तियों को जगाने की प्रेरणा अन्तर्निहित है। ये सूक्तियां सर्वथा अलंकार-विहीन नहीं हैं। इनमें दृष्टान्त (३।१७८) उदाहरण (३।७८) आदि का यथास्थान प्रयोग किया गया है। विरोधाभास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

विचक्षणः किं तु परोपदेशे न स्वस्य कार्ये सकलोपि लोकः।
नेत्रं हि दूरेपि निरीक्षमाणमात्मावलोके स्वसमर्थमेव ॥ आ० ४ ॥

अन्य कवियों या ग्रन्थों के उद्धरण :--

सोमदेव ने चतुर्थ आश्वास में अनेक प्रख्यात कवियों—उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर—को उद्धृत किया है। अन्य कवियों में ग्रहिल (आ० २ पृ० ५५) नीलपट (२।पृ० २५२) वररुचि (४। पृ० ९९) अज्ञात (३।२७४) आदि का भी पद्य दिया गया है, परन्तु इनका उद्देश्य अपने कथन की पुष्टि करना है। अनेक नीति-शास्त्रकारों को भी सोमदेव ने उद्धृत किया है :—बृहस्पति, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म (महाभारत) आदि (आ० ३ । पृ०४७१)। चतुर्थ आश्वास में भारद्वाज के नाम से निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत हैं :—

—अवक्षेपेण हि सतां असतां प्रग्रहेण च ।
तथा सत्त्वेष्वभिद्रोहादधर्मस्य च कारणात् ॥
विमाननाच्च मान्यानां विश्वस्तानां च घातनात् ।
प्रजानां जायते लोपो नृपतेश्चायुषः क्षयः ॥ पृ० १०० ॥

ये दो श्लोक कुछ पाठान्तर से कौटिल्य के अर्थशास्त्र (७ । ५) में दिये हुए हैं। कहीं कहीं पद्यखण्डों में भी संक्षिप्त उद्धरण दिये गये हैं जैसे :—नैकस्य कार्यसिद्धिरस्तिइति विशालाक्षः। (आ० ३ । पृ० ४५३)। तथा च श्रुतिः— कह कर भी कुछ उद्धरण दिये गये हैं, जैसे :—

दुर्योधनः समर्थोऽपि दुर्मन्त्री प्रलयं गतः ।
राज्यमेकशरोप्याप सन्मन्त्री चन्द्रगुप्तकः ॥ आ० ३।२४२ ॥

श्राद्ध और वैदिक-परम्परा का खण्डन करने के लिये सोमदेव ने स्मृतिकारों में मुख्य-रूप से मनु को उद्धृत किया है। चतुर्थ आश्वास में मनुस्मृति के अ० ३। २६७-२७१, ६।३ तथा षष्ठ आश्वास में ६।३६ वें श्लोकों को देखा जा सकता है। याज्ञवल्क्यस्मृति का (१।१०९)—महोक्षो वा महाजो वा श्रोत्रियाय विशस्यते-अर्ध श्लोक यशस्तिलक के सप्तम आश्वास के ३० वें कल्प में मिलता है। इसी प्रकार पंचम आश्वास के अन्तिम भाग तथा षष्ठ आश्वास के प्रथम दो खण्डों में उपनिषदों, अवधूतगीता आदि के उद्धरण मिलते हैं।

यशोधर के राज्याभिषेक के समय पर वर्णित मंगल गज-वाजि आदि से उनके वृहद् ज्ञान की सूचना मिलती है। यशस्तिलक के ये अनेक उद्धृत अंश उनकी चौर्य-वृत्तिका नहीं अपितु उनके गहन अध्ययन के परिचायक हैं। उन्होंने कहीं भी उक्त उद्धृत अंशों को अपना नहीं कहा है। ये उद्धरण या तो अपने मत के समर्थन के लिये दिये गये हैं अथवा उनका खण्डन करने के लिये।

छन्द-प्रयोग :—

सोमदेव ने यशस्तिलक में वार्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का उपयोग किया है। वार्णिक छन्द हैं:-अनुष्टुप्, आर्या, शिखरिणी, इन्द्रवंशा, मन्दाक्रान्ता आर्या, गीति, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, उपेन्द्रवज्रा रथोद्धता तथा उपजाति। इन छन्दों के अतिरिक्त सोमदेव ने अन्य कई वार्णिक छन्दों का भी अपनी रुचि के अनुसार प्रयोग किया है पर उनकी संख्या कम है। उदाहरण के लिये मालिनी का प्रयोग (१।१५८, २।१७५, २।२२० आदि) कहीं कहीं हुआ है। मत्तेभविक्रीडित (२।२२९) जैसे काव्य में अल्पप्रयुक्त छन्द का उपयोग भी सोमदेव ने किया है। प्रकृति-चित्रण एवं शृंगार-वर्णन जैसे कोमल वर्णनों में शार्दूलविक्रीडित तथा बसन्ततिलका जैसे मनोरम छन्दों का ही अधिक उपयोग हुआ है (१।५३-६५)। धार्मिक-उत्प्रेक्षाओं में इन्द्रवज्रा का, धार्मिक और नैतिक उपदेशों में अनुष्टुप् तथा आर्या छन्दों की बहुलता है ॥ ७-८ आ० ॥ आर्या, गीति के कई रूप मिलते हैं :—

आदाय सर्वसारं विधिना दर्शयितुमस्य लोकस्य ।
अमरपुरीलक्ष्मीमिव मन्थे सृष्टं प्रयत्नेन ॥ १।४६ ॥
तावत्प्रवचनविषयस्तावत्परलोकचिन्तनोपायः ।
यावत्तरुणीविभ्रमहृतहृदयो न प्रजायेत ॥ १।७७ ॥

सोमदेव ने अन्तिम लघु वर्ण को गुरु मान ली जाने वाली स्वतन्त्रता का भी उपयोग किया है :—

निद्रां विदूरयसि शास्त्ररसं रुणत्सि,
सर्वेन्द्रियार्थमसमर्थविधिं विधत्से ।
चेतश्च विभ्रमयसे कविते पिशाचि
लोकस्तथापि सुकृती त्वदनुग्रहेण ॥ १।४१ ॥

यशस्तिलक चम्पू में मात्रिक छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। ये मात्रिक छन्द विशिष्ट अवसरों पर ही प्रयुक्त हुये हैं। प्रथम आश्वास के अन्तिम भाग में अभयरुचि तथा अभयमति के गीतों में (१।१७५-२१२) एवं अष्टम आश्वास के ३७ वें भाग में अर्हत् के गौरव-वर्णन में जो मात्रिक छन्द प्रयुक्त हुये हैं वे—वर्ण (१।१७५ १८८-१९० एवं ८।३७ क०) मात्रा (१।१७६, १९१, ८।३७) चतुष्पदी (१।१७७, १९२, ८।३७) पद्धतिका (१।१७८-१८६, १९३-२११, ८।३७) तथा घत्ता (१।१८७, २१२, ८।३७) हैं। अन्य मात्रिक छन्दों में द्विपदी का प्रयोग (१।१६७, १६९, ३।९, १७, १८, ३१३) तो हुआ ही है पंचम आश्वास में करहाट-वर्णन में मदनावतार (मयणावयार) छन्द का भी उपयोग हुआ है। उदाहरणार्थ :—

(१) वर्ण—दलितरिपुदैत्यदर्पः प्रतापभरचकितखचरलोकेन्द्रः ।
कलिकालजलधिसेतुर्जयतु नृपः समरशौण्डीरः ॥ १।१७५ ॥

वर्ण नामक यह छन्द आर्या छन्द का ही एक रूप है ।

(२) मात्रा—

सकलमंगलधाम, जयकाम, कमलाऽऽलय, निखिलनय, शौर्यनिगद, कदनैकदोहद ।
अनिगममसमानबल, वैरिकाल, जयजीवकामद ॥ १।१।१७६ ॥

इसकी प्रथम पंक्ति में ४१ तथा द्वितीय पंक्ति में २७ मात्राएँ हैं । छन्द की दृष्टि से ६८ मात्रायें होते हुए भी संगति की दृष्टि से इसमें (१६ + १६) ३२ मात्रायें ही हैं ।

(३) चतुष्पदी—इति महति भवति किञ्चिद्वदामि
निःशेषतस्तु नो पारयामि ।
वक्तुं त्वदीयगुणगरिमधाम
सर्वज्ञवचनविषयं हि नाम ॥ १।१७७ ॥

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें हैं, अन्त में जगण अनिवार्य है ।

(४) पद्धतिका—

जयकमलकलशकुलिशाङ्कचरण, सकलोपमानरुचिरचितकरण ।
यमवरुणधनदशक्रावतार, कल्याणविजयसंसारसार ॥ १।१७८॥

इसके प्रत्येक चरण में १३ मात्रायें हैं । इसमें जगण का नियम अनिवार्य नहीं है । यह अपभ्रंश का सुप्रसिद्ध छन्द-पज्झटिका—है ।

(५) घत्ता—इति बुधजनकामः क्रीडितरामः सकलभुवनपतिपूजित ।
कृतबुधजनकामः क्षितिपतिरामस्त्वमिह चिरंजयविश्रुत ॥१।१८७॥

इसमें ११, ८ तथा १२ मात्राओं पर विराम है । प्रत्येक पंक्ति में ३१, ३१ मात्रायें हैं । घत्ता नाम से कुल तीन छन्द यशस्तिलक में प्रयुक्त हैं । १।१८७ तथा ८।३७ में प्रयुक्त छन्द एक समान हैं । १।२१२ में प्रयुक्त घत्ता में २८, २८ मात्रायें ही हैं । इसकी टीका में श्रुतसागर सूरि ने लिखा है कि घत्ता के २७ प्रकार हैं जिनमें एक यह भी है ।

(६) द्विपदी—शतमख दहन काल गुह वरुण समीरण धनदचन्द्रमः
प्रथितैकैककुम्भिविभवास्तदिमानवत प्रयत्नतः ।
इत्युपदेष्टुकाम इव हस्तमुदंचति वियति वारणो-
नो चेदिभविहीनरचना भवतां भविता पताकिनी ॥ ३।२१२ ॥

यह प्राकृत छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें होती हैं, अन्तिम वर्ण गुरु होता है।

(७) मदनावतार—

श्रीविलासोत्सवस्खलितसुरसभित्तयः-
फुल्लफलपल्लवोल्लासिवनवृत्तयः।
पिकवधूरुतमनोहारिसर्वर्तवः-
सकलसंसारसुखसेवितागन्तवः ॥ ५ । पृ० १६२ ॥

यह भी प्राकृत छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में २० मात्रायें होती हैं[1]।

सोमदेव ने जिन छन्दों को चतुष्पदी कहा है, वे पादाकुलक हैं तथा घत्ता नाम से निर्दिष्ट छन्द कुलियाला हैं[2]।

गद्य-पद्य की मात्रा :—

यशस्तिलक पद्य-बहुल चम्पू है। अन्तिम तीन आश्वासों में तो गद्य-खण्ड अत्यन्त विरल हैं। शेष पांच आश्वासों में भी पद्य-भाग की बहुलता है। गणना करने पर आरम्भ के तीन आश्वासों में (२२० + २४६ + ५१३) ९७९ श्लोक हैं। गद्य-खण्डों की संख्या (२८ + २९ + १३) केवल साठ है। गद्य और पद्य का प्रयोग समान स्तर पर किया गया है:—

(१) कहीं पद्य का प्रयोग भाव-विशेष की पुनरावृत्ति के लिये हुआ है:—

देव स्वभावजा हि दुस्त्यजा खलु प्रकृतिः ॥ आ० ३ । पृ० ४२९ ॥
यः स्वभावो भवेद्यस्य स तेन खलु दुस्त्यजः ॥ ३ । १७५ ॥

(२) कहीं वर्ण्य-विषय को आगे बढ़ाने के लिए उसका उपयोग हुआ है :—

देव यद्यपि देवस्य तेजो बलं प्रबलम् ॥ आ० ३ । पृ० ४३२ ॥
तथापि-तेजस्तेजस्विनां स्थाने धृतं द्युतिकरं भवेत् ॥ ३ । १४८ ॥

ऋतु-वर्णन सम्बन्धी पद्यों में तत्सम्बन्धी गद्य-खण्डों की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य है[3]।

अलंकारों का उपयोग :—

यशस्तिलक की सुषमा का दर्शन उसके गद्य-पद्य भागों में समाहित अलंकारों में भी किया जा सकता है। सोमदेव ने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है जिनमें से कुछ उदाहरणार्थ देखे जा सकते हैं :—

---

१. हेमचन्द्र-छन्दानुशासन ४ अध्याय।

१. द्रष्टव्य-मद्रास जर्नल वा० ९, पृ० ४६ डा० सुब्विया का लेख।

२. प्रथम आश्वास में ग्रीष्म-वर्णन एवं अन्य ऋतु-वर्णन।

उपमा (१ । २०-२१. ३ । ७. २१), उपमा माला (आ० २ । ३०वें श्लोक के बाद), विषमोपमा (३ । ५०२), उत्प्रेक्षा (१ । ४६. ४७), उत्प्रेक्षामाला (प्रथमाश्वास का अन्तिम भाग), रूपक (१ । ९, २ । ८२, १०४), सांगरूपक (२ । २३६), अतिशय (१ । १९, २२), आक्षेप (१ । ११, १६), अनुमान (१ । १८), हेतु (२ । ६९, ३ । ४९२), दृष्टान्त (३ । २२८), जाति (२।९०), अर्थान्तरन्यास (२ । ८२), समुच्चय (३ । २७४. ४४१. ४९४), परिसंख्या (३ । १३४ तथा आ०२ में-लिंगभेदः प्राकृतेषु), व्यतिरेक (३।४८३), अतिशयोक्ति (२ । १९४, १ । पृ० १६१, २ । पृ० ३३, अधिकांश वर्णन ही अतिशयोक्ति-सम्पन्न है। मूर्त के लिये अमूर्त उपमान तथा अमूर्त के लिये मूर्त उपमानों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है—जैसे वन-वर्णन में—**दुर्जनहृदयमिव दुष्प्रवेशम्**), विरोध (आ० १ । **अरजस्तमोबहुलो प्यातत गुणधर्मधरः अप्यालहृदयो पि नियमितकरणग्रामः**) आदि । श्रृंखलामूलक अलंकारों की भी कमी नहीं है :- यथा-**मरुमार्ग इव छायापादपेन, छायापादप इव जलाशयेन**···(आ० ६ । क० १६)। उपमा और रूपक (१ । ९. १७. २ । २०८. ३ । १४), रूपक और व्यतिरेक (३ । १२४), रूपक और अनुमान (३ । १६६), रूपक और समुच्चय (३ । ४९९-५००), श्लेष और उत्प्रेक्षा (आ० १ । पृ० १५), श्लेष और उपमा (आ० १ । ···**अन्तर्लीनसत्त्वः**···**कल्याणपरम्परामाचचक्षे**) आदि के संकर भी मिल जाते हैं । एक ही छन्द में कई कई अलंकार भी मिलते हैं, जैसे-३।५०४ में अनुप्रास, उपमा, रूपक और समुच्चय को एक ही पद्य में प्राप्त किया जा सकता है ।

शाब्दी-क्रीडा :—

यशस्तिलक में अनुप्रास की छटा तो पग पग पर मिलती है । शब्दालंकारों में से अन्य अलंकारों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है । श्रृङ्खलामूलक यमक का -५ । ८५- में तथा काकु वक्रोक्ति का अमृतमति द्वारा भेजे गए यशोधर के लिए सन्देश (आ० ४। पृ० १४५-१४६) में सुन्दर प्रयोग हुआ है। ध्वन्यात्मक शब्दावली का-३ । ३०४ में उदाहरण प्राप्त किया जा सकता है । वन्य-वृक्षों एवं पशुओं के वर्णन में तो नाम परिगणन शैली के दर्शन होते ही हैं, परिसंख्या, उपमामाला तथा उत्प्रेक्षा माला में भी शब्द-प्रयोगों का चमत्कार दिखाई पड़ता है (आ० १ । पृ० १५-१६. २ । पृ. ३३५ ३ । पृ० ५६९)। तृतीय आश्वास में शंखनक द्वारा प्रस्तुत खाद्य-पदार्थों के नाम-अलाबू, कर्कारु, अवाल मालूरमूलक, चिर्भटिका, दमनरिंगिणी, बृहती, वार्ताकफल, एरण्ड, पलाण्डुमुण्डिका आदि भी विचित्र हैं। अप्रचलित प्रयोग-किंपिरि (उपरि), आलान (गज), कंकेल्लक (स्फटिक) आदि प्रथम आश्वास में देखे जा सकते हैं ।

सोमदेव ने प्रचुर शब्दों का निर्माण आवश्यकतानुसार कर लिया है। उनकी इस प्रवृत्ति का दर्शन विविध प्रकार के नामों के निर्माण में दिखाई पड़ती है :— कवि नाम-तरुणी-लीला-विलास, सुजन-जीवित, सरस्वती-तुरग आदि (आ० ३), चारण नाम-प्रबोधमंगलपाठकः, विजयजैत्रायुध आदि (आ० ३), मन्त्री नाम-विद्या-महोदधि, उपायसर्वज्ञ, नीतिवृहस्पति आदि (आ० ३), सैनिक नाम-कोदण्डमार्तण्ड, परशुपराक्रम, पासप्रसर, गदा-विद्याधर आदि (आ० ३) इसके उदाहरण हैं। कटूक्तियों और गालियों को व्यक्त करने वाले शब्द भी मिलेंगे (आ० ३ में राजाद्वारा शंखनक को, ४, विद्याधराधिपति द्वारा चण्डकर्मन् को, आ० ७ क० २७ में श्रीभुति की कथा में राजा द्वारा)।

सोमदेव ने स्थान स्थान पर लोकोक्तियों का भी उपयोग किया है :—

प्रथम आश्वास में—**श्रेयांसिबहुविघ्नानि, भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाता**

द्वितीय आश्वास में—**अन्धकवर्तकीयम्** (पृ० १५३)

तृतीय आश्वास में—**को नाम शैलमारोहेदर्के लभ्यमधुः सुधीः ॥३।७३॥**

चतुर्थ आश्वास में—**गतोदके कः खलु सेतुबन्धः, इतस्तटमितो व्याघ्रः, केनास्तु प्राणिनो गतिः, शठप्रतिशठन्यायेन, शिरो मुण्डयित्वा नक्षत्रप्रश्नः, स्त्रियः खलेषु रज्यन्ते दासहस्तिपकादिषु** (४।७७) तथा पंचम, षष्ठ, सप्तम आश्वासों के विविध कल्पों में—**सर्वत्र हे पुत्र न षड्ढलानि.** (क० १२), **को नाम धीमाँल्लव-णाम्बुराशेरुपायनार्थं लवणं नयेत,** (क० १२), **राजपरिगृहीतं तृणमपि कांचनी-भवति** (७। क० ३२) आदि देखे जा सकते हैं। सोमदेव ने आवश्यकतानुसार इनकी शब्दावली में परिवर्तन भी कर लिया है। जैसे—न्यायमंजरी के **मुण्डित-शिरो नक्षत्रान्वेषणम्** के स्थान पर—**शिरो मुण्डयित्वा नक्षत्रप्रश्नः ॥**

प्रथम आश्वास का निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है :—

सो यमाज्ञार्पितयशा महेन्द्रामरमान्यधीः ।
देयात्ते संततानन्दं वस्त्वभीष्टं जिनाधिपः ॥१।२२०॥

इसमें से चरण—प्रथमाक्षरों को लेने पर कवि का नाम—सो म दे व—बन जाता है।

प्रहेलिका :—

सोमदेव ने कुछ ऐसे पद्य भी लिखे हैं जो सामान्य पाठक की विद्वत्ता की परख करते हैं :—

अष्टशाखं चतुर्मूलं षष्टिपत्रं द्वये स्थितम् ।
षट्पुष्पं त्रिफलं वृक्षं यो जानाति स नीतिवित्[1] ॥३।२५९॥

---

१. अष्टशाखं अरि, विजिगीषु, मध्यम तथा उदासीन का अरि एवं मित्र

त्रिमूलकं द्विधोत्थानं पंचशाखं चतुश्छदम् ।
योऽगं वेत्ति नवच्छायं दशभूमिं स च काव्यकृत्[1] ॥३।२७४॥

यशस्तिलक में प्रस्तुत रस :—

यशस्तिलक चम्पू एक धार्मिक काव्य-ग्रन्थ है। इसकी कथावस्तु का लक्ष्य केवल मनोरंजन मात्र नहीं है। यह सोद्देश्य रचना है, अतः सोमदेव ने कथा को उसी की पूर्ति का माध्यम बना दिया है। इस काव्य के आठ आश्वासों में प्रथम कथावतार या मुख्य-कथा की पूर्वपीठिका है। पंचम आश्वास के अन्त में मारिदत्त मुनि सुदत्त से दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो जाता है, यशोधर की कथा समाप्त हो जाती है, अतः शेष तीन आश्वास केवल जैन-धर्म के सिद्धान्तों का परिचय देते हैं। कथावस्तु के सौन्दर्य की दृष्टि से तो काव्य की समाप्ति पंचम आश्वास के साथ ही हो जानी चाहिए परन्तु काव्य-रचना का उद्देश्य अपूर्ण रह जाता। मारिदत्त की कथा भले ही कवि की दृष्टि में गौण हो, पर उसके काव्यगत-उद्देश्य का भवन इसी की नींव पर टिका है। अन्तिम तीन आश्वासों की सार्थकता मारिदत्त की कथा से सम्बद्ध होने पर ही है। काव्यगत-उद्देश्य है :—

मारिदत्त के क्रूर एवं धर्म के लिये अनुर्वर मन को द्रवित कर उसे कोमल बना कर धर्म-बीज-वपन के योग्य बनाना तथा उस बीज को वपन कर उसके मानस-क्षेत्र में पल्लवित, पुष्पित और फलित होते देखना।

क्रूर और हिंसक मारिदत्त का हृदय मानव-सौन्दर्य तथा संगीत से द्रवित होता है। यशोधर का चरित उसे राजसी-वैभव की निस्सारता, सांसारिक विलास की दुष्परिणति तथा हिंसा के मानसिक कार्य का भी जन्म-जन्मान्तर तक पड़ने वाले विकृत एवं भयानक प्रभाव से परिचित कराता है। अनित्यानुपेक्षा, अशरणानुपेक्षा, संसारानुपेक्षा, एकत्वानुपेक्षा, पृथक्त्वानुपेक्षा, अशुचित्वानुपेक्षा, आश्र-

---

सम्बन्ध से। चतुर्मूलं—साम, दाम, दण्ड, भेद। षष्टिपत्रं-अरि और विजिगीषु का स्व-मित्र-मित्रमित्र के साथ अरि-मित्र-मित्रमित्र के साथ भेद बनाकर अमात्य, राज्य, दुर्ग, कोश, बल के साथ संयुत करने पर ६० भेद। द्वये—दैव, पौरुष। षट्पुष्पं-सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव। त्रिफलं-स्थान, क्षय, वृद्धि।

१. त्रिमूलकं—शक्ति, निपुणता, अभ्यास। द्विधोत्थानं-शब्द, अर्थ। पंचशाखं-प्रचुरा, प्रौढा, परुषा, ललिता, भद्रा (वृत्तियां)। चतुश्छदं—पांचाली, लाटी, गौडी, वैदर्भी। नवच्छायं-नव रस। दशभूमिम्-औदार्य, समता, कान्ति आदि १० गुण।

वानुप्रेक्षा, संवरानुप्रेक्षा, लोकानुप्रेक्षा, निर्जरानुप्रेक्षा, धर्मानुप्रेक्षा तथा बोध्यनुप्रेक्षा उसे निर्वेद की पृष्ठभूमि की ओर सजग कर देती है। उसका हृदय धर्मबीज को धारण करने योग्य उर्वर हो जाता है परन्तु निराई के अभाव में अंकुरित, पल्लवित पौधा भी निष्फल रह जाता है अथवा सूख जाता है। मारिदत्त की शंकायें, अन्य धार्मिक मत-विचार तथा परम्परायें, घास आदि हैं जिनकी सफाई कठोर हाथों से तर्कों तथा विचारों से आवश्यक थी। मुनि सुदत्त के माध्यम से सोमदेव ने अन्तिम तीन अध्यायों में यही किया है। धर्म महोत्सवामृत नामक अष्टम आश्वास में निर्वेद का परिणत फल सभी पात्रों के दीक्षा-ग्रहण के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

यशस्तिलक चम्पू काव्य का अंगी रस शान्त है। अन्य अंगभूत रसों का भी समावेश हुआ है। अंगभूत रसों में सर्वाधिक वर्णन शृङ्गार का हुआ है। मारिदत्त (प्र० आ०), यशोर्घ (२ आ०), यशोधर (२-३ आ०) तथा यशोमति के विलास वर्णनों में इसी की प्रधानता है। शृङ्गार के संयोग और वियोग, दोनों पक्षों का वर्णन हुआ है। संयोग शृङ्गार को (१ आ०) **कदाचिदान्ध्रीणामलकवल्लरीविजृम्भणजलधरः चोलीषु**···**कामाश्रमधर्मचरितमाप्रपेदे** ॥ १।५३-१।५९, ३। पृ० ५७६ ।, ३। पृ० ५८७-५९६ देखा जा सकता है। प्रकृति और ऋतु वर्णन को शृङ्गार के उद्दीपन विभाव के रूप में प्रस्तुत किया गया है— ३।४२८, ४३१-४३४, ४४२-४५८ इसके उदाहरण हैं। विरह-वर्णन तृतीय आश्वास में ४९१-५११ तक अतिशयोक्तिपूर्ण है। शृङ्गार-वर्णन में सोमदेव किसी भी रीतिकाल के कवि से पीछे नहीं हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :—

(१) एषा हिमांशुमणिनिर्मितदेहयष्टि-
स्त्वं चन्द्रचूर्णरचितावयवश्च साक्षात्।
एवं न चेत्कथमियं तव संगमेन,
प्रत्यंगनिर्गतजला सुतनुश्चकास्ति ॥२।२१६॥

(२) कुर्वन्तः कामिनीनामधरकिसलये सौकुमार्यप्रमाथं,
विन्यस्यन्तः कपोले सरसनखपदोल्लासभंगांस्तरंगान्।
रोमांचोदंचदक्षाः स्तनकलशयुगे प्रीणितक्रौंचकान्ताः,
प्रालेयासारसान्द्रीकृतकमलवना हैमना वान्ति वाताः॥३।४३४॥

(३) वक्त्रं वक्त्रमुपैति यत्र नयने नेत्रप्रतिस्पर्धिनी,
वक्षः पीनपयोधराग्रकलनारसोल्लासलीलान्तरम्।
हस्तौ हस्तसमीपवृत्तिवलितौ जंघे च जंघाश्रिते,
दोलान्दोलनमंगनार्पितभरं तत्कस्य न प्रीतये ॥३।४५८॥

(४) सरलमलकजालं नेत्रयोर्नांजनश्री-
रधरदलमरागं पत्त्रशून्यः कपोलः ।
श्रवसि च न वतंसः कामिनीनां रतान्ते,
तदपि वदनदेशे कान्तिरन्यैव काचित् ॥३।५१०॥

उक्त उद्धरण इस लिये भी द्रष्टव्य है कि जब एक धार्मिक चम्पू काव्य की दशम शताब्दी में यह स्थिति है तो सोलहवीं शताब्दी में प्रस्तुत किये गये प्रणय-परिणय चम्पू काव्यों में मुक्तश्रृङ्गार की धारा क्यों न प्रवाहित हो ? कवियों की दृष्टि में नारी-रूप, प्रकृति के रूप से अधिक मनोरम रहा है :—

हरति स्मितं प्रियाणामपांगकान्तिं विलुम्पति नितान्तम् ।
अधिकरुचिः स्तनयुगले तथापि चन्द्रो मुदे जगतः ॥३।४८३॥
अभिनवयवांकुरा इव कान्तानां कुन्तलेषु शशिकिरणाः ।
कर्पूरपरागरुचो भवन्ति च स्तनतटेषु विलुठन्तः ॥३।४८९॥

वीर रस के ओजस्वी वर्णन-३ । ११२ तथा ४०४ से ४२१ तक के पद्यों में देखे जा सकते हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

गर्वं बर्बर मुंच मा चरत रे पंचालकाश्चापलं
केलिं केरल संहर प्रविश रे मद्रेश देशान्तरम् ।
मिथ्यैश्वर्यबलावलेपरभसभ्रश्यद्विवेकात्मना-
मित्थं वष्टि रिटिल्लितं न सहते देवः स दैवाश्रयः ॥३।११२॥

भयानक रस का प्रयोग सोमदेव ने प्रथमाश्वास में चण्डिकायतन के वर्णन के समय तथा द्वितीय आश्वास में गज-वाजि के वर्णन के समय (२।१७७) किया है। अद्भुत रस सम्पन्न वर्णन हैं-चण्डमारि का रूप वर्णन (१ आ०), युद्ध-वर्णन (३।४३६) आदि । बीभत्स रस का अवतरण अधिक नहीं है:—चण्डिकायतन का वातावरण साधकों की स्थिति (१ आ०) तथा युद्ध-वर्णन (३। पृ० ५८६) में कुछ भाग इसके उदाहरण हैं । युद्ध-वर्णन में रौद्र रस भी (३।४४०-४४१) अवतरित है । हास्य और व्यंग्य का समावेश कई स्थलों पर हुआ है, जैसे—राजा इंहो शंखनक कुतो न खलु संप्रति सा तव तुन्दवृद्धिः ? (३ । पृ०४०१) तथा दीपावलि-वर्णन (३। पृ० ५९८) में । द्वितीयाश्वास में कुछ पद्य बाल-वर्णन (२ । ८२–९०) के भी हैं । उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत किया जा रहा है :—

अम्बां तात इति ब्रवीति पितरं चाम्बेति संभाषते,
धात्रीपूर्वनिवेदितानि च पदान्यर्धोक्तितो जल्पति ।
शिक्षालापविधौ प्रकुप्यति धृतो नास्ते स्थिरोयं क्वचिद्,
व्याहूतो न शृणोति धावति पुनः प्रत्युत्थितः सत्वरम् ॥२।९०॥

शान्त रसः—

यशस्तिलक चम्पू का यह मुख्य एवं अंगी रस है। इसके स्थायीभाव निर्वेद का बीज काव्य के प्रथम आश्वास में मुनि सुदत्त द्वारा श्मशान-वर्णन के समय डाला जाता है (१।८४-१२२)। यहां कवि ने सजीव नारी के अतुलनीय सौन्दर्य तथा मृत नारी के शव का बीभत्स रूप साथ-साथ चित्रित कर संसार की नश्वरता का बोध कराते हुए उससे विरक्ति का बीज डाला है। उदाहरणार्थ :—

या कौमुदीव सरसीव मृणालिनीव लक्ष्मीरिव प्रियसखीव विलासिनीव।
तैस्तैर्गुणैरजनि सा सुतनुः प्रजाता प्रेतावनीवनवशा विवशा वराकी॥१।११३॥

आश्लिष्टं परिचुम्बितं परमितं यद्रागरोमांचितै,
स्तत्संसारसुखास्पदं वपुरभूदेवं दशागोचरम्।
शीर्यच्चर्मचयं पतत्पलभरं श्रयच्छिरापंजरं,
व्यस्यत्सन्धिबलं गलन्नलकुलं कुथ्यत्स्नसाजालकम्॥१।१२२॥

द्वितीयाश्वास में वर्णित अनुप्रेक्षायें एक बार पुनः संसार की वास्तवविकता का परिचय देती हैं। सांसारिक ऐश्वर्य एवं विलासिता के आकर्षण का वर्णन द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ आश्वास में हुआ है। इसके पड़ कर मानव अस्त-बुद्धि हो जाता है, चेतावनी पर भी ध्यान नहीं देता :—

एवं मन्दिरद्रविणदारतनूद्भवाद्यैस्तृष्णातमोभिरनुबन्धिभिरस्तबुद्धिः।
क्लिश्नास्यहर्निशमिमं न तु चित्त वेत्सि दण्डं यमस्य निपतन्तमकाण्ड एव॥
४। पृ० ८४॥

मृत्यु के उपरान्त मानव के सभी ऐश्वर्य व्यर्थ हैं (आ० ५–**सैवेयं नगरी तदेव भवनं**···) उसे अपने ही सदसद् कर्मों का फल भोगना पड़ता है, इसका निदर्शन पंचम आश्वास में हुआ है। जन्मान्तर कथाओं द्वारा स्थायीभाव निर्वेद को पुष्टि मिली है। अन्तिम तीन आश्वासों में दृष्टान्तों एवं धर्मोपदेशों द्वारा उसे परिपक्वावस्था तक पहुँचाया गया है। सभी पात्रों द्वारा संसार-त्याग कर तपोन्मुख होना—धर्म महोत्सव में दीक्षा ग्रहण करना तथा चरम शान्ति की उपलब्धि करना—स्थायी-भाव निर्वेद का रसरूप में परिणत होना है।

यशस्तिलक चम्पू सोमदेव सूरि की प्रौढ रचना है। पौराणिक इतिवृत्त पर आश्रित इस रचना में एक महाकाव्य के लिये अनिवार्य सभी प्रकार के वर्णन उपलब्ध हैं। प्रथम आश्वास के आरम्भ से लेकर पंचम आश्वास के अन्त तक इसका गद्य-पद्य भाग कवित्त्वपूर्ण एवं मनोहर है। अनेक शास्त्रों के उद्धरण और उनके विचारों का प्रस्तुतीकरण सोमदेव की विद्वत्ता के परिचायक हैं। छठे-सातवें आश्वासों में कवि ने विविध दृश्यों को प्रस्तुत कर अन्य गद्य-काव्यों की परम्परा

से भिन्न एक नूतनता का सृजन किया है। इसमें छन्दों के विविध प्रकार के प्रयोग हैं। जैन-धर्म के महत्त्व की प्रतिष्ठा इस काव्य का उद्देश्य है। इस काव्य का मुख्य रस शान्त है, अन्य रस अंग बन कर आये हैं। अपने काव्य की समाप्ति पर सोमदेव ने कहा है :—

वर्णः पदं वाक्यविधिः समासो लिंगं क्रिया कारकमन्यतन्त्रम् ।
छन्दो रसो रीतिरलंक्रियार्थो लोकस्थितिश्चात्र चतुर्दश स्युः ॥

प्रौढ, कवित्त्वपूर्ण एवं वर्ण्य-विषय के अनुरूप भाषा-शैली के सहित विविधता का प्रदर्शन इस यशस्तिलक की निजी विशेषता है। इस काव्य के लोकस्थिति-नाम्नी विशेषता के लिये :—यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, लेखक—कृष्णकान्त हण्डीकी एम. ए., प्रकाशक—जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, १९४९—नामक बृहत् ग्रन्थ देखा जा सकता है। यशस्तिलक की हस्तलिखित प्रति का परिचय द्रष्टव्य—पिटर्सन, रिपोर्ट २, (१८८४) सं० २७४।

उपसंहार

१—काव्य का स्वरूप, उसके भेद एवं चम्पू काव्य—

मानव की अनुभूति और अभिव्यक्ति का मणि-कांचन योग जब वाणी के माध्यम से अपना चमत्कार प्रदर्शित करता है तब उसे वाङ्मय कहा जाता है। वैदिक काल से लेकर आज तक, संस्कृत वाङ्मय की धारा अजस्र गति से प्रवाहित हो रही है। वाङ्मय को शास्त्र और काव्य इन दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। शास्त्र पुरातन हो सकता है किन्तु काव्य या रागात्मक साहित्य नित्य नूतन बना रहता है। काव्य के, या रागात्मक साहित्य के निर्माण में कवि की सृजनात्मक कल्पना, महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है।

आचार्यों के काव्य की अनेक परिभाषायें दी हैं, जिनमें "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" संक्षिप्त एवं उत्कृष्ट परिभाषा है। काव्य की पुरुष शरीर से तुलना की गयी है। शब्द और अर्थ काव्य-पुरुष के शरीर हैं, रस आत्मा है, ध्वनि प्राण है, ओज-माधुर्य आदि उसके गुण हैं। अलङ्कार उसके शृङ्गार के साधन हैं, रीतियां उसके आचरण की अभिव्यक्ति करती हैं।

इन्द्रियग्राहिता के आधार पर, काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद किये जाते हैं। दृश्यकाव्य में रूपकों और उपरूपकों की गणना की जाती है, अर्थ की रमणीयता या व्यङ्ग्य के आधार पर श्रव्यकाव्य के उत्तम, मध्यम, अधम आदि भेद किये गये हैं। शैली के आधार पर श्रव्यकाव्य के तीन भेद किये गये हैं—पद्यकाव्य, गद्यकाव्य और मिश्रकाव्य।

पद्यकाव्य के अन्तर्गत पद्यात्मक मुक्तक, महाकाव्य और खण्डकाव्य आते हैं। राजशेखर, भोज और आचार्य विश्वनाथ ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से इनके अनेक भेद प्रदर्शित किये हैं। मुक्तककाव्य प्रबन्धकाव्य का अंग बनकर भी आ सकता है। उस समय भी उसके चमत्कार एवं काव्यगत सौन्दर्य में कमी नहीं आती।

गद्यकाव्य के भी दो भेद किये गये हैं—गद्यात्मक मुक्तक और प्रबन्धात्मक गद्यकाव्य। वृत्तगन्धोज्झित, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय, चूर्णक आदि गद्य मुक्तकों के भेद हैं। वस्तुतः ये गद्य की शैलियां हैं। प्रबन्धात्मक गद्यकाव्य के, आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा तथा कथानिका आदि भेद किये गये हैं। आचार्य दण्डी ने इन सबको एक ही जाति की भिन्न-भिन्न संज्ञायें कहा है।

गद्य-पद्य की मिश्रित शैली में निर्मित काव्य ही मिश्रकाव्य कहलाता है। रूपक, उपरूपक आदि मिश्र शैली में लिखे जाने पर भी, दृश्य काव्यान्तर्गत हैं। मिश्र शैली के काव्यों में गद्य-पद्य काव्य का समन्वित आनन्द प्राप्त होता है। इसके भी दो भेद हैं—ख्यात और प्रकीर्ण। प्रकीर्ण, मुक्तक मिश्रकाव्य है। इसके अन्तर्गत करम्भक, विरुद, घोषणा, आज्ञापत्र या दानपत्र की गणना होती है। मिश्रकाव्य के ये मुक्तक भी मिश्र शैली में लिखे गये प्रबन्धात्मक काव्य के अंग बनकर आ सकते हैं।

श्रव्य काव्य के अन्तर्गत प्रबन्धात्मक मिश्र काव्य का एकमात्र एवं सर्वोत्कृष्ट अंग चम्पू काव्य है। अन्य काव्यांगों की भांति चम्पू काव्यों में भी सहृदय हृदय को चमत्कृत, विस्मित, पवित्र और प्रसन्न करने की अद्भुत क्षमता होती है।

चम्पू काव्य की आचार्यों ने जितनी भी परिभाषायें दी हैं, वे अतिव्याप्ति अथवा अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हैं। 'गद्य-पद्यमय काव्य चम्पू कहा जाता है' यह लक्षण सामान्य कथा-कहानियों तक घटित होने के कारण अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त है। हेमचन्द्र की परिभाषा के अनुसार चम्पू काव्य को गद्य-पद्यमय होने के अतिरिक्त सांक और सोच्छ्वास भी होना चाहिए। यह सांकता और सोच्छ्वासता सभी चम्पू काव्यों में नहीं उपलब्ध होती, अतः यह लक्षण भी अव्याप्ति दोष से ग्रस्त है। दृश्य काव्य न होते हुए भी विश्वगुणादर्श चम्पू आदि कुछ चम्पू काव्य उक्ति-प्रत्युक्ति से सम्पन्न हैं। अतः डा० सूर्यकान्त द्वारा नृसिंह चम्पू की भूमिका में उद्धृत, चम्पू काव्य की परिभाषा के अन्तर्गत "उसके भीतर उक्ति-प्रत्युक्ति नहीं होना चाहिए" कथन कोई विशेष अर्थ नहीं रखता।

२—चम्पू काव्य की विशेषतायें एवं अन्य काव्यांगों से अन्तर—

सिद्धान्त ग्रन्थों में दी गई परिभाषायें दोषग्रस्त हैं। चम्पू काव्यनिर्माताओं के दृष्टिकोण से भी चम्पू काव्य के लक्षण-निर्धारण में कोई सहायता नहीं मिलतीं। इनके कथनानुसार चम्पू काव्य प्रबन्धकाव्य है, वह गद्यपद्यमय होता है, अतः उसमें पृथक्-पृथक् गद्यकाव्य या पद्यकाव्य की एकांगिता नहीं होती। इसके द्वारा गद्य-पद्यकाव्य का समन्वित आनन्द मिलता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने भी चम्पू काव्य की विशेषताओं की ओर संकेत किया है। उनके कथनानुसार चम्पू काव्य गद्य-पद्यमय होता है, परन्तु इसमें गद्यपद्य के प्रयोग की मात्रा एवं प्रयोजन निश्चित नहीं है। चम्पू काव्य का अंगीरस कोई भी हो सकता है और उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं मिलती, जो गद्य या पद्यकाव्यों में न उपलब्ध होती हो।

उपलब्ध चम्पू काव्यों के अध्ययन के आधार पर, चम्पू काव्य की वस्तुगत, नायकगत, रसगत और शैलीगत अनेक विशेषतायें उपलब्ध होती हैं। इन विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि चम्पू काव्य प्रबन्धकाव्य है, यह मुख्यरूप से स्तवक, उच्छ्वास या उल्लासों में विभाजित होता है। एक से लेकर बाईस उच्छ्वासों तक के चम्पू काव्य हो सकते हैं। मुख्यकथा के अतिरिक्त प्रासंगिक और अवान्तर कथाओं का भी उनमें समावेश हो सकता है। इनके वस्तु-ग्रहण के मूलस्रोत पुराण हैं, पर अन्य सामान्य घटनायें भी चम्पू काव्य का विषय बन सकती हैं। वस्तु-विकास मन्थर गति से होता है और वर्णन-विस्तार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

चम्पू काव्य का नायक देवता, गन्धर्व, मानव, पक्षी आदि कोई भी हो सकता है। नायिका, चम्पू काव्य के लिये अनिवार्य नहीं है। इसमें पात्रों की संख्या पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। चम्पू काव्य का अङ्गीरस शृङ्गार, वीर और शांत में से कोई भी हो सकता है, अन्य रसों का प्रयोग अंगरूप में होना चाहिए।

चम्पू काव्यों के वर्णन के लिए अन्य पुरुषात्मक और कथोपकथनात्मक दोनों प्रकार की शैलियों का प्रयोग हो सकता है। चम्पू काव्य गद्य-पद्यमय होता है और दोनों का समान स्तर पर समान उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जाता है। अलंकृत और गाढ़बद्ध पदावली उत्कृष्ट चम्पू काव्य के लिए अनिवार्य है। इसमें अन्य कवियों एवं ग्रन्थों के उद्धरण भी आवश्यकतानुसार दिये जा सकते हैं। चम्पू काव्य में वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार का छन्द प्रयुक्त हो सकता है। इसका आरम्भ महाकाव्य की भाँति भी हो सकता है और पुराणों की भाँति भी, जिनके आरम्भ में मंगलवाक्य और अन्त में कथाश्रवण के फल का निर्देश होता है।

चम्पू काव्य की निर्दोष परिभाषा के निर्माण में कठिनाई का कारण यह है कि न तो सभी चम्पू काव्य किसी विशिष्ट शास्त्रीय बन्धन को स्वीकार करते हैं और न ही चम्पू काव्यों के निर्माण की कोई एक विशिष्ट परम्परा रही है। चम्पू काव्य-निर्माताओं ने काव्य-निर्माण में पूर्ण स्वच्छन्दता का उपयोग किया है, अतः चम्पू काव्यों में इतनी बहुविधता है कि किसी सामान्य परिभाषा के अन्तर्गत, परस्पर विरोधी अनेक विशेषताओं का समाहार कर सकना सम्भव नहीं है।

चम्पू काव्य की प्रचलित परिभाषा में सबन्धता का निर्देश कर इसे मुक्तक मिश्रकाव्यों से पृथक् किया जा सकता है। इसी प्रकार कवियों की अलंकरण और

वर्णन-विस्तार की प्रवृत्ति को भी चम्पू काव्य के लक्षण में निहित किया जा सकता है। इस प्रकार चम्पू काव्य का लक्षण—

गद्यपद्यमयं श्रव्यं सबन्धं बहुवर्णितम्।
सालंकृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्॥

हो सकता है।

चम्पू काव्य का महाकाव्य एवं खण्डकाव्य से साम्य भी है और वैषम्य भी। यह विषमता कथावस्तु के ग्रहण, नायक के चयन और शैली के अवलम्बन आदि सभी अंशों में दिखाई पड़ती है। किसी भी महाकाव्य या खण्डकाव्य के अन्तर्गत अन्य कवियों या ग्रन्थों के श्लोक उद्धृत नहीं किये गये हैं, और न ही उनके अन्त में कथाश्रवण का फल निर्देश किया गया है। चम्पूकाव्यों में ये विशेषतायें उपलब्ध होती हैं। चम्पू काव्यों के एक ही उल्लास में अनेक प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। महाकाव्य के एक सर्ग में केवल अन्तिम कुछ छन्द परिवर्तित होते हैं। खण्डकाव्य में वर्णन-विस्तार कम होता है पर आठ उच्छ्वासों से कम चम्पू काव्य भी वर्णन का ताना-बाना बुनते चलते हैं। गद्यकाव्य के साथ चम्पू काव्य का साम्य अधिक है। वस्तु-ग्रहण में भी, नायक-चयन में भी तथा शैली और वर्णन के विस्तार में भी। उत्कृष्ट चम्पू काव्यों का गद्यभाग गद्यकाव्य की तरह ही अलंकृत और समस्त पदावली से सम्पन्न है। गद्यकाव्यों में यथावसर पद्यकाव्य के समावेश से उन्हें एक प्रकार के चम्पू काव्य का रूप दिया जा सकता है। ऐसे चम्पू काव्य केवल अन्यपुरुषात्मक शैली के चम्पू काव्य के उदाहरण बनेंगे, कथोपकथनात्मक शैली के उदाहरण नहीं। अतः गद्यकाव्य और चम्पू काव्य की पारस्परिक भिन्नता फिर भी शेष रह जाती है।

रूपक, उपरूपक अभिनेय होते हैं। चम्पू काव्य कथोपकथनात्मक शैली में लिखे जाने पर भी अभिनेय नहीं हैं। ये वर्णनप्रधान हैं। दृश्यकाव्यों के लिये वर्जित-वर्ण्य-विषय भी चम्पू काव्यों में उन्मुक्त भाव से वर्णित हुए हैं।

चम्पू भिन्न मिश्र शैली में लिखे गये विरुद, करम्भक, घोषणा आदि में वस्तु का अभाव होता है। चम्पू काव्य बन्धयुक्त होता है, अतः ये मिश्र मुक्तक चम्पू काव्य के उसी प्रकार अंग बनकर आ सकते हैं, जैसे पद्यमुक्तक महाकाव्य के अंग बनकर।

३—मिश्रकाव्य के विकास की पृष्ठभूमि—

मिश्र शैली का आरम्भिक रूप ब्राह्मण ग्रंथों के उपाख्यानों में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए ऐतरेय ब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान लिया जा सकता है।

कथाश्रित होने के कारण इनकी मिश्र शैली में वर्णन-विस्तार, सूक्तियों का प्रयोग, भाषा की सरलता और कहीं-कहीं अलंकारों की छटा एवं प्रासंगिक लघु कथाओं के संकेत आदि दृष्टिगोचर हो जाते हैं। उपनिषदों में से कुछ मिश्र शैली में लिखे गये हैं, इनकी कथायें आध्यात्मिक और उपदेशप्रधान हैं। कुछ उपनिषदों में पद्यों की बहुलता है, इनमें रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से आ गये हैं। कहीं-कहीं प्रौढ़ एवं लालित्यपूर्ण गद्यभाग के भी दर्शन हो जाते हैं।

सूत्रकाल में गद्य की जिस संक्षिप्त शैली को प्रश्रय मिला, उसके कारण न तो प्रबन्धात्मक गद्यकाव्य लिखा गया और न उसके अलंकृत और भव्य रूप का ही दर्शन होता है। कुछ समय के उपरान्त पतञ्जलि के महाभाष्य में गद्य का विवेचनात्मक एवं शास्त्रार्थप्रधान शैली का रूप मिलता है।

पतञ्जलि के उपरान्त गद्य की एक विशिष्ट दिशा बन गई। उसमें गाढ़बद्धता को प्रश्रय मिलने लगा। इस काल तक की मिश्र शैली का प्रबन्धात्मक रूप अर्थ कथा सहित जातक कथाओं में दिखाई पड़ता है। एक ओर इनका गद्यभाग सरल है और दूसरी ओर पद्यभाग नीति एवं उपदेशपरक।

ईसवी सन् के आरम्भ होने से पूर्व ही, समासयुक्त-विशेषणों को जोड़कर, गद्यमय वाक्य के विस्तार की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। आगे चलकर रुद्रदामन के गिरनार वाले शिलालेख एवं आर्यसूर की जातकमाला में विशेषणसहित अलंकृत गद्यखंडों के दर्शन होते हैं। जातकमाला का पद्यभाग भी प्रौढ़ एवं कवित्वपूर्ण है। चम्पू काव्यों पर इसके सीमित प्रभाव को स्वीकार किया जा सकता है।

द्वितीय शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक कवियों द्वारा अलंकार-प्रदर्शन को अधिक महत्त्व दिया गया। बृहत् समस्त पदावली के भीतर अलंकारों का सन्निवेश, इस युग की मुख्य विशेषता रही है। इस अवधि की मिश्र शैली ने भी पृथक्-पृथक् विविध मार्गों का अनुसरण किया:—(१) गद्य-पद्य के सरलतम रूप को अपनाये हुए लोक और नीति कथा सम्बन्धी पंचतन्त्र आदि ग्रन्थों की दिशा एक रही है। (२) मिश्र शैली की दूसरी धारा पौराणिक शैली की ओर मुड़ी है, जिसका प्रौढ़तम एवं अलंकृत रूप, श्रीमद्भागवत के आख्यानों एवं चरित-वर्णनों में दिखाई पड़ता है। रामायण, महाभारत और भागवत, चम्पू काव्यों के वस्तुग्रहण के लिये मूलस्रोत रहे हैं। अतः वर्ण्य-विषय एवं शैली, दोनों दृष्टियों से पुराणों का ऋण चम्पू काव्यों पर दिखाई पड़ता है। (३) तीसरी धारा रूपकों और उपरूपकों के रूप में विकसित हुई है। चम्पू काव्यों पर इनका प्रत्यक्ष प्रभाव

नहीं दिखाई पड़ता। परवर्तीकाल में कुछ चम्पू काव्य, अवश्य संवाद शैली में लिखे गये हैं, पर वे या तो पद्यबहुल हैं या गद्यबहुल।

मिश्र शैली का जो रूप चम्पू काव्यों में गृहीत हुआ है, उसका विकास मुख्यतः शिलालेखों की प्रशस्तियों में हुआ है। हरिषेण की प्रयाग-प्रशस्ति, चम्पू काव्य का प्रथम एवं उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इसका गद्य-पद्य दोनों भाग प्रौढ़ है। इस काल के प्राप्त अनेक शिलालेख कवियों की उस रुचि को स्पष्ट करते हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि नगर, राजा और उसकी प्रशस्ति के वर्णन करने की ओर उनका झुकाव अधिक रहा है।

गद्य का अलंकृत और समासबद्ध रूप आठवीं शताब्दी के अन्त तक गद्य-काव्यों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गया। इस समय तक पद्यबद्ध काव्य भी अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त कर चुके थे। इस अवस्था में भी मिश्र शैली का प्रशस्तिकपरक-काव्यात्मक रूप दशवीं शताब्दी से पूर्व, शिलालेखों की गोद न छोड़ सका।

आर्यसूर की जातकमाला के निर्माणकाल के आसपास ही तमिल में शिलप्प-दिकारम् की रचना हुई। यह कथात्मक काव्य तो है ही, इसमें कुछ अलंकृत गद्यखंड भी उपलब्ध होते हैं। तमिल साहित्य में भी चौथी शताब्दी से लेकर दशवीं शताब्दी तक भाषा के अलंकरण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इसी अवधि में संस्कृत की तत्सम पदावली से सम्पन्न तमिल भाषा की एक शैली 'मणिप्रवाल' के नाम से विकसित हुई। इस शैली के प्रयोग का क्षेत्र कन्नड़ और मलयालम् भाषाओं तक विस्तृत हो गया। इस शैली के कारण दक्षिण भारत की इन तीनों भाषाओं का संस्कृत से अधिक सान्निध्य रहा।

शैवों, वैष्णवों एवं जैन कवियों द्वारा दसवीं शताब्दी के पूर्व ही तमिल में अनेक काव्य रचनायें प्रस्तुत की गयीं। तमिल की ये जैन कृतियाँ, जैन चम्पू काव्यों के लिये तो निश्चितरूप से प्रेरणा का स्रोत बनीं। शैवों और वैष्णवों का प्रभाव भी, तत्सम्बन्धी चम्पू काव्यों की धाराओं पर पड़ा। मणिप्रवाल शैली में चौदहवीं शताब्दी तक के कई शिलालेख मिलते हैं जिनमें कन्नड़ और संस्कृत का मिश्रित प्रयोग हुआ है। ये शिलालेख मिश्र शैली में भी हैं।

दशवीं शताब्दी तक के कई शिलालेख ऐसे हैं, जिनमें चम्पू काव्य की अधिकांश विशेषतायें उपलब्ध होने लगती हैं। उदाहरण के लिये गद्य-पद्य भाग का अलंकृत होना, वर्णन में गद्यपद्य का समान स्तर, समस्त पदावली, अन्य कवियों की सूक्तियों का प्रयोग, प्रबन्धमयता, आरम्भ में वन्दना, अन्त में मंगलवाक्य एवं कवि-परिचय आदि के दर्शन इन लेखों में किये जा सकते

हैं। इनमें चूर्णि तथा वृत्त आदि पारिभाषिक विशेषताओं वाले शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

दशवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से ही, चम्पू काव्यों का विधिवत् निर्माण आरम्भ हो जाता है। इस समय तक इनके लिये आदर्श रूप में अनेक गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, पुराण, प्रशस्तियाँ एवं तमिल कृतियाँ अपने वर्ण्य विषय एवं शैली सहित विद्यमान थीं। यद्यपि पन्द्रहवीं शताब्दी तक गिनती के ही चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं, परन्तु वे चम्पू काव्य की बाद में विकसित सभी धाराओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं।

तेरहवीं शताब्दी से ही शिलालेखों में दिखाई पड़ने वाली, शृंगारिक प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास सोलहवीं शताब्दी और उसके उपरान्त के निर्मित चम्पू काव्यों में दिखाई पड़ता है। इसी समम केरली में अनेक पौराणिक चम्पू काव्य, तेलुगु में विविध पुराण एवं परिणय काव्य लिखे गये। चम्पू काव्यों में से अधिकांश की रचना दक्षिण भारत में ही हुई, अतः वहाँ की साहित्यिक प्रवृत्तियों ने इन्हें भी प्रभावित किया और चम्पू काव्यों में से भी अनेक परिणय काव्य, इसी समय लिखे गये। संस्कृत साहित्य की अन्य काव्यधारायें जब सूख रही थीं, चम्पू काव्यधारा अपने प्रखर वेग से प्रवाहित हो रही थी। १९ वीं शताब्दी के मध्य तक चम्पू-काव्यों का निर्माण अधिक संख्या में होता रहा है और संस्कृत के कुछ विद्वान् अब भी इस दिशा में प्रयास कर लेते हैं।

४—प्रकाशित एवं अप्रकाशित उपलब्ध चम्पू काव्य

इस शोधप्रबन्ध में २४५ चम्पू काव्यों का उल्लेख किया गया है। इनमें से १०२ चम्पू काव्यों का कुछ विस्तृत परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। इन परिगणित चम्पू काव्यों में से केवल ७४ चम्पू काव्य प्रकाशित हुए हैं, शेष चम्पू-काव्यों के लिये वर्णनात्मक सूची-पत्रों, संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रन्थों एवं अन्य सम्भव स्रोतों का आश्रय लिया गया है। संस्कृत काव्य परम्परा के अनुरूप ही चम्पूकाव्य-निर्माताओं ने भी अपना पूर्ण परिचय नहीं दिया है। नामोल्लेख, माता-पिता के नाम निर्देश तथा गोत्र और अधिक से अधिक निवास-स्थान तथा आश्रयदाता के संक्षिप्त परिचयमात्र से ही, उन्होंने सन्तोष कर लिया है।

इन परिगणित चम्पू काव्यों में से नल चम्पू, यशस्तिलक चम्पू, जीवन्धर चम्पू, रामायण चम्पू, भागवत चम्पू, भारत चम्पू, वरदाम्बिका परिणय चम्पू, रामानुज चम्पू, पारिजातहरण चम्पू, यात्राप्रबन्ध चम्पू, आनन्दकन्द चम्पू, आनन्दवृन्दावन चम्पू, नृसिंह चम्पू, मन्दारमरन्द चम्पू, स्वाहासुधाकर चम्पू,

विश्वगुणादर्श चम्पू, नीलकंठ विजय चम्पू, द्रौपदी परिणय चम्पू, श्रीनिवास चम्पू, गंगावतरण चम्पू, आनन्दरंगविजय चम्पू, भागीरथी चम्पू, रघुनाथ विजय चम्पू, कविमनोरंजक चम्पू तथा चोल चम्पू आदि कुछ ही चम्पू काव्य अधिक प्रसिद्ध हैं।

५—वर्ण्य वस्तु एवं मूलस्रोत के आधार पर चम्पू काव्यों का वर्गीकरण

चम्पू काव्यों के मूलस्रोतों में से, रामायण पर ३६, महाभारत पर २७, भागवत पर ४५, शिवपुराण पर १८, अन्य पुराणों पर २३, जैन पुराणों पर ६, ऐतिहासिक और सामान्य व्यक्तियों के चरित पर ४८, विविध व्यक्तियों की यात्रा का वर्णन प्रस्तुत करने वाले १३ चम्पू काव्य उपलब्ध हैं। यात्रा प्रवन्धों में से ३ ऐतिहासिक राजाओं की तीर्थयात्रा का वर्णन करते हैं। स्थानीय देवताओं के चरित या उनके महोत्सवों को प्रस्तुत करने वाले २५ चम्पू काव्य प्राप्त हैं। दो चम्पू काव्य दार्शनिक दृष्टिकोण स्पष्ट करते हैं और ५ चम्पू काव्य किंवदन्तियों अथवा काल्पनिक कथाओं पर निर्भर करते हैं। रामायण और महाभारत पर आश्रित चम्पू काव्यों में से कुछ समग्र कथा का स्पर्श करते हैं, कुछ उपाख्यानों पर आश्रित हैं और कुछ अन्य पात्रों के चरित प्रस्तुत करते हैं।

चम्पू काव्यों की रचना का आरम्भ त्रिविक्रम भट्ट के नल चम्पू से होता है। इसका रचनाकाल ९१५ ईसवी है। पन्द्रहवीं शताब्दी तक विविध प्रकार के केवल २० चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं, जिनसे चम्पू काव्य निर्माण की विविध दिशायें सूचित हो जाती हैं। १६ वीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर लगभग २५० वर्षों तक, निरन्तर चम्पू काव्यों की रचना होती रही है। दो सौ से ऊपर चम्पू काव्य इसी काल में लिखे गये हैं।

चम्पू काव्य-निर्माता दो प्रकार के व्यक्ति हैं—राज्याश्रित और स्वतन्त्र। राज्याश्रित कवि या तो दक्षिण भारत के विजयनगर, तंजोर, त्रावन्कोर एवं मैसूर के दरबारों से सम्बद्ध रहे हैं अथवा उत्तर भारत के रीवां, ओरछा, काशी एवं बर्दवान के राजदरबारों से।

स्वतन्त्र रूप से चम्पू काव्यों की रचना करने वाले कवि, विविध वैष्णव या शैव साम्प्रदायों से सम्बद्ध रहे हैं। इनका सम्वन्ध, विविध मठों या मन्दिरों से रहा है। उत्तर भारत में चैतन्य महाप्रभु के कई शिष्यों ने चम्पू काव्यों की रचना की है।

पौराणिक चम्पू काव्यों की रचना सर्वाधिक हुई है और उसके बाद चरित चम्पू काव्यों का स्थान आता है। चम्पू काव्यों के लोकप्रिय मूलस्रोत भागवत, रामायण और महाभारत रहे हैं।

चम्पूकाव्यों के निर्माण में भक्ति आन्दोलन एवं दरबारी वातावरण ने प्रभावकारी शक्तियों के रूप में कार्य किया है। सोलहवीं शताब्दी के बाद के भक्तिपरक चम्पूकाव्यों में भी शृङ्गार और विलासिता के उत्तान-चित्र प्राप्त होते हैं। इसे दरबारी वातावरण का प्रभाव ही समझना चाहिए। परिणय चम्पू काव्यों के निर्माण की ओर कवियों की अधिक रुचि भी दरबारी वातावरण के प्रभाव को ही सूचित करती है।

शैव चम्पू काव्यों में उत्तान शृङ्गार का रूप प्राप्त नहीं होता। वैष्णव भक्ति की जो माधुर्य भावना, उन्मुक्त-शृङ्गार के वर्णन के लिये प्रेरणा देती थी, वैसी कोई प्रेरणा शैव चम्पू काव्यों में नहीं दिखाई पड़ती। चम्पू काव्य प्रायः धार्मिक कट्टरता से दूर हैं, परन्तु कविमनोरंजक चम्पू इसका अपवाद भी है, जिसमें परमभागवत सीताराम सूरि ने शिव की स्तुति में एक भी श्लोक नहीं लिखा।

उत्तर भारत में केवल ४६ चम्पू काव्यों की रचना हुई, जब कि शेष सभी चम्पू काव्य दक्षिण भारत में लिखे गये। भक्ति आन्दोलन का उस समय सर्वाधिक जोर दक्षिण भारत में ही था। हिन्दू राज दरबारों में उस समय कवियों को प्रश्रय भी अधिक मिला, अतः दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन और दरबारी वातावरण ने चम्पू काव्यों के निर्माण में प्रेरक शक्तियों का कार्य किया। उस समय उत्तरी भारत मुसलमानों से आक्रान्त था, किन्तु भक्ति की जो धारा दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर प्रवाहित हुई उसने उत्तर भारत में रचित कुछ चम्पू काव्यों को भी प्रभावित किया है।

६—यशस्तिलक चम्पू का विशिष्ट अध्ययन—

यशस्तिलक चम्पू काव्य के रचयिता सोमदेव सूरि राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण तृतीय के आश्रित कवि थे। इस चम्पू काव्य की रचना ९५९ ई० में हुई थी। सोमदेव की अन्य रचना "नीतिवाक्यामृत" उपलब्ध है। सोमदेव के व्यक्तित्व में एक दार्शनिक और साहित्यिक का सुन्दर समन्वय हुआ है।

यशोधर का चरित जैन कवियों में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। इस चरित को आधार बनाकर संस्कृत में १७, प्राकृत में १, अपभ्रंश में २, कन्नड़ में १, तमिल में १, प्राचीन गुजराती में ६ तथा हिन्दी में १—रचनायें उपलब्ध हैं।

यशस्तिलक चम्पू में, राजा मारिदत्त द्वारा मुनि सुदत्त से जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन हुआ है। मारिदत्त जैसे क्रूरकर्मा राजा को धार्मिक बनाने के लिये, मुनि सुदत्त के शिष्य अभयरुचि द्वारा यशोधर की कथा सुनाई गई है। हरिभद्र की प्राकृत रचना समराइच्चकथा के चतुर्थ भव में यशोधरचरित प्रस्तुत

किया गया है। जैन पुराणों में भी यशोधरचरित वर्णित है। सोमदेव ने इन्हीं प्राचीन सूत्रों से वस्तुग्रहण किया है और आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन भी कर लिया है। समकालिक पुष्पदन्त के "जसहर चरिउ" की कथा से यशस्तिलक चम्पू की कथावस्तु में साम्य है। कथावस्तु के प्रस्तुत करने में सोमदेव का साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अधिक व्यक्त हुआ है।

यशस्तिलक चम्पू में दो कथावस्तुएं संश्लिष्ट हैं। मारिदत्त की कथा, यशोधर की कथा की पृष्ठभूमि का कार्य संपादित करती है। प्रथम कथा का नायक मारिदत्त और द्वितीय का यशोधर है। सोमदेव ने एक कुशल-मनोवैज्ञानिक की भाँति, मारिदत्त, अभयरुचि, अभयमति, मुनिसुदत्त, यशोधर, चन्द्रमति, अमृतमति, यशोमति तथा अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है।

नायक के गुणों का ध्यान रखते हुए, मारिदत्त का परिवर्तनशील चरित्र यशोधर की अपेक्षा अधिक सबल दिखाई पड़ता है।

सोमदेव ने काव्य-सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को, इस चम्पू काव्य के आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है। सोमदेव ने पूर्ववर्ती गद्यकाव्यों का प्रत्यक्ष अनुकरण तो नहीं किया है, किन्तु वर्ण्य-विषय, वस्तु-विधान आदि में उनका पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है। वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरित आदि के कई स्थलों से यशस्तिलक के तत्सदृशस्थलों का, वर्णन-साम्य दिखाई पड़ता है।

सोमदेव को सर्वाधिक सफलता, रूपचित्रण, घटना एवं वर्ण्य-विषय के अनुकूल वातावरण के सृजन, सैन्य वर्णन तथा मानव प्रकृति के गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन में मिली है।

यशस्तिलक की गद्य शैली अत्यन्त प्रौढ़ है। इसमें वृत्तगन्धोज्झित, वृत्तगन्धि आदि सभी प्रकार की शैलियों से सम्पन्न स्थल उपलब्ध हो जाते हैं। इसमें वर्ण्य-विषय के अनुकूल गाढ़बद्ध वृहत् समस्त पदावली भी हैं और सरल, व्यस्त तथा छोटे-छोटे वाक्य भी। सोमदेव ने बीच-बीच में संवादों का भी उपयोग किया है और उनमें पर्याप्त नाटकीयता भी है।

पद्य दोनों प्रकार के हैं, काव्यात्मक भी और सूक्तियों के समकक्ष भी। मुक्तकों के युग्मक, कुलक आदि भेदों का कई स्थलों पर प्रयोग हुआ है। अनेक तथाकथित कवियों के नाम से विविध पद्य प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ समस्या-पूर्तियाँ भी हैं। नैतिक, धार्मिक और राजनीति सम्बन्धी अनेक सूक्तियां भी, इस काव्य में मिलती हैं।

सोमदेव ने यशस्तिलक के चतुर्थ आश्वास में अनेक प्रख्यात कवियों को उद्धृत किया है। बृहस्पति, शुक्र आदि के नीति सम्बन्धी, मनुस्मृति आदि के

व्यवस्था सम्बन्धी तथा पशुविज्ञान सम्बन्धी, अनेक उद्धरण सोमदेव ने अपने कथन की पुष्टि के लिये प्रस्तुत किये हैं।

यशस्तिलक में संस्कृत के वार्णिक और मात्रा, चतुष्पदी, पद्धतिका, घत्ता आदि मात्रिक छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। मदनावतार (मयणावयार) जैसा प्राकृत छन्द भी प्रयुक्त हुआ है। कवि की मात्रिक छन्दों के प्रयोग की रुचि, दक्षिण भारतीय भाषाओं में उस समय प्रचलित मात्रिक छन्दों के प्रयोग में कुशलता प्रदर्शित करने के लिये दिखाई पड़ती है।

गद्य-पद्य का प्रयोग समान स्तर पर हुआ है। अनेक साम्य-वैषम्य और शृङ्खलामूलक अलंकार प्रयुक्त हुये हैं। सोमदेव ने मूर्त के लिये अमूर्त और अमूर्त के लिये मूर्त उपमानों को भी ग्रहण किया है। यशस्तिलक में अनुप्रास की छटा और शाब्दी क्रीडा का रूप अधिकांश स्थलों पर देखा जा सकता है।

सोमदेव ने संस्कृत साहित्य में प्रचलित अनेक लोकोक्तियों का उपयोग, इस चम्पू-काव्य में किया है। कई प्रहेलिकायें भी आयी हैं।

यशस्तिलक चम्पू एक धार्मिक काव्य ग्रन्थ है। यह सोद्देश्य रचना है। पाँच आश्वासों में वस्तु का विकास हुआ है और शेष तीन आश्वास धार्मिक दृष्टिकोण से जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। काव्य का लक्ष्य, निर्वेद का परिपाक है। अतः इसका अंगी रस शान्त है। अन्य सभी रस अंग बनकर प्रयुक्त हुये हैं। धार्मिकता को प्रमुखता देते हुए भी सोमदेव शृंगार वर्णन में, किसी कवि से पीछे नहीं हैं।

यशस्तिलक चम्पू सोमदेव सूरि की प्रौढ़ रचना है। इसके द्वारा उनके गहन अध्ययन, प्रगाढ़ पांडित्य, काव्यसृजन की कुशलता तथा अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता का प्रदर्शन होता है। वर्ण्य-विषय के अनुरूप प्रौढ़, अलंकृत एवं सबल भाषा शैली सहित विविधता का प्रदर्शन, यशस्तिलक चम्पू काव्य की निजी विशेषता है।

गद्य-पद्य अथवा मिश्र शैली, मानव अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के साधनमात्र हैं। इन सभी साधनों का उपयोग वैदिक काल से ही होता चला आ रहा है। युग-प्रवृत्ति के अनुसार साहित्य के अन्तः एवं बाह्य स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। चम्पू काव्य भी एक युगविशेष की प्रवृत्तियों से अनुप्राणित होकर लिखे गये हैं। गद्य और पद्य के अत्यन्त प्रौढ़ तथा परिमार्जित स्वरूप ग्रहण कर लेने पर, चम्पू काव्यों की रचना आरम्भ हुई। अतः इनके गद्य-पद्य भाग में भी उसी प्रौढ़ता का दर्शन होता है। यदि कुछ चम्पू काव्य नल-चम्पू, यशस्तिलक चम्पू

या वरदाम्बिका परिणय जैसे चम्पू काव्यों के उच्च स्तर तक नहीं पहुँच सके हैं तो इससे उनके निर्माताओं की असमर्थता ही सिद्ध होती है। चम्पू काव्य भक्ति आन्दोलन और दरबारी वातावरण से प्रभावित हुए हैं। उत्तर भारत की आधुनिक भाषाओं में इन्हीं प्रवृत्तियों से अनुप्राणित होकर भक्ति एवं रीतिकालीन रचनायें सामने आयी हैं। उत्तर में संस्कृत भाषा ने अपना उत्तराधिकार इन भाषाओं को सौंप दिया था, परन्तु दक्षिण भारत में वह तत्कालीन भाषाओं के साथ-साथ साहित्य-भण्डार को समृद्ध करने में लगी रही। चम्पू काव्यों की महत्त्वपूर्ण देन यही है कि संस्कृत साहित्य की अन्य विधाओं के ह्रासकाल में भी, वे अपना वैभव प्रदर्शित करते रहे तथा संस्कृत भाषा और उसके साहित्य को कई सौ वर्षों तक गतिशील बनाये रख सके। युग-भावना के अनुसार चम्पू काव्यों ने अपने वर्णन का क्षेत्र भी विस्तृत कर लिया और प्राचीन पौराणिक परम्परा से अविच्छिन्न सम्बन्ध भी बनाये रखा। युग-प्रवृत्ति के अनुसार ही लोकमानस का अनुरंजन करते हुए उन्होंने अपना महत्त्व प्रतिष्ठापित किया है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की नूतनता ने ही, उनमें उस रमणीयता का समावेश किया जो सहृदय हृदय को आनन्द से आप्लावित और चमत्कृत करने में समर्थ हुई।

परिशिष्ट

अंग्रेजी के उद्धरण (पृष्ठ ३२)

"They use prose or verse indifferently for the same purpose."

The verses in these cases are either gnomic, or they serve to summarize the context of the story, as do the title verses of the Pancha Tantra, or occasionally they appear to lend greater effect to some point in the narrative as when a short speech is made in pointed form, or a specially important idea is thus underlined.

We have works written in the full kavya style in which the poet shows now his ability in prose and now in verses, without seeking to reserve verses for any special end.

A History of Sanskrit literature—by A.
Berriedale Keith Oxford University Press-1920
Page 332

"Who employ prose and verse indifferently".

The verse is not always specially reserved as one would expect for an important idea, a poetic description, an impressive speech, a pointed moral or a sentimental outburst, but we find that even for ordinary narrative and description, verse is as much pressed into service as prose.

The subject is drawn from legendary sources, although in some later champus miscellaneous subjects find a place.

The large number of champus that exist scarcely shows any special characteristic in matter and manner which is not already familiar to us from the regular metrical and prose kavyas.

The champus have neither the sinewy strength and efficiency of real prose, nor the weight and power of real poetry—the form no doubt affords scope for versatility, but the champu written as a rule, has no original voice of his own.

A History of Sanskrit Literature (Vol. I)
by S. N. Dasgupta, University of Calcutta 1947
Chapter-Champu-Page 1-2-3 (493-495)

"A narrative in mixed prose and verse has been called champu".

This variety of composition enlarges the scope and ease of the poets expression,

History of Classical Sanskrit Literature
by M. Krishnamachariar, Sanskrit Seriese,
Madras—page 496.

"It contains a free mingling of prose and verse in the course of a narration.

The puranas supplied them themes for Champus,

Sanskrit Literature—by K. Chandrashekhran
and V. H. Subramania Shastri,
The International Book House Ltd., Bombay Page 134.

—A kind of elaborate composition in which the same subject is continued through alternations in prose and verse.(Page 389. A Sanskrit-English Dictionary by Sir Monier Williams, Oxford University Press, New Edition 1956,

—A kind of elaborate and highly artificial composition in which—(Page 698 Sanskrit-English Dictionary Pt. II by P. K, Gode and C, G, Karve, Prasad Prakashan, Poona, 1958.

सहायक-ग्रन्थों की सूची

१—काव्यमीमांसा : राजशेखर

२—नाटयशास्त्र : भरत

३—अग्निपुराण : व्यास

४—काव्यादर्श : दण्डी

५—काव्यालंकार : भामह

६—काव्यालंकार : रुद्रट

७—काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति : वामन

८—काव्यप्रकाश : मम्मट

९—काव्यानुशासन : हेमचन्द्र

१०—काव्यानुशासन : वाग्भट्ट

११—प्रतापरुद्रीयम् : विद्यानाथ

१२—ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धन

१३—साहित्य-दर्पण : विश्वनाथ

१४—काव्यप्रकाश-टीका : माणिक्यचन्द्र

१५—चन्द्रालोक : जयदेव

१६—रसगंगाधर : जगन्नाथ पंडितराज

१७—भारतीय साहित्य-शास्त्र : बलदेव उपाध्याय

१८—दशरूपक : धनंजय

१९—सरस्वती-कंठाभरण : भोज

२०—व्यक्तिविवेक : राजानक महिमभट्ट, रुय्यक। जयरथ की टीका सहित

२१—संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय

२२—संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं भोलाशंकर व्यास

२३—ए हिस्ट्री आफ

संस्कृत लिट्रे-
चर : ए० बेरिडेल कीथ
२४—हिस्ट्री आफ
क्लासिकल
संस्कृत लिट्रेचर : एम० कृष्णमाचारियर
२५—संस्कृत लिट्रेचर : के० चन्द्रशेखरन् एवं सुब्रह्मण्य शास्त्री
२६—संस्कृत कविदर्शन : भोलाशंकर व्यास
२७—ए हिस्ट्री आफ
संस्कृत लिट्रेचर : एस० एन० दासगुप्ता
२८—रघुवंश : कालिदास
२९—वैदिक साहित्य : रामगोविन्द त्रिवेदी
३०—हरिश्चन्द्रोपाख्यान : सं० पं० महादेव पाण्डेय
३१—ईशादि नौ
उपनिषद् : ,,
३२—हीरक जयन्ती
ग्रन्थ : नागरी प्रचारिणी सभा; काशी
३३—व्याकरणमहा-
भाष्य : पतंजलि
३४—पालि साहित्य
का इतिहास : भरतसिंह उपाध्याय
३५—जातक : फासवाल
३६—जातकमाला : आर्यसूरि
३७—पञ्चतन्त्र : विष्णु शर्मा
३८—वेतालपञ्च-
विंशतिका : जम्बालदत्त
३९—द्वात्रिंशत्पुत्तलिका
सिंहासनम् : कलकत्ता
४०—कादम्बरी
(पूर्वार्ध) : बाणभट्ट
४१—विष्णुपुराण : निर्णयसागर प्रेस
४२—श्रीमद्भागवत
पत्रावली : काशी

४३—उत्कीर्ण-
लेखांजलि : सं० जयचन्द्र विद्यालंकार
४४—ट्वेन्टीफाइव
इन्स्क्रिप्सन्स : जे० गोंडा
४५—नालन्दा : हीरालाल शास्त्री
४६—तमिल और
उसका साहित्य : श्रीपूर्ण सोमसुन्दरम्
४७—जैनशिलालेख-
संग्रह : सं० हीरालाल जैन
४८—केरली साहित्य
दर्शन : रत्नमयी दीक्षित
४९—तेलुगु और
उसका साहित्य : हनुच्छास्त्री "अयाचित"
५०—रत्नकरण्ड
श्रावकाचार : समन्तभद्रस्वामी
५१—भारत के प्राचीन
राजवंश : विश्वेश्वर नाथ रेऊ, भाग ३,
५२—शिशुपालवध : महाकवि माघ
५३—त्रिषष्टिस्मृति-
शास्त्रम् : सं० मोतीलाल हीराचन्द गांधी
५४—मध्ययुग का
इतिहास : ईश्वरीप्रसाद
५५—हिन्दुत्व : रामदास गौड़
५६—भारती कविविमर्श : रामसेवक पाण्डेय
५७—गणक तरंगिणी : सुधाकर द्विवेदी
५८—नैषधीयचरितम् : श्रीहर्ष
५९—अद्वैतविद्या-
तिलकम् : धर्म्मय्य दीक्षित
६०—हिस्ट्री आफ
धर्मशास्त्र : पी० पी० काणे
६१—अभिज्ञान-
शाकुन्तलम् : कालिदास

६२—भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	:	सत्यकेतु
६३—वात्स्यायन कामसूत्र	:	सं० दामोदरदास गोस्वामी
६४—अमरुकशतक	:	अमरुक
६५—मेघदूत	:	कालिदास
६६—सौन्दरानन्द	:	अश्वघोष
६७—किरातार्जुनीयम्	:	भारवि
६८—गीतगोविन्द	:	जयदेव
६९—वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स	:	रा० गो० भण्डारकर
७०—दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक	:	त्रिभुवन सिंह
७१—यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर	:	के० के० हण्डीकी
७२—जैन साहित्य और इतिहास	:	नाथूराम प्रेमी
७३—समराइच्च कहा (कथा)	:	हरिभद्र—चतुर्थ भव
७४—महापुराण	:	पुष्पदन्त
७५—नीतिवाक्यामृत	:	सोमदेव
७६—जसहर चारिउ	:	पुष्पदन्त
७७—दशकुमार चरितम्	:	दण्डी
७८—वासवदत्ता	:	सुबन्धु
७९—हर्षचरितम्	:	बाण
८०—कुमारसंभव	:	कालिदास

सहायक प्रकाशित चम्पू काव्यों की सूची

१—मन्दारमरन्द चम्पू	:	कृष्ण कवि
२—रामायण चम्पू	:	भोजराज
३—नृसिंह चम्पू	:	दैवज्ञ सूर्य
४—नल चम्पू	:	त्रिविक्रम भट्ट
५—जीवन्धर चम्पू	:	हरिचन्द्र
६—गोपाल चम्पू	:	जीवराज
७—विश्वगुणादर्श चम्पू	:	वेंकटाध्वरि
८—बाल भागवतम्	:	पद्मराज
९—कुमारसंभव चम्पू	:	शरभोजी द्वितीय
१०—विद्वन्मोदतरंगिणी	:	चिरंजीव भट्टाचार्य
११—चित्र चम्पू	:	बाणेश्वर विद्यालंकार
१२—विरूपाक्षवसन्तोत्सव चम्पू	:	अहोबल
१३—चोल चम्पू	:	विरूपाक्ष
१४—वीरभद्र चम्पू	:	पद्मनाभ मिश्र
१५—यशस्तिलक चम्पू	:	सोमदेव
१६—नीलकंठविजय चम्पू	:	नीलकंठ दीक्षित
१७—आनन्दकन्द चम्पू	:	मित्र मिश्र
१८—कार्तवीर्य प्रबन्धम्	:	रामवर्मा
१९—द्रौपदीपरिणय चम्पू	:	चक्र कवि
२०—यात्रा प्रबन्धम्	:	समरपुंगव
२१—मदालसा चम्पू	:	सं० जे० बी० मोदक
२२—भोजप्रबन्ध	:	वल्लाल
२३—उदयसुन्दरी कथा	:	सोड्ढल
२४—भागवत चम्पू	:	अभिनव कालिदास
२५—भारत चम्पू	:	अनन्त भट्ट
२६—आनन्द वृन्दावन चम्पू	:	कविकर्णपूर
२७—मुक्त चरित्र	:	रघुनाथ दास
२८—बरदाम्बिकापरिणय चम्पू	:	तिरुमलाम्बा
२९—रामानुज चम्पू	:	रामानुजार्य

३०—पारिजात हरण चम्पू	:	शेषश्रीकृष्ण
३१—माधव चम्पू	:	चिरंजीव भट्टाचार्य
३२—मत्स्यावतार प्रबन्ध	:	नारायण भट्ट
३३—राजसूय प्रबन्ध	:	,,
३४—स्वाहा सुधाकर चम्पू	:	,,
३५—कोटि विरह	:	,,
३६—नृसिंह चम्पू	:	केशव भट्ट
३७—वरदाभ्युदय चम्पू	:	वेंकटाध्वरि
३८—उत्तररामचरित चम्पू	:	,,
३९—श्रीनिवास चम्पू	:	वेंकटकवि
४०—श्रीनिवास विलास चम्पू	:	कृष्ण कवि
४१—पद्मावती परिणय	:	श्रीशैल
४२—भार्गव चम्पू	:	अज्ञात
४३—आनन्दरंगविजय चम्पू	:	श्रीनिवास
४४—बालकृष्ण चम्पू	:	जीवन शर्मा
४५—वल्लीपरिणय चम्पू	:	सुब्रह्मण्य
४६—रामायण युद्धकाण्ड	:	गरलपुरी शास्त्रिन्
४७—भारत चरित	:	भागवत कृष्ण शर्मा
४८—जगद्गुरु विजय	:	श्रीकंठ शास्त्री
४९—रामचर्यामृत	:	कृष्णायंगर
५०—शंबरासुर विजय	:	भद्राद्रिराम शास्त्री
५१—रामायण चम्पू	:	सुन्दरवल्ली
५२—रामचम्पू	:	रामस्वामी
५३—गजेन्द्र चम्पू	:	पन्त विट्ठल
५४—लक्ष्मीश्वर चम्पू	:	रमाबाई
५५—लक्ष्मीश्वर चम्पू	:	अनन्तसूरि
५६—स्यानन्दूरपूर वर्णन	:	रामवर्मा
५७—राघव चम्पू	:	अनन्ताचार्य
५८—रथशेखर चरित	:	दयावर्धन गणी
५९—चन्द्रशेखर चम्पू	:	रामनाथ
६०—कुवलयाश्व विलास चम्पू	:	त्रिविक्रम
६१—भागीरथी चम्पू	:	अच्युत शर्मा
६२—रघुनाथ विजय चम्पू	:	कृष्ण कवि

६३—कवि मनोरंजक चम्पू : सीताराम सूरि
६४—प्रदोष माहात्म्यम् : प्रभाकर तालमण
६५—शंकराचार्य चम्पू : बालगोदावरी
६६—बेहुला नखिन्दरम् : भगवच्चन्द्र
६७—पुरुदेव चम्पू : जिनदास शास्त्री
६८—गुणेश्वर चरित चम्पू : बद्रीनाथ झा
६९—अनिरुद्ध चम्पू : अज्ञात
७०—सुदर्शन चम्पू : कृष्णानन्द कवीन्द्र
७१—कृष्णराजाभ्युदय : भगवतकृष्ण शर्मा
७२—श्रीकृष्णराजाभ्युदय : गीताचार्य
७३—गंगागुणादर्श : दत्तात्रेयशास्त्री
७४—भद्राचल चम्पू : राघवाचार्य

सहायक पत्रिकाओं की सूची

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका : अंक २-३, संवत् २०१४,
२—जर्नल, ओरियन्ट रिसर्च, मद्रास : वोल्यूम ९, १९३५-३७,
३—जर्नल बाम्बे ब्रांच, रायल एसियाटिक सोसाइटी : भाग १८ । वो० १ से १८ तक
४—प्राच्यवाणी : अंक १२,
५—एन इंडियन एफेमेरिज : वोल्यूम ६,
६—मैसूर संस्कृत कालेज जर्नल : मैसूर, १, ५, ११ वोल्यूम
७—जर्नल आफ द ट्रावन्कोर यूनिवर्सिटी : त्रिवेन्द्रम
८—विश्ववाणी : जैन संस्कृति अंक १९४२, इलाहबाद
९—जर्नल आफ भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट : पूना

Sources for the collection of the Champu kavyas

1. Journal of R. A. S. Bombay Branch Vol. I. III, and XVIII.
2. Journal of Oriental Research. Madaras Vol. III, IV and VIII.
3. Journal of the Travancore University Oriental Manuscripts Library Trivendrum and its Reprints of Champu kavyas NO 2 and 18.
   (H. H. The Maharaja's Palace Library. Trivendrum NO. (Trav. C. NO.)
4. Journal of the prachya Vani (Institute of Oriental Learning, Calcutta 1952 Vol IX.)
5. Journal of Sanskrit College, Mysore VOl. 1, IV and XI.
6. The princes of wales Saraswati Bhawan studies VOl. 11.
7. Descriptive catalogue of Sanskrit manuscripts of Government Oriental Library Madaras, Ed. by S. Kuppu Swami Shastri, M. A. (in 1918) VOl. XXl. (D.C. Madaras NO.)
8. Trienial Catalogue of Sanskrit Manuscripts, Govt. Oriental MSS Library Madras VOl. 1 to V (T. C. No. or Kuppu Cat. No.)
9. Lists of Sanskrit manuscripts in private Libraries of Southern India by Gustav Oppert, Ph. D. (Madras, 1885 Vol. II page 671) (G. O. No.)
10. Catalogue of Sanskrit Manuscripts Mysore and Coorg, Ed. by Lewis Rice M. R. A. S (1884) Page 246 to 270 (Mys. No. or Rice Cat. No)
11. India Office Catalogue of Sanskrit manuscripts, Vol. VII (I. O. C. No.)
12. A descriptive catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Saraswati Mahal Library, Tanjore VOl. VII, Kavyas, Ed. by p. p. S. Shastri (Tanj. Cat. No)
13. Burnel l's Tanjore Catalogue (1880) Page 158 (T. C. No)
14. A descriptive catalogue of Sanskrit and prakrit manuscripts in the Library of the Bombay Branch of the R. A. S. VOl. I to III (R. A. S. B. NO)
15. Catalogue of Sanskrit and prakrit Manuscripts. The Library of the University of Bombay, by G. D. Devasthali, M. A., VOl. I I Champu and prose Kavyas page 778. (B. U. Cat. No.)

16. Catalogue of Deccan College (Collection 1875-1876 by S. R. Bhandarkar

17. Catalogue of Elphinston College, Poona (Collection 1895 to 1899)

18. Catalogue of Sanskrit manuscripts in Sanskrit College, Calcutta, edited by Harishkesh Shastri VOl. I. and V. (C. C. I. and V. NO.)

19. Notices of Sanskrit manuscripts by Rajendra Lal Mitra Vol. I and II Calcutta (mitra Cat. No.)

20. Catalogue of Sanskrit College, Saraswati Bhawan, Benaras, page 311

21. Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Jammu and Kashmir Lib.

22. Catalogue of Sanskrit Library Ulwar (Ulwar NO.)

23. A Catalogue of Sanskrit manuscripts in private Library of North West Provinces, page 270 (N. W. NO.)

24. Lists of Sanskrit manuscripts Private Library in the Bombay Presidency, 1893 Part I, page 110 and in part III., page 39. Ed. by R. G. Bhandarkar.

25. Detailed reports of operation in Search of Sanskrit manuscript by professor peterson Vol. I Page 110 and II and III report.

26. Detailed reports of operation in search of Sanskrit manuscripts by H. R. Vol. II, III, and VI.

27. History of Classical Sanskrit Literature by Krishnam Acharier.

28. Descriptive Cat. Jain Bhandar. Patana Vol. 1.

चौखम्भा विद्याभवन
वाराणसी

चम्पू-क… …नात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

2430
891'201
स
च